अनुक्रमणिका/Index

01. अनुक्रमणिका /Index 01
02. क्षेत्रीय सम्पादक मण्डल/सम्पादकीय सलाहकार मण्डल 06/07
03. निर्णायक मण्डल 08
04. प्रवक्ता साथी 10/11

(Science / विज्ञान)

05. Comparative study of XRD analysis of $BaZr._{27}Ti._{73}O_3$ (pure) and $BaZr._{27}Ti._{73}O_3$ (1% Cu doped) (Rashmi Jain) 12
06. Weed: Flora And Distribution In Leguminous Plant Fields Of Takhatpur Block Bilaspur District (C.G.) (Indu Kaushal) 14
07. 4-Hydroxy Coumarin 3-Carboxy-P-Chloro Anilide As Fungicide (Dr. Seema Negi, Indu Kaushal) 16
08. Studies On Floral Diversity In The Tribal Areas Of Shahdol District (M.P.) India (Dr. Radheshyam Napit, Dr. Uma singh) 18
09. Anti Cancerous Plants Of Amarkantak Region Of Shahdol Division, Madhya Pradesh, India (Dr. Radheshyam Napit) 21
10. Assessment of milk samples informally marketed in local markets of ahmedabad with special reference to detect the presence of microbial flora (Dr. Dilip N. Zaveri, Anurag D. Zaveri, Patel Heena, Avani A. Zaveri) 24
11. A Scenenario Of Condition And Impact Of Pollutants: Water Pollution And New Purification Techniques (Rama Tiwari) 26

(Home Science / गृह विज्ञान)

12. To Investigate the Dietary Pattern and Nutritional Status of Adolescent Girls and Boys of HIG and MIG in Bhopal City (Dr. Madhubala Verma, Pranita Bahutra) 30
13. युवाओं में बढ़ता तनाव चुनौतियाँ एवं समाधान (डॉ. गीताली सेनगुप्ता) 32

(Commerce & Management / वाणिज्य एवं प्रबंध)

14. A Comparative Study of Indian and Chinese Textiles Industry (Dr. Pawan Kumar Jaiswal, Dr. Ajay Waghe) 35
15. Trends, Challenges And Opportunities Of E-Tailing In India (Dr. Vandana K. Mishra) 38
16. Role of government in the development of tribal society (Ram Pavitra Gautam, Dr. Vipin Agrahari) 41
17. Strategies And Impacts Of E-Marketing (Dr. Rita Sachdev) 44
18. To Study the Impact of credit risk management strategies on profitability of banks (Dr. Sujata Parwani) 47

19. नर्मदा–झाबुआ ग्रामीण बैंक की कृषि ऋण योजनाओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन (डॉ. सुनील शर्मा, कपिला बाफना) 49
20. भारत में प्रबन्ध शिक्षा : कल आज और कल (डॉ. राजू रैदास) 52
21. पूंजी निर्माण में बीमाकर्ताओं का योगदान (डॉ. संगीता भारूका, डॉ. रेणु मेहता सोनी) 55
22. मध्यप्रदेश राज्य सहकारी अनुसूचित जाति वित्त एवं विकास निगम 'मर्यादित' द्वारा संचालित 'अन्त्योदय स्वरोजगार योजना' का विस्तृत अध्ययन (डॉ. सोनिया चंदानी, डॉ. कविता चंदानी) 57
23. पूर्व निमाड़ में रंगीन कपास के उत्पादन एवं विपणन की सम्भावनाएँ–एक अध्ययन (डॉ. दिपेश आर उपाध्याय) 60
24. स्मार्ट सिटी – अवधारणा और परिदृश्य (डॉ. सुरेन्द्र कुशवाह, पंकज कुशवाह) 62
25. भारत में गरीबी और खाद्य सुरक्षा (डॉ. एल.एन. शर्मा) 64
26. भारत के भविष्यक एवम् समाजवादी चिन्तक स्वामी विवेकानन्द (डॉ. विम्मी बहल, डॉ. ओ. पी शर्मा) 64

(Economics / अर्थशास्त्र)

27. Impact of Agricultural Investment on Agricultural Production: Evidence from Madhya Pradesh (Dr. Rajeev Singh Chauhan, Dr. Kamlesh Kumar Shrivastava) 67
28. Climatic Changes And Agriculture : Food Security Concern In India (Dr. Kamlesh Kumar Shrivastava, Dr. Rajeev Singh Chauhan, Sunil Sharma) 70
29. समाज में नैतिक मूल्यों के प्रति उदासीनता एवं सामाजिक दृष्टिकोण (डॉ. सुनीता बाथरे) 73

(Political Seience / राजनीति विज्ञान)

30. India's Role in Afghanistan Post 2014 : Strategy, Policy and Implementation (Irshad Ahmad Mir, Dr. Ranjana Mishra) 75
31. Origin of Taliban with Reference to Role of Pakistan (Dr. Ram Shankar, Jawaid Ahmad Mir) 78
32. Political Feminism And India (Arsheed Aziz Khanday, Dr. Poornima Sharma) 81
33. नेपाल की राजधानी काठमांडू में सम्पन्न हुए दक्षेस का 18वाँ शिखर सम्मेलन के सन्दर्भ में – भारतीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी की भूमिका (डॉ. जे. के. संत) 83
34. भारत में पंचायती राज की स्थापना – लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का एक सफल प्रयोग (महेश कुमार रचियता) 86
35. जनजातियों का इतिहास, स्वतंत्रता, संघर्ष में योगदान (ज्योति विश्वास, डॉ. वाई.बी. कसवे) 89
36. भारत में बढ़ता भ्रष्टाचार – एक समस्या (डॉ. ज्योति मार्टिन) 91
37. पंचायती राज व्यवस्था में ई गवर्नेंस का महत्व (डॉ. मालती तिवारी) 93
38. मध्यप्रदेश महिला नीति, 2015 – एक विवेचन (डॉ. सुरेश काग, गिरधारीलाल भालसे) 95
39. युवाओं में बढ़ता तनाव (एक सम सामयिक अध्ययन) (प्रो. अंजना सेठिया) 97
40. प्रदूषण मुक्त नर्मदा–एक अनुशीलन (डॉ. गुलाब सोलंकी, प्रो. वीणा बरड़े) 99

(Sociology / समाजशास्त्र)

41. भारतीय समाज एवं जनसंख्या गतिकी (डॉ. दीपिका गुप्ता) 100

42. भारतीय समाज में विवाह संस्था पर सामाजिक अधिनियमों का प्रभाव – ग्वालियर शहर के संदर्भ में 104
एक समाजशास्त्रीय अध्ययन (अर्चना सेन)

43. जनजातीय बालश्रमिकों की सामाजिक स्थिति (झाबुआ जिले के सन्दर्भ में) (निशा जैन) 107

44. छतरपुर नगर में औद्योगिक विकास का भौगोलिक अध्ययन (डॉ. एस.एन. मिश्र, डॉ. दिनेश प्रसाद मिश्र) 109

45. पारिवारिक हिंसा का समाजशास्त्रीय अध्ययन (इन्दौर जिले के देपालपुर नगर के विशेष संदर्भ में) (डॉ. सादिक मोहम्मद खॉन) ... 112

46. जनजातीय धर्म दर्शन (डॉ. बसंत नाग) 114

47. विकास के क्रम में सामाजिक समानता के सिद्धांत का विश्लेषण (सुमित्रा वर्मा) 117

(Geography / भूगोल)

48. Growth And Instability In Kharif Pulses Productivity In Southern Rajasthan (Rajesh Sharma) 119

49. Impact Of Irrigation Project On Agriculture Development In Chittorgarh (Rajesh Sharma) 122

50. मुरार विकास खण्ड की खरीफ फसलों का मूल्यांकन (कंचन दुबे, डॉ. डी.पी. सिंह) 124

51. कोरबा जिले में भूमि उपयोग प्रतिरूप का विश्लेषणात्मक अध्ययन (डॉ. काजल मोइत्रा) 131

52. कृषि फसल प्रतिरूप एवं विकास पर पर्यावरण के प्रभाव का मूल्यांकन (उज्जैन जिले के विशेष संदर्भ में) 134
(डॉ. मोहन निमोले, डॉ. प्रमिला बघेल)

53. आदिवासी बहुल ग्रामीण क्षेत्र में फसल प्रतिरूप, कृषि की समस्याएँ एवं समाधान के उपाय 136
(रायगढ़ जिले के लैलूंगा विकासखण्ड के ग्राम कुर्रा का प्रतीक अध्ययन) (डॉ. कपूरचंद गुप्ता)

54. महिला साक्षरता – नीमच जिले में स्थानिक तथा कालिक विश्लेषण (डॉ. अख्तर बानो) 138

(Psychology / मनोविज्ञान)

55. Effect Of Locality Areas & Level Of Education On Self Confidence (कमलेश उपाध्याय) 139

56. महिलाओं के विकास की अभिनव पहल – स्वसहायता समूह (सुधा शाक्य) 142

(Hindi Literature / हिन्दी साहित्य)

57. कामायनी में मानस विज्ञान (डॉ. गायत्री वाजपेयी) 144

58. वैश्वीकरण का परिवेश और हिन्दी कथा साहित्य (ज्योति कौशिक) 147

59. बुन्देलखंड के प्रमुख कवियों का साहित्यिक अवदान (डॉ. अमित शुक्ल) 150

60. बुंदेली लोक कवि 'घाघ' के काव्य में कृषक जीवन दर्शन (डॉ. अर्चना देवी अहलावत) 152

61. जयशंकर प्रसाद का जीवन परिवेश एवं रचना दृष्टि (डॉ. रेणु अग्रवाल) 154

62. हिन्दी नाटकों में रंगमंच के सवाल (जयशंकर प्रसाद एवं मोहन राकेश के नाटकों के संदर्भ में)(डॉ. रत्नेश विष्वक्सेन) 156

63. अनुवाद और अनुवादक (डॉ. शबनम खान) 158

(English Literature / अंग्रेजी साहित्य)

64. Women Entrepreneurship in India (V.M. Audichya) 160

65. Cultural Conflict and the Indian Diaspora in the non-fictional works of V.S.Naipaul 162

66. Activity based method : The most comprehensive method to enhance english language skills amongst students of primary level 164

(Sanskrit / संस्कृत)

67. अग्निपुराण के काव्यशास्त्रीय भाग में शब्दालङ्कार विवेचन (प्रो. के. आर. सूर्यवंशी) 166

68. मुनिश्री प्रणम्यसागर जी की प्राकृत–कृति 'तित्थयर भावणा' (शुभम् जैन) 169

(Drawing / चित्रकला)

69. मुग़ल काल (1550 से 1857 ई. तक) भारतीय चित्रकला को नई दिशा (डॉ. यतीन्द्र महोबे) 172

(Education / शिक्षा)

70. Good Governance In Higher Education : Challenges Ahead (Dr. Neena Aneja) 174

71. ग्रामीण क्षेत्र के प्राथमिक विद्यालयों में मिड डे मिल सम्बन्धित योजना का अध्ययन (मन्दसौर जिले के संदर्भ में) 177
(जयदीप महार, संजय डागर)

72. अकादमिक ग्रंथालय में स्वचालन(आटोमेशन) (नंदकिशोर अहिरवार) 179

73. शाला के विकास में शाला प्रबंधन समिति की भूमिका (बालेन्द्र श्रीवास्तव, डॉ. एम.के. तिवारी) 181

74. शिक्षक शिक्षा में गिजुभाई बधेका के शैक्षिक चिन्तन की प्रासंगिकता (डॉ. महेश कुमार तिवारी, प्रमोद कुमार सेठिया) 183

(Physical Education / शारीरिक शिक्षा)

75. A comparative study of anxiety between district level urban and rural cricketers of Rajasthan (Dr. Seema Grujar, Dilip Kumar Sharma) 185

(Law/ विधि)

76. Medical Negligence : The Role of Indian Judiciary (Dr. Binayak Patnaik) 187

77. Temporary Occupation Of Land (Poorava Jadhav) 190

(Others / अन्य)

78. पत्रकारिता में अनुवाद का महत्व एवं स्वरूप (डॉ. गुरविन्दर सिंह गिल) 192

79. बाल – कला की उपादेयता (प्रगति तिवारी) 194

Research paper from National Seminar on Biodiversity Conservation & Management (1-2 March 2015) Organized by – Govt. P.G. College, Neemuch (M.P.)

80. Diversity of Zooplankton in Pashupatinath pond Mandsour, Madhya Pradesh 196
(Dr. Deepali Amb, Dr. Sanjay Prasad)

81. Biodiversity & Its Conservation (Dr. Sushila Shrivastava) 199

82. Chemodiversity - The Marine Treasure of the Future (B. K. Dangarh) 201

83. Green Chemistry : Study of acid-base indicator property of Basella alba 204
(Indian spinach)(Prashant Thote)

84. Sustainable Development and ConservationOf Environment (Nilofer Yadav) 207

85. Pollution And Human Health (Reena Rai) 210

86. Climate change, Bio-cultural diversity and Livelihoods : New Challenges for 213
indigenous peoples (R. K. Pensia, Devesh Sagar, B. K. Dangarh)

87. Effect Of Gender And Level Of Education On Home Environment-Special Reference To 216
Rural Area Of Rajasthan (Kamlesh Upadhyay)

88. Ethno-Botanical Diversity of Traditional Medicinal Plants Used By Ethnic Societies 219
Of Neemuch (Archana Pancholi)

89. Climate Change and Ecological Consequences in the Arctic Region 225
(Nikkey Keshri, Ravi Kant Anand)

90. Primitive Social System & Ecological Balance (Dr. Sanjay Joshi) 229

91. Manu Samhita : Paved the path of Biodiversity (Aparna Ray) 231

92. Smart Cities : Importance And Expectations (Nilofer, Dr. Nisha Dube) 234

93. The Soliloquy (Dr. Rashmi Nagwanshi) 239

94. नीमच जिले में वन क्षेत्र का स्थानिक तथा कालिक विश्लेषण (डॉ. अख्तर बानो) 241

95. जैव विविधता सरंक्षण एवं प्रबंधन (डॉ. भूपेन्द्र कुमार अम्ब) 243

96. शासकीय एवं अशासकीय अधिकारियों का पर्यावरणीय मूल्य का तुलनात्मक अध्ययन (डॉ. पल्लवी विश्वास, वंदना पटेल) 246

97. झाबुआ जिले में फ्लोराइड की समस्या एवं स्थिति–एक विश्लेषण (डॉ. कान्तु डामोर, विकास वर्मा) 248

98. पर्यावरण अध्ययन, ध्वनि प्रदूषण –पटेल प्लाजा, टैगोर मार्ग, नीमच (म.प्र.) भारत के विशेष सन्दर्भ में 251
(पर्यावरण एवं प्रदूषण) (डॉ. भूपेन्द्र कुमार अम्ब)

99. पर्यावरण प्रदूषण में प्रशासन की भूमिका(कपिला बाफना) 254

100. पर्यावरण के महत्व का संदेश देता हुआ नरेन्द्र मोदी का स्वच्छ भारत अभियान (एक समाजशास्त्रीय मूल्यांकन) 256
(डॉ. संजय जोशी)

101. पर्यावरण और स्वास्थ (डॉ. प्रेमलता तिवारी) 259

102. भारत के इतिहास में पर्यावरणीय मूल्य का अध्ययन (प्रो. उषा अग्रवाल) 261

****

क्षेत्रीय सम्पादक मण्डल अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय (Regional Editor Board- International & National) मानद्

(01) डॉ. मनीषा ठाकुर ..... फुल्टन कॉलेज, एरिजोना स्टेट यूनिवर्सिटी, अमेरिका
(02) श्री अशोककुमार ..... एम्प्लॉयब्लिटी ऑपरेशन्स मैनेजर, एक्शन ट्रेनिंग सेन्टर लि. लन्दन, यूनाईटेड किंगडम
(03) प्रो. डॉ. सिलव्यू बिस्यू ..... वाईस डीन (वाणिज्य एवं प्रबन्ध) कृषि एवं ग्रामीण विकास महाविद्यालय, बूचारेस्ट, रोमानिया
(04) श्री खगेन्द्रप्रसाद सुबेदी ..... सीनियर सॉयकोलॉजिस्ट, पब्लिक सर्विस कमीशन, सेन्ट्रल ऑफिस, अनामनगर, काठमाँडू, नेपाल
(05) प्रो. डॉ. ज्ञानचंद खिमेसरा ..... प्राचार्य, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.) भारत
(06) प्रो. डॉ. प्रमोद कुमार राघव ..... शोध निदेशक, ज्योति विद्यापीठ महिला विश्व विद्यालय, जयपुर (राज.) भारत
(07) प्रो. डॉ. एन.एस.राव. ..... संचालक, जनार्दनराय नागर राजस्थान विद्यापीठ विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.) भारत
(08) प्रो. डॉ. अनूप व्यास. ..... (पूर्व) संकायाध्यक्ष, वाणिज्य, देवी अहिल्या विश्व विद्यालय, इंदौर (म.प्र.) भारत
(09) प्रो. डॉ. पी.पी. पाण्डे ..... संकायाध्यक्ष, वाणिज्य (डीन), अवधेश प्रतापसिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.) भारत
(10) प्रो. डॉ. संजय भयानी. ..... अध्यक्ष, व्यवसाय प्रबंध विभाग, सौराष्ट्र विश्व विद्यालय, राजकोट (गुजरात) भारत
(11) प्रो. डॉ. प्रताप राव कदम ..... अध्यक्ष, वाणिज्य, शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खण्डवा (म.प्र.) भारत
(12) प्रो. डॉ. बी.एस. झरे . ..... प्राध्यापक वाणिज्य विभाग, श्री शिवाजी महाविद्यालय, आकोला (महाराष्ट्र) भारत
(13) प्रो. डॉ. राकेश शर्मा ..... अध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गुड़गांव (हरियाणा) भारत
(14) प्रो. डॉ. संजय खरे ..... प्राध्यापक, समाजशास्त्र विभाग, शास. स्वशासी कन्या स्नात. उत्कृष्टता महा., सागर (म.प्र.) भारत
(15) प्रो. डॉ. आर.पी. उपाध्याय ..... परीक्षा नियंत्रक, शासकीय कमलाराजे कन्या स्वशासी स्नातकोत्तर महा., ग्वालियर (म.प्र.) भारत
(16) प्रो. डॉ. प्रदीप कुमार शर्मा ..... प्राध्यापक, वाणिज्य विभाग, शासकीय हमीदिया कला एवं वाणिज्य महा., भोपाल (म.प्र.) भारत
(17) प्रो. अखिलेश जाधव ..... प्राध्यापक, भौतिकी, शासकीय जे. योगानन्दम् छत्तीसगढ़ महाविद्यालय, रायपुर (छत्तीसगढ़) भारत
(18) प्रो. डॉ. कमल जैन ..... प्राध्यापक, वाणिज्य, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खरगोन (म.प्र.) भारत
(19) प्रो. डॉ.डी.एन. खड़से ..... प्राध्यापक, वाणिज्य, धनवते नेशनल कॉलेज, नागपुर (महाराष्ट्र) भारत
(20) प्रो.डॉ. वन्दना जैन ..... प्राध्यापक, हिन्दी, शासकीय कालिदास कन्या महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत
(21) प्रो. डॉ. हरदयाल अहिरवार ..... प्राध्यापक, अर्थशास्त्र, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शहडोल (म.प्र.) भारत
(22) प्रो. डॉ. शारदा त्रिवेदी ..... सेवानिवृत्त प्राध्यापक, गृहविज्ञान, इंदौर (म.प्र.) भारत
(23) प्रो. डॉ. उषा श्रीवास्तव ..... अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, आचार्य इंस्टीट्यूट ऑफ ग्रेच्यूट स्टडी. सोलदेवानली, बैंगलुरू (कर्ना.) भारत
(24) प्रो. डॉ. गणेशप्रसाद दावरे ..... प्राध्यापक, वाणिज्य, शासकीय महाविद्यालय, बड़वाह (म.प्र.) भारत
(25) प्रो. डॉ. एच.के. चौरसिया ..... प्राध्यापक, वनस्पति, टी.एन.वी. महाविद्यालय, भागलपुर (बिहार) भारत
(26) प्रो. डॉ. विवेक पटेल ..... प्राध्यापक, वाणिज्य, शासकीय महाविद्यालय, कोतमा, जिला अनूपपुर (म.प्र.) भारत
(27) प्रो. डॉ. दिनेशकुमार चौधरी ..... प्राध्यापक, वाणिज्य, राजमाता सिन्धिया शासकीय कन्या महविद्यालय, छिन्दवाड़ा (म.प्र.) भारत
(28) प्रो. डॉ. आर.के. गौतम ..... प्राध्यापक ,वाणिज्य, शासकीय मानकुंवर बाई कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.) भारत
(29) प्रो. डॉ. जितेन्द्र के. शर्मा ..... प्राध्यापक, वाणिज्य एवं प्रबंध, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय केन्द्र, पालवाल (हरियाणा) भारत
(30) प्रो. डॉ. आर.पी. सहारिया ..... प्राध्यापक, अर्थशास्त्र, शासकीय जे.एम.पी. महाविद्यालय तख्तपुर जिला,बिलासपुर (छ.ग.) भारत
(31) प्रो. डॉ. गायत्री वाजपेयी ..... प्राध्यापक, हिन्दी, शासकीय महाराजा स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छतरपुर (म.प्र.) भारत
(32) प्रो. डॉ. अविनाश शेन्द्रे ..... विभागाध्यक्ष, अर्थशास्त्र, प्रगति कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, डोम्बीवली, मुम्बई (महाराष्ट्र) भारत
(33) प्रो. डॉ. जी.सी. मेहता ..... अध्यक्ष, अध्ययन मण्डल वाणिज्य, देवी अहिल्या विश्वविद्याय, इंदौर (म.प्र.) भारत
(34) प्रो.डॉ. बी.एस. मक्कड़ ..... अध्यक्ष, अध्ययन मण्डल वाणिज्य, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत
(35) प्रो.डॉ. पी.पी. मिश्रा ..... विभागाध्यक्ष, गणित, छत्रसाल शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पन्ना, (म.प्र.) भारत
(36) प्रो.डॉ. सुनील कुमार सिकरवार.... प्राध्यापक, रसायन, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झाबुआ (म.प्र.) भारत
(37) प्रो.डॉ. के.एल. साहू..... प्राध्यापक, इतिहास, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नरसिंहपुर (म.प्र.) भारत
(38) प्रो.डॉ. मालिनी जॉनसन ..... प्राध्यापक, वनस्पति, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, महू (म.प्र.) भारत
(39) प्रो.डॉ. विशाल पुरोहित ..... एम.एल.बी. शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, किला मैदान, इन्दौर (म.प्र.) भारत

सम्पादकीय सलाहकार मण्डल (Editorial Advisory Board, INDIA) मानद्

(01) प्रो. डॉ. नरेन्द्र श्रीवास्तव ..... प्रसिद्ध वैज्ञानिक 'इसरो' बैंगलुरू (कर्नाटक) भारत
(02) प्रो. डॉ. आदित्य लूनावत ..... निदेशक, स्वामी विवेकानंद कॅरियर मार्गदर्शन प्रकोष्ठ उच्च शिक्षा विभाग, म.प्र. शासन, इंदौर (म.प्र.) भारत
(03) प्रो. डॉ. संजय जैन ..... सहायक नियंत्रक, म.प्र. व्यावसायिक परीक्षा मंडल भोपाल (म.प्र.) भारत
(04) प्रो. डॉ.एस.के. जोशी ..... प्राचार्य, शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय रतलाम (म.प्र.) भारत
(05) प्रो. डॉ. जे.पी.एन. पाण्डेय ..... प्राचार्य, शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्ता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.) भारत
(06) प्रो. डॉ. सुमित्रा वास्केल ..... प्राचार्य, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खरगोन (म.प्र.) भारत
(07) प्रो. डॉ. पी.आर. चन्देलकर ..... प्राचार्य, शासकीय कन्या महाविद्यालय, छिन्दवाड़ा (म.प्र.) भारत
(08) प्रो. डॉ. मंगल मिश्र ..... प्राचार्य, श्री क्लॉथ मार्केट, कन्या वाणिज्य महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत
(09) प्रो. डॉ.आर.के. भट्ट ..... प्राचार्य, शासकीय महिला महाविद्यालय, नरसिंहपुर (म.प्र.) भारत
(10) प्रो. डॉ. अशोक वर्मा ..... संकायाध्यक्ष, वाणिज्य (डीन) देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर (म.प्र.) भारत
(11) प्रो. डॉ. टी.एम. खान ..... प्राचार्य, शासकीय महाविद्यालय, धामनोद, जिला–धार (म.प्र.) भारत
(12) प्रो. डॉ. राकेश ढण्ड ..... संकायाध्यक्ष, विद्यार्थी कल्याण विभाग विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत
(13) प्रो. डॉ. अनिल शिवानी ..... अध्यक्ष, वाणिज्य एवं प्रबंध विभाग श्री अटल बिहारी वाजपेयी हिंदी विश्वविद्यालय भोपाल (म.प्र.) भारत
(14) प्रो. डॉ. पद्मसिंह पटेल ..... अध्यक्ष, वाणिज्य विभाग शासकीय महाविद्यालय महिदपुर (म.प्र.) भारत
(15) प्रो. डॉ. मंजु दुबे..... संकायाध्यक्ष (डीन), गृह विज्ञान संकाय, जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर (म.प्र.) भारत
(16) प्रो. डॉ.ए.के. चौधरी ..... प्राध्यापक, मनोविज्ञान, राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर (राज.) भारत
(17) प्रो. डॉ. प्रदीप सिंह राव ..... प्राध्यापक एवं अध्यक्ष, राजनीति विभाग शासकीय महाविद्यालय, सैलाना, जिला–रतलाम (म.प्र.) भारत
(18) प्रो. डॉ. पी.के. मिश्रा ..... प्राध्यापक ,प्राणी शास्त्र, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बैतूल (म.प्र.) भारत

****

निर्णायक मण्डल (Referee Board) मानद्

✻✻✻ विज्ञान संकाय ✻✻✻

गणित:- .... **(1) प्रो. डॉ.वी.के. गुप्ता**, संचालक वैदिक गणित एवं शोध संस्थान, उज्जैन (म.प्र.)

भौतिकी:- .... **(1) प्रो. डॉ. आर.सी. दीक्षित**, शासकीय होल्कर विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)
(2) प्रो.डॉ. रवि कटारे, शासकीय आदर्श विज्ञान महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

कम्प्यूटर विज्ञान:- .... **(1) प्रो. डॉ. उमेश कुमार सिंह** अध्यक्ष कम्प्यूटर अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

रसायन:- .... **(1) प्रो. डॉ. मनमीत कौर मक्कड़**, शासकीय कालिदास कन्या महाविद्यालय, उज्ज्ैन (म.प्र.)

वनस्पति:- .... **(1) प्रो. डॉ. सुचिता जैन**, राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटा (राज.)
(2) प्रो.डॉ. अखिलेश आयाची, शासकीय आदर्श विज्ञान महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

प्राणिकी:- .... **(1) प्रो.डॉ. मंजुलता शर्मा**, एम.एस.जे., राजकीय महाविद्यालय, भरतपुर (राज.)
(2) प्रो. डॉ. अमृता खत्री, माता जीजाबाई शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मोती तबेला, इन्दौर (म.प्र.)

सांख्यिकी:- .... **(1) प्रो. डॉ. रमेश पण्ड्या**, शासकीय कला एवं विज्ञान महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.)

सैन्य विज्ञान:- .... **(1) प्रो. डॉ. कैलाश त्यागी**, शासकीय मोतीलाल विज्ञान महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

जीव रसायन:- .... **(1) डॉ. कंचन डींगरा**, शासकीय एम.एच. गृह विज्ञान महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

भूगर्भ शास्त्र:- .... **(1) प्रो. डॉ. आर.एस. रघुवंशी**, शासकीय मोतीलाल विज्ञान महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)
(2) प्रो. डॉ. सुयश कुमार, शासकीय आदर्श महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

चिकित्सा विज्ञान:- .... **(1) डॉ. एच.जी. वरूधकर**, आर.डी. गारड़ी मेडिकल महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

✻✻✻ वाणिज्य संकाय ✻✻✻

वाणिज्य :- .... **(1) प्रो. डॉ. पी.के. जैन**, शासकीय हमीदिया महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)
(2) प्रो. डॉ. शैलेन्द्र भारल, शासकीय कालिदास कन्या महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)
(3) प्रो. डॉ. लक्ष्मण परवाल, शासकीय वाणिज्य महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.)

✻✻✻ प्रबंध एवं व्यवसाय प्रशासन संकाय ✻✻✻

प्रबंध :- .... **(1) प्रो. डॉ. रामेश्वर सोनी**, अध्यक्ष अध्ययन शाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)
(2) प्रो. डॉ. आनन्द तिवारी, शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर कन्या उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)

मानव संसाधन:- .... **(1) प्रो. डॉ. हरविन्दर सोनी**, पैसेफिक बिजनेस स्कूल, उदयपुर (राज.)

व्यवसाय प्रशासन:- .... **(1) प्रो. डॉ. कपिलदेव शर्मा**, राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटा (राज.)

✻✻✻ विधि संकाय ✻✻✻

विधि:- .... **(1) प्रो. डॉ. एस.एन. शर्मा**, प्राचार्य, शासकीय माधव विधि महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)
(2) प्रो. डॉ. नरेन्द्र कुमार जैन, प्राचार्य श्री जवाहरलाल नेहरू स्नातकोत्तर विधि महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.)

✻✻✻ कला संकाय ✻✻✻

अर्थशास्त्र:- .... **(1) प्रो. डॉ. पी.सी. रांका**, श्री सीताराम जाजू शासकीय कन्या महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.)
(2) प्रो. डॉ. जे.पी. मिश्रा, शासकीय महाराजा स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छतरपुर (म.प्र.)
(3) प्रो. डॉ. अंजना जैन, एम.एल.बी. शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, किला मैदान, इन्दौर (म.प्र.)

राजनीति:- .... **(1) प्रो. डॉ. रवींद्र सोहोनी**, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.)
(2) प्रो. डॉ. अनिल जैन, शासकीय कन्या महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.)
(3) प्रो. डॉ. सुलेखा मिश्रा, मानकुंवर बाई शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

दर्शनशास्त्र:- .... **(1) प्रो. डॉ. हेमन्त नामदेव**, शासकीय माधव कला-वाणिज्य-विधि महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

समाजशास्त्र:– ..... **(1) प्रो. डॉ. आशुतोष व्यास,** राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चित्तौड़गढ़ (राज.)
(2) प्रो. डॉ. एच.एल. फुलवरे, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, धार (म.प्र.)
(3) प्रो. डॉ. इन्दिरा बर्मन, शासकीय गृह विज्ञान महाविद्यालय, होशंगाबाद (म.प्र.)
(4) प्रो. डॉ. उमा लवानिया, शासकीय कन्या महाविद्यालय, बीना, जिला-सागर (म.प्र.)

हिन्दी:– ..... **(1) प्रो. डॉ. चन्दा तलेरा जैन,** अध्यक्ष अध्ययन मण्डल, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर (म.प्र)
(2) प्रो. डॉ. जया प्रियदर्शनी शुक्ला, वनस्थली विद्यापीठ (राज.)
(3) प्रो. डॉ. कला जोशी, श्री अटल बिहारी वाजपेयी शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)

अंग्रेजी:– ..... **(1) प्रो. डॉ. प्रशांत मिश्रा,** शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.)
(2) प्रो. डॉ. अजय भार्गव, शासकीय महाविद्यालय, बड़नगर (म.प्र.)
(3) प्रो. डॉ. मंजरी अग्निहोत्री, शासकीय कन्या महाविद्यालय, सीहोर (म.प्र.)

संस्कृत:– ..... **(1) प्रो. डॉ. भावना श्रीवास्तव,** शासकीय स्वशासी महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)
(2) प्रो. डॉ. बालकृष्ण प्रजापति, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गंजबासौदा जिला विदिशा (म.प्र.)

इतिहास:– ..... **(1) प्रो. डॉ. नवीन गिडियन,** शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)

भूगोल:– ..... **(1) प्रो. डॉ. राजेन्द्र श्रीवास्तव** शासकीय महाविद्यालय, पिपलियामण्डी, जिला मंदसौर (म.प्र.)
(2) प्रो. डॉ. अर्चना भार्गव, शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छिन्दवाड़ा (म.प्र.)

मनोविज्ञान:– ..... **(1) प्रो. डॉ. कामना वर्मा,** प्राचार्य, शासकीय राजमाता सिंधिया कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छिन्दवाड़ा (म.प्र.)
(2) प्रो. डॉ. सरोज कोठारी, शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इंदौर (म.प्र.)

चित्रकला:– ..... **(1) प्रो. डॉ. अल्पना उपाध्याय,** शासकीय माधव कला-वाणिज्य-विधि महाविद्यालय उज्जैन (म.प्र.)
(2) प्रो. डॉ. रेखा श्रीवास्तव, महारानी लक्ष्मीबाई शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

संगीत:– ..... **(1) प्रो. डॉ. भावना ग्रोवर (कथक),** सुभारती विश्व विद्यालय मेरठ (उ.प्र.)
(2) प्रो. डॉ. श्रीपाद अरोणकर, राजमाता सिन्धिया शासकीय कन्या महाविद्यालय, छिन्दवाडा (म.प्र.)

✲✲✲ *गृह विज्ञान संकाय* ✲✲✲

आहार एवं पोषण विज्ञान:– .... **(1) प्रो.डॉ. प्रगति देसाई,** शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इंदौर (म.प्र.)
(2) प्रो. डॉ. मधु गोयल, स्वामी केशवानन्द गृह विज्ञान महाविद्यालय, बीकानेर (राज.)
(3) प्रो. डॉ. संध्या वर्मा, शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

मानव विकास:– ..... **(1) प्रो. डॉ. मीनाक्षी माथुर,** अध्यक्ष, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.)
(2) प्रो. डॉ. आभा तिवारी, अध्यक्ष अध्ययन मण्डल रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

पारिवारिक संसाधन प्रबंध:– ... **(1) प्रो. डॉ. मंजु शर्मा,** माता जीजाबाई शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मोती तबेला, इंदौर (म.प्र.)
(2) प्रो. डॉ. नम्रता अरोरा, वनस्थली विद्यापीठ (राज.)

✲✲✲ *शिक्षा संकाय* ✲✲✲

शिक्षा ..... **(1) प्रो. डॉ. मनोरमा माथुर,** प्राचार्य, अरावली शिक्षा महाविद्यालय, फरीदाबाद (हरियाणा)
(2) प्रो. डॉ. एन.एम.जी. माथुर, प्राचार्य एवं डीन पेसेफिक शिक्षा महाविद्यालय, उदयपुर (राज.)
(3) प्रो. डॉ. अर्चना श्रीवास्तव, बी.सी.जी. शिक्षा महाविद्यालय, देवास (म.प्र.)

✲✲✲ *शारीरिक शिक्षा संकाय* ✲✲✲

शारीरिक शिक्षा ..... **(1) प्रो. डॉ. अक्षयकुमार शुक्ला,** अध्यक्ष शारीरिक शिक्षा पेसेफिक विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)

✲✲✲ *ग्रन्थालय विज्ञान संकाय* ✲✲✲

ग्रन्थालय विज्ञान ..... **(1) डॉ. अनिल सिरौठिया,** शासकीय महाराजा महाविद्यालय, छतरपुर (म.प्र.)

प्रवक्ता साथी (मानद्)

(01) प्रो. डॉ. आर.के. गुजेटिया ..... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.)
(02) प्रो. श्रीमती विजया वधवा ..... शासकीय कन्या महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.)
(03) डॉ. सुरेंद्र शक्तावत ..... ज्ञानोदय इंस्टीट्यूट ऑफ मेनेजमेंट एंड टेक्नोलॉजी, नीमच (म.प्र.)
(04) प्रो. डॉ. देवीलाल अहीर ..... शासकीय महाविद्यालय, जावद, जिला नीमच (म.प्र.)
(05) श्री आशीष द्विवेदी ..... शासकीय महाविद्यालय, मनासा, जिला नीमच (म.प्र.)
(06) प्रो. डॉ. मनोज महाजन ..... शासकीय महाविद्यालय, सोनकच्छ, जिला देवास (म.प्र.)
(07) श्री उमेश शर्मा ..... कृष्णा शिक्षा महाविद्यालय, जावी, जिला– नीमच (म.प्र.)
(08) प्रो. डॉ. एस.पी. पंवार ..... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.)
(09) प्रो. डॉ. पूरालाल पाटीदार ..... शासकीय कन्या महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.)
(10) प्रो. डॉ. क्षितिज पुरोहित ..... जैन कला–वाणिज्य–विज्ञान महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.)
(11) प्रो. डॉ.एन.के. पाटीदार ..... शासकीय महाविद्यालय, पिपलियामंडी, जिला मन्दसौर (म.प्र.)
(12) प्रो. डॉ. वाय.के. मिश्रा ..... शासकीय कला एवं विज्ञान महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.)
(13) प्रो. डॉ. सुरेश कटारिया ..... शासकीय कन्या महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.)
(14) प्रो. डॉ. अभय पाठक ..... शासकीय वाणिज्य महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.)
(15) प्रो. डॉ. मालसिंह चौहान ..... शासकीय महाविद्यालय, सैलाना, जिला रतलाम (म.प्र.)
(16) प्रो. डॉ. गेंदालाल चौहान ..... शासकीय विक्रम महाविद्यालय, खाचरौद, जिला उज्जैन (म.प्र.)
(17) प्रो. डॉ. प्रभाकर मिश्र ..... शासकीय महाविद्यालय, महिदपुर, जिला उज्जैन (म.प्र.)
(18) प्रो. डॉ. प्रकाश कुमार जैन ..... शासकीय माधव कला वाणिज्य विधि महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)
(19) प्रो. डॉ. कमला चौहान ..... शासकीय कालिदास कन्या महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)
(20) प्रो. डॉ.आभा दीक्षित ..... शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)
(21) प्रो. डॉ. पंकज माहेश्वरी ..... शासकीय महाविद्यालय, तराना, जिला उज्जैन (म.प्र.)
(22) प्रो. डॉ. डी.सी. राठी ..... स्वामी विवेकानंद कॅरियर मार्गदर्शन प्रकोष्ठ, उच्च शिक्षा विभाग, म.प्र. शासन, इंदौर
(23) प्रो. डॉ. अनिता गगराड़े ..... शासकीय होलकर विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)
(24) प्रो. डॉ. संजय पंडित ..... शासकीय एम.जे.बी. कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मोती तबेला, इन्दौर (म.प्र.)
(25) प्रो. डॉ. रामबाबू गुप्ता ..... शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)
(26) प्रो. डॉ. अंजना सक्सैना ..... शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इंदौर (म.प्र.)
(27) प्रो. डॉ. सोनाली नरगुन्दे ..... पत्रकारिता एवं जनसंचार अध्ययनशाला देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर (म.प्र.)
(28) प्रो. डॉ. भारती जोशी ..... अजीवन शिक्षण विभाग देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)
(29) प्रो. डॉ. एम.डी. सोमानी ..... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, महू, जिला इन्दौर (म.प्र.)
(30) प्रो. डॉ. प्रीति भट्ट ..... शासकीस एन.एस.पी. विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)
(31) प्रो. डॉ. संजय प्रसाद ..... शासकीय महाविद्यालय, सांवेर, जिला इन्दौर (म.प्र.)
(32) प्रो. डॉ. मीना मटकर ..... सुगनीदेवी कन्या महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)
(33) प्रो. मोहन वास्केल ..... शासकीय महाविद्यालय, थांदला, जिला – झाबुआ (म.प्र.)
(34) प्रो. डॉ. नितिन सहारिया ..... शासकीय महाविद्यालय, कोतमा, जिला अनूपपुर (म.प्र.)
(35) प्रो. डॉ. मंजु राजोरिया ..... शासकीय कन्या महाविद्यालय, देवास (म.प्र.)
(36) प्रो. डॉ. शहजाद कुरैशी ..... शासकीय नवीन कला एवं विज्ञान महाविद्यालय, मूंदी, जिला खण्डवा (म.प्र.)
(37) प्रो. डॉ. शैल वाला गाँधी ..... महारानी लक्ष्मीबाई शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)
(38) प्रो. डॉ. प्रवीण ओझा ..... श्री भगवत सहाय शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)
(39) प्रो. डॉ.ओमप्रकाश शर्मा ..... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, श्योपुर (म.प्र.)
(40) प्रो. डॉ. एस.के. श्रीवास्तव ..... शासकीय विजया राजे कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)
(41) प्रो. डॉ. अनूप मोघे ..... शासकीय कमलाराजे कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)
(42) प्रो. डॉ. हेमलता चौहान ..... शासकीय महाविद्यालय, बड़नगर (म.प्र.)
(43) प्रो. डॉ. महेशचन्द्र गुप्ता ..... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खरगोन (म.प्र.)
(44) प्रो. डॉ. मंगला ठाकुर ..... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बड़वाह, जिला खरगोन (म.प्र.)
(45) प्रो. डॉ. के.आर. कुम्हेकर ..... शासकीय महाविद्यालय, सनावद, जिला खरगोन (म.प्र.)
(46) प्रो. डॉ. आर.के. यादव ..... शासकीय कन्या महाविद्यालय, खरगोन (म.प्र.)
(47) प्रो. डॉ. आशा साखी गुप्ता ..... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बड़वानी (म.प्र.)

(48) प्रो. डॉ. हेमसिंह मण्डलोई ..... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, धार (म.प्र.)
(49) प्रो. डॉ. प्रभा पाण्डेय ..... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मैहर, जिला– सतना (म.प्र.)
(50) डॉ. राजेश कुमार ..... शासकीय महाविद्यालय अमरपाटन, जिला–सतना (म.प्र.)
(51) प्रो. डॉ. रावेन्द्रसिंह पटेल ..... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सतना (म.प्र.)
(52) प्रो. डॉ. मनोहरलाल गुप्ता ..... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, राजगढ़ ब्यावरा (म.प्र.)
(53) प्रो. डॉ. मधुसुदन प्रकाश ..... शासकीय महाविद्यालय, गंजबासोदा, जिला–विदिशा (म.प्र.)
(54) प्रो. युवराज श्रीवास्तव ..... सी.वी. रमन विश्वविद्यालय, कोटा–बिलासपुर (छ.ग.)
(55) प्रो. डॉ. सुनील वाजपेयी ..... शासकीय तिलक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कटनी (म.प्र.)
(56) प्रो. डॉ. ए.के. पाण्डे ..... शासकीय कन्या महाविद्यालय, सतना (म.प्र.)
(57) प्रो. डॉ. यतीन्द्र महोबे ..... शासकीय महिला महाविद्यालय, नरसिंहपुर (म.प्र.)
(58) प्रो. डॉ. शशि प्रभा जैन ..... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, आगर–मालवा (म.प्र.)
(59) प्रो. डॉ. नियाज अंसारी ..... शासकीय महाविद्यालय,सिंहावल, जिला सीधी (म.प्र.)
(60) प्रो. डॉ. अर्जुनसिंह बघेल ..... शासकीय महाविद्यालय, हरदा (म.प्र.)
(61) डॉ. सुरेश कुमार विमल ..... शासकीय महाविद्यालय, भैंसादेही, जिला बैतूल (म.प्र.)
(62) प्रो. डॉ. अमरचन्द्र जैन ..... शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)
(63) प्रो. डॉ. रश्मि दुबे ..... शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)
(64) प्रो. डॉ. ए.के. जैन ..... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बीना, जिला– सागर (म.प्र.)
(65) प्रो. डॉ. संध्या टिकेकर ..... शासकीय कन्या महाविद्यालय, बीना, जिला– सागर (म.प्र.)
(66) प्रो. डॉ. राजीव शर्मा ..... शासकीय नर्मदा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, होशंगाबाद (म.प्र.)
(67) प्रो. डॉ. रश्मि श्रीवास्तव ..... शासकीय गृह विज्ञान महाविद्यालय, होशंगाबाद (म.प्र.)
(68) प्रो. डॉ. लक्ष्मीकांत चंदेला ..... शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छिंदवाड़ा (म.प्र.)
(69) प्रो. डॉ. बलराम सिंगोतिया ..... शासकीय महाविद्यालय सौंसर, जिला–छिन्दवाड़ा (म.प्र.)
(70) प्रो.डॉ. विम्मी बहल ..... शासकीय महाविद्यालय, काला पीपल, जिला – शाजापुर (म.प्र.)
(71) प्रो. डॉ. अमित शुक्ल ..... शासकीय ठाकुर रणमतसिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
(72) प्रो. डॉ. मीनू गजाला खान ..... शासकीय महाविद्यालय, मक्सी, जिला–शाजापुर (म.प्र.)
(73) प्रो. डॉ. पल्लवी मिश्रा ..... शासकीय महाविद्यालय, नई गढ़ी, जिला– रीवा (म.प्र.)
(74) प्रो. डॉ. एम.पी. शर्मा ..... शासकीय महाविद्यालय, दतिया (म.प्र.)
(75) प्रो. डॉ. जया शर्मा ..... शासकीय कन्या महाविद्यालय, सीहोर (म.प्र.)
(76) प्रो. डॉ. सुशील सोमवंशी ..... शासकीय महाविद्यालय, नेपानगर, जिला बुरहानपुर (म.प्र.)
(77) प्रो. डॉ. इशरत खान ..... शासकीय महाविद्यालय, रायसेन (म.प्र.)
(78) प्रो. डॉ. कमलेशसिंह नेगी ..... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सीहोर (म.प्र.)
(79) प्रो. डॉ. भावना ठाकुर ..... शासकीय महाविद्यालय रेहटी, जिला सीहोर (म.प्र.)
(80) प्रो. डॉ. केशवमणि शर्मा ..... पंडित बालकृष्ण शर्मा नवीन शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शाजापुर (म.प्र.)
(81) प्रो. डॉ. रेणु राजेश ..... शासकीय नेहरु अग्रणी महाविद्यालय, अशोक नगर (म.प्र.)
(82) प्रो. डॉ. अविनाश दुबे ..... शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खण्डवा (म.प्र.)
(83) प्रो. डॉ. वी.के. दीक्षित ..... छत्रसाल शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पन्ना (म.प्र.)
(84) प्रो. डॉ. राम अवेधश शर्मा ..... एम.जे.एस. शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भिण्ड (म.प्र.)
(85) प्रो. डॉ. मनोज कुमार अग्निहोत्री ..... सरोजिनी नायडू शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)
(86) प्रो. डॉ. समीर कुमार शुक्ला ..... शासकीय चन्द्र विजय महाविद्यालय, डिण्डोरी (म.प्र.)
(87) प्रो. डॉ. आर.सी. पान्टेल ..... शासकीय महाविद्यालय, धामनोद, जिला–धार (म.प्र.)
(88) प्रो. डॉ. अनूप परसाई ..... शासकीय जे. योगानन्दन छत्तीसगढ़ स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रायपुर (छत्तीसगढ़)
(89) प्रो. डॉ. अनिलकुमार जैन ..... वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)
(90) प्रो. डॉ. अर्चना वशिष्ठ ..... राजकीय राजऋषि महाविद्यालय अलवर (राज.)
(91) प्रो. डॉ. कल्पना पारीख ..... एस.एस.जी. पारीख पी.जी. कॉलेज, जयपुर (राज.)
(92) प्रो. डॉ. गजेन्द्र सिरोहा ..... पेसिफिक विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)
(93) प्रो. डॉ. कृष्णा पैन्सिया ..... हरिश आंजना महाविद्यालय, छोटीसादड़ी, जिला– प्रतापगढ़ (राज.)
(94) प्रो. डॉ. प्रदीप सिंह ..... केंद्रीय विश्व विद्यालय हरियाणा, महेंद्रगढ़ (हरियाणा)
(95) प्रो. डॉ. स्मृति अग्रवाल ..... शोध सलाहकार, नई दिल्ली

Comparative study of XRD analysis of $BaZr._{27}Ti._{73}O_3$ (pure) and $BaZr._{27}Ti._{73}O_3$ (1% Cu doped)

Rashmi Jain *

Abstract - The X-ray diffraction (XRD) technique is the most important tool for studying structural properties of single crystal, polycrystalline sample and thin film. It is applied for identification of material. In the present work we used Rigaku Miniflux X ray powder diffractometer. The X ray radiation used was CuKα (α=1.5402 Å). The counter was attached to an arm around the same axis by an angle 2α. The effect of cu doping on the dielectric properties of BZT has been studied. For the sample with higher doping level, the value of dielectric loss reduced.

Introduction - Studies of physical properties (i.e. structural, electrical, thermal, mechanical, optical, spectroscopic etc.) of material under various experimental conditions are useful in predicting their possible application.

The X-ray diffraction (XRD) technique is the most important tool for studying structural properties (i. e. cell parameter , space group, atomic and thermal parameter , particle size etc.) of single crystal, polycrystalline sample and thin film. It is usually applied for identification of material. It is an useful and easiest tool to obtain preliminary structural information (e.g. crystal system, lattice parameter, particle size etc.). This technique is useful in identifying the presence of various crystalline phase in the polycrystalline material and detecting the presence of other phases, if any. The X - ray diffraction profile is used to establish the atomic arrangements in the structure of the material because the interplaner spacing (d- spacing) of the diffraction plane is of order of x ray wavelength. For the crystal of given d- spacing and wavelength, the various order n of reflection occur at the precise value of the angle θ which satisfies the

Bragg's condition 2d sinθ = n*lambda

In the present work we used Rigaku Miniflux X ray powder diffractometer , in which the sample were mounted at the Centre of diffractometer and rotated by an angle á around an axis passing through the sample. The X ray radiation used was CuK α (α=1.5402). The counter was attached to an arm around the same axis by an angle 2α . The operation voltage and the current of the X- Ray tube were 30-50 kV and 15 mA respectively. The divergence of X-ray tubes was limited to 3° to 5° along vertical direction. Nickel slits were used to prevent unwanted radiation arriving at the counter. To make the radiation effective monochromatic solar slits and limiting slits were used to limit the divergence of X –ray beam in horizontal direction. The glass slit having the powder specimen was placed in the central position. The entire diffraction patterns were made in the wide range of 2α .

In the present study, (Philips PW 1710) X –ray diffractometer was used in which the specimen was mounted at the center of the diffractometer and rotated by an angle è around an axis in the specimen plane. The X-ray source was CuKα (lambda=1.518Å). The counter is attached to an arm rotating around the same axis by angle 2θ (twice as large as the specimen rotation). The diameter of the focusing circle continuously shrinks with increasing diffraction angle. Only (hkl) plane, which are parallel to the specimen plane, contributes to the diffraction patterns d – values (inter –planer space) are noted and compared.

graph See in next page

Fig 1

Line no.	Diffraction angle (2θ)	FWHM	Rel. in.te nsity (I/I_0)	Miller indices h	k	l
1	22.35	0.118	9	1	2	0
2	31.7	0.176	100	0	1	3
3	39	0.235	28	0	3	3
4	44.95	0.118	5	0	5	2
5	45.25	0.176	47	1	1	4
6	50.9	0.294	12	3	1	1
7	56.15	0.235	53	3	3	1

X-RD analysis for composition of $BaZr._{27}Ti._{73}O_3$ (1% Cu doped)

Composition	$BaZr_{27}Ti_{73}O_3$ (1% Cu doped)		
Crystal structure	orthorhombic		
Unit cell parameter	a=5.5671 Å	B=7.3529 Å	C=8.7378 Å
Unit cell volume	V= 391.26		
Particle size standard Deviation	348.457 Å .0005 Å		

Structural parameter for composition of $BaZr_{27}Ti_{73}O_3$ (1% Cu doped)

Line no.	Diffraction angle (2θ)	FWHM	Rel. in.te nsity (I/I_0)	Miller indices h	k	l
1	22.50	0.176	10	0	1	0
2	31.4	0.294	100	1	0	4
3	31.8	0.118	3	2	1	1
4	38.8	0.294	30	1	1	4
5	44.95	0.185	51	1	1	5

* Deptt. of physics , Govt. J.M.P. College,Takhatpur, Bilaspur (C.G.) INDIA

6	50.6	0.176	15	0	2	3
7	55.85	0.176	78	5	0	1

X-RD analysis for composition of $BaZr_{.27}Ti_{.73}O_3$ (Pure)

Composition	$BaZr_{.27}Ti_{.73}O_3$ (pure)		
Crystal structure	orthorhombic		
Unit cell parameter	a=7.3005 Å	B=4.0278 Å	C=12.1203 Å
Unit cell volume	V= 486.21		
Particle size stan dard Deviation	318.457 Å 0008 Å		

Structural parameter for composition of $BaZr_{.27}Ti_{.73}O_3$(pure)

Fig 1 shows XRD pattern of $BaZr_{.27}Ti_{.73}O_3$(pure) and $BaZr_{.27}Ti_{.73}O_3$(1% Cu doped) sample sintered at 1280°c . The XRD pattern are assigned using POWD software. X-ray diffraction analysis and XRD data were used for calculating the lattice parameters. All major X-ray reflection peaks observed could be fitted satisfactorily in orthorhombic perovskite phase (110) as the major peak. No additional peaks were observed indicating the formation of pure phase. The particle size was determined using Scherer formula. Accordingly

Crystalline size =K * lambda /FWHM *cos θ

Where k=0.9 , lambda =1.54056 Å for CuKα , FWHM= full width at half maximum of the strongest (110) line.

Result - The effect of cu doping on the dielectric properties of BZT has been studied. For the sample with higher doping level, the value of dielectric loss reduced. Small amount of Cu decreased the dissipation factor due to the pining of oxygen vacancies at the grain boundaries and lower porosity in the structure caused by Cu addition. The phenomena behind this behavior are at dopant addition. Second phase at grain boundary, which causes in the dielectric loss. It is observed that Cu enhanced the density of BZT . All doped samples were denser that pure BZT.

References :-

Books:

1. Introduction to ceramics , W.D. Kingery, H.K. Bowen, D.R. Uhlmann, John wiley & sons (1976).
2. Elements of X-ray diffraction , B.D. Cullity 2nd edition, Addition Publishing company inc(1978).

Journals:

1. S.Lanfredi, A.C.M. Rodriruez, J.Applied Physics 86,4,(1999) 2215- 2219.
2. Z.Yu, R. Guo, and A.s. Bhalla, J.Applied Physics 88,410,(2000)
3. X. Yao, Z.L. chen and L.E. cross , J.Applied Physics 54,3399(1984)
4. H.B. Sharma , H.N.K. Sharma and A. Mansingh Indian , J.Applied Physics 71a,387,(1997)

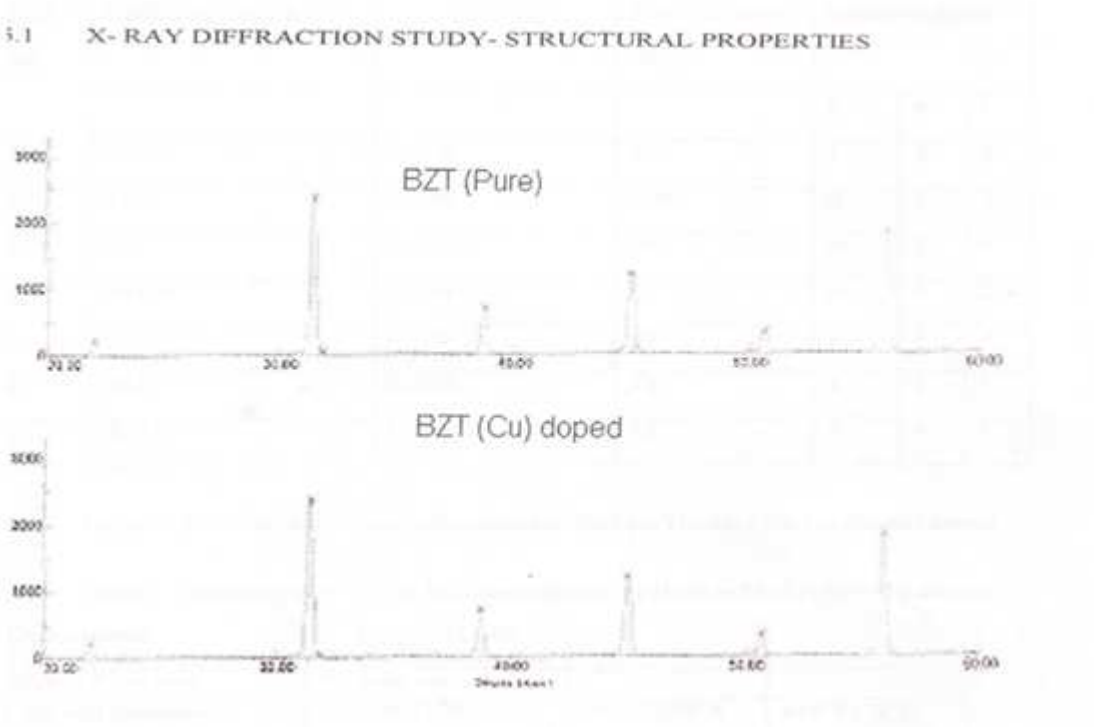

****

Weed: Flora And Distribution In Leguminous Plant Fields Of Takhatpur Block Bilaspur District (C.G.)

Indu Kaushal *

Abstract - A survey on weed flora and their distribution in block Takhatpur and its adjoining leguminous plant growing area had been observed over a period (2013-14) in kharif season. Total of 49 weed species belonging to 3 monocot and 14 dicot families were reported from the study area. A number of weeds have the medicinal value of great importance. Regarding family-wise contribution, Poaceae contributing highest number 08 and it is most dominant family in the study area which are useful for food and fodder purpose. These weeds were very helpful for various medical treatments.

Introduction - Flora is the plant occurring in a particular region or time. Weed flora was applied to plants regarded as undesirable, unwanted plants growing along with domesticated crops.Weed distribution patterns in leguminous plant fields are dynamic in nature. The composition of the weed flora may differ depending on location. The present study was undertaken to investigate the distribution and severity of weed flora. Weeds decrease the yield of crops by competing for water, nutrients, space, CO2 and sunlight, but they have been shown to be beneficial or even necessary to various ecosystems. Weeds are very useful for food, fodder and medicine etc.

Leguminous plants are the major kharif crops of takhatpur block, Lathyrus sativum,Cicer arietinum, Cajanas cajan, Lens cularis are the main leguminous plants that are grown by the farmer. In these field different different types of weeds growing along with crops and made flora of weed.

Study area - Takhatpur block is situated in bilaspur district of chattisgarh. There are about 172 villages in Takhatpur block During the course of study the author have selected leguminous plant field (kharif crops) related to 05 important villages of Block Takhatpur i.e .Khajuri (Sagar) , Kathakoni, Lakhasar, Moch and Khapri.

Material and method - The field study was carried out in the related villages of Takhatpur block. The study based on field survey. The main aim of the survey was to collect information about the diversity and flora of weeds. Weeds species are collected in different-different fields of leguminous plant i.e. Lathyrus sativum , Cicer arietinum, Cajanas cajan and Lens cularins. These are the main leguminous plants as kharif crops in these areas. Weed species are identified and documented by collecting samples.

Result and discussion - Total of 49 weed species belonging to 3 monocot and 14 dicot families were reported from the study area. In all45 weed species collected from 5 villages of Block takhatpur, the predominance was shown by monocot family Poaceae having 8 weed species followed by families Amaranthaceae and Malvaceae having 6 weed species. The family Asteraceae, Euphorbiaceae were represented by 5 weed species and. Each of the families' cyperaceae and fabaceae contained 3 weed species. Family solanaceae having 2 weed species. The families acanthaceae Cleomaceae Caesalpiniaceae, Commelinaceae,,Lamiaceae oxalidaceae Portulacaceae, Rubiaceae and Tiliaceae were represented by 1 weed species. Although some of the weeds reported from the study area showing on the table.The weeds like Commelinabenghalensis, Eleusine indica, Setaria glauca ,Setaria verticillata, Heteropogon contortus, Digitaria ciliaris andPaspalum distichum etc. are used as fodder in the study area.Theweeds like Crotolaria medicaginea, Portulaca leracea and Solanum nigrum etc. are used for certain cooking recipes in the study area.

Table showing the flowering and fruiting time of weeds of leguminous plant field

S.	Family name	Botanical name	Flowering & Fruiting season
1.	Amaranthaceae	Achyranthus aspera	Mar.-Dec.
		Alternanthera sessilis	Feb.-Dec.
		Amranthus spinosus	July –Dec.
		Amranthus viridis	July –Dec.
		Digera muricata	Aug.-Oct.
		Gomphorina celosioides	Mar.-Dec.
2	Acanthaceae	Asteracantha longifolia	Sep.-march
3	Asteraceae	Ageratum conzoides	Mar.-Dec.
		Eclipta alba	Jan.-Dec.
		Gnaphalium leuto-album	Apl .-Dec.
		Parthinium hysterophorus	Throughout the year
		Xanthium strumarium	July –Dec.
4	Ceasalpiniaceae	Cassia tora	Apl .-Dec.
5	Cleomaceae	Cleome viscosa	July –Oct.
6	Commelinaceae	Commelina benghalensis	July –Nov.
7	Cyperaceae	Cyperus rotundus	July-Dec.
		Cyprus esculentus	July –Dec.
		Kyllinga polyphylla	July –Dec.
8	Euphorbiaceae	Euphorbia hirta	Throughout the year
		Euphorbia thymifolia	Jan.-Dec.
		Euphorbia maculate	Jan.-Dec.
		Euphorbia terracina	Winter season

* Deptt. Of Botany, Govt. J.M.P. College, Takhatpur, Bilaspur (C.G.) INDIA

		Phyllanthus nirurii	Winter season
9	Fabaceae	Psorelea corylifolia L.	Sep. –Oct
		Crotolaria medicagenia	Apl.-Aug.
		Vicia sativa	July-Nov.
10	lamiaceae	Leucas lanata	
11	Malvaceae	Abutilon indicum	Apl.-Aug.
		Malvastrum coromandelian	Throughout the year
		Sida cordata	
		Sida cordifolia	July-Nov.
		Sida acuta	Rainy season
		Chorchorus aestuans	Aug.-Oct.
12	oxalidaceae	Oxalis corniculata	Throughout the year
13	Poaceae	Cynodon dactylon L.	Jan.-Dec.
		Digitaria ciliaris	Aug.-Nov.
		Echinocloa colona	July-Oct.
		Eleusine indica	July- Nov.
		Eragrostis japonica	July-Oct.
		Heteropogon contortus	Aug.- Nov.
		Setaria glauca	Aug.- Nov.
		Themeda triandra	Dec. -Feb.
14	Portulacaceae	Portulaca oleracea	Apl.-Sep.
15	Rubiaceae	Oldenlandia corymbosa	July- Nov.
16	solanaceae	Solanum nigrum	Throughout the year
		Physalis minima	July- Nov.
17	Tiliaceae	Triumfett arhomboidea	Aug.- Nov.

Pictures of some leguminous plant feild with weeds

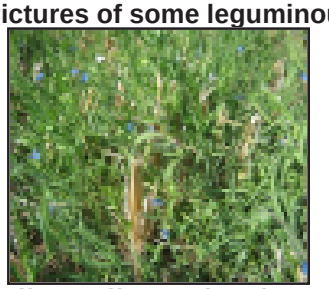

Eclipta alba and Aziratum conjoides in the feild lathyrus sativum

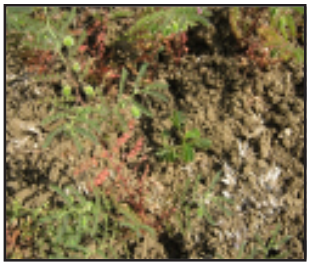

Abutilon indicum and Cassia tora in the feild cicer arietinum

Parthinium sp. And Euphorbia terracina in the feild lens cularis

References :-

1. Acharya Balkrishn- Ayurved Jadi-Buti Rahasya
2. Aldrich, R., 1984. Weed-crop ecology: principles in weed management. Breton, North Scituate, MA, USA.
3. Internet resources
4. Scoones, M Melnyk, JN Pretty “The hidden harvest: wild foods & agriculture systems.”1992, cabdirect.org
5. J.Glauning, W.Holzner- Biology and ecology of weeds
6. King L.J.-”weeds of the world: biology and control
7. L.R. Dangwal1, Amandeep Singh, Tajinder Singh and Antima-Common weeds of kharif crops of block sunderbanidistrict rajouri (jammu and kashmir)
8. M. a. hakim1, 2, a. s. juraimi3-A survey on weed diversity in coastal rice fields of sebarang perak in peninsular malaysia
9. Rao V.S.- Principals of weeds
10. Priti Tiwari, Sushma Patel and Indu Soni – Indian J.Sci.Res.
11. Pratiksha Pandey, Anju Bhandari and Bhawna Pandey- Indian J.Sci.Res

Figure 1. Showing the number of individuals of weeds in eachFamily.

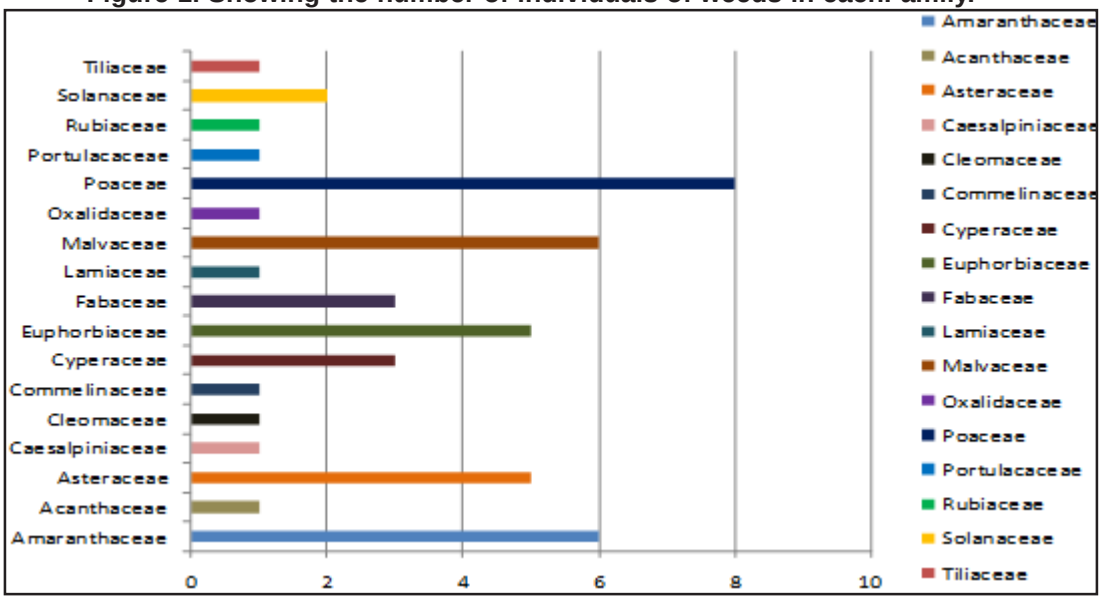

4-Hydroxy Coumarin 3-Carboxy-P-Chloro Anilide As Fungicide

Dr. Seema Negi * Indu Kaushal **

Abstract - Structurally coumarins are considered as benzopyrone derived from orthohydroxy salicylic acid as Lactone. Coumarins are also found in Torrese Tree, Seeds of plants belonging to Leguminaceae, Labiate, Umbeiliferae family.Naturally coumarin occurs as chemical or biochemical product with versatile activity such as Narcotic Activity for rabbits and frog, further medicinal activities such as antifertility, antibacterial, antiallurgic activity, anti HIV etc. In present study we have used coumarins as fungicide and it was found that this not only retarded growth of fungus but also destroyed them.

Introduction - Structurally coumarins are considered as benzopyrone derived from orthohydroxy salicylic acid as Lactone[1].

Coumarins and Chromones constitute the two well known classes of compounds found in the plant kingdom either in the free state or in the combined state. It is sweet smelling constituent of white cloves[2].

Coumarins are also found in Torrese Tree, Seeds of plants belonging to Leguminaceae, Labiate, Umbeiliferae family[3].Naturally coumarin occurs as chemical or biochemical product with versatile activity such as Narcotic Activity for rabbits and frog ,[4] While if alkyl group is found at position 3 they were found hypnotic if compound is with odd number of carbon atom[5].4 and 7 hydroxy coumarins have been reported by Heilbron and Hill[6].

Various methods of synthesis of 4-hydroxy coumarins are reported in the literature such as Perkin reaction, Knoevenagel reaction, Pechmann reaction, Wood's and Johson's method[7, 8, 9].

Fungicidal activity of 4-hydroxy coumarin is reported by Malho[10] and its use as anticoagulant[11] gave its use in cosmetis up ot 0.01 to 0.02%.

Further medicinal activities such as antifertility, antibacterial, antiallurgic activity, anti HIV etc[12, 13]. Give us impetus to synthesise 4-Hydroxy coumarin so in the present study synthesized 4-hydroxy-coumarin-3-carboxy-p-chloro-anilide under laboratory conditions using Wood and Johnson method by condensing equi molecular quantity of molar p-chloro anilic acid and salicylic acid in presence of trichloro acetic acid (3g) and heating for twenty four hours followed by cooling and washing with $NaHCO_3$. Resystallised from ethyal alcohol mp 155°C.

This compound was synthesised with a view to test its some phloroscence and antifungal activity in chem.-laboratory, Govt. J.M.P. College, Takhatpur.

Spectral identity was made by its IR datas which have shown following absorption peaks. Picryl derivative of 4-hydroxy-

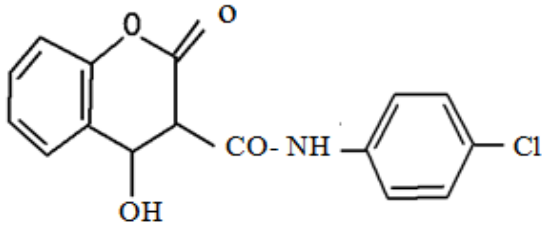

Or

$-C_6H_3(NO_2)_3$

coumarin-3-carboxy-p-chloro-anilide was also tested.

4-Hydroxy-Coumarin-3-Carboxy-P-Chloro-Anilide Ir Spectral Absorbtion Frequencies

No.	Group	Absorbtion cm^{-1}	Sharp or broad
1	Coumarin ring	1660	Strong & Sharp
2	OH bending vibration	1310	Sharp
3	CONH stretching vibration	1530	Broad & Strong
4	C-Cl bond stretching vibration	710	Sharp & Strong

Pure solvent ethanol and 4-hydroxy-coumarin-3-carboxy-p-chloro-anilide also observed for UV and visible spectro photographs in UV and visible spectro photometer. Comprative account has shown that coumarine shows absorption peak at 350 nm and at 400 nm while those were absent in pure solvent spectrograph. Compound has shown fluorescence in DMF solvent with acqueous sodium hydroxide. Colour increased with dilution to Violet/Pink colour. Hence compound can be used as indicator.

We have tested this chemical in 0.1% 0.2 and 0.3% Solution for Fungi developed on bread pieces, Wheat barley at Room Temperature for several days spraying on them. It was found that this not only retarded growth of fungus but also destroyed them. Photo graphs and chart will prove our work.

* **Asst. Professor (Chemistry) Govt. J.M.P. College, Takhatpur (C.G.) INDIA**
** **Asst. Professor (Botany) Govt. J.M.P. College, Takhatpur (C.G.) INDIA**

Picryl Chloride derivative of 4-hydroxy-coumarin-3-carboxy-p-chloro-anilide was also tested but not found so effective on above sets.

Antifungal Activity Of 0.1% &0.2% 4-Hydroxycoumarin-3-Carboxy P-Chloro Anilide On Fungi

Developed Fungi	Effect of spray of 0.1% & 0.2% 4-Hydroxycoumerin-3-carboxy p-chloro anilide on fungi

Fig. 1.1 Fungus on Bread

Fig. 1.2 Dead fungus of Bread

Fig.2.1 Fungus on Wheat grain

Fig.2.2 Dead fungus of Wheat grain

Fig.3.1 Fungus on Marigold flower

Fig.3.2 Dead fungus of Marigold flower

References :-

1. C. Wehmer, Ber, Duut. Botan, Ces, 47, 119-20 (1929).
2. C.H. Leberalli and J. Lima, Rev. Flora, Med. (Reode Janerio) 3, 341-79 (1937)
3. Spatch. E. Ber, 70A, 83 (1937)
4. Worder, F.W. Mrk's Johres bericht 50, 88 (1936)
5. Ketagawa, Ishil, J. Pharon, Soc. Japan, 73, 351 (1953)
6. T.M. Heilbron and D. Wm. Hill, J. Chem. Soc. (1927) 1705-8.
7. N.J. Desai and S. Sethana J. of Org. Chem. 22, 368-90, (1957)
8. Darius Marho, U.S. 3, 032, 557, 1962.
9. Josef Kloso Ger., 1, 133, 080 July 12 (1962).
10. D. Malho, CA 55, 1765 (1960) Harbhajan Singh Mahal, Proc Ind. Acad. Sci. 5B, 186-84, (1937).
11. L L Woods and Johnson, J. Org. Chem. 30, 4343 (1965)
12. Pub. S. acs. Org/doi/abs/10 J on 00238014 by Dr. Buckle 1975.
13. www.mdpi.com/1420-3049/16/1/pdf. Pharamacological at pub Journal of medicinal chemistry.

Chart Showing Effect of 4-Hydroxy-Coumarin-3-Carboxy-P-Chloro-Anilide on develeoping fungi

Material	Days of Fungal Growth	% of Solution Sprayed	No. of Sets	Out of All fungi Shown Effect	All Fungi Destroyed	Days of Fungi Destroyed
Bread	03	0.1% 0.2%	04 04	02 04	04 04	07 07
Wheat Grain	07	0.2%	04	02	04	07
Marigold Flower	05	0.2%	04	01	04	07

****

Studies On Floral Diversity In The Tribal Areas Of Shahdol District (M.P.) India

Dr. Radheshyam Napit * Dr. Uma singh **

Abstract - The present study was conducted in protected and unprotected forest area of Shahdol district. The potential pockets of Bansa, Bartua, Keet, Sichaura, Pahadia, Bansukli, Mushra Phulbari, Garh, Kodar, Poni, Dhandha Hill and South in Maikal rang provided diverse habitat of common, Rare, Endangered and Endemic flora. In the present study some rare habitats have been identified along with existing medicinal plants. 50 species of plants of medicinal value have been corporated here. Out of the above 20 important plant species mentioned below have been assessed for conservation there are some listed below. *Curcuma angustifolia Roxb., Heliotropium indicum Linn., Strychnous nux-vomica Linn., Embelia robusta Roxb., Evolvulus alsinoids Linn., Hemidesmus indicus R.Br., Centella asiatica Linn., Helicteres isora Linn.etc.*

Keywords – Studies on Floral Diversity of Shahdol district.

Introduction - Shahdol district is situated in Maikal Plateau at an altitude of 489 m above the sea level between 23.15^0 - 24.3^0 N Latitude and 18^0 - 81.45^0 E Longitude. Shahdol situated on SER- South Eastern Railway Katni-Bilaspur. The district enjoys tropical monsoon average rainfall ranging from 309.33 to 1005.10 mm. per annum. The district areas 14028 Sq. Km. Gond, Baiga, Kol, Kanvar, Bahria, Paliha etc. Scheduled tribes, Scheduled cast are the main inhabitants and some OBC and general peoples of the district. According to 2011 census the total population of Shahdol was 15, 75,303 out of which 700651 are scheduled tribe and115904 schedule caste. Literacy is about 27.6%.

Shahdol district villagers still practice herbal medicines for the treatment of their ailment. And here specially discussed administrations of Leucoderma the knowledge about these medicines is age-old for them, use of local plants is the cheapest way of treating various health disorders. Remote areas there are no Govt. Doctors in the villages. A review of literature reveals that through much work has been done on Ethno medicinal plants in India (Jain 1965, 1981, 1997, 2004), still there are some interior areas which need to be surveyed intensively for searching new traditional medicines.

Materials and Methods - Methods applied by Jain, S.K. (1965), to field tours etc., Keeping in the view, of rich floral diversity, in the tribal areas of Shahdol district. For medicinal surveys tours were conducted in different tribal localities inside reserve forest protected forest and agriculture land etc. Over a period of four year (2003-2006) voucher specimens and medical information were collected from the field. Vaidya, Gunia knowledgeable person were interviewed and cross-questioning etc. while noting medicinal information. Every care was taken to record the local name of the plants parts of the plants used, method of drug preparation and dosage. The collected voucher specimens were critically identified with help of consulting flora of British India by Benthum and Hooker (1872-1879) in the enumeration, the plants specimen is deposited in Pt. S.N.S. Govt. P.G. College Shahdol (M.P.).

Enumeration

1. *Adhatoda vasica Nees.*(Acanthaceae) Adusa

Plant root is used for cough and leaf also used in bronchitis.

***2. Achyranthes aspera* L. (Amaranthaceae) Chirchira**

A pasted Seeds 5 g. mixed with candy sugar ½ spoons is applied two times a day for 7-21 days to cure stone (calculi) diseases.

***3. Andrographis paniculata* (Burm.f.) Wall. ex Nees (Acanthaceae) Bhuneem.**

A pasted whole plant is taken two times a day for 3-5 days to cure warms (anthelmintic) diseases.

***4. Asparagus racemosus* Willd. (Asparagaceae) Satavar**

Root powder one spoon is applied one time a day for 7-21 days to treatment of weakness and also use in galactagogue (for Lactation of milk women's & cattles) ailments.

***5. Anogeissus latifolia* (Roxb.ex.DC.) Wall. Ex Guill & Perr. (Combretaceae) Dhawa**

Stem gum powdered is mixed with curd ½ spoon two times a day taken orally for 2-4 days to cure diarrhoea and also used in weakness.

***6. Azadirachta indica A. Juss*. (Meliaceae) Neem**

Stem & leaves juice are applied on skin disease and also use in cancer.

***7. Celastrus paniculatus* Willd. (Celastraceae) Malkangni**

Powdered of Seeds ½ tea spoon taken two times a day for 2-3 months to cure leprosy.

* Guest Faculty (Botany) I.G.N.T.U., Amarkantak (M.P.) INDIA
** Deptt. of Botany, Govt. P.G. College, Shahdol (M.P.) INDIA

***8. Centratherum anthelminticum (Willd.)* (Asteraceae) Somraj/Banjeer**
The Seed powder is taken ½ tea spoon for worm, stomachic and also used in skin diseases.

***9. Curcuma angustifolia Roxb.* (Zingiberaceae) Tikhur**
Powder of Rhizome is applied in rheumatism, and gout etc.

***10. Cuscuta reflexa Roxb.*(Convolvulaceae) Amarbel**
The plant Seeds use for anthelmintic and stem use to jaundice.

***11. Evolvulus alsinoides Linn.*(Convolvulaceae) Shankhapushpi**
The plant juice is given orally 2 spoons twice a day for 3-4 weeks to treatment of memory loss.

***12. Holarrhena antidysenterica, Wall.* G. Don. (Apocynaceae) Koraya**
Bark powder ½ tea spoon taken orally twice a day for 2-3 weeks treat stone diseases.

***13. Helicteres isora Linn*. (Sterculiaceae) Marorphali**
Powdered of fruits and root along with "Amla" *(Emblica officinalis Gaertn.) and Terminalia belerica* fruits together equal quantity one tea spoonful applied orally early morning before meals once or twice a days for 3-21 days to treatment of gas & Stomachic.

***14. Heliotropium indicum Linn.* (Boraginaceae) Hanthisund**
Plant applied to treatment of snake bite and leaves used for boils. ulcer and injury.

***15. Madhuca indica J.F.Gmel.* (Sapotaceae) Mahua**
A pasted plant bark is used two times a day for 7-21 days to cure skin diseases.

Discussion - The various prescriptions in used of 15 plant species have been discussed. It is evident from the present study that the tribal's are dependent on a variety of plants to meet their requirement. It also noted that some of the common plants are used only on their beliefs to cure many diseases by tribes. Many tribes are most dependent on forests. Some healers (experienced) Baiga, Gond, Kol, Agaria, Bharia, etc. tribes have shared their information (knowledge) with the research scholars about the cure of some important diseases like Milk Lactation, Skin disease, Stone, Weakness, Rheumatism, Stomachic, Snake bite, Worms, Dysentery, Leucoderma, cough, Gas Paralysis & Cancer etc. Jain (1991) has reported Dictionary of Indian folk medicine and Ethno botany P. 135. Since this is firsthand knowledge about ethnobotanical uses. There is need for Pharmacological investigations. We may get an acceptable solution to the problem.

Acknowledgements - The research scholars are thankful to Dr. S. K. Mishra Head of Department of Botany Govt. P. G. College Shahdol M. P. Dr. Smt. D.Thakur Principal Govt Girls PG College Narsinghpur district (M.P.) for kind cooperation and providing necessary facilities, and also thankful to the medicine men that willingly provided the information and co-operated with the scholars throughout the field survey.

References :-

1. Anonymous. 1994., Ethno biology in India, A status report Ministry of Environment and forests Govt of India New Delhi.
2. Jain, S.K (Ed.)1990. Contribution to Indian Ethnobotany. Scientific Publishers, Jodhpur.
3. Jain, S.K. & Tarafder, C.R. 1970. Medicinal plant lore of the Santals. Revivals of P.O. Bodings' work Econ. Bot. 24: 241-278.
4. Jain S.K. 1991 Dictionary of Indian Folk Medicine and Ethno botany Deep Publications,New Delhi, India P.135
5. Jain, S.K. 2001. Ethnobotany in Modern India. Phytomorphology. Golden Jubilee Issue, pp. 39-54.
6. Jain, S.K. & Tarafder, C.R. 1970. Medicinal plant lore of the Santals. Revivals of P.O. Bodings' work Econ. Bot. 24: 241-278.
7. Jain, S.K. & Shrivastava, S. 2000. Indian ethnobotanical literature in last two decades- A graphic review and future directions. Ethnobotany. 13:1-8.
8. Maheshwari, J.K. 1970. New vistas in ethnobotany. J. econ. Taxon Bot. (Addl.ser): 1-11.
9. Shah, N.C.1987. Ethnobotany in the mountainous Region of Kumaon Himalaya. Thesis submitted to the Kumaon University, Nainital for the Degree of Doctor of Philosophy in Botany. 1-255.
10. Das, A.1976. Bitters and Diabetes. Indian Drugs. 14:168.
11. Jain, S.K.1963. Studies in Indian ethnobotany Plants used in medicine bytribals of Madhya Pradesh Bull. Reg. res. Lab. Jammu. 1126-128.
12. Maheshwari, P. & Singh, W. 1965.Dictionary of Economic Plants in India. I. C. A. R. New Delhi.
14. Napit, R. S. and Kumar, K. 2012. Ethnomedicinal use Euphorbia Plants by Tribal Communities of Shahdol District of M. P. Agrobios News Letter Pag. N0. 47- 48.
15. Napit, R. S., Shrivastava D. K. & Mishra S. K. 2011. Ethno-medico Botanical Study of Paliha Tribe of Gohparu Block Distt. Shahdol M. P. (India). Journal of Tropical Forestry, Vol. 27. Pag N0. 62-64.
16. Napit, Dr. Radheshyam, 2015.Ethnomedicinal Studies on Baiga Tribes in Jaisinghnagar Block District Shahdol M.P. Central India. Research Hunt An International Multi Disciplinary e-journal, Vol.÷ Issue. I, Jan-Feb -2015 Pag. 9- 12.
17. Napit, Dr. Radheshyam, 2015. Medicinal Plant King of Bitters "Swertia chirata Buch.Ham." (Gentianaceae) Chirayata Used by Tribals of Amarkantak regions District Anuppur Central India. Research Hunt An International Multi Disciplinary e-journal,. Vol.÷ Issue. I. Jan-Feb -2015 Pag.1- 4.
18. Napit, Dr. Radheshyam, 2015. Ethnomedicinal Plants (Ptreridophytes) Study and Indegenous Knowledge of Pushprajgrah block with Special Reference to Amarkantak Anuppur District M.P. India. Research Hunt An International Multi Disciplinary e-journal, Vol.÷ Issue. I Jan-Feb - 2015 Pag.5-8.

19. Napit,Dr.Radheshyam,2015.Calotrapis (Asclepiad aceae) Plants Used By The Tribal & Local Peoples. In The Administered Of Skin Disease "Leucoderma" District Shahdol Central India.Naveen Shodh Sansar An International Refereed Research Journal) Jan. to M a r c h Vol.1 Pag.34-35.
20. Sinha, A. 1959 a, Chemical examination of the seeds of Jatropha curcas Linn. J. Inst. Chem. (India) 31, 213.
21. Ramachandran, V.S. and Nair, N.C. 1981 Ethnobotanical observation on rurals of Tamil Naidu (India). J.Econ. Taxon. Bot. 2:183-190.
22. Sinha, B.K. and Dixit, R.P. 2001 Ethnobotanical studies on Sarcostemma acidum (Asclepiadacea) from Khargaon Distt. Madhya Pradesh Ethnobotany 13:116-117.
23. Shah, N. C. 1987. Ethnobotany in the mountainous Region of Kumaon Himalaya. Thesis submitted to the Kumaon University, Nainital for the Degree of Doctor of Philosophy in Botany. 1-255.

Fig.1. Curcuma angustifolia Roxb.
(Zingiberaceae) Tikhur

Fig.2. Cuscuta reflexa Roxb.
(Convolvulaceae) Amarbel

Fig. 3. Heliotropium indicum Linn.
(Boraginaceae) Hanthisund

Fig. 4. Centratherum anthelminticum (Willd.) **(Asteraceae) Somraj/Banjeer**

****

Anti Cancerous Plants Of Amarkantak Region Of Shahdol Division, Madhya Pradesh, India

Dr. Radheshyam Napit *

Abstract - This paper reports on 04 ethnomedicinal plants used for ailment of diseases like cancer. Medicinal plants are part and parcel of human society to combat disease from dawn of civilization. Some most useful traditional medicinal plant and still regarded as "village dispensary" in India. It has been extensively used in Ayurveda, Unani Homoeopathic and folk medicine and has become a cynosure of modern medicine. Led by these considerations, 90% ethanolic extract from the plant parts has been tested against human cancer cell and remarkable ethnomedicinal pathic was ancient formula applied for caner diseases. The growth inhibition was observed in the range of 70-75% and this part of the plant can be further exploited to get better compounds that may have the potential to treat cancer. It is suggested that local forest management needs to be made conversant with sustainable harvesting methods, cultivation of commercially important plant species, and detailed assessment of the economic value of medicinal plants.
Key words - Ethno medicinal plants, anti cancerous, Amarkantak region.

Introduction - The use of traditional medicine is widely accepted by rural people in Amarkantak. Amarkantak is rich in medicinal and aromatic plant's having a biodiversity of about 300 - 500 species. Jain (1967a.), Maheshwari (1992) reported that the country has many areas where the traditional medicine culture is rich and diverse, making it an ideal site for ethnobotanical study.

Amarkantak, a beautiful hill station in Shahdol division of Madhya Pradesh, is situated in 22^0 41' N and 81---^{0} 46' E on the eastern most extremity of Maikal range. It is a holy place of pilgrimage and origin of river Narmada, Son, Johila and Mahanadi. It lies on a plateau at an altitude of approximately 1100 meters.

Amarkantak is the home of many ethnic groups. More than 12 ethnic groups and different castes live viz. Gond, Baiga, Kol, Panika, Agaria, Bhil Muria, Oraon, Bhumia, Paliha, Korku and Kanvar etc. The density of Gond Population is higher than others. They live in remote areas of the forest. They mainly depend on natural products of the forest for their livelihood and have retained their traditional cultures and folklores. Due to close and constant association with the forests, they have fairly good knowledge of the medicinal plants and mostly depend on them for the remedies of their ailments and diseases.

Study Sites - Four study sites were selected in different parts of Amarkantak as Bhund Kona, Jaleshwar, Sonmuda and Narmada Kund (Mai ki bagiya) Barsot, Lalpur, Podki, Bhejri, Nonghati, and Damedi, Bilaspur are many villages for the collection of Plants being used ethnobotanically. These areas were selected on the basis of varied altitude and richness of species, which also comprise rich cultural diversity.

Ethnomedicinal information - The local healers and knowledgeable villagers were consulted during the field trips covering three different seasons during 2010-2012. Ethnomedicinal information was collected following the methods described by Jain S.K. (1968) and also Jain (1965) and Jain & Rao (1976), Maheshwari & Singh (1965), Sikarwar, Maheshwari (1992) & Jain & Tarafder 1970, Chopra et.al; 1958, 1969, Nadkarni, 1954. Knowledgeable people and medicine men were interviewed for recording medicinal use of the parts, method of drug preparation, dosage and local name. Under enumeration plant names have been arranged alphabetically. The correct botanical name is followed by family within parentheses, local names, medicinal uses name of tribe locality.

Methodology - The method adopted field tours for the ethnomedicinal study was adopted by Jain 1981. During the study information was collected from tribals medicine men (vaidyas) and some farmers, about the interviewed therapeutic used of plants in the treatment of various diseases.

Enumeration of plants - Correct botanical names are arranged alphabetically following Hara et.al. (1978, 1982) and Hara and Williams (1979) followed by family in brackets, vernacular name in apostrophe and collection number in brackets. Other details like plant parts used, quantity of plant parts, details of preparation method, and mode of use are given below –

(1) *Achyranthes aspera L.* (Amaranthaceae) "Chirchira (Latjeera) (Rough Chaft Flower)" (SN. 9) - Annual or perennial herb 25-50 cm. tall often woody below, branched leaves 2-6cm. long, ovate elliptical, obtuse upper surface glabrous, hairy underneath, inflorescence long spikes about 30cm. long. Flowers bracts & bracteoles short perianth 4-5 tipped stamens 5-ovary bicarpillary fruits - bent back against the axis. **Flowering -** through the year.

Parts Used - Whole Plant (Root & Seed).

Active constituents - These are : hentriacontane, saponin,

* Guest Faculty (Botany) I.G.N.T.U., Amarkantak (M.P.) INDIA

acid oligosaccharide saponin, oleanolic acid (whole plant, seeds), betaine linoleic, oleic, palmitic, stearic, behenic arachidic, myristic and lauric acids (seed oil), ecdysteron (polypodine A), ecdysone (roots), two oleanolic acid based saponins from (fruits) and dihydroxyketone, contanol (shoots).

Biological Activity - The whole plant reported to possess – Acrid, anodyne, anthelmintic, anti- inflammatory, bitter, hypoglycaemic activity.

(2) *Azadirachta indica A. Juss.* (Meliaceae) "Neem" (Margosa) (SN. 8) - A large tree leaves compound, imparipinnate K (5), C5 A(10), monadelphous forming a tube with anther at the top on the inside, opposite the teeth of the staminal tube carpals (3) ovary superior 3-celled with two ovules in each cell Fruit-drupaceous with one seed. **Flowering** – April - May.

Pads Used - Leaves, stem bark, flowers, and seeds oil,(Whole plant).

Active Constituents - These are quercetin,b -sitosterol glucoside, n-hexacosanal, glucoside of quercetin, kaempferol Ca, P and oxalate (leaves), nimbidin tetranortriterp nimbin, nimbidin, nibidol, a paraffin alcohol-sugiol, and oxphenol-nimbiol (oil), nimbosterol (trunk-bark) sulphur, resin, fatty acids, amino acid, .

Biological Activity - Stem Bark & Leaves – Anthelmintic, anti-leprotic, astringent, bitter, demulcent, purgative. Leaf ext. and seed oil exhibit hypoglycaemic activity.

(3) *Jatropha curcas - L.* (Euphorbiaceae) "Bhakrandi (Jatropha)" Purging nut or Physic Nut. (SN. 5) - A common cultivated field and in wasteland perennial shrub or small tree 3 - 7 mt., High, Root –Tap, branched; Stem- soft woody, cylindrical, branched,, smooth bark. Leaves- Petiolet, simple, Inflorescence - cymose, terminal, Flower-greenish –yellow, Fruit- capsules globose –ovoid. Endospermic seeds.

Flowering: May –June.

Parts Used: Seeds (Whole plant).

Active Constituent: Seed contains – Amino acid, arachid acid, linoleic, myristic acid, oleic acid, stearic acid, arabinose, glucose, rhamnose, galactose, xylose, galactouronic acid, and bita-sistoserol.

Biological Activity: Fruit, Seed – Anthelmintic, purgative.

(4) *Mucuna prurita Hook.* (Fabaceae) "Kevanch" (Cowhage) (SN. 7) - A herbaceous, twining annual, hairy, climbers, Root-Tap, branched, Stem-herbaceous branched hairy, Leaf - compound tri-pinnate, upper surface smooth and ventral surface hairy inflorescence - racemose, solitary flower in bunched. Fruit - brown, legume 2-4 inch long. S shaped. Seed - spots.

Flowering: Aug –Oct.

Parts Used: Root & Seeds.

Active Constituent**:** Seed contains – Aluminium, Iron, Zink, Phenols, Steroids (-) 3, 4- Dihydroxyphenylolanine isolated. Glycosides, Ca, Mg, K, Carbohydrate.

Biological Activity- Mode of Use -

How to Use & Dosage - The root (3g.) and seed (2g) powder of ***Achyranthes aspera*** (Chirchira) mixed with bark powder (3-5g), of ***Azadirachta indica*** **(**Neem), pasted seed (1-1.5g) of ***Jatropha curcas*** (Bhakrandi) and seed powder (1-2g) and root (1-2g) of ***Mucuna prurita*** (Kevanch) are taken two times a day for 3 – 9 months to cure cancer disease.

Result and discussion - The survey provides anti cancerous plants to believe that traditional medicinal practice using native medicinal plants is alive and well functioning in the study area. In many communities, wild plant's species are used as important parts of the primary healthcare system due to belief in the effectiveness, lack and more costly of modern medicines and medication and poor economic status of people. The treatment of diseases with plants and plants products also causes no side effects. It is cost effective too.

The forest department should be control of over harvesting (exploitation) and started new sustainable programs and idea. A large number of commercially important medicinal plants species are over exploited by person's involved in the trade of medicinal plants. Today after forest survey I seen some Medicinal plants are become rare, endangered and extinct feel. The most reason of plants ending, over cutting (exploitation), trade of medicinal plants over grazing and last forest fire. Our government should be making and give responsibility to Public Partnership (PP) and Self Help group (SHG) of local people of forest areas.

References :-

1. Jain, S. K. and Tarafder, C.R. (1970): Medicinal plant lore of the Santals (A revivals of P.O. Bodding's work). Econ. Bot. 24-241.
2. Krishnamurthy, K.H. (1968): An evaluation of Ayurvedic pharmacognosy. J. Indian Pharma. Manuf. 6 (1), 21.
3. Mehta, T.N. and Gokhale, M.V. (1964): The fatty acid composion of the physic nut (Jatropha curcas L.) oil Indian, J. Appl. Chem. 27, 109.
4. Sinha, A. (1959): Chemical examination of the seeds of Jatropha curcas Linn. J. Inst. Chem. (India) 31, 213.
5. Joshi, L. D. and Pant. M.C. (1970): Hypoglycaemic effect of Glycine soja, Dolichos biflorus and *Mucuna pruriens* seed diets in albino rats. Proc IInd Ann. conf., Indian Pharmacol. Soc., Lucknow, 1969. India J-Pharmacol 2-29.
5. Majumdar, D.N. and Zalahi C.D. (1953): M. Pruriens Alkaloidal constituents Part III. Isolation of water soluble alkaloids and study of their chemical and physiological characterization. Indian J. Pharm. 5, 62.
6. Napit, R. S. and Kumar K. 2012. Ethnomedicinal use Euphorbia Plants by Tribal Communities of Shahdol District of M. P. Agrobios News Letter Page. N0. 47- 48.
7. Napit, R. S., Shrivastava D. K. & Mishra S. K. 2011. Ethno-medico Botanical Study of Paliha Tribe of Gohparu Block Distt. Shahdol M. P. (India) Journal of Tropical Forestry Vol. 27. Pag N0. 62-64.
9. Napit, Dr. Radheshyam, 2015.Ethnomedicinal Studies on Baiga Tribes in Jaisinghnagar Block District Shahdol M.P. Central India. Research Hunt An International Multi Disciplinary e-journal, Vol.X Issue.I, Jan-Feb -2015 Pag. 9- 12.
10. Napit, Dr. Radheshyam, 2015. *Medicinal Plant King of Bitters "Swertia chirata Buch.Ham." (Gentianaceae)*

Chirayata Used by Tribals of Amarkantak regions District Anuppur Central India. Research Hunt An International Multi Disciplinary e-journal,. Vol.÷ Issue. I Jan-Feb - 2015 Pag.1-4.

11. Napit, Dr. Radheshyam, 2015. Ethnomedicinal Plants (Ptreridophytes) Study and Indegenous Knowledge of Pushprajgrah block with Special Reference toA m a r - kantak Anuppur District M.P. India. Research Hunt An International Multi Disciplinary e-journal, Vol.X Issue. I Jan-Feb -2015 Pag.5-8.
12. Napit,Dr.Radheshyam,2015.Calotrapis (Asclepiadaceae) Plants Used By The Tribal And Local Peoples. In The Administered Of Skin Disease "Leucoderma" District Shahdol Central India.Naveen Shodh Sansar (An International Refereed Research Journal) Jan. to March Vol.1 Pag.34-35
13. Sinha, A. 1959 a, Chemical examination of the seeds of Jatropha curcas Linn. J. Inst. Chem. (India) 31, 213.
14. Ramachandran, V.S. and Nair, N.C. 1981 Ethnobotanical observation on rurals of Tamil Naidu (India). J.Econ. Taxon. Bot. 2:183-190.
15. Sinha, B.K. and Dixit, R.P. 2001 Ethnobotanical studies on Sarcostemma acidum (Asclepiadacea) from Khargaon Distt. Madhya Pradesh Ethnobotany 13:116-117.

Azadirachta Indica A. Jusee

Achyranthes Aspera jL.

Mucuna Prurita Hook

Jatropha Curcas L.

Fig. 1. A Medicine Man

Fig. 2. A Medicine Man

****

Assessment of milk samples informally marketed in local markets of ahmedabad with special reference to detect the presence of microbial flora

Dr. Dilip N. Zaveri * Anurag D. Zaveri ** Patel Heena * Avani A. Zaveri ******

Abstract - Raw non pasteurized milk samples were collected from different sources aseptically in sterile container and analyzed for isolation and identification of organisms from the samples. All the samples analyzed were showing presence of Coliform. The predominant bacteria isolated were *Staphylococcus aureus* (25.85%), *Pseudomonas spp.* (27.85%), *Enterobacter spp.* (25.01%) and *E. coli* (21.29%). *S. aureus* when subjected to coagulase test indicated 82.0% out of total isolated *S. aureus* were coagulase positive and 18.0% were negative. The coagulase positive strains were subjected to MRSA screening resulting into 37.5% MRSA indicating contamination. Antibiotic susceptibility test for isolated *Pseudomonas* spp. was carried out which showed that 60.0% were multi drug resistant. It can be concluded that there is high incidences of spoilage flora having high drug resistance which indicates uncontrolled use of antibiotics in animal in the milk sold in the local market of Ahmedabad.
Key words - Milk quality, *Pseudomonas,* MRSA, Coliform.

Introduction - The predominant microorganisms limiting the shelf life of processed fluid milk at 4°C are *Pseudomonas spp.* these species are able to grow to high numbers during refrigerated storage, and also produce heat-stable extracellular lipases, proteases, and lecithinases which can further contribute to milk spoilage. Many of these enzymes remain active, even following thermal processing. Degradation of milk components through various enzymatic activities can reduce the shelf life of milk (Kumaresan G & Annal V R, 2008). Objectives in this study were as follows: (I) To assess total coliform count of milk (II) To determine the incidence of *Pseudomonas* species from milk samples and (III) To determine incidence of coagulase positive and MRSA strain in raw milk supplied by vendors.

Materials and Methods - Milk samples from 51 different informal vendors were aseptically collected over a period of 4 weeks and Amul tetra pack milk (Sterilized milk) was used in this study as control. These samples were placed with icepack in the insulated jar under aseptic precautions and were transported to the laboratory and analyzed for total coliform count and incidence or presence of Pseudomonas and MRSA (Marshall R T, 1993).

Colonies developed on the plates were picked randomly and streaked for purification. One hundred and eight isolates were characterized according to Gram staining results, oxidase, catalase activities and biochemical tests. The colonies that were confirmed as *E. coli*, *Enterobacter* spp., *S. aureus* (coagulase positive) and *Pseudomonas* spp. were further characterized by biochemical tests (Buchanan R E & Gibbons N E, 1974) and out of these isolates only *Pseudomonas* spp. were subjected to antibiotic susceptibility testing and *S. aureus* was subjected to MRSA screening.

Results and Discussion - *E.coli* frequently contaminates food and it is a good indicator of fecal pollution (Dilielo L R, 1982; Soomro A H et al, 2002) Presence of *E.coli* in milk products indicates presence of enteropathogenic microorganisms, which constitute a public health hazard. Enteropathogenic *E.coli* can cause severe diarrhea and vomiting in infants and young children (Anonymous, 1975). In our current study we found 21.29 % prevalence of *E.coli* in the milk samples and presence of coliform in all 100 % samples indicating poor hygienic conditions while handling milk.

Illness through *S. aureus* range from minor skin infection such as pimple, boils, cellulites, toxic shock syndrome, impetigo and abscess to life threatening disease such as food poisoning, pneumonia, meningitis, endocarditis and septicemia (Soomro A H et al, 2003; Masud T, 1988). In our study we found 37.5 % MRSA prevalence out of total 25.85% in the loose milk sold in Ahmedabad and its surrounding area.

Donkor E. S. et al., (2007) reported data of total 96 raw milk samples analyzed showed presence of 8 different types of bacteria. Isolates were identified as *Yersinia spp.*,

* Director, Biocare Research (I) Pvt. Ltd., Ahmedabad (Gujarat) INDIA
** Research Assistant, Biocare Research (I) Pvt. Ltd., Ahmedabad (Gujarat) INDIA
*** Kadi Sarva Vidyalaya, Gandhinagar (Gujarat) INDIA
**** Research Assistant, Biocare Research (I) Pvt. Ltd., Ahmedabad (Gujarat) INDIA

Staphylococcus spp., *Bacillus spp.*, *Proteus spp.*, *E.coli*, *Klabsiella spp.*, [including *E. aerogenes*]. They reported overall prevalence of the bacteria between 1 – 19.3 % (Donkor E S, 2007). In our study we isolated total number of 108 isolates out of total number of 51 samples. The isolates were identified and frequency of occurrence was calculated as *Staphylococcus aureus* (25.85%), *Pseudomonas spp.* (27.85%), *Enterobacter spp.* (25.01%) and *E. coli* (21.29%). In our study we have reported prevalence of 4 different bacteria between 21 – 28 %.

In the study reported by Farzana K et al., (2009) on Prevalence and antibiotic sensitivity of two ethnic products from milk products carried out in Pakistan stated that *S. aureus* coagulase positive isolate was found to be present in all samples where as in our study we found 82 % coagulase positive *S. aureus* strains in comparison to 18 % coagulase negative *S. aureus* strains.

Study carried out by Farzana K et al., (2005) in Pakistan on antibiotic resistant patterns against various isolates of S. aureus from raw milk samples and reported 10 % MRSA (Methicillin Resistant *Staphylococcus aureus*) where as in our study we found 37.5 % MRSA.

Study carried out by Kumaresan G et al, (2008) on incidence of Pseudomonas spp. in pasteurized milk found 78 % of prevalence of Pseudomonas spp. which is higher than our results we found 27.85% prevalence of Pseudomonas spp. Antibiotic susceptibility test for isolated *Pseudomonas* spp. was carried out which showed that 82.14% were multi drug resistant.

Conclusion - From the present study we can conclude that the raw milk sold in the informal market of Ahmedabad is heavily contaminated, carries drug resistant bacterial strains which can be hazardous for animal as well as human community.

Acknowledgement - The authors are thankful to **Biocare Research (I) Pvt. Ltd.** Ahmedabad (Gujarat) India, for providing necessary facilities to carryout the work.

References :-

1. Kumaresan G & Annal V R, Incidence of *Pseudomonas spp.* in pasteurized milk, *Tamilnadu J. of Veterinary & Animal Sci.* 4 (2), (2008) 56-59.
2. Marshall R T, Standard Methods for The Examination Of Dairy Products, 16th edn, (American Public Health Association, Washington D.C. USA.) 1993.
3. Buchanan R E & Gibbons N E, Bergey's manual of Determinative Bacteriology, 5th edn, (The Williams and Wilkins Company, Baltimore, USA.) 1974.
4. Dilielo L R, Methods in Food and Dairy Microbiology, (AVI Publishing Co. Inc. Westport Connt. USA.) 1982.
5. Soomro A H, Arain M A, Khaskheli M & Bhutto B, Isolation of *Escherichia Coli* from Raw Milk and Milk Products in Relation to Public Health Sold under Market Conditions at Tandojam, *Pak. J. of Nut.* 1(3), (2002) 151-152.
6. Anonymous, E.coli Enteritis, Lancet. (1975) 1131-1132.
7. Soomro A H, Arain M A, Khaskheli M, Bhutto B & Memon A Q, Isolation of S aureus from milk products sold at sweet meat shops of Hyderabad, *Online J. of Bio. Sci.,* 3(1), (2003) 91-94.
8. Masud T, Ather H I, Azhar C M & Azhar S M, Microbiological studies on indigenous dahi with special reference to public health, *Aust. J. Dairy Tech.,* (1988) 8-13.
9. Donkor E S, Aning K G & Quaye J, Bacterial contaminations of informally marketed raw milk in Ghana, *Ghana Med. J.,* 41(2): (2007) 58–61.
10. Farzana K, Akhtar S & Jabeen F, Prevalence and antibiotic sensitivity of two ethnic products from milk products, *Pak. J. of Bot.,* 41(2) (2009) 935-943.
11. Farzana K, Sattar S A & Hameed A, Resistance pattern of antibiotic against various isolates of S. aureus from raw milk samples, *Pak. J. of Pharm. Sci.,* 18(4) (2005) 18-22.

****

A Scenenario Of Condition And Impact Of Pollutants: Water Pollution And New Purification Techniques

Rama Tiwari *

Abstract - The presented paper highlights the condition Water is a critical resources in the lives of people who both benefit from its use and who are harmed by its misuse and unpredictability (flooding, drought, salinity, acidity, and degraded quality) water is a finite and vulnerable resources. It is also the duty of every citizen under article 51 (A) g to protect and improve the natural environment including forests, lakes, rivers and wildlife and to have compassion for living creatures. To control the pollution of water the Prevention and Control of water pollution act, 1974 was enacted. People are not much aware about the causes and remedies of water pollution. They do not know, how to check the water supplied to them and what type of water is suitable. The punitive measures are also not strong enough to control the water pollution. The purpose of this research paper is to point these problems and the solution.

Introduction - Water is that chemical substance which is essential for every living organism to survive on this planet. Water is needed by every cell of the organism's body to perform normal function. Water covers 71% of the earth's surface, mostly in oceans and other large water bodies, with 1.6% of water below ground in aquifers and 0.001% in the air as vapor, clouds and precipitation (U.S. geological survey 2000). In recent years, water pollution has become a serious problem across the country, mostly due to presence of untreated effluents, chemicals, and pesticides in it. (2)There are many causes of water pollution. These causes can be removed or at least controlled with the awareness amongst the people and by the strong implementation of the legislative measure. If the water is not clean or is pollution then constitution of India also provides remedy which can be claimed under the law of torts and under article 226 of constitution in the form of filling writ In the high court of the respective state and under article 32 writ can be filed in supreme court for preventing the causes of water pollution and providing compensation to the victims. Shortage of clean water in the country, the uncontrollable causes of water pollution, lack of awareness about the right to clean water and lack of strict implementation of the preventive measure are the main reasons for choosing this topic for research purpose. For complementing this research work I have used the doctrinal method of research. I have studied various reports, newspapers and consulted various websites.

The main objectives of this study is to highlight the impact of various water pollutants which have rendered the water unsuitable for drinking and other domestic purposes and to enumerate new and affordable techniques which can be used to purify water for various purposes.

Some Facts And Figures Related To Water Pollution - Disease spreads by consumption of polluted water it has been estimated that 50,000 people die daily world-wide as a result of water –related diseases (Nevondo and cloete 1999). A large number of people in developing countries lack access to adequate water supply. In south Africa, it has been estimated that more than 12 million people do not have access to an adequate supply of potable water (Nevondo and cloete 1999). Polluted water also contains viruses, bacteria, intestinal parasites and other harmful microorganisms, which can causes waterborne diseases such as diarrhea, dysentery, and typhoid. Due to water pollution, the entire ecosystem gets disturbed. Unsafe drinking water, along with poor sanitation and hygiene, are the main contributors to an estimated 4 billion cases of diarrheal disease annually, causing more than 1.5 million deaths, mostly among children under 5 year of age (WHO 2005). Contaminated drinking water is also a major source of hepatitis, typhoid and opportunistic infections that attack the immune-compromised, especially persons living with HIV\AIDS (UNICEF 2011). Almost 1 billion people lack access to safe and improved water supply. More than 50 countries still report cholera to WHO (world health organization). Millions are exposed to unsafe levels of naturally occurring arsenic and fluoride in drinking water which leads to cancer and tooth/skeletal damage. An estimated 260 million people are infected with schistosomias is (WHO 2004). 1.3 million People die of malaria each year, 90% of whom are children under 5. Impoverished slum dwellers in Angola draw drinking water from the local river where their sewage is dumped. Farmers on the lower reaches of the Colorado River struggle because water has been diverted to cities like Africa; more than 60 % of city dwellers are in fact slum dwellers. For many of them, water comes not from faucets inside their shacks but from water tankers or standpipes, neither of which is reliable as a water source. Open sewers increase the risk of water-borne diseases (UN work 2010).

* **Research Scholar, School of Studies in Environment Management, Vikram University, Ujjain (M.P.) INDIA**

Cause And Effects of Water Pollution - Pollution of water means reading the water unfit for human consumption by bringing changes in its natural quality. Water pollution can be defined in many ways. Usually, it means one or more substances have built up in water to such an extent that they cause problems for animals or people. Pollutants in water include a wide spectrum of chemicals, pathogens and physical chemistry or sensory changes. Many of chemical substances are toxic. Pathogens can produce water-Borne diseases. Alteration of water's physical chemistry includes acidity, electrical conductivity, temperature and eutrophication. Human infectious diseases are among the most serious effects of water pollution. In India, every year approximately 50000 million liters of wastewater, both industrial and domestic, is generated in urban areas. If the data of rural area is also taken into account, the overall figure will be much higher. According to a united nation report released on March 22, 2010 on world water day, 80% of urban waste in India ends up in the country's rivers, and unchecked urban growth across the country combined with poor government oversight means the problem is only getting worse. A growing number of bodies of water in India are unfit for human use and in river Ganga holy to country's 82% Hindu majority is dying slowly due to unchecked pollution. Water pollution is a major problem in India. Only about 10% of waste water generated is treated; the rest is discharged as it is into our water bodies. Due to this pollutant enter into groundwater, rivers and other water bodies. Contaminated water put serious effect on human body. Accumulation of heavy metal and some organic metal have been linked to cancer, reproductive abnormalities and other serious effects. One cause cannot be responsible for polluting the water. There are many causes responsible for polluting it. Uncontrolled population, industrialization and urbanization are the main factors of water pollution which include in it a number of sub-factors responsible for water pollution. We can divide the causes of water pollution into two parts one is direct and second is indirect.

Involvement of human activities in water pollution - Virtually all human activities produce some kind of environmental disturbance that contaminated surrounding waters. Eating (body wastes), gardening(pesticide and sediment ran off) and many other activities create byproducts that can find their way into the water cycle. For convenience, we can assign the large majority of sources of water pollution to three broad categories of waste (Mckinney and schoch 2003)

a. Industrial
b. Agricultural and
c. Domestic wastes

Industrial wastes - Wastes from industry serve as major sources for all water pollutants. Many major industries contribute significantly to water pollution, but some of the important are the (1) manufacturing (2) power generating (3) mining and construction, and (4) food processing industries (Mckinney and schoch 2003).

Manufacturing industries like chemical, oil refining, steel etc contribute many of the most highly toxic pollutants, including a variety of organic chemicals and heavy metals (Mckinney and schoch 2003). Other industries have less potential impact but are still considered highly problematic when it comes to pollution. These industries include the textile, leather tanning, paint, plastics, pharmaceutical and paper and pulp industries (Raja and venkatesan 2010). In many cases both the products, such as the paint and pesticide, and the byproduct from themanufacturing process are highly toxic to many organism including human.

Agricultural waste - these are generated by the cultivation of crops and animals. Globally, agriculture is the leading source of sediment pollution which include plowing and other activities that remove plant cover and disturb the soil. Agriculture is also a major contributor of organic chemicals, especially pesticides (Mckinney and schoch 2003). Pesticides are widely used in modern agriculture in most countries throughout the world and in large range of environments. But environmental monitoring increasingly indicates that trace amount of pesticide are present in surface and underground water bodies, far from the sites of pesticide application (Voltz et al 2007). Fertilizers increase the concentration of nitrate level in underground drinking water sources, which can cause methemoglobinemia, the life threatening "blue baby" syndrome, in very young children, which is significant problem in parts of rural Eastern Europe (yasso et al 2001).

Domestic wastes - these are those that are produced by households. Most domestic waste is from sewage or septic tanks leakage that ends up in natural waters. In the past some cities dumped untreated or barely treated sewage directly into river, lakes, or coastal waters. Plants nutrients occur in the form of nitrogen and phosphorus. These come not only from human waste, but also from fertilizer used extensively in household lawn and gardens. Today, many people dumped their garbage into streams, rivers, lakes, and seas, thus making the water bodies the final resting place of cans, bottles, plastics, and other household products (ground water quality 2003). Most of today's cleaning products are synthetic detergents and come from the petrochemical industry. Most detergents and washing powders contain phosphates, which are used to soften the water among other things. These and other chemicals contained in washing powders affect the health of all forms of life in the water.

Some Techniques in Water Purification Process :

1. Point of use water purification using rechargeable polymer beads: 'halo pure' is one such enabling technical advance in the development of an entirely new biocide medium in the form of chlorine rechargeable polystyrene beads that based on patented chemistry inventions from the department of chemistry at auburn university (dunk et al 2005). The Discoveries were natural but creative outcome of a series of studies covering more than a decade of research, focused on stabilizing chlorine on water insoluble, synthetic polymer surfaces.

The fundamental principles of the technology are deceptively simple to understand, although their incorporation into a reliably reproducible and practical medium for water sanitation has taken years of intense research and efforts. Porous polystyrene beads are similar to those used for water softener resine beds, are modified chemically so as to be able to bind chlorine or bromine reversibly in its oxidative form. All that is required is enough free chlorine to surround the binding site. Almost no free chlorine is released when the beads are placed into the water flow. Typical levels range from 0.05ppm to 0.20 ppm free available chlorine. This is not enough to kill anything without lengthy incubation. Hence, the swift efficacy of Halo-pure depend on intimate contact between the microbes and the bound halogen on the polymer. What you have then is a solid surface, effectively biocidal on contact to contaminants in the water and repeatedly rechargeable when periodically exposed to free halogen. In this way a powerful antimicrobial component can be introduced into water purifier that will not run out of stream, and have to be discarded. Instead, it can have its power regularly and conveniently "topped up" by the user. Organism makes contact with display of chlorine, for example, on the surface of beads, and pick up enough halogen to inactivate them in short order. Those not killed within seconds suffer a near-death experience, and succumb quickly in the product water as the adherent chlorine slowly damages the organism to the point of fatal consequences (Dunk et al 2005).

The technology holds the promise of reducing the impact of water borne diseases throughout the developing world. Its widespread use could contribute to the realization of UN goals for access to safe water for all by 2005. And it could do so without resort to the massive infrastructure investment that are needed to reach this goal using more conventional centrlized sanitation and distribution approaches.

2. Water treatment using the seeds of the moringaoleifera tree: Using natural materials to clarify water is a technique that has been practiced for centuries and of all the materials that have been used, seeds of moringa have been found to be one of the most effective. Studies have been conducted since the early 1970's to test the effectiveness of moringa seeds for treating water (Paterniani et al. 2010). These studies have confirmed that the seeds are highly effective in removing suspended particels from water with from water with medium to high levels of turbidity (Moringa seeds are less effective at treating water with low level of turbidity)

Moringaoleifera seed treat water on two levels, acting both as a coagulant and an antimicrobial agent. It is generally accepted that moringa works as a coagulant due to positively charged,water-soluble proteins which bind with negatively charged particles (silt, clay, bacteria, toxins,etc) allowing the resulting "flocs" to settle to the bottom or be removed by filtration. The antimicrobial aspects of moringacontinue to be researched. Findings support recombinant proteins both removing microorganisms by coagulation as well as acting directly as growth inhibitors of the microorganisms. While there is ongoing research being conducted on the nature and characteristic of these components, it is accepted that treatment with moringa solution will remove 90-99.9% of the impurities in water.

Moringa seeds, sees kernels or dried presscake can be stored for long periods but moringa solutions for treating water should be prepared fresh each time. In general, 1 seed kernel will treat 1 liter (1.056 qt)of water.

Dosage rates:

1. low turbidity NTU (neohelometric turbidity units)<50 1seed per 4 liters (4.255 qt) water
2. Medium turbidity: NTU 50-150 1seed per 2litres (2.112 qt) water.
3. High turbidity: NTU 150-250 1seed per 1 liter (1.056 qt) water.
4. Extreme turbidity: NTU >250 2seeds per 1 liter (1.056 qt)water.

3. Water purification using aerobic granular sludge technology - With the new aerobic granular sludge technology, aerobic (thus oxygen using)bacterial granules are formed in the water that is to be purified. The great advantage of these granules is that they sink quickly and that all the required biological purifying process occur within these granules.

The technology, there for, offer important advantages when compared to conventional water purification process. For example, all the process can occur in one reactor. Moreover, there is no need to use large re-sinking tanks, such as those used for conventional purification. Such large tanks are needed for this because the bacteria clusters that are formed take much longer time to sink than the aerobic granule sludge.

The aerobic granular sludge technology is very promising, and has been nominated for the Dutch process innovation award. The technology is now in the commercialization phase. In the coming years, further research will be continued. Testing of this purification method is being done on a larger scale. The first installations are already in use in the industrial sector.

4. Resin based treatment for color and organic impurities removal - The rapid industrialization during the last few decades has resulted in tremendous increase in demand of water for industries. A large quantity of water used is ultimately discharged into water bodies and land as waste water from various unit operation related to various industrial processes, and is responsible for their pollution (kumar and Bhatia 2007). Attempts have been made to prevent the adverse aesthetic effects associated with industrial waste water discharges by accelerating the removal of colour during treatment of the variety of industrial wastes. Colour removal is also important if the water has to be made suitable for drinking purpose because many times underground water comes with colour and this colour has to be removed prior to drinking.

Among the manufacturing operation, the textile dyeing and finishing industries are directly affecting colour; which is the most noticeable characteristics of both the raw waste

and treated effluent from this industry. Although biological treatment of these waste waters is usually effective in removing a large portion of oxidizable matter, but it is frequently ineffective in removing colour.

Conclusion - Water is a renewable natural resource. Due to ever increasing industrialization, urbanization, this precious resource is continuously under stress. There are multiple dimensions to water quality and its deterioration. Water pollution is rendering much of the available water unsafe for consumption. The pressure of increasing population, loss of forest cover, untreated effluent discharge from industries and municipalities, use of non-biodegradable pesticides/ insecticides, use of chemical fertilizers instead of organic manures, etc are causing water borne diseases like cholera, diarrhea, dysentery etc. there are various new water purification technique which have come up to purify water for example by using rechargeable polymer beads, using the seeds of moringaoleifera tree, purifying water by using aerobic granular sludge technology etc. Research is being conducted all over the world to develop more and more techniques which can generate pure water at low cost. All these techniques are being developed to ensure that in near future every-one will have access to clean and pure water and that too at an affordable cost.

Acknowledgement - I would like to thank all my co-authors for rendering me the required support needed to complete the article.

References :-

1. Dunk D, Williams J 2005, point-of-use water purification using rechargeable polymer beads Water & Wastewater Asia,40-43.
2. Kumar P,Bhatia UK 2007 Proceedings of the National Conference on Civil Engineering, 9-10 March.
3. McKinney Michacl L.Schoch Robert M Yonavjak 2007. Environmental Science Systems Burlington. Unitted state.
4. Nevondo TS,Cloete TE 1999.Bacterial and chemical quality of water in the Dertig village settlement Water SA,25(2): 215-220
5. Obasohan E E, obano E E, 2010, water pollution: A review microbial quality. African journal of Biotechnology 9(4):423-427.
6. Paterninani JES, Ribeiro TAP, water treatment by sedimentation and low fabric seeds . African journal of Agricultural Research, 5(11):1256-1263.
7. Raja G. Venkatensan P 2010. Assessment of groundwater population and its impact in and around punnam Area of Karur District, Tamil Nadu. E-journal of Chemistry,7(2): 473-478.
8. UN Works –The global Water crisis 2010.From <http. www.un.org>(Retrived april 29,2015)
9. Voltz M.Louchart X.2007, process of water contamination by pesticides at eatchment scale in Mediterranean area. Geographical Research Abstracts,7,1607-7962/ gra/EGU05 –A-10634.
10. Yassi AL, Kjellstrom T,Dekok T, 2001 Basic Environmental Health, New York: oxford University Press.
11. http://www.lawisgreek.com/environment-law -and-groundwater-pollution-in-India.

****

To Investigate the Dietary Pattern and Nutritional Status of Adolescent Girls and Boys of HIG and MIG in Bhopal City

Dr. Madhubala Verma * Pranita Bahutra **

Abstract - To investigate the dietary pattern and nutritional status of adolescent girls and boys of HIG and MIG in Bhopal city; A total of 500 girls and boys, aged from 18-21 years, in Bhopal city were selected by systematic random sampling method. Nutrient intake was assessed using the 24-h recall method and the usual pattern of food intake was examined using a 7-day food frequency questionnaire. The result reveals that 99.2 % and 0.8 % of adolescent girls and boys were vegetarian and non-vegetarian or ova-vegetarian in MIG groups compared to 45.2 % and 54.8 % HIG group respectively. Also, 28.8 %, 46.4 % and 24.8 % of adolescent girls and boys of MIG were taking food in two, three and four times per day as compared to 2.4 %, 44.4 % and 53.2 % adolescent girls and boys in HIG respectively. It was observed that 57.6 %, 29.2 % and 13.2 % of adolescent girls and boys were taking food in 4hrs, 6hrs and 8 hrs intervals in a day in MIG group as compared to 65.2 %, 34.8 % in HIG group respectively. It was also observed that 47.2 % and 52.8 % of adolescent girls and boys were having certain and uncertain time of eating meals in MIG group as compared to 66.8 % and 33.2 % in HIG group. Also, nutrient intake of energy, carbohydrate, protein, fat, calcium and phosphorus of adolescent girls and boys was 1907.9 kcal, 234.1 g, 40.3 g, 33.4 g, 996.8 mg and 1110.7 mg in MIG group as compared to 2226.4 kcal, 252.2 g, 47.7 g, 44.9 g, 1061.3 mg and 1128.2 mg in HIG group.

Introduction - Regular breakfast eating (RBE) has been identified as an important factor in nutrition, especially during growth. Eating breakfast regularly is also an important contributor to a healthy lifestyle and health status. RBE has been shown to contribute significantly to children's daily nutrient intake and nutritional well-being and to affect the adequacy of their total daily intake.

Over the past decade, public health institutions around the world have placed increased emphasis on the importance of healthy lifestyles.

Objectives - To investigate the dietary pattern and nutritional status of adolescent girls and boys of HIG and MIG in Bhopal city.

Materials and Methods - This entire study was conducted in Bhopal City. In this research study 500 adolescent girls and boys of age 18-21 years were selected by purposive random sampling technique. Nutrient intake was determined by 24 hour recall method. In this study, a structured questionnaire was used regarding dietary intake and the usual pattern of food intake was examined using a 7-day food frequency questionnaire. Statistical analysis was done by using statistical tools like Z-test, mean, standard deviation, percentage, chi square test etc.

Results

Table 1 : Distribution of adolescent girls and boys of MIG and HIG based on food belief

Food belief	MIG		HIG		'Chi' Value (λ^2)
	No	%	No	%	
Veg	248	99.2	113	45.2	72.64**
Non Veg/ Ova-veg	2	0.8	137	54.8	

df = 1

Table1 reveals that 99.2 % and 0.8 % of adolescent girls and boys were vegetarian and non-vegetarian or ova-vegetarian in MIG groups compared to 45.2 % and 54.8 % HIG group respectively. Highly significant difference was observed between the two groups in their percentages with a Chi-value of 72.64 ($P < 0.05$), which implies that frequency of occurrence of veg, non veg and ovo veg of the adolescent girls and boys in both the groups is different.

Table 2 :Distribution of adolescent girls and boys of both MIG and HIG based on number of meals/day

No. of meals /day	MIG		HIG		'Chi' Value (λ^2)
	No	%	No	%	
Two	72	28.8	6	2.4	32.72**
Three	116	46.4	111	44.4	
Four	62	24.8	133	53.2	

df =2

Table 2 reveals that 28.8 %, 46.4 % and 24.8 % of adolescent girls and boys of MIG were taking food in two, three and four times per day as compared to 2.4 %, 44.4 % and 53.2 %

* Professor (Home science) Govt. M.L.B Girls College, Bhopal (M.P.) INDIA
** Research Scholar (Home Science) Govt. Girl's Geetanjali College, Bhopal (M.P.) INDIA

adolescent girls and boys in HIG respectively. Highly significant difference was observed between the two groups in their percentages with a Chi-value of 32.72 ($P < 0.05$), which implies that frequency of number of meals in both the groups is different.

Table 3 : Distribution of adolescent girls and boys of both MIG and HIG based on time gap between meals in a day

Time gap between meals in a day	MIG		HIG		'Chi' Value (λ^2)
	No	%	No	%	
4 Hrs.	144	57.6	163	65.2	14.16**
6 Hrs.	73	29.2	87	34.8	
8 Hrs.	33	13.2	nil	nil	

df = 2

Table 3 reveals that 57.6 %, 29.2 % and 13.2 % of adolescent girls and boys were taking food in 4hrs, 6hrs and 8 hrs intervals in a day in MIG group as compared to 65.2 %, 34.8 % in HIG group respectively. Highly significant difference was observed between the two groups in their percentages with a chi-value of 14.16 ($P < 0.05$), which implies that frequency of occurrence of the time gap between meals in both the groups is different.

Table 4 : Distribution of adolescent girls and boys of both MIG and HIG based on meal eating time

Meal eating time	MIG		HIG		'Chi' Value (λ^2)
	No	%	No	%	
Certain	118	47.2	167	66.8	4.84**
Uncertain	132	52.8	83	33.2	

df =1

Table 4 reveals that 47.2 % and 52.8 % of adolescent girls and boys were having certain and uncertain time of eating meals in MIG group as compared to 66.8 % and 33.2 % in HIG group. Highly significant difference was observed between the two groups in their percentages with a Chi-value of 4.84 ($P < 0.05$), which implies that frequency of occurrence of meal time in both the groups is different.

Table 5 reveals highly significant difference ($P < 0.05$) for intake of energy, carbohydrate, protein, fat, calcium and phosphorus of adolescent girls and boys with 1907.9 kcal, 234.1 g, 40.3 g, 33.4 g, 996.8 mg and 1110.7 mg in MIG group as compared to 2226.4 kcal, 252.2 g, 47.7 g, 44.9 g, 1061.3 mg and 1128.2 mg in HIG group, respectively, with a Z- value of 15.49, 9.15, 11.34, 19.93, 5.73 and 2.32 respectively. Whereas, non-significant difference ($P > 0.05$) for magnesium level was observed between adolescent girls and boys in MIG and HIG.

Conclusion - The findings indicate that the dietary pattern and nutritional status of adolescent girls and boys of HIG and MIG in Indore city shows highly significant difference ($P < 0.05$) for intake of energy, carbohydrate, protein, fat, calcium and phosphorus and Highly significant difference was observed between the two groups in their percentages with a Chi-value of 4.84 ($P < 0.05$), which implies that frequency of occurrence of meal time in both the groups is different. Also, it was observed that frequency of number of meals in both the groups is different. Highly significant difference was observed between the two groups in their percentages with a Chi-value of 72.64 ($P < 0.05$), which implies that frequency of occurrence ofveg, non veg and ovo veg of the adolescent girls and boys in both the groups is different. There was also a relationship between the family incomes with the nutritional status of the adolescents.

References :-

1. Gopalan C, Rama Shastri BV, Balasubramanium SC. Nutritive value of Indian Foods. Hyederabad, India: National Institute of Nutrition, Indian Council of Medical research. 1993.
2. Kaplan, M., N.E., & James, L. - Journal of Nutrition Education and Behavior.
3. Ahmed F, Khandker MAI. Dietary pattern and nutritional status of Bangladeshi manual workers (rickshaw pullers).Int J Food SciNutr 1997; 48: 285-91.

Table 5 : Distribution of adolescent girls and boys in MIG and HIG as per their nutrient intake

Nutrient	MIG		HIG		Z- Value
	Mean	SD	Mean	SD	
Energy (kcal)	1907.9	257.6	2226.4	198.3	15.49**
Carbohydrate (gm)	234.1	25.5	252.2	18.0	9.15**
Protein (gm)	40.3	7.0	47.7	6.6	11.34**
Fat (gm)	33.4	5.7	44.9	6.4	19.93**
Calcium (mg)	996.8	116.7	1061.3	113.5	5.73**
Magnesium (mg)	258.7	18.8	256.3	15.3	1.57 NS
Phosphorus (mg)	1110.7	90.9	1128.2	77.4	2.32**

****

युवाओं में बढ़ता तनाव चुनौतियाँ एवं समाधान

डॉ. गीताली सेनगुप्ता *

प्रस्तावना – तनाव आधुनिक समाज की ज्वलंत और विकराल समस्या है, तनाव आक्टोपस की तरह समाज के प्रत्येक उम्र के व्यक्ति को जकड़ा हुआ है। तनाव आधुनिक भौतिक युग की देन है, यह पूर्णत: सत्य नहीं है। जब से मनुष्य इस पृथ्वी पर आया तनाव किसी न किसी रूप में उसके साथ है, तब मानव को दो वक्त का भोजन जुटाने के लिए, प्राकृतिक आपदाओं से स्वयं को बचाने, जंगली जानवरों से स्वयं व परिवार की रक्षा संबंधी तनाव थें। किन्तु पिछले पचास दशक से इसने जो पंख फैलाए है, वह अतिचिंताजनक है। विज्ञान जितनी तीव्र गति से नए-नए अविष्कार कर मनुष्य को आराम और लाभ देने के लिए नये-नये उत्पादन प्रस्तुत कर रहा है, दूसरी ओर तीव्र गति से तनाव का ग्राफ भी बढ़ रहा है।

तनाव जिसे न उम्र का ख्याल है ना ही स्थान का न समय का जो आज के इस जटिलतम दिनचर्या में बच्चों, युवाओं, महिलाओं पुरूषों को अपने गिरफ्त में लिए हुए है। आज कोई भी इससे अछुता नहीं है। भौतिक सुख सुविधाओं से युक्त जीवन व्यतीत करने वाले भी इसके शिकार है तो मध्यम वर्ग व निम्न वर्ग पर भी इसका प्रभाव दिखायी देता है।

पश्चिमी देशों में स्थिति और भी गंभीर है वहाँ प्रतिवर्ष खरबों रूपये के ट्रैंकुलाइजर्स (तनाव दूर करने की दवाएँ) प्रतिवर्ष खायी जा रही है। तनाव शब्द वर्तमान में भारतीय समाज में भी इतना घुल मिल गया है कि आज अशिक्षित लोग, ग्रामीण जनता, आम व्यक्ति इस शब्द का बातचीत के दौरान निसंकोच प्रयोग करते है। तनाव भारत के विकसित हो रहे वर्ग के जीवन का अंग बन चुका है। समाज के प्रत्येक वर्ग, किशोर/किशोरियाँ, युवा, गृहणी, व्यवसायी, खिलाड़ी, कलाकार, नौकरी पैशा महिला-पुरूष पर तनाव का प्रभाव दिखायी देता है। आाधुनिक शोध अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि करीब 75 प्रतिशत रोगों का कारण तनाव ही है। चिकित्सक, मनोवैज्ञानिक इस बात से शत प्रतिशत सहमत है कि आज व्यक्ति को जितने गंभीर रोग होते है, उसका मूल कारण तनाव ही है- डायबिटीस, हाई ब्लड प्रेशर, हृदय रोग, अस्थमा, गठियाँ, कैंसर और मानसिक अवसाद जनित व्याधियाँ तनाव की देन है। तनाव के कारण आत्महत्याएँ होती हैं, दुर्घटनाओं का ग्राफ भी बढ़ा है।

भौतिक एवं उपभोक्तावादी संस्कृति के इस युग ने मानव मूल्यों को मनुष्य से दूर कर दिया है। स्वस्थ अर्थात स्व में स्थित परमात्मा का एक अभिन्न अंग अपने वास्तविक स्वरूप को भूलकर विज्ञान का गुलाम बन गया है, फलस्वरूप अस्वस्थ तन, अस्वस्थ मन, अस्वस्थ समाज और अस्वस्थ वातावरण सभी ने मिलकर एक तनावपूर्ण जीवन पद्धति को जन्म दिया है।

आज यह विचारणीय प्रश्न हमारे, समक्ष मौजूद है- क्यों होता है तनाव? तनाव के क्या कारण है? क्या तनाव का कोई समाधान है इससे हमें छुटकारा मिल सकता है? इस समस्या पर चिंतन/मनन/समाधान खोजने हेतु हम इस सभागृह में उपस्थित है, तनाव जो आज के सेमीनार का केन्द्रबिंदु है। मनोवैज्ञानिकों ने भिन्न-भिन्न तरीके से तनाव को परिभाषित एवं विश्लेषित किया है। 'मानसिक तनाव वह स्थिति है जब मन मस्तिष्क पर एक विशेष प्रकार की निष्क्रियता कब्जा कर ले, व्यक्ति किसी निर्णय पर पहुँचने में असमर्थ हो जाए, प्रत्येक छोटी बड़ी समस्या उसे बोझ लगने लगे, बात-बात पर क्रोधित होना, मुहँ फूलाना एवं अपना आपा खो देना ही तनाव है।'

कुछ मनोवैज्ञानिक तनाव को अनुक्रिया के रूप में देखते है- 'व्यक्ति जब कठिन और जटिल परिस्थितियों में मनोवैज्ञानिक अनुक्रिया प्रदर्शित करते है जैसे पेट की गड़बड़ी, नींद न आना, रक्त चाप में वृद्धि होती है, तो हम कहते है व्यक्ति में तनाव उत्पन्न हो गया।

मनोवैज्ञानिक तनाव को उद्दीपक कारक के रूप में परिभाषित करते है। 'कोई घटना एवं परिस्थिति जो व्यक्ति को असाधारण अनुक्रिया करने के लिए बाध्य करता है, तनाव कहलाता है, उदाहरण स्वरूप- भूकंप, आगजनी, नौकरी छूट जाना, प्रियजन की मृत्यु, व्यवसाय खत्म हो जाना, दिवालिया घोषित होना यह प्रमुख घटनाएँ तनाव उत्पन्न करती है।

तनाव के क्षेत्र में अनेक शोध अध्ययन करने वाले मनोवैज्ञानिक हंस सेली ने भी तनाव को एक अनुक्रिया के रूप में परिभाषित किया 'विद्यालय, दफ्तर, घर और जीवन की कठिनाइयाँ जब जटिल से जटिलतम हो जाती है और व्यक्ति उनका हल ढूढँने में असमर्थ हो जाता है, तो दीर्घकालिक संवेगात्मक तनाव संचित होने लगता है यही तनाव/प्रतिबल कहलाता है। तीव्र संचार क्रांति के इस युग में वर्तमान शिक्षा व्यवस्था जहाँ एक ओर युवाओं को मशीन बना रही है वहीं दूसरी ओर सामाजिक, नैतिक और व्यावहारिक जीवन से कहीं दूर हो जा रही है जिसका न कोई ओर है ना छोर। यह शत प्रतिशत सत्य है कि वर्तमान में किशोर/किशोरियाँ, युवा जो शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं उनमें व्यक्तित्व में गुणवत्ता बढ़ाने वाले सद्गुणों का विकास नहीं हो पा रहा है। और न ही परिवार, समाज, देश के लिए एक श्रेष्ठ नागरिक तैयार करने में समर्थ हो पा रही है।

आज के किशोर/किशोरियों/युवाओं में सहनशीलता, धैर्य, समायोजन क्षमता का अभाव कर्तव्य बोध एवं उत्तरदायित्व का अभाव, अनुशासनहीनता, नैतिक व चारित्रिक पतन, मानवीय संवेदना का ह्रास तथा सामाजिक गुण- दया, मित्रता, प्रेम, स्नेह, परोपकार, सहयोग, सहानुभूति में कमी दिखायी देती है। यह सब बदलती परिस्थितियाँ एवं परिवार के बदलते स्वरूप के कारण परिलक्षित होता है।

अत: जब यह युवा वास्तविक धरातल पर कदम रखते है तो अपने आप को अपूर्ण सा महसूस करते है। तनाव जैसी गंभीर समस्या पर चिंतन, मनन और अध्ययनकरने के लिए किशोर/किशोरियों एवं युवा वर्ग पर सर्वेक्षण, स्वनिर्मित प्रश्नावली, साक्षात्कार एवं द्वैतियक स्त्रोतों का प्रयोग किया गया।

* प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (गृह विज्ञान) माखनलाल चतुर्वेदी शासकीय स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय, खण्डवा (म.प्र.) भारत

तनाव जैसी गंभीर समस्या जो हमारी युवा पीढ़ी को वर्तमान में अपने जाल में जकड़े हुए हैं, इसकी तह तक पहुँचने के लिए युवाओं को दो समूहों में विभाजित किया गया –

प्रथम वर्ग में 40 महाविद्यालय में अध्ययनरत् 40 किशोर किशोरियों को जिनका आयु समूह 18–21 है एवं द्वितीय वर्ग जिसमें 40 युवा/युवतियों को शामिल किया गया। जिनका आयु वर्ग 22–45 वर्ष है। सर्वेक्षण, साक्षात्कार एवं स्वनिर्मित प्रश्नावली के आधार पर तनाव सम्बन्धी विभिन्न मुद्दों पर विचार जानने का प्रयास किया गया। अध्ययन के दौरान महत्वपूर्ण तथ्य उभरकर सामने आए –

- जीवनलक्ष्य निर्धारण की प्रतिक्रिया पर 48 प्रतिशत ने हाँ 52 प्रतिशत ने नहीं में प्रत्युत्तर दिया।
- अभिभावक की उच्चाकांक्षा एवं दबाव के मुद्दे पर 60 प्रतिशत ने सकारात्मक, 40 प्रतिशत ने नकारात्मक जवाब दिया।
- शिक्षा एवं व्यवसाय के क्षेत्र में बढ़ती प्रतिस्पर्धा का 68 प्रतिशत के मानसिक स्थिति पर बुरा प्रभाव पड़ता है और 32 प्रतिशत पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता।
- प्रतियोगी परीक्षाओं में असफलता के कारण 55 प्रतिशत तनाव से पीड़ित व 45 प्रतिशत ने कोई प्रतिक्रिया जाहिर नहीं की।
- उचित समय प्रबंधन न कर पाने पर 62 प्रतिशत कठिनाई अनुभव करते है 38 प्रतिशत सामंजस्य या तालमेल बैठा लेते है। विभिन्न परिस्थितियों में सामंजस्य स्थापित करने में 58 प्रतिशत असमर्थ एवं 42 प्रतिशत समर्थ पाये गए।
- कॅरियर निर्माण की चिंता के संदर्भ में 58 प्रतिशत घोर चिंतित, 27 प्रतिशत चिंतित और 15 प्रतिशत सामान्य चिंतित पाए गए।
- भौतिक सुख सुविधाओं का अभाव तनाव उत्पन्न करता है के मुद्दे पर 57 प्रतिशत ने हाँ एवं 43 प्रतिशत ने नहीं में उत्तर दिया।
- अभिभावकों से विचारों के टकराव एवं मतभेद पर 61 प्रतिशत ने सकारात्मकता 39 प्रतिशत ने नकारात्मकता दर्शायी।
- क्या अनियमित जीवन शैली का दुष्प्रभाव पड़ता हैं तो 52 प्रतिशत ने हाँ और 48 प्रतिशत ने कहा नहीं।
- निर्णय लेने की क्षमता के संदर्भ में 40 प्रतिशत ने कहा कि वे निर्णय लेने में सक्षम है 60 प्रतिशत ने कहा वे असमर्थ महसूस करते है।

इसके अतिरिक्त अन्य कारण भी महत्वपूर्ण हैं– जैसे आत्मविश्वास में कमी, नकारात्मक अभिवृत्ति, असंतोष, असुरक्षा की भावना, उचित संप्रेषण कला का अभाव, मिथ्याभिमान, अति महत्वाकांक्षा, इत्यादि। युवाओं पर किए गए अध्ययन से यह ज्ञात हुआ कि किशोर–किशोरियों की तुलना में उनके तनाव के क्षेत्र में भिन्नता परिलक्षित होती है। साक्षात्कार के दौरान अधिकांश युवा–युवतियों ने कहा कि भविष्य निर्माण व कॅरियर के प्रति अत्यधिक चिंतित है।

- 53 प्रतिशत ने कहा कि पर्याप्त शिक्षित होने के बावजूद भी उनके पास रोजगार नहीं है, 47 प्रतिशत छोटे मोटे रोजगार/व्यवसाय में संलग्न है।
- कार्य के प्रति संतुष्टि व असंतुष्टि संबंधी विचार के संदर्भ में 73 प्रतिशत असंतुष्ट व 27 प्रतिशत संतुष्ट है।
- संयुक्त परिवार की 65 प्रतिशत युवतियाँ नित्य परिवार में होने वाले विवादों से तनावग्रस्त रहती है, जबकि पुरूष 35 प्रतिशत ही प्रभावित होते है।
- एकल परिवार की 95 प्रतिशत युवतियाँ असुरक्षा एवं अन्य कारणों से तनावग्रस्त रहती है।
- जीवन शैली के परिवर्तन के प्रश्न के संदर्भ में 78 प्रतिशत ने सकारात्मक 22 प्रतिशत ने नकारात्मक उत्तर दिया।
- नौकरी पेशा युवा–युवतियों के तुलनात्मक अध्ययन में 45 प्रतिशत युवा वर्ग तथा 55 प्रतिशत युवतियाँ कठिनाईयों से जूझते हैं।
- एकल परिवार की 90 प्रतिशत नौकरी पेशा युवतियाँ बच्चों को घर अथवा झूलाघर में छोड़कर काम पर जाती है परिणाम स्वरूप तनावग्रस्त रहती है।
- 38 प्रतिशत युवातियाँ अपनी शिक्षा व प्रतिभा का उचित सद्पयोग न कर पाने के कारण तनावग्रस्त रहती है।
- 30 प्रतिशत युवा काम का बोझ अधिक होने के कारण तनावग्रस्त रहते है।

चुनौतियाँ – युवा पीढ़ी तनाव के जिस दौर से गुजर रही है, इस दिशा में चिंतन, मनन करने की महती आवश्यकता है, इस तनाव रूपी यज्ञ में माता–पिता, शिक्षक, समाज, देश सभी को आहुति डालने का कार्य अत्यन्त सुझ–बुझ, विवेक एवं सौहार्दपूर्ण वातावरण में करने की आवश्यकता है। आज की युवा पीढ़ी में नैतिक मूल्यों का ह्रास, व्यक्तित्व विकास के गुणों में एवं सामाजिक गुणों में कमी दिखायी देती है। ऐसे युवा सामाजिक समायोजन में कठिनाई महसूस करते है, परिणाम स्वरूप तनाव के षिकार हो जाते है।

तनावग्रस्त युवाओं में कई समस्याएँ उत्पन्न हो जाती है :–

- सामाजिक सांस्कृतिक परिपक्वता की कमी।
- अकारण भय की स्थिति निर्मित होना।
- असुरक्षा की भावना तीव्र रूप में विकसित होना।
- आत्मविश्वास में कमी उत्पन्न होना।
- अनुशासनहीनता।
- कुसमायोजन।
- तीव्र अवसाद कुंठा की स्थिति।
- नशा प्रवृत्ति, अपराधी प्रवृत्ति।
- आत्महत्या।

तनाव का समाधान – वर्तमान में तनाव महारोग की तरह पांव पसार रहा है। इस महारोग का इलाज किया जाना अति आवश्यक है हम किस तरह हमारी युवा पीढ़ी को इस दलदल से बाहर निकालने का प्रयास करते हुए उनके तनाव को कम करने की दिशा में क्या पहल कर सकते है यह सेमिनार का मुख्य उद्देश्य है। इस दिशा में अभिभावक शिक्षक, समाजसुधारक, विभिन्न सामाजिक संगठन, मनोवैज्ञानिक, योगाचार्य सभी की भूमिका महत्वपूर्ण है।

वर्तमान में जिस रूप में तनाव हमारी युवा पीढ़ी पर जाल बिछा रहा है और उन्हें तबाही की ओर अग्रसर कर रहा है उस अनुपात में इस दायित्व के प्रति सजगता में कमी देखी जाती है। समय के अनुसार हम सभी को जागरूक होना जरूरी है तभी तनाव रूपी महामारी को धीरे–धीरे जड़ से समाप्त करने में सफलता प्राप्त कर सकते है तथा युवाओं के स्वस्थ व्यक्तित्व विकास में सहभागी बनकर उन्हें आदर्श नागरिक बनाने में योगदान प्रदान कर सकते है।

तनाव समाधान हेतु युवाओं में तनाव को कम करने के लिए विभिन्न कौशलों का अभ्यास कराया जाना चाहिए इसके अतिरिक्त प्रेरणा, प्रोत्साहन, मनोवैज्ञानिक चिकित्सा, आध्यात्म, योग की भूमिका महत्व रखती है। तनाव को शिथिल करने के लिए निम्न बिंदुओं पर गौर करते हुए इन्हें जीवन में आत्मसात करने की आवश्यकता है –

- सर्वप्रथम नकारात्मक भावना को कम करने के लिए सकारात्मक दृष्टिकोण उत्पन्न करना है।
- अपने विचार सकारात्मक रखें : क्योंकि आपके विचार आपके शब्दों में ढ़ल जाते है।
- अपने शब्द सकारात्मक रखें : क्योंकि आपके शब्द आपके कार्यों में बदल जाते है।
- अपने कार्य सकारात्मक रखें : क्योंकि आपके कार्य आपकी आदत बन जाते है।
- आपकी आदते सकारात्मक रखें : क्योंकि आपकी आदते आपकी जीवन शैली बन जाती है।
- आपकी जीवन शैली को सकारात्मक रखें : क्योंकि आपकी जीवन शैली आपकी तकदीर बन जाती है।
- युवाओं में नैतिक व सामाजिक मूल्यों का विकास करना अति आवश्यक है।
- विभिन्न समस्याओं का समाधान करने का कौशल विकसित करना यहाँ अभिभावकों एवं शिक्षकों की महत्वपूर्ण भूमिका है।
- निर्णय लेने की क्षमता का एवं संप्रेषण कौशलता का विकास।
- जब भी तनाव महसूस करें तब अपने मस्तिष्क में आने वाले विचारों की दिशा बदलने का प्रयास करें।
- जीवन में अच्छे मित्र या दोस्त बनाए, जिसके सामने आप खुलकर मन की बात कह सकें, चाहे वह आपके माता-पिता हो, बॉस हो, या मित्र हो।
- खालीपन सदैव उदासी, वितृष्णा, निराशा और हताशा उत्पन्न करता है अतएव स्वयं को छोटे-छोटे कार्यों में व्यस्त रखें।
- आत्मचिंतन की प्रवृत्ति का विकास करना चाहिए।
- स्वयं की परेशानियों का कारण स्वयं ढूंढने की क्षमता का विकास करना।
- दृढ़ इच्छा शक्ति का विकास करे, स्वयं के मनोबल को कभी कमजोर न होने दे।
- समय प्रबंधन करना एवं जीवन शैली में परिवर्तन लाकर तनाव को कम किया जा सकता है।
- संतोष एवं संतुष्टि की भावना का विकास करना, एवं अपनी आर्थिक स्थिति अनुरूप जीवन यापन करना।
- तनाव मुक्त जीवन जीने के लिए प्रेम, विश्वास और धैर्य को जीवन में मुख्य स्थान देना होगा।
- सदैव आत्म विवेचना मूल्याँकन एवं विचारों का मंथन करते रहें।
- समय-समय पर मनोवैज्ञानिक, शिक्षाविदों, समाज सुधारकों, योगाचार्यों के व्याख्यान आयोजित किए जाए, एवं तनाव को कम करने वाले ध्यान व विभिन्न आसनों को प्रशिक्षण दिया जाए।

वर्तमान में अन्य तकनीक का प्रयोग भी तनाव को दूर भगाने के लिए किया जाता है -

- शारीरिक, मानसिक व्यायाम नियमित करना एवं पौष्टिक भोजन ग्रहण करना।
- नियमित ध्यान से चित्त की एकाग्रता विकसित होती है, जिससे तनाव में राहत मिलती है।
- गहरी व लम्बी सांस भी तनाव को कम करती है।
- संगीत तनाव मुक्ति का उत्तम साधन है, जिसमें व्यक्ति सबकुछ भूलकर पूर्णतया खो जाता है।
- लेखन, चित्रकला, नृत्य, अभिनय जैसी कलात्मक अभिव्यक्तियाँ भी तनाव को दूर करती है।
- आजकल लार्फिंग क्लब बहुत कारगर सिद्ध हो रहे हैं, जितना खुलकर हम हँसेंगें उतना ही तनाव कम होगा। अत: हँसने की क्रिया को तनाव शिथिल करने की सर्वश्रेष्ठ औषधि माना जा रहा है।

सुझाव :-

- वर्तमान शिक्षा व्यवस्था को अधिकाधिक रूप से उपयोगी बनाने के लिए स्कूल स्तर के पाठ्यक्रम से महाविद्यालय स्तर तक के पाठ्यक्रम में समयानुरूप परिवर्तन की अत्यन्त आवश्यकता है।
- पाठ्यक्रम में नैतिक मूल्य व चारित्रिक विकास, व्यायाम, ध्यान, योग को भी पाठ्यक्रम में विषय के रूप में शामिल किया जाए।
- प्रत्येक विद्यालय, महाविद्यालय में विद्यार्थियों में कुंठा, अवसाद एवं तनाव संबंधी समस्या को सुलझाने एवं उनकी काउन्सलिंग करने हेतु एक परामर्श केन्द्र अवश्य ही खोला जाए।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. सिंह अरूण कुमार - आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास बंगलो रोड दिल्ली, मुम्बई, चैन्नई, कोलकाता, बंगलौर, वाराणासी, पुणे, पटना।
2. सिंह डॉ. आर. एन. - आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा-2।
3. सुशील सरित - तनाव प्रबन्धन, राखी प्रकाशन, 12 ए. चतुर्थ तल, रमन टावर, संजय प्लैस, आगरा - 282002
4. सुलेमान डॉ. मुहम्मद - असामान्य मनोविज्ञान मोतीलाल बनारसीदास बंगलो रोड (नौवाब डॉ. मुहम्मद) दिल्ली, मुम्बई, चैन्नई, कोलकाता, बंगलौर, वाराणासी, पुणे, पटना।
5. व्यक्तित्व विकास हेतु तनाव प्रबन्धन स्मारिका बरकतउल्ला विश्व-विद्यालय भोपाल।

****

A Comparative Study of Indian and Chinese Textiles Industry

Dr. Pawan Kumar Jaiswal * Dr. Ajay Waghe **

Abstract - The textile industry is the largest industry of modern India. It accounts for over 20 percent of industrial production and is closely linked with the agricultural and rural economy. It is the single largest employer in the industrial sector employing about 38 million people. If employment in allied sectors likes ginning, agriculture, pressing, cotton trade, jute, etc. are added then the total employment is estimated at 93 million. The net foreign exchange earnings in this sector are one of the highest and, together with carpet and handicrafts, account for over 37 percent of total export earnings at over US $ 10 billion. Textiles, alone, account for about 25 percent of India's total forex earnings.
Keywords-Textile industry, Technology, Cotton production.

Introduction - As everyone knows, India is a country of cotton and chintz, China is a country of silk. The history of Indian textile begins in Mohenjo-Daro with the discovery of textiles dating from as early as B.C.3000. A woven and madder-dyed cotton fragment wrapped round a silver pot and figures draped with patterned cloth, as well as spindles were found here . It is said that block printed cotton also spread to Egypt and Greece during B.C.2000 to B.C.500. From B.C.300 to A.D.300 wax-resist chintz and gold thread chintz were produced and introduced to west Asia and Rome . Chinese silk was introduced into Kashmir around the 2nd and 3rd century A.D. as well as into India around the 4th century. It was at this time that Indian textiles first merged with Chinese textiles.

The history of Chinese textiles begins 500,000 years ago, with a liana plant fibre used to make nets. Grasses, leaves and animal skins were used for fibre at this time. After that, bone needles and stone awls began to be used. It is thought that later in the Neolithic Age, the rearing of silkworms, the production of silk and the weaving of cloth began, as well as the growing of hemp for twisting into ropes and the raising of sheep for wool.

Technological development in textile production - The introduction of the single- or multi-spindle spinning wheel which supplemented hand spinning with the spindle and distaff use. By the Han dynasty (B.C.202— A.D.220), the treadle spinning-wheel emerged. Many heddle and many treadle loom were also used. In the Son dynasty (960—1279), multi-spindle spinning wheels were seen. K.N.Chaudhari compares the technology used in Chinese and Indian textiles.

The gradual development of the treadle-looms and the draw looms reflected the most significant technological development in textile production.Once this particular set of innovation had been assimilated, these industries remained in a steady state until the mid nineteenth century when Western machine technology was imported and put into operation.

The use of multi-spindle spinning wheels and the development of the treadle-looms and the draw looms was the same in India and China, but the development of machinery was different. The number of Chinese spindles for multi-spindle spinning had reached a maximum of five in the Son dynasty, and finally, we can see an illustration of a big spinning wheel with thirty two spindles in the"Nong Shu" or the agricultural handbook, published in 1313. It was a water driven wheel which could spin 150 pounds of hemp in one night. European spinning-wheels still had only one spindle until just before the industrial revolution. K.N. Chaudhuri comments that "there is no reference to any such instruments in Indian sources". Obviously, the Chinese machinery for textiles was superior to that of India. The organization of the textiles was also an important point. In the Chinese Zhou eras (B.C.1500—600), eight offices were established to organize the gathering of raw materials and the management of spinning, weaving and dyeing.

Top 5 Exporters (Textile)

Country	1990		1997	
	Billion US$	% share	Billion US$	% share
Hong Kong	7.99	7.68	14.6	9.42
China	7.10	6.82	13.83	8.92
USA	5.03	4.83	9.19	5.93
France	7.21	4.65	5.86	5.64
Japan	5.88	5.65	6.75	4.35

The situation of the textile industries in India - The situation of the textile industries in India was similar to China. In India, the production of cotton textiles, by the sixteenth and seventeenth centuries, was classified into three categories: the first category included coarse varieties for

* Assistant Professor,Vidyodaya Mahavidyalaya, Manawar (M.P.) INDIA
** Assistant Professor,Vidyodaya Mahavidyalaya, Manawar (M.P.) INDIA

domestic consumption produced by family units from the cultivation stage to weaving. The Second included luxury cloth for the court, the nobility and a wide variety of fine cloth for interprovincial trade, which was produced at court under official supervision. The third category included standardized medium luxury varieties for the overseas trade undertaken by European companies. The Indian organization of spinning and weaving greatly developed and changed in the 17th and 18th centuries, because of the requirements of European Companies. This was the biggest difference between the organization of Indian and Chinese textiles. Hameeda Hossain describes this change.

India's Trade in Textiles

Type	India's Share in World Trade
Yarn	22%
Fabrics	3.2%
Apparel	2%
Made-ups	9%
Over-all	**2.8%**

As long as cotton was used for domestic purposes and was available at local hats (market), the producers could buy their raw material directly from the cultivators or even use home-grown cotton. Thus there was little need for an interdependent market network. With the increase in manufactures, local supplies became inadequate. Also, cloth was produced in certain arranges (a manufacturing or marketing centre for distribution and collection of orders, for sale, etc, for the surrounding villages) where cotton was not cultivated. Since production now depended on the availability of cotton from outside the weaver's own market region, intermediaries were required to arrange the movement of cotton .

As standardization of products became a very important requirement for the European markets, the weaver had to adapt his expertise to ensure standardization of yarn and cloth measurement. To ensure this an elaborate supervisory structure was established at each factory and arrange. Quality control of yarn and cloth in the loom was enforced by muqims (an appraiser who supervised the weaver's work and his yarn) appointed at the arranges, whereas a jachandar (appraiser or sorter of cloth) and export warehouse keeper at the factory checked the finished piece of cloth .

There were four main districts in India where textiles were produced and exported: the west part including Gujarat, the north part including the Punjab, the east part including Bengal and the south part including the Coromandel Coast.

There was even some architecture produced from textiles in India. For example, there were royal palaces made of textiles in the Mughal empire of the 17th century. These consisted of a tent which was carried when the emperor travelled, and this was virtually a portable cloth palace. The palace had a ceiling, walls, windows and even numerous colonnades hanging from the ceiling. All of these were made of red silk velvet embroidered with gold flowers and scrolling vines sometimes shaped into the tree of life, sometimes winding in a vertical framework.

Both Chinese and Indian textiles had a large amount of embroidery. In India, especially the west, is known for many kinds of embroidery. The most famous Mochi embroidery has disappeared now but there are still examples of this. The Chinai embroidery is produced by Chinese embroiderers who have been living in Surat since the 19th century. In the Sind and Thar Parkar, embroidery workers are women of the leather worker caste. In Kuchi, the workers belong to the shepherd and the farming, the herding caste. The men wear beautifully embroidered blouses and skirts with tie-and-dyed turbans on their heads. Bullocks are also covered with colorfully embroidered cloth. There are embroidered flowers, wayside shrines, peacocks, women churning butter and deities on elephants in this cloth. Each side of the covering is divided into six sections. In Rajasthan in the west of India, camels can be seen transporting textiles. It is a really fascinating scene even in photographs, because the camels also wear a special textile under the load. The quilts for the camels are made from goat hair, with a basic black and white check pattern, varied with other coloured checks of red, orange and green. This pattern has the magical power mentioned earlier in connection with Balinese textiles. This tie-and-dye textile is also considered to be a fine quality product in the West of India.

Ikat is produced using three or four kinds of techniques: warp ikat, weft ikat, double ikat and supplementary warps. All Indian ikat influenced the development of ikat throughout the world, but the strongest impact was produced by the Indian double ikat, especially that adopted for the patola, used for sari lengths. In India, the double ikat is made only in Patan and Surat of Gujarat in the west, and Orissa and Andhra Pradesh in the south. The typical pattern used in making patola is an eight rayed rosette or other patterns such as jewels, elephants, birds and dancing women. On the border, there is a linking tumpal pattern which is much smaller than the Indonesian tumpal pattern. In the north west part of India there is the Gujarat district which has always been known for its traders. This part lies close to the Middle east, and has strong cultural links with the Muslim world. There have been immigrants and invaders from here for many centuries. Surat, Broach and Cambay were the most important ports in Mughal. There were numerous kinds of textiles produced there, which were greatly influenced by Islamic culture. The greatest variety of textiles seems to have been produced in the west of India. Applique and beads work were also produced in the west part. The east of India was noted for its double ikat, the south was noted for kalamkrli, and the north was unique for Kashmir wool products. It was also known for brocade from Varanasi, because during the post Mughal period, noble families escaped to Varanasi, these people then became customers who patronized the brocade manufacturers.

The situation of the textile industries in China - There are various kinds of weaving in China: Luo refers to gauze which is a very light fabric of three different kinds depending on the number of warp threads passed through one weft,

and these three kinds are also divided into two varieties—plain and patterned. The warp threads are also twisted in sets of three, and sets of four. Chinese Sha refers to tabby, a fine, loose, soft plain-weave silk fabric with square holes.

When the diversity of patterns is considered, all the patterns found universally and their variations existed in China. Those Universal patterns included spirals, stripes and the tree of life. Scrolling vines, animals, birds, flowers, lozenges, swastika patterns made from spirals influenced by Buddhism, stripes and checks are the patterns which China had in common with Persia and India, and sometimes Greece or Egypt. The patterns unique to China are clouds, thunder, imaginary animals such as dragons, phoenixes and chi-lin and Chinese characters. There are examples of Jin fabric with clouds and the Buddhist eight treasures: Buddhist scrolls, magic hammers, flaming jewels, weights, Buddhist keys, horns of rhino etc. Luo with scrolling peonies, Duan with hydrangea branches, Duan with swastika and circular peonies, Ling with linking swastikas, and various kinds of embroidery with clouds and dragons, clouds and cranes, all colours of butterflies and flowers, swastikas and peaches waves and dragons – all these are found in Chinese textiles. Chinese characters were also woven into these patterns because both characters and patterns on textiles had magical power. For the Chinese, silk fabric was also used as canvas for paintings, and embroidery. Many narrative scenes were also embroidered.

Not only silk materials, but also cotton fabrics played an important part in the textile industry in China from the beginning of the 13th century. This was the most notable period of textiles for the Chinese people. Cotton-growing, which was originally very old but restricted to certain areas, was introduced into the central part of China. It expanded and reached as far as the Changjiang and Huaihe valleys, and was later introduced into even Shaanxi from Xinjiang. In this era, many kinds of manuals relating to the production of both cotton and silk textiles began to be published. For the further study of Chinese textiles, it is necessary to study cotton textiles and textile production manuals, as well as those textiles produced by the minority races in China.

Conclusion, Suggestions and Findings - Textiles with their techniques and patterns, have had a long and exciting history in which different aspects have influenced each other. These textiles and techniques were exchanged and expanded through trade. In this paper, this trade as well as the development of Indian and Chinese textiles have been considered. This development took place in Chinese domestic industry and through its commerce. Indian and Chinese patterns became the basis for pattern in modern textiles, due to the creativity of individual designers and the influence of the industrial revolution. What is notable about Indonesian textiles is that they have kept their value in everyday life and also their magical power. The textiles of both India and China spread all over the world faster during the 16th century to the 19th century than at any time during the world's previous history. During this period, these two countries made almost all the world's fine textiles.

The study of techniques and patterns, involves both those aspects which are universal and those which are particular. With regard to the universal aspects, there are two kinds of origin. One origin is that which is not influenced by any other techniques or patterns. For example, spirals, stripes and trees of life are found almost everywhere. They are possibly universal symbols which human-beings have used without outside influence. The second origin is that which is influenced by outside cultures. Religious patterns are examples of this. Particular aspects of patterns indicate the widely different situations and great creativity of each country.

The study of textiles needs much more research concerning both the universal and particular aspect of patterns and the relationship between the many countries and districts. It also requires research into the meaning of pattern and colour, the mythology of textiles and the expression of textiles in pictures, sculptures and literature. The study of textiles enables a connection to be forged between many different fields.

References :-

1. Nishikawa, Joken 1708. Zoho Kai tsusho ko (Commerce and trading between China and uncivilized countries/ the enlarge edition), reprint. Nihon keizai taiten vol 4. Shishi Shuppansha, 1928.
2. Chaudhuri, K.N 1982. European Trade with India in The cambridge Economic History of India vol.1 c.1200-c.1750 edited by Tapan Raychaudhuri, Cambridge University Press. p.401
3. Reid, Anthony 1993. Southeast Asia in the Age of Commerce 1450-1680 vol.2 Expansion and Crisis, Yale University Press. p.31
4. Hefford, Wendy 1992. The Victoria & Albert Museum's Textile Collection—design for printed textiles in England from 1750 to 1850, London,Victoria & Albert Museum.
5. Reid, Anthony 1993. Southeast Asia in the Age of Commerce 1450-1680 vol.2 Expansion and Crisis, Yale University Press. pp.27-28.
6. Reid, Anthony 1988. Southeast Asia in the Age of Commerce 1450-1680 vol.1 The Lands below the Winds, Yale University Press. p.95.
7. Lieberman, Victor.B. 1984. Burmese Administrative Cycles, Anarchy and Conquest, c.1580-1760, Princeton University Press. p.26-27.
8. The Economist 31st July 1993. p.13.
9. Fraser-Lu, Sylvia 1986. Indonesian Batik, Oxford University Press.
10. Gillow, John 1992. Traditional Indonesian textiles, London, Thames & Hudson.
11. Hauser-Schaublin, Brigitta Nabholz-Kartaschoff, Marie-Louise and Ramseyer, Urs 1991. Balinese textiles, London, British Museum press.
12. Conway, Susan 1992. Thai textiles, London, British Museum press.
13. Lewis, Paul and Elaine 1984. Peoples of the golden triangle —six tribes in.

Trends, Challenges And Opportunities Of E-Tailing In India

Dr. Vandana K. Mishra *

Abstract - In the era of globalization, companies are using the Internet technologies to reach out to valued customers and to provide a point of contact 24 hours a day, 7 days a week. The changing lifestyles of the country's urban population have also led many people relying on the internet for their shopping needs. The convenience of shopping from the comfort of one's home and having a wide product assortment to choose from has brought about increased reliance on the online medium.

E-tailing is described as transactions that are conducted through interactive online computer systems, which link consumers with sellers electronically, where the buyer and merchant are not at the same physical location. In a short space of time, internet retailing or e-tailing has firmly established itself as a viable alternative to store based shopping. This paper attempts to provide a clear picture about the e-tailing in India and its trends, challenges and opportunities.
Keywords - E-Tailing, Indian Market Research Bureau (IMRB), online shopping.

Introduction - The word E-tail has its roots in the word 'retail'. Here the letter E-stands for 'electronic' since the shopping process happens through the electronic media (internet). With the use of a web-space a virtual shop is created and the products are displayed through images in this space with the features and price tags. By accessing this shopping site a customer can choose his/her products into a cart. The payment to this product can be done in various modes as mentioned by the shopping site. The product would be delivered to the address specified by the customer.

India is the country having the most unorganized retail market. Traditionally it was a family's livelihood, with their shop in the front and house at the back, while they run the retail business, More than 99% retailer's function in less than 500 square feet of shopping space. Global retail consultants KSA Technopak have estimated that organized retailing in India is expected to touch Rs 35,000 crore in the year 2005-06. The Indian retail sector is estimated at around Rs 900,000 crore, of which the organized sector accounts for a mere 2 % indicating a huge potential market opportunity that is lying in the waiting for the consumer-survey organized retailer. Purchasing power of Indian urban consumer is growing and branded merchandise in categories like Apparels, Cosmetics, Shoes, Watches, Beverages, Food and even Jewellery, are slowly becoming lifestyle products that are widely accepted by the urban Indian consumer. Indian retailers need to advantage of this growth and aiming to grow, diversify and introduce new formats have to pay more attention to the brand building process. The emphasis here is on retail as a brand rather than retailers selling brands. The focus should be on branding the retail business itself. There is no doubt that the Indian retail scene is booming. A number of large corporate houses - Tata's, Raheja's, Piramals's, Goenka's- have already made their foray into this arena, with beauty and health stores, supermarkets, self-service music stores, new age book stores, every-day-low-price stores, computers and peripherals stores, office equipment stores and home/building construction stores. Today the organized players have attacked every retail category.

Objectives Of Study:-

The main objectives of this paper are as below.

1) To Know and discuss the concept of E-tailing.
2) To describe the Trends of E-Tailing in India.
3) To find out the Challenges and opportunities of E-Tailing in India.

Research Methodology

Data Collection - This is a descriptive research paper based on secondary data. Data have been collected through the websites, research paper, Journals, magazines and Books.

Need Of The Study - Retailers are increasingly leveraging their presence across channels of catalogue, web, stores and kiosks, to increase their share of the customer's wallet and expand across consumer segments. Recent studies on consumer shopping behavior indicate that multichannel shoppers show a significantly higher value and frequency of purchase than single channel shoppers. Thus, the focus of modern retailing shifted to 'e-tailing', one of the most adoptive channel Few 'Live Bytes' of organised retailers are quoted to emphasize the need of "e-tailing".

E-Tailing - E-tailing is defined as the sale of goods and services through the Internet. Electronic retailing, or e-tailing, can include business-to-business and business-to-consumer sales. E-tailing revenue can come from the sale of products and services, through subscriptions to website content, or

* Assistant Professor, Smt. L.R.T. College of Commerce, Akola (Maharashtra) INDIA

through advertising. It is a play on the words "retail" and "e-commerce." E-tailing requires businesses to tailer traditional business models to the rapidly changing face of the Internet and its users. E-tailers are not restricted solely to the Internet, and some brick-and-mortar businesses also operate websites to reach consumers. Online retailing is normally referred to as e-tailing. Chen et al. (2004) divided e-tailing into three categories: (1) pure online players, (2) click-and-mortar retailers, and (3) retailers who replace the physical store with a wholly-online operation.

Important For E-Tailing To Growth In India

The growth of e-tailing in India will positively have four broad impacts:

A. Generate employment
B. Facilitate growth of allied industries
C. Promote entrepreneurship
D. Reduce transaction costs

Trends Of E-Tailing In India - E-Tailing or E-Retailing market is only about 1150 Crore INR according to a survey conducted by Internet and Mobile Association of India and Indian Market Research Bureau (IMRB). For the purpose of this article E-tailing is defined as Ecommerce sites including auction sites that sell groceries, apparel, CD's, books, electronic items, gifting item etc but exclude travel, digital downloads and online classifieds sites. The top E-tailers in India are indiatimes.com, fabmart.com, rediffshopping.com. They have managed to retain their lead due to innovative business strategies, supply chain model and changing urban lifestyles.

Table No 1 - Traffic statistics of E-Retailers in India

Online Retailers	Average time spent peruser (mins)	Total unique visitors ('000)September 2011
Amazon	8.7	6,553
eBay	13.7	3,286
Flip Kart	10.6	2,986
Bag it today	2.9	1,656
Future bazaar	5.4	525
India Plaza	5.7	434
Shoppers Stop	9.0	284

Source: Avendus Capital

Table No 2 -

Let's consider the simple facts: A recent report by Avendus states the following values for the Indian e-tailing sector.

Parameter	2011	2015
Indian Population	1.14 Bn	1.27 Bn
Internet Penetration	80 Mn	376 Mn
Internet Penetration %	7.00%	29.50%
Online Shopping	8-10 Mn	38 Mn
Value of ecommerce	$ 6.3 Bn	$ 24 Bn
E-Tailing	2-3 Mn	8 mn
Value of e-tailing	$1.1 Bn	$ 12 Bn
E-tailing penetration of Retail	0.20%	1.41%

Source:- trak. in / wp-content/uploads/2012/04/image.png

The above table shows that a large population still seems unaware of or is not using the services of ecommerce websites. The basic number of internet users has been stated to be about 80 million in 2011. With barely 2-3 million users of those connected to internet using it for e-tailing, chances are you may not know someone who even shops online.

But however, with a stated growth to 38 million users transacting online shopping by 2015, one can expect a similar growth of e-tailing customers to at least 8 million users to transact online by 2015. It is important to consider that just 29.50% of the population of India will have internet connectivity in 2015, of which only10% would even engage in ecommerce activity.

Challenges And Opportunities On E-Tailing In India :

The Challenges of e-tailing industry in India are as follows :

1. Controlling customer data - As the delivery services are becoming more modern in using information technology, e-tailers may face some risks to properly handle on their consumer data. The data related to the socioeconomic status of customers to their buying patterns and preferences, helps intermediaries and shippers reduce costs.

2. Problems with the payment system - People in India are not accustomed to the online shopping system and moreover the online payment system through the credit card is also totally alien to them. Most of them do not avail of the transaction facilities offered by the credit cards.

3. Lack of full cost disclosure - It is easy to compare the basic price of an item online; it may not be easy to see the total cost up front as additional fees such as shipping are often not be mentioned.

4. Handling returns - The problem of returns is very much prominent in e-tailing businesses in India. The customers can return defective or unwanted merchandise which he receives. E-commerce retailers, with their emphasis on convenience and customization, must match this standard of service. At present, they do not.

5. Delivering the goods cost-effectively - At present, every single transaction challenges e-tailors to deliver the goods quickly, cheaply and conveniently. The existing mode for home delivery works well for letters and flat packages but not for e-tailing as it encompasses with high volumes and wide variety of package shapes and sizes.

6. Problems with shipping - The customers using the online shopping channel should be assured that the products that they have ordered would reach them in due time.

7. Language problem - Most internet retail shops use English as their mode of communication. English may not be comprehensible to the majority of the Indian population. To increase the customer base, content in the online retail shops should be provided in local language.

The Opportunities Of E-Tailing Industry In India Are As Follows:

1. Convenience - Normally online stores are usually available 24 hours a day, and many consumers have internet access both at work and at home.

2. Price and selection - One of the biggest advantages of online shopping is to find out quickly deals for items at services with many different vendors. Search engines, on-line price comparison services and discovering shopping items can be used to find out sellers for a particular products or services. Some retailers also offer free shipping on sufficiently large orders. Searching an online catalogue can be faster than browsing the physical catalogue of a brick and mortar store.

3. Market research - Retailers can use their online presence as a tool to gain valuable customer information to forecast future customer demand. Online market research has some powerful advantages, such as monitoring real-time buying decisions. In addition, online customers have the knowledge and experience necessary to answer the questions, which produces more accurate and reliable data.

4. Online customer service - In India, websites are becoming new channels for conducting customer service; therefore their general acceptance level will increase, due to the benefits provided to customers.

5. Promotional tool - A website can be used as a medium to conduct promotional experiments, due to the wide reach of the internet, and the low cost. Therefore, it will be a great opportunity for Indian companies to promote their businesses.

6. Marketing tool - A website is also an effective channel to communicate with customers. Organizations do not need to rely solely on one-way communication media, such as TV and newspapers. The internet provides a two-way communication channel. As a new communication channel, the internet can provide benefits to retailers, such as low costs, interactivity, personalization, and continuous communication.

Conclusion - E-tailing is an integrator of technology, logistics, and infrastructure, and creates a relatively efficient marketplace for vendors and consumers. At present, the Indian e-tailing market is limited by its incapability to play the role of an efficient integrator. E-tailing possesses the potency to create new capabilities which India needs and offer viable employment to Indian youth over the next decade. It has the prowess to act as a catalyst and support the growth of new skills and industries.

Customers are also looking for convenience in shopping. This would continue more strongly in the next couple of years. In future the more dual income families, the consumer's ability to spend will increase, but at the same time it is predicted that the time available for shopping will go down, in such scenario, the retailers will have to take steps to develop shopping as an experience, though the more successful retailers will be those that will provide faster service.

References :-

1. Banumathy s. and Jayalakshmi M. (2010), Retail Marketing, Himalaya Publication House Pvt. Ltd., Mumbai-400004.
2. Baye, M. R., Morgan, J. & Scholten, P (2003), "The Value of Information in an Online Consumer Electronics Market". Journal of Public Policy & Marketing, 22, pg.no:17-25.
3. Biyani, K. (2007), CEO, Future Group "Retailing in the creative economy", India Retail Report, An Images F&R Research, pp.330-333.
4. http://www.e-tailing.com/content/
5. trak. in / wp-content/uploads/2012/04/image.png

****

Role of government in the development of tribal society

Ram Pavitra Gautam * Dr. Vipin Agrahari **

Abstract - A tribe is a group of people, usually staying in jungle areas, in a small locality, absolutely illiterate poor, hardly clad in clothes, usually dark and frail, fully living within their own community whose marriage always takes place among themselves, engaged in hunting and searching for roots, shoots and fruits as their veg food and roasted animals as non-veg food, completely oblivious of the country's political and economic condition, resisting all efforts of development and have a strong dislike for strangers and educated modern community. The number of such tribal community is very large e.g. Santhals, Kora people, Kol, etc. Most of whom fall under scheduled caste, scheduled tribe and other backward classes. Most of the projects and efforts for uplifting their health, education and economic condition have failed both for their own unwillingness for change and absolute non cooperation as well as lethargy, dishonesty and corruption of the intermediaries. Ministry of Tribal Affairs is responsible for looking after the welfare and development of the Scheduled Tribes who are among the most backward sections of the Indian Society. The schemes and programmes of the Ministry are implemented with the help of the State Governments, Union Territory Administrations, Non-governmental Organisations and institutions of the Local-self Government. All the schemes/programmes are focused on three crucial aspects of integrated development of Tribal population namely: **infrastructure, community and personality** development. There are ten central sector schemes, five centrally sponsored schemes and two special area programmes. Special Central Assistance to Tribal Sub-Plan (SCA to TSP) is a special area programme The objective of extending scope of SCA to TSP is to boost the demand-based income-generation programmes and raise the economic and social status of tribals.
Key Words - NSTFDC, NCST**,** Direct Benefit Transfer.

Introduction - According to Oxford Dictionary "A tribe is a group of people in a primitive or barbarious stage of development acknowledging the authority of a chief and usually regarding themselves as having a common ancestor. **D.N Majumdar defines** "Tribe as a social group with territorial affiliation, endogamous with no specialization of functions ruled by tribal officers hereditary or otherwise, united in language or dialect recognizing social distance with other tribes or castes."**According to Ralph Linton** "Tribe is a group of bands occupying a contiguous territory or territories and having a feeling of unity deriving from numerous similarities in a culture, frequent contacts and a certain community of interests."

The chief characteristics of a tribe are the following - Common definite territory, common dialect, common name, common religion and common culture. They have strong sense of unity and any stranger is attacked with bows and arrows. All tribe members are related by blood, have their own political organization which has a chief who exercises authority over all the members, even recommending marriage of young boys with girls whom they have found suitable for marriage. Each tribe is guided by their own religion which is based on totemism, magic and fetishism i.e. believing in god being embedded in a special piece of stone, a special tree or a peculiar strange animal. A tribe is an endogamous group, as distinct from a clan who is exogamous, have common name and is engaged in worshipping strange objects, hunting of small animals, and resists entry of any outsiders inside their territory. **It remains a great job for the State and Central Government to bring tribes into confidence, educate them, clad them, take health care and arrange for their living by developing skill.**

Ministry of Tribal Affairs is responsible for looking after the welfare and development of the Scheduled Tribes by giving focused attention to the special needs and problems of Scheduled Tribes in the country who are among the most backward sections of the Indian Society. The basic objective of policies, programmes is to bring the target groups into the mainstream of development by making them self-reliant. In achieving this objective, the Ministry performs the task of implementation in accordance with the provisions of the Constitution, which not only deal with the development and welfare of the Scheduled Tribes, but also give a concept of justice to include social and distributive aspects. The key mandate of this Ministry thus includes the social security, legislative measures, promotion of voluntary efforts on tribal welfare, monitoring and reporting on the outcomes of various initiatives and formulations of effective policy measures.

According to the 2011 Census of India, Bhil is the most populous tribe with a total population of 4,618,068, constituting 37.7 per cent of the total ST population. Gond is the second largest tribe, with a population of 4,357,918 constituting 35.6 per cent. The next four population tribes are: Kol, Korku, Sahariya and Baiga. These six tribes constitute 92.2 percent of the total ST population of the State Pardhan, Saur and Bharia Bhumia have a population ranging

* Research Scholar, M.G.C.G.U. Chitrakoot, Satna (M.P.) INDIA
** Principal,Vindhya Institute of Management & Science, Satna (M.P.) INDIA

from 105,692 to 152,472; together, they form 3.2 percent of state population. Four tribes, namely, Majhi, Khairwar, Mawasi and Panika have populations in the range of 47,806 to 81,335, and account for another 2.2 percent of the ST population. The remaining thirty three tribes (out of the total of 46 tribes) along with the generic tribes constitute the residual 2.5 per cent of total ST population. Tribes having below 1000 population are twelve in number.

Data - *Main focus of data collection (Secondary data)*

Classification of Tribes -

A. On the Basis of Geographical Location:

Territorially, tribes in India are divided into three main zones, namely

(1) North-North- Eastern Zone, (2) Central Zone
(3) Southern Zone.

1. North-North-EasternZone - Eastern Kashmir, Eastern Punjab, Himachal Pradesh, Northern Uttar Pradesh, Nagaland, Assam etc. constitute this zone. The Aka, The Mishmi, The Chulikata and The Naga are some of the tribes of this zone.

2. Central Zone - Bihar, Bengal, Southern U.P., Southern Rajasthan, Madhya Pradesh and Orissa come under this zone. The Kondh, the Santhal, the Bhil, the Gond, the Muria and the Baiga are only a few of the large number of tribes of this zone. **The bulk of the tribal population lives in this zone**. There is a very high concentration of tribal population in central India. Over 85 per cent of the total tribal population inhabits the eight States that constitute this zone.

3. Southern Zone - The Southern zone is consisted of four Southern States – Andhra Pradesh,Tamil Nadu, Karnataka and Kerala. The Toda, the Chenchu, the Kadar and the Koraga are some of the important tribes of this zone. Besides these main zones, there is another isolated zone constituting the Andaman and Nicobar Island in the Bay of Bengal.

B. On the Basis of Language - There are three tribal linguistic groups closely corresponding to three main territorial zones. The tribes of this zone speak languages and dialects belonging to three speech families. These are :

(1) The Sino-Tibetan, (2) The Austric
(3) The Dravidian.

1. The Sino-Tibetan - Almost all of the North-North-Eastern Zone speak languages and dialects which belong to Sino-Tibetan speech family. The Khasis of the Assam are, however, an exception. They speak a language which belong to the Austric speech family

2. Austric Linguistic Group - Most of the languages and dialects spoken by the tribals of Central zone belong to the Austric speech family. Some important tribes of this region like the Kondh and Gond speak languages belonging to the Dravidian speech family.

3. The Dravidian Linguistic Group -The tribal population of the Southern zone speak Dravidian languages like Tamil, Kannada and Malayalam in one form or other.

(C) On the Basis of Race - Tribes of India are broadly classified into three racial groups, Namely

(1) The Mongoloid, (2) The Proto-Austroloid,
(3) The Negrito.

1. The Mongoloid - The North-North-Eastern tribes living in the Himalayan regions belong to the Mongoloid race.

2. The Australoid -The tribes of central India are mainly Proto-Australoid in their racial ancesting.

3. The Negrito - A few tribes like the Kadar of the south and the Andamanese of the Andman Island belong this race.

Problems of tribal communities -

Land Alienation - The history of land alienation among the tribes began during British colonialism in India when the British interfered in the tribal region for the purpose of exploiting the tribal natural resources. Coupled with this tribal lands were occupied by money lenders, zamindars and traders by advancing them loans etc. The Government started reserving teak, Sal and deodar forests for the manufacture of railway sleepers. Forest land and its resources provide the best means of livelihood for the tribal people and many tribes including the women engage in agriculture, food gathering and hunting they are heavily dependent on the products of the forest.

Poverty and Indebtdness - Majority ribes live under poverty line. The tribes follow many simple occupations based on simple technology. Most of the occupation falls into the primary occupations such as hunting, gathering, and agriculture. The technology they use for these purposes belong to the most primitive kind. There is no profit and surplus making in such economy. Hence there per capital income is very meager much lesser than the Indian average. Most of them live under abject poverty and are in debt in the hands of local moneylenders and Zamindars.In order to repay the debt they often mortgage or sell their land to the money lenders. Indebtedness is almost inevitable since heavy interest is to be paid to these money lenders.

Health and Nutrition - In many parts of India tribal population suffers from chronic infections and diseases out of which water borne diseases are life threatening. They also suffer from deficiency diseases.

Education - Educationally the tribal population is at different levels of development but overall the formal education has made very little impact on tribal groups. Most of the tribes are located in interior and remote areas where teachers would not like to go from outside.

Cultural Problems - Due to contact with other cultures, the tribal culture is undergoing a revolutionary change. Due to influence of Christian missionaries the problem of bilingualism has developed which led to indifference towards tribal language. The tribal people are imitating western culture in different aspects of their social life and leaving their own culture. It has led to degeneration of tribal life and tribal arts such as dance, music and different types of craft

Programmes & Schemes by the Government Development of Tribal Society -

(A) Centre Sector Scheme -

i) Grant-in-aid to Voluntary organisations for the Welfare of STs (including Coaching and Allied Scheme and Award for Exemplary Service).
ii) Vocational Training in Tribal Areas.
iii) Strengthening of education among ST Girls in Low Literacy Districts
iv) Development of Particularly Vulnerable Tribal Groups (PTGs).
v) Rajiv Gandhi National Fellowship Scheme for ST students

vi) Support to TRIFED: "Market Development of Tribal Products/ Produce"
vii) Grants-in-aid to STDCCs for Minor Forest Produce operations
viii) Support to National/State ST Finance & Development Corporations
ix) Top class Education for ST students
x) Scheme of National Overseas Scholarship for S.T. students.

(B) Centrally Sponsored Schemes -

xi) Scheme of Post Matric Scholarship, Book Bank and Upgradation of Merit of ST students
xii) Pre-matric scholarship for ST students
xiii) Girls & Boys Hostels for STs
xiv) Ashram Schools in Tribal Sub Plan areas
xv) Research, Information & Mass Education, Tribal Festivals and others.

(C) Special Area Programmes -

xvi) Special Central Assistance to Tribal Sub Plan including Development of Forest Villages.
xvii) Grants under first provision to Article 275(1) of the Constitution of India.

Financial Analysis Table : (see below)

Analysis - Ministry of Tribal Affairs was provided an allocation of Rs. 4090.00 crore (Plan) and Rs. 18.00 crores (Non Plan) during the year 2012-13. And Plan & Non-plan allocation for the Ministry of Tribal Affairs and expenditure incurred during the last five years is given in the above table.

Direct Benefit Transfer - As per the decision taken in the Government of India and further directions of this Ministry, the State Governments have started disbursing the scholarship relating to Post Matric Scheme directly into the bank accounts of the students in 34 identified districts w.e.f 1st January. Direct Benefit Transfers have also been undertaken in the schemes of Top Class Education for ST students and Rajiv Gandhi National Fellowship Scheme by the implementing agencies in identified districts.

Programmes & Schemes Performance in develop of tribal society -

S.	Scheme	Financial perfo-rmance (%age of actual over RE(upto 31.12.2012)
i)	SCA to TSP 95.16	
ii)	Article 275(1) 91.87	
iii)	Hostels for ST Boys and Girls	88.07
iv)	Establishment of Ashram schools	59.46
v)	Rajiv Gandhi National Fellowship	100.00
vi)	PMS, Book Bank etc.	76.89
vii)	Development of PTGs	92.94

Source - Annual Report

Result and Conclusion - The Corporation has also been generating awareness through All India Radio and Doordarshan. The following three bodies are under the administrative control of the Ministry of Tribal Affairs:-

i) Tribal Cooperative Marketing Development Federation of India (TRIFED)
ii) National Scheduled Tribes Finance and Development Corporation (NSTFDC)
iii) National Commission for Scheduled Tribes (NCST)

The study shows that the several programmes have been introduced to improve the economic conditions of the tribal population in india . The study found that tribal development schemes have not brought any perceptible changes in the life of majority of the tribal people. As per the Comptroller and Auditor General of India Report (2008).It is also essential to spend more proportion of funds on the individual beneficiary schemes. At the same time necessary action should be taken to curb themass level corruption in the implementation of the tribal. The fundamental tribal governmental rights that has always been recognized in federal law has been the right to exclude outsiders from the tribe's territory. Implicit in the power of removal is the power to determine the conditions in which outsiders will be allowed to enter the reservation and remain. The removal power must be exercised according to an ordinance that accords due process of law to those affected and that spells out the conditions in which non-members are allowed on the reservation. Most tribes have power to regulate research on the reservation, especially research involving the Indian people themselves. Tribes must address various underlying policy considerations in deciding how to exercise this power.

References :-

1. Basu, A.R. (1985): Tribal Development Programmes and Administration in India, New Delhi, National Book Organisation.
2. Annual Report , Ministry of Tribal Affair, Government of India, New Delhi.
3. Ghate, R. S., (1992), Forest Policy and Tribal Developme -nt: A Study of Maharashtra, Concept Publishing Company ,New Delhi.
4. Ghosh, Sudhir, (2008), Tribal Development in India, ICFAI University Press, Agartala
5. Report of Planning Commission, Government of India, New Delhi,
6. Development Report of India.
7. www.nstfdc.nic.in.

Financial Analysis Table : (Rupees in Crores)

Year	Budget Estimates			Revised Estimates			Actual Expenditure		
	Plan	Non-Plan	**Total**	Plan	Non-Plan	**Total**	Plan	Non-Plan	**Total**
2008-09	**2121.00**	**12.55**	**2133.55**	**1970.00**	**14.16**	**1984.16**	**1805.27**	**12.97**	**1818.24**
2009-10	**3205.50**	**14.61**	**3220.11**	**2000.00**	**16.17**	**2016.17**	**1996.75**	**16.13**	**2012.88**
2010-11	**3206.50**	**13.87**	**3220.37**	**3205.70**	**15.71**	**3221.41**	**3136.48**	**15.37**	**3151.85**
2011-12	**3723.01**	**17.00**	**3740.01**	**3723.01**	**17.00**	**3740.01**	**3623.87**	**14.84**	**3638.71**
2012-13	**4090.00**	**18.00**	**4108.00**	**3100.00**	**15.55**	**3115.55**	**2533.84**	**12.85**	***2546.69** provisional

Source - Internet

Strategies And Impacts Of E-Marketing

Dr. Rita Sachdev *

Abstract - E-marketing plays a significant role in the world of globalization and growth of any organization. The marketing practice, connecting prospective customers to businesses revolutionized Internet in a way which has never before possible. The Internet functions on a global basis with information irrespective of country borders. Indeed, ethical standards and respect for intellectual property are not very high main concern in many areas of the world. E-marketers can track consumer behavior and respond in real-time to consumers through e-marketing. So e-commerce practitioners require being aware and practicing their craft with high moral standards to ensure the protection of intellectual property. The Internet is a powerful tool for marketing research. This paper introduces different e-marketing strategies.

Introduction - E-commerce is now a day just a rework of brick and mortar stores — with a few interactive squeeze here and there. Banner ads, animated or static, and web storefronts are just reschedules from the Industrial Age we've left behind. Concepts like 'fixed pricing on a fixed site', 'take-it-or leave-it' proposes, the need for old fashioned 'middlemen', accessing the Net only from PCs, disregard for customer privacy — even the need for 'dot com' themselves — are so last century.

The development of e-marketing has been one of the most economical, powerful and important developments in the field of marketing and business over the past decade. The Internet is serving a different set of connections that could never take place in the real world. Buyers can communicate with sellers, buyers with other buyers and sellers with other sellers. Information on both buyers and seller is easily and quickly accumulated for each other's use in the purchasing process. Both buyers and sellers can tap into virtual communities on the web to critique merchants, evaluate products — even ask sellers for personal offer — anywhere and at anytime. Internet is promising as one of the fastest rising advertising mediums as a global marketplace. With the extensive use of Internet, each and every business has made an online presence and is able to turn a lot of visitors into potential customers. It is estimated that 200 million websites are already available in the internet and another number of websites are adding constantly so competition for online business is rising day by day. Internet marketing plays an important role for success of any type of E-Business Companies. Getting strategically-effective and result-focused internet marketing services at cost-effective price from an online marketing company is quite tiresome job in today's competitive market as it requires a lot of analysis and research.

E-marketing - E-marketing advocates to the use of the Internet and digital media capabilities to help sell your products or services. These digital technologies are a valuable addition to traditional marketing approaches despite of the size and type of your business. E-Marketing is the process of marketing a brand using the Internet. It includes both direct response marketing and indirect marketing elements and uses a range of technologies to help connect businesses to their customers. E-marketing is also referred to as Internet marketing (i-marketing), online marketing or web-marketing. As with conventional marketing, e-marketing is creating a strategy that facilitates businesses deliver the right messages and product/services to the right audience. It consists of all activities and processes with the purpose of finding, attracting, winning and retaining customers. What has changed is its wider scope and options compared to conventional marketing methods.

E-marketing is considered to be wide in scope, because it not only describes to marketing and promotions over the Internet, but also includes marketing done via e-mail and wireless media. E-marketing also embraces the management of digital customer data and electronic customer relationship management (ECRM) and several other business management functions. E-marketing links creative and technical features of the Internet, including: design, development, advertising and sales. It contains the use of a website in combination with online promotional techniques such as search engine marketing (SEM), social medial marketing, interactive online ads, online directories, e-mail marketing, affiliate marketing, viral marketing and so on. The digital technologies used as delivery and communication mediums within the scope of e-marketing include:

- Internet media such as websites and e-mail
- Digital media such as wireless, mobile, cable and satellite.

E-marketing strategy expresses the choice of target markets, positioning and propositions which in turn guide the optimum mix - the sequence of e tools (such as websites, e-sponsorships, viral marketing), service levels and

* Asst. Prof. (Commerce) Govt. Arts & Commerce College, Bhopal (M.P.) INDIA

evolutionary stages. One ultimate part of E-marketing is development of the dynamic dialogue (including a contact strategy) via the integrated database. In spite of how the customer comes into contact, he or she must be dealt with as a identifiable individual with unique inclinations. This affects customer retention which, in itself, is a strategic decision. The best strategy in the world will achieve nothing if it does not cascade down into detailed tactics which are carefully action if implemented. Good execution only happens when you plan well and use your resources well.

Strategies - The internet marketing is fascinated more customers/ visitors to your business website and augment your bottom-line dramatically. Internet has become a global marketplace and it emerging as one of the fastest emerging advertisement media. Few online marketing strategies that help attain your business objective include: Affiliate Marketing, Business Blogging, Search Engine Optimization (SEO), Search Engine Marketing (SEM) / Pay–Per-Click (PPC) Advertising and Social Media Marketing (SMM), Article Marketing and Press Release Distribution. Business owners need to build up effective and efficient E-Marketing approaches to promote their business and make it reach all over world.

Various kinds of E-Marketing strategies are existed. Among those here are some of the effective strategies that can get you off the hook. Affiliate Marketing is the most popular way for any business owner to earn money or enhance sales of their products and services. Business Blogging allows you to build your company's brand as well as your authority in the industry and encourage new visitors to your website. Weblog facilitates you to communicate your success stories and presents new product updates to your existing customers and also brings in new customers.

Product marketing is the effective way of online marketing that contributes towards increasing profits for your business. It has the capability to bring massive traffic to your business site and as an extra bonus increases search engine rankings. Writing effective Press Releases and distributing them online will enable you to empower your business. Social Media Marketing (SMM) is crucial for any new and future businesses to remain growing and drive luxury sales. Social Media enhances your brand exposure and builds new business partnerships for your business.

Search Engine Marketing (SEM) plays main role in creating new marketplace. The success of any marketing strategy is estimated in term of the return on investment (ROI) and Search Engine Optimization (SEO) has the capability of bringing higher returns on investment when compared to other marketing options. By providing you an improved brand awareness and brand image, SEO enhances relevant online traffic to produce more sales for your business. Pay-Per-Click (PPC) Advertising is exercised to get traffic from targeted audience and it gives quick result with real time tracking.

Benefits and Impacts - Developing an online presence is imperative for all businesses to be competitive in present internet age. E-marketing gives businesses with access to mass markets at a reasonable price and allows them to undertake a personalized marketing vision and approach. The flexible and cost-effective nature of e-marketing builds it particularly suitable for small businesses.

Some of the benefits of e-marketing for small businesses are summarized below :

- E-marketing permits you to find new markets and potentially compete worldwide with only a small investment. There is already an existing business / market on the web/internet for whatever products you offer. The internet is now a day's become an important part of everyone's life as wider horizon and prospect to reach.
- E-marketing campaign can help your business to reach target customers at cost-effective and efficient approach with much lower cost compared to traditional marketing approach. But, there is need to effectively targeted and properly planned for e-marketing.
- E-marketing promotes a strong business case through automation and use of electronic media particularly in the areas of transactional costs, customer service, digital media channels, print and distribution for reducing and saving costs.
- The customers can discover your products and market round a clock through a website and make purchases even if you don't have physical premises at all or your shopping centers are closed.
- E-marketing permits you to approach people who desire to make out about your products and services instantly with personalized one-on-one marketing.
- E-marketing can generate interactive campaigns using music, graphics and videos. Through two-way communications, interactive games or quizzes, you can connect your audience and give them greater association and control over their web experience.
- E-marketing formulates it simplify to assess how effective your campaigns are with increasing ability to track results. It allows you to get detailed information about customers' reactions and responses to your products, through pay per click or pay per action process etc.

Conclusion - E-marketing campaigns and strategies have the potential to reach customers in a speedy and low-cost manner and can provide promotion for a wide range of products and services. E-marketing also offers businesses the opportunity to gather data about their consumer base to an extent that has been very difficult to achieve via traditional marketing methods till now. E-Marketing Solution meets all the business needs, including template development, database management and content creation. Tailoring a solution to an individual business' requirements, a strategy will align the technology with organizations' goals to produce the most impressive outcome a business person could expect hope for. More than 30% of business-to-business purchases are made on web now a day and the number is on a steady

rise. The top five e-commerce products are electronics, computers, petrochemicals, office products and motor vehicles. Billions of dollars are spent on advertising on the internet. More than 50 % of web surfers responded to an e-mail advertisement and about half bought the product. However, despite the global reach, speed and the extent of information that can be gained from e-marketing there are a number of important disadvantages to this type of marketing that businesses must bear in mind. The technology driven approach of e-marketing leaves certain businesses vulnerable and overly-dependent upon technology. However, despite some problems it is reasonable to conclude that e-marketing is on the whole a positive development for businesses and that despite certain dangers its impact upon businesses has been largely positive.

References :-

1. S. Punithadev 2014, E – Marketing – Challenges and Opportunities, Volume : 3 | Issue : 1 | Jan 2014 • ISSN No 2277 - 8160
2. http://toolkit.smallbiz.nsw.gov.au/part/27/138/648
3. E-marketing Excellence: Planning and Optimizing your Digital Marketing By Dave Chaffey, PR Smith
4. http://www.comedge.com.au/effective-e-marketing-strategies-to-achieve-your-business-objectives/
5. http://www.uwplatt.edu/distance-education/e-commerce-and-e-marketing-todays-world
6. http://tmgt.lsrj.in/SeminarPdf/236.pdf
7. http://www.ukessays.com/services/example-essays/marketing/evaluating-e-marketing.php
8. Hamill, Jim (1997) “The Internet and international marketing”, MCB University Press.
9. Heinen, Joseph (1996) “Internet marketing practices”, MCB University Press.
10 www.researchgate.net/... Marketing ... Opportunities _ Challenges.
11. www.themoscowtimes.com/.../opportunities... challenges...e-marketing.

****

To Study the Impact of credit risk management strategies on profitability of banks

Dr. Sujata Parwani *

Abstract - Credit risk is the oldest and biggest risk that bank, by virtue of its very nature of business, inherits. This has however, acquired a greater significance in the recent past for various reasons. Foremost among them is the wind of economic liberalization that is blowing across the globe. India is no exception to this swing towards market driven economy. Better credit portfolio diversification enhances the prospects of the reduced concentration credit risk as empirically evidenced by direct relationship between concentration credit risk profile and NPAs of public sector banks. Credit risk is defined as the possibility of losses associated with diminution in the credit quality of borrowers or counterparties. In a bank's portfolio, losses stem from outright default due to inability or unwillingness of a customer or counterparty to meet commitments in relation to lending, trading, settlement and other financial transactions. Alternatively, losses result from reduction in portfolio value arising from actual or perceived deterioration in credit quality. Credit risk emanates from a bank's dealings with an individual, corporate, bank, financial institution or a sovereign.

The main objective of the research is to identify the credit risk management strategies of banks, Also the research checks the impact of different strategic aspects of the profitability of banks and the percentage of bad debts of banks. The tools used for data analysis are coefficient of correlation.

Keywords - Credit risk, Credit risk management, Economy, Portfolio diversification, Profitability, Strategies.

Introduction - Lending involves a number of risks. In addition to the risks related to creditworthiness of the counter- party, the banks are also exposed to interest rate, forex and country risks.

Credit risk or default risk involves inability or unwillingness of a customer or counter-party to meet commitments in relation to lending, trading, hedging, settlement and other financial transactions. The Credit Risk is generally made up of transaction risk or default risk and portfolio risk. The portfolio risk in turn comprises intrinsic and concentration risk. The credit risk of a bank's portfolio depends on both external and internal factors. The external factors are the state of the economy, wide swings in commodity/equity prices, foreign exchange rates and interest rates, trade restrictions, economic sanctions, Government policies, etc. The internal factors are deficiencies in loan policies/ administration, absence of prudential credit concentration limits, inadequately defined lending limits for Loan Officers/ Credit Committees, deficiencies in appraisal of borrowers' financial position, excessive dependence on collaterals and inadequate risk pricing, absence of loan review mechanism and post sanction surveillance, etc.

Strategic credit risk management is an activity designed to develop risky bank lending policies, including the definition of the fundamental objectives and the means to achieve them. Strategic management can be seen as a continuous process of selecting and implementing the goals and strategies of the organization. The effectiveness of strategic management of credit risk depends on three main strategic goals of the bank: growth, protection and development. The tools of strategic management of credit risk, in our view, include: the philosophy and mission of the bank, the overall credit risk strategy, credit policy in the realization of strategic goals and objectives of the bank in the management of credit risk.

Literature Review - Bagchi (2003) examined the credit risk management in banks. He examined risk identification, risk measurement, risk monitoring, risk control and risk audit as basic considerations for credit risk management. The author concluded that proper credit risk architecture, policies and framework of credit risk management, credit rating system, monitoring and control contributes in success of credit risk management system.

Muninarayanappa and Nirmala (2004) outlined the concept of credit risk management in banks. They highlighted the objectives and factors that determine the direction of bank's policies on credit risk management. They concluded that success of credit risk management require maintenance of proper credit risk environment, credit strategy and policies. Louberge and Schlesinger (2005) Their paper considers a pool of bank loans subject to credit risk and develops a method for decomposing the credit risk into idiosyncratic and systematic components.

Bandyopadhyay (2006) aims at developing an early warning signal model for predicting corporate default in emerging market economy like India. He also presented the method for directly estimating probability of default using financial and non-financial variable. For predicting corporate bond default multiple discriminant analysis is used and

* Lecturer, IIPS, D.A.V.V.,Takshshila Campus, Khandwa Road, Indore (M.P.) INDIA

logistic regressions model is employed for estimating Probability of Default (PD).

Anju Arora (September 2012) this study aims to explore the extent to which bank size impacts on the choice of a broad set of CRM strategies relating to four elements of CRM, namely, (1) CRM organization; (2) CRM policy; (3) CRM operations and systems at transaction level; and (4) CRM operations and systems at portfolio level. The findings also indicated that a mix of the credit risk avoidance, credit risk mitigation and credit risk control approach was commonly followed by all the sample banks, irrespective of their size.

Research Objective - To find out the impact of credit risk management strategies on the profits of bank and to check whether the credit risk management strategies affect the percentage of profitability of the banks.

Research Methodology - It is a Descriptive and analytical research. The sample size of this study is 12 commercial banks in Indore city. .Primary data is used in the study which is has been collected through questionnaire to meet the objective of the study. For the purpose of analyzing the data statistical tools like Correlation, is applied in order to find out the best possible credit risk management strategies of banks and its impact on profitability and bad debts of the banks.

The different variables considered for analysis are: Independent variable like: lending policies, review mechanism, CRM control activities, tools of CRM and sources of credit problem.

Dependent Variables like: profitability and bad debts.

Data Analysis And Findings -

1. The coefficient of correlation of profitability and lending policies of banks is positive and its value is +0.051this means that these two variables have a relationship with each other. It is clear that profitability is affected by the lending policies.
2. The coefficient of correlation between profitability and control activities of by banks is negative and its value is –0.245. This means that the control activities by the banks do not affect their profitability.
3. Calculating correlation between review mechanism and profitability of banks –We are applying correlation method to study that effective credit risk management strategy should contain review mechanism or not by considering its relationship with profitability. The value of coefficient of correlation between profit and review policy is -0.465. This value shows that review policies do not affect the profitability of banks.
4. The coefficient of correlation Lending policies and bed debts is -0.288. Hence, this shows that there is no relationship between bad debts and the lending policies of banks.
5. The value of coefficient of correlation between sources of credit risk problem and bad debts is +0.072. The positive value shows a relationship between sources of credit risk problems. Also it can be seen that the sources credit risk problems affect the bad debts of the banks.
6. The correlation between CRM tools and bad debts of banks – to find out that whether CRM tools are effective or not , we study its relationship with bad debts of the banks by coefficient of correlation between them. The coefficient of correlation between bad debts and the CRM tools is -0.032. This negative means that the bad debts have no relation with the CRM tools applied by the banks.

Conclusion - After analyzing the data we, come to the conclusion that lending policies followed by the banks directly affects the profitability. So we conclude that lending policies are the part of effective credit risk management strategies. Also the control activities used by the banks and review policies followed are not a part of effective credit risk management strategies. The effective CRM tools can be used to reduce the bad debts percentage. The most preferred strategies in order to survive with the banking reforms are tightening credit risk management and strategic changes.

The survey has, thus, brought out that Credit Risk Management framework in Indore is on the right track and it is fully based on the RBI's guidelines issued in this regard. Most banks have their credit approving authority at 'Head Office Level'. The risk managers were of the opinion that the implementation of credit risk related guidelines was not a problem for them, but lack of the understanding of the methodologies/instruments was a cumbersome task for many of them. They needed to undergo some training/ education program in this regard. Hence, the concerned banks as well as RBI should take appropriate steps to organize high training programs on risk management at some institute of high credibility.

References :-

1. Hussey, J. Hussey, R.(1997) – "Business Research: A Practical Guide for Undergraduate andPost Graduate Students ", New York, McMillan Press.
2. Kane, E.J. Rice, T. (1998) – "Bank Runs and Banking Policies: Lessons for African Policymaker",Draft of December 15.
3. Kolb, R.W.(1992) - The Commercial Bank Management Reader, Florida, Kolb publishing company.
4. Bessis, J. (1998) - Risk Management in Banking, New York, John Wiley and Sons.

****

नर्मदा-झाबुआ ग्रामीण बैंक की कृषि ऋण योजनाओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. सुनील शर्मा * कपिला बाफना **

शोध सारांश – मध्य-प्रदेश की ग्रामीण कृषि ऋण आवश्यकताओं की पूर्ति तथा संस्थागत ऋण की उपलब्धता सुनिश्चित करने की दिशा में नर्मदा झाबुआ ग्रामीण बैंक की 332 शाखाऐं 14 जिलो में कार्यरत है। जो शासन की विभिन्न कृषि ऋण योजनाओं के सफल क्रियान्वयन के साथ लघु बचतों को एकत्रित कर पूर्ण निर्माण में अपना श्रेष्ठतम योगदान दे रही है। यह बैंक छोटे कृषकों को अल्पकालिन एवं दीर्घकालिन ऋण की उपलब्धता उनकी आवश्यकता के अनुसार करके उनकी कृषि समस्याओं के समाधान में सहयोग कर उनके आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे रही है। परन्तु अभी बैंक की कृषि के सर्वांगीण विकास हेतु और अधिक प्रभावी भूमिका की आवश्यकता परिलक्षित होती है।

शब्द कुंजी – वित्तीय समावेशन, संस्थागत वित्त, हितग्राही, आधुनिक प्रवतियॉ, सवितरण प्रक्रिया।

प्रस्तावना – भारत कृषि प्रधान देश है यहां कि अधिकाशं जनसंख्या गांवों में निवास करती है। जो प्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर रहती है। अत: इनकी आजीविका का मुख्य साधन कृषि ही है। भारतीय कृषि में कई दशकों से वित्त की समस्या विद्यमान रही है। न तो कृषि साख पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होती है। और न ही सही समय पर सरलता से प्राप्त होती है। काफी समय से कृषक समाज को गैर संस्थागत वित्त स्त्रोत (साहूकारों, महाजनों) से छुटकारा दिलाने हेतु प्रशासन ने अनेक प्रयास किये है। इस दृष्टि से संस्थागत वित्ता स्त्रोत के विकास एवं प्रसार पर जोर दिया जाता है। संस्थागत वित्तीय स्त्रोतों में मुख्य रूप से सरकार, सहकारी समितियाँ वाणिज्यिक बैंक, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक आदि आते हैं।

स्वतन्त्रता से पूर्व भारत में कृषि क्षेत्र में सर्वाधिक वित्त असंस्थागत स्त्रोतों के माध्यम से उपलब्ध होता था जो कि सन् 1952 में कुल प्रदान ऋण का 92.7 प्रतिशत तथा 1991 में 30.6 प्रतिशत जबकि 2010 में 29.7 प्रतिशत रहा। जो संस्थागत ऋण उपलब्धता की सरलता एवं प्रचार से संभव हो पाया है।

नर्मदा झाबुआ ग्रामीण बैंक दिनांक 01 नवम्बर 2012 को दो पूर्ववर्तो ग्रामीण बैंकों यथा नर्मदा मालवा ग्रामीण बैंक तथा झाबुआ धार क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक के समामेलन उपरांत आस्तिव में आया। यह 332 शाखाओं के साथ म.प्र. के 14 जिलों में फैला हुआ है। इन शाखाओं में 237 शाखाएँ ग्रामीण, 79 अर्द्धशहरी तथा मात्र 16 शहरी शाखाएँ है। उक्त के अतिरिक्त बैंक द्वारा वित्तीय समावेशन योजनांतर्गत 261 ग्राहक सेवा केन्द्र भी स्थापित किए है। प्रभावी नियंत्रण हेतु बैंक के झाबुआ सहित कुल 6 क्षेत्रीय कार्यालय, और एक प्रधान कार्यालय इन्दौर में स्थापित है।

नर्मदा झाबुआ ग्रामीण बैंक द्वारा कृषि विकास के लिये सर्वाधिक प्रयास किये जा रहे है कृषि विकास हेतु उपलब्ध ऋणों में फसल ऋण, किसान क्रेडिट कार्ड, लघुसिंचाई, कृषि यंत्रीकारण, भूमि विकास, भूमि सुधार एवं बागवानी आदि प्रदान किये जा रहे है। विभिन्न योजनाओं के अर्न्तगत ऋण वितरण में बैंक की प्रभावी भूमिका रही है। वर्ष 2013-14 में बैंक द्वारा ऋण संवितरण में से कृषि क्षेत्र में ऋण संवितरण कुल ऋण का 88.07 प्रतिशत है मार्च 2014 तक बैंक द्वारा जारी कुल विद्यमान किसान क्रेड़िट काई की संख्या 159252 है।

अध्ययन की आवश्यकता – छोटे और मध्यम कृषकों को दीर्घकालीन ऋण समूचित शर्तो पर सरलता से प्राप्त नहीं हो सकता है। प्राय: उन्हें साहूकारो और महाजनों से ऊँची ब्याज दर पर ऋण प्राप्त करना होता है। भारतीय कृषि में असंस्थागत ऋण स्त्रोंतो का योगदान काफी रहा है। इसका प्रभाव कृषकों के आर्थिक जीवन के साथ कृषि विकास पर भी हुआ है। कृषकों की दयनिय स्थिति में असंस्थागत ऋणों की भूमिका रही है। पिछले दो-तीन दशकों से शासन ने असंस्थागत वित्त पर शिकंजा कसने एवं कृषकों की स्थिति में सुधार हैतु अनेक अधिनियम एवं योजनाओं का क्रियान्वयन किया। वर्तमान में अधिकांश ऋण संस्थागत ऋण के रूप में ही प्राप्त किये जा रहे है। संस्थागत ऋण उपलब्ध कराने में नर्मदा-झाबुआ ग्रामीण बैंक द्वारा भी पर्याप्त योगदान दिया जा रहा है। अत: इस दृष्टि से यह देखना आवश्यक है कि क्या नर्मदा-झाबुआ ग्रामीण बैंक की कृषि ऋण योजनाऐं सफल रही है।

उद्देश्य –

1. नर्मदा-झाबुआ ग्रामीण बैंक वे कृषि ऋण प्राप्त हितग्राहियों की सामान्य स्थिति का आकलन करना।
2. कृषि ऋण उपलब्धता कृषि के विभिन्न क्षेत्रों हेतु प्रदाय ऋण के प्रभावों का विश्लेषण करना।
3. ऋण प्राप्ति में होने वाली कठिनाइयों का पता लगाकर उचित समाधान प्रस्तुत करना।

अध्ययन विधि – प्रस्तुत अध्ययन हेतु मध्य-प्रदेश नर्मदा झाबुआ ग्रामीण बैंक के कार्यक्षेत्र का चयन किया गया हैं। कृषकों की आर्थिक स्थिति में सुधार एवं कृषि विकास हेतु शासन ने संस्थागत वित्त के माध्यम से अनेक योजनाएं क्रियान्वित की है। प्रस्तुत अध्ययनहेतु 200 ग्रामीण कृषकों का चयन देव निदर्शन विधि द्वारा किया गया। अध्ययनहेतु उन कृषकों का चयन किया है जिन्होने संस्थागत वित्त संस्थाओं के द्वारा ऋण प्राप्त किया है। अध्ययन में

* निर्देशक एवं प्राध्यापक (वाणिज्य) शासकीय महाविद्यालय, बड़वाह (म.प्र.) भारत
** शोधार्थी (वाणिज्य) देवी अहिल्या विश्वविद्यालय इन्दौर(म.प्र.) भारत

यह जानने का प्रयास किया गया कि कृषकों की शैक्षणिक स्थिति, उपलब्ध भूमि, नर्मदा-झाबुआ ग्रामीण बैंक से प्राप्त ऋण एवं ऋण प्राप्ति पश्चात् आर्थिक स्थिति में क्या सुधार हुआ और ऋण प्राप्ति में कौन-कौन सी कठिनाईयाँ रही इस हेतु सुझाव प्रस्तुत किये गये।

हितग्राहियों की सामान्य जानकारी

तालिका क्र.-1 (देखे अन्तिम पृष्ठ पर)

देव निर्दशन विधि द्वारा चयनित हितग्राहियों से प्रत्यक्ष एवं प्रश्नावली द्वारा निष्कर्ष निकाले गये। जिसमें 25 से 35 वर्ष की आयु वाले कृषक सर्वाधिक 41 प्रतिशत है। तथा प्राथमिक स्तर तक शिक्षा प्राप्त 39 प्रतिशत है जबकि हायर सेकण्ड्री या अधिक मात्र 16 प्रतिशत है। जिसका सीधा प्रभाव ऋण प्राप्ति पर पड़ता है। अध्ययनके दोरान प्रत्यक्ष साक्षातकार से एक और समस्या हितग्राहियों द्वारा व्यक्ति की गई जो कम भूमि होना है जिससे अधिक उत्पादन कृषि की आधुनिक प्रवृतियों और उपकरणों का समुचित उपयोग न होना है। अध्ययनसे स्पष्ट है कि नर्मदा-झाबुआ ग्रामीण बैंक की 332 शाखाओं का संजाल जो मध्य-प्रदेश के सर्वाधिक कृषि क्षेत्र में फेली है, फलस्वरूप ऋण प्रदान करने में अग्राणी रही है जिसका प्रतिशत 38 सर्वाधिक है।

तालिका क्र.- 2

नर्मदा-झाबुआ ग्रामीण बैंक द्वारा विभिन्न योजनाओं के तहत संवितरण कृषि ऋण

(राशि रू लाखों में)

क्रं.	कृषि ऋण	2012-13	2013-14
1.	फसल ऋण एवं किसान क्रेड़िट कार्ड	208442.45	228950.08
2.	सावधि कृषि ऋण	3922.71	5577.87
	कुल	212365.16	234587.95

स्त्रोत- वार्षिक प्रतिवेदन रिपोर्ट 2013-14 (नर्मदा-झाबुआ ग्रामीण बैंक)

उपरोक्त तालिका-2 से स्पष्ट है कि नर्मदा-झाबुआ ग्रामीण बैंक द्वारा दिये जा रहे कृषि ऋण में प्रतिवर्ष वृद्धि हो रही है। वर्ष 2012-13 में संवितरीत कृषि ऋण में वर्ष 2013-14 में 10.46 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। इससे स्पष्ट होता है कि नर्मदा-झाबुआ ग्रामीण बैंक की विभिन्न ऋण योजनाओं में क्षेत्र के संस्थागत ऋण इच्छुक कृषकों की पसन्द है तथा नर्मदा-झाबुआ ग्रामीण बैंक जिसकी कृषि ऋण संवितरण प्रक्रिया में सरलता एवं हितग्राहीयों के अनुकुल है। अत: कहा जा सकता है कि नर्मदा-झाबुआ ग्रामीण बैंक की कृषि ऋण योजनाऐं सफल रही है।

सर्वेक्षण के दौरान जानने का प्रयास किया गया कि ऋण प्राप्त करने वाले उत्तरदाताओं की ऋण के पश्चात् आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ या नहीं इस हेतु उत्तरदाताओं को तीन वर्गो-पहला वर्ग वह जिसका विकास हुआ है और वह सन्तुष्ट है। दूसरा वर्ग वह जिसका विकास अपेक्षित नहीं हुआ है और वह कुछ सन्तुष्ट है। तीसरा वर्ग वह जिसका विकास बिल्कूल नहीं हुआ और ऋण लेने के पश्चात् भी वह असन्तुष्ट रहे है।

तालिका क्र. 3 (देखे अगले पृष्ठ पर)

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि ऋण प्राप्त करने वाले 200 उत्तरदाताओं में से 47 प्रतिशत उत्तरदाता ऋण से आर्थिक स्थिति में सन्तुष्टि को इंगित किया। जबकि 34 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने माना की ऋण के पश्चात् भी उनके आर्थिक विकास में अपेक्षित वृद्धि नहीं हुई तथा 19 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे है जो बताते है कि ऋण की अपर्याप्तता तथा समय पर ऋण उपलब्ध नहीं होने से एवं कृषि की प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण उनकी आर्थिक स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ। अत: निष्कर्षत: हम कह सकते है कि अभी नर्मदा झाबुआ ग्रामीण बैंक को अपनी ऋण योजनाओं को हितग्राहियों के अनुकूल और प्रभावी बनाने की आवश्यकता है तथा ऋण प्रक्रिया को सरल एवं शिघ्ता वाली होने की आवश्यकता है।

समस्याऐं एवं समाधान - यद्यपि नर्मदा झाबुआ ग्रामीण बैंक के कार्यक्षेत्र में साक्षरता में वृद्धि तथा शासन की विभिन्न बैंकिग योजनाओं का व्यापक प्रचार हो रहा है। परन्तु अपर्याप्त शिक्षा, संस्थागत ऋण के प्रति भय, तथा ऋण प्रक्रिया में विलम्ब, साहुकारों, महाजनों पर अत्याधिक विश्वास आदि छोटे-छोटे कारण कृषि ऋण योजनाओं को पुर्ण सफल होने में बाधाऍं उत्पन्न करते है।नर्मदा-झाबुआ ग्रामीण बैंक ने अपनी ग्रामीण परिवेश शेली के तहत कुछ सरलता प्रदान की है। परन्तु शासन एवं बैंक प्रबन्धन के बिच उचित तालमेल के अभाव में कृषि ऋण योजनाओं के प्रति कृषक पूर्ण सन्तुष्ट नहीं है। क्योंकि लघु ऋणों की अत्यधिक आवश्यकता एवं अल्पकालिन ऋणों की आवश्यकता हैतु बैंक प्रकिया एवं विधि में आज भी जटिलता है। अत: शासन एवं बैंक प्रबन्धन को अपनी कृषि ऋण योजनाओं के साथ ही संवितरण प्रकिया को और अधिक सरल और शीघ्रता वाली बनाने की आवश्यकता है।

उपसंहार एवं निष्कर्ष :- हमारे देश के ग्रामीण अंचलो जैसे में जहॉ अपर्याप्त शिक्षा एव अल्प कृषि क्षेत्रफल वाले कृषक निवास करते है। जो आज भी प्राचीन संस्कृति सभ्यता के साथ जीवन यापन कर रहे है। वहा शासन और ग्रामीण बैंकों के और अधिक सुदृढ़ीकरण की आवश्यकता है। यद्यपि नर्मदा-झाबुआ ग्रामीण बैंक इस जिले में अपनी विभिन्न शाखाओं द्वारा कृषि ऋण संवितरण में अत्यधिक सफलता प्राप्त की है। फिर भी संस्थागत ऋण की उपलब्धता के प्रति और अधिक जागरूकता की आवश्यकता है। अत: नर्मदा-झाबुआ ग्रामीण बैंक को अत्याधिक पिछड़े जिलों के लिये शासन की योजनाओं को और अधिक सरलता प्रदान करने तथा विशेष कृषि ऋण योजनाएँ बनाए जाने की आवश्यकता परिलक्षित होता है। तभी बैंक भविष्य में और अधिक सफलता पूर्वक कृषि क्षेत्र में अपना योगदान देगी। अध्ययनसे स्पष्ट है कि नर्मदा-झाबुआ ग्रामीण बैंक की कृषि ऋण योजनाएं प्रभावी रही है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :-

1. भारतीय क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक, राष्ट्रीय बैंकिंग समाचार समीक्षा नाबार्ड।
2. नर्मदा-झाबुआ ग्रामीण बैंक वार्षिक प्रतिवेदन रिर्पोट 2013-14।
3. वार्षिक प्रतिवेदन 2013-14 नाबार्ड।
4. आर्थिक समीक्षा 2013-14 रिर्जव बैंक भारतसरकार।
5. जिला सांख्यिकीय कार्यालय जिला-झाबुआ।

हितग्राहियों की सामान्य जानकारी
तालिका क्र.–1
संस्थागत ऋण हिताग्रहियों की आयु, शिक्षा, एवं ऋण प्रदाय संस्थाऐं

क्र.	आयु (वर्ष में)	प्रतिशत	शैक्षणिक	प्रतिशत	संस्थागत ऋण	प्रतिशत
1.	25 से कम	13	निरक्षर	27	सहकारी बैंक	31
2.	25 से 35	41	प्राथमिक स्तर	39	भूमि विकास बैंक	20
3.	35 से 45	30	माध्यमिक स्तर	28	नर्मदा–झाबुआ ग्रामीण बैंक	38
4.	45 से अधिक	16	हायर सेकंड्री एवं अधिक	16	अन्य वाणिज्यक बैंक	11

स्त्रोत – सर्वेक्षण एवं साक्षातकार पर आधारित

तालिका क्र. 3
पश्चात् उत्तरदाताओं की स्थिति

क्र.	उत्तरदाताओं की आर्थिक स्थिति में हुई वृद्धि की स्थिति	संख्या	प्रतिशत
1.	उत्तरदाता जो आर्थिक विकास से सन्तुष्ट है।	94	47
2.	उत्तरदाता जो आर्थिक विकास से कम सन्तुष्ट हुए।	68	34
3.	उत्तरदाता जो आर्थिक विकास से असन्तुष्ट हुए।	38	19
	कुल	200	100

स्त्रोत – सर्वेक्षण एवं साक्षातकार पर आधारित

****

भारत में प्रबन्ध शिक्षा : कल आज और कल

डॉ. राजू रैदास *

प्रस्तावना – भारत में सबसे पहला प्रबन्ध विद्यापीठ सन् 1945 में भारतीय सामाजिक कल्याण एवम् व्यावसायिक प्रबन्ध संस्थान, कलकत्ता (Indian Institute of Social Welfare & Business Management' Calcutta) के नाम से शुरू हुआ। इसके बाद शीघ्र ही आन्ध्रप्रदेश, मुम्बई, दिल्ली और मद्रास में चार ऐसे विद्यापीठ खोले गये। सन् 1950 के दशक में प्रबन्ध शिक्षा का विकास धीमी गति से हुआ। इस काल में प्रबन्ध शिक्षा की दशा, विषयवस्तु एवम् प्रभाव के निर्धारण को महत्व दिया गया। यह भी गहन विवाद का विषय था कि क्या प्रबन्ध शिक्षा नवीन स्नातकों को भी उपलब्ध करायी जाय ? क्योंकि उस समय के प्रबन्ध विद्यापीठों का ध्यान कार्यरत अधिशासियों के लिये अंशकालिक कार्यक्रम को उपलब्ध कराने पर ही था।

प्रथम प्रबन्ध अध्ययन समिति (Board of Management Studies) का गठन सन् 1955 में टाटा लौह एवं इस्पात कम्पनी (Tata Iron & Steel Company) के सर जहाँगीर घांडी के सशक्त नेतृत्व में हुआ। सर जहाँगीर घांडी सही रूप में भारत में प्रबन्ध शिक्षा के जनक माने जाते हैं। उन्होंने प्रबन्ध शिक्षा को गतिशील एवं उन्नत बनाने में अहम् भूमिका अदा की।

प्रबन्ध प्रणाली का दूसरा पुनरावलोकन अखिल भारतीय प्रबन्ध तकनीकी शिक्षा पाठ्यक्रम समिति (Courses Committee of the all India Board Technical Studies) के द्वारा सन् 1964 में किया गया। समिति में पाठ्यक्रम तथा मूलभूत सुविधाओं की आवश्यकताओं में परिवर्तन के लिये सुझाव प्रस्तुत किये। ये सारे सुझाव उन सभी विद्यापीठों, जो उस समय अस्तित्व में थे, ने माने और अपनाये। सन् 1960 के दशक में भारत प्रबन्ध शिक्षा के एक प्रमुख केन्द्र के रूप में उभरा। सन् 1961 में भारतीय प्रबन्ध संस्थान, कलकत्ता (Indian Institute of Management, Calcutta), 1962 में भारतीय प्रबन्ध संस्थान, अहमदाबाद (Indian Institute of Management, Ahmedabad), 1966 में जेवियर श्रम सम्बन्ध संस्थान, जमशेदपुर (Xavir Indian Institute of Labour Relations, Jamshedpur) की स्थापना तथा दिल्ली एवं बम्बई विश्वविद्यालयों में पूर्णकालिक पाठ्यक्रमों की स्थापना आदि ने देश में प्रबन्ध शिक्षा प्रणाली के विकास में भारी वृद्धि की। यह एक गर्व की बात है कि भारतीय प्रबन्ध संस्थान, कलकत्ता एवं भारतीय प्रबन्ध संस्थान, अहमदाबाद की स्थापना संयुक्त राज्य (United Kingdom) में लंदन एवं मैनचैस्टर व्यावसायिक विद्यापीठों से भी हुई।

भारतीय प्रबन्ध संस्थानों की स्थापना के साथ ही कुछ भारतीय विश्वविद्यालयों में भी प्रबन्ध विभागों की स्थापना होने लगी। सांथ ही संयुक्त क्षेत्र (Corporate Sector) के लिये योग्य एवं श्रम प्रबन्धकीय मानव संस्थानों को उपलब्ध कराने तथा भारतीय प्रबन्ध को व्यावसायिक (Professional) बनाने के लिये प्रबन्ध शिक्षा की भूमिका को सरकार, व्यवसाय एवं उद्योग ने स्वीकारा। क्योंकि समय कुछ ऐसा कि जिसे मानकर कुछ अर्थ पूर्ण ढंग से किया जा सके, उपलब्ध नहीं था, इसलिए प्रबन्ध शिक्षा का जो ढाँचा अपनाया गया, वह मूलत: अमेरिका की प्रबन्ध शिक्षा प्रणाली पर आधारित था। प्रबन्ध शिक्षा ढाँचे को भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों के हिसाब से ढालने तथा उसे मजबूती प्रदान करने का प्रयास किया गया। भारतीय प्रबन्ध शिक्षा की यह आलोचना, कि भारतीय प्रबन्ध शिक्षा भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप नहीं, अकसर की जाती रही है। भारत में प्रबन्ध शिक्षा को एक भारतीय आधार प्रदान करने हेतु भारतीय प्रबन्ध संस्थान, अहमदाबाद, भारतीय प्रबन्ध संस्थान, कलकत्ता तथा भारतीय शैक्षणिक कर्मचारी महाविद्यालय, हैदराबाद (Academic Staff College, Hyderabad) ने प्रचुर मात्रा में शिक्षा सामग्री तैयार कर इस क्षेत्र में अग्रणीय भूमिका अदा की है जो कि प्रबन्ध विद्वत समाज तथा अभ्यासकर्त्ताओं को सदैव अविस्मरणीय रहेगी।

सन् 1960 के दशक के मध्य तक भारत प्रबन्ध शिक्षा के क्षेत्र में एक जाने–माने दिग्गज के रूप में जाना जाने लगा फिर भी, कुछ एक भारतीय प्रबन्ध संस्थानों को सच्चे रूप में अंतर्राष्ट्रीय न बनाने की बड़ी गलती जो उस समय की गयी, आज भी उतनी ही बड़ी है, भारत में प्रबन्ध संस्थानों की स्थापना तथा भारतीय विश्वविद्यालयों द्वारा प्रबन्ध विद्यापीठों एवं विभागों की स्थापना से प्रबन्ध शिक्षा के प्रभावी विकास के बावजूद बहुत से प्रश्न आज भी विवाद का विषय बने हुए हैं जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं :

क्या भारतीय प्रबन्ध शिक्षा का जो ढाँचा हमने विकसित किया वह हमारी सामाजिक तथा विकास की आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम है ?

- क्या यह प्रणाली विद्यार्थियों में उचित मूल्यों का निरंतर प्रवाह करती है ?
- क्या आज भी हमारे प्रबन्ध पाठ्यक्रमों में पाश्चात्य शिक्षण सामग्री का बाहुल्य है ?
- क्या भारत में प्रबन्ध शिक्षा का स्वरूप अत्यधिक सैद्धान्तिक है ?
- क्या हमारे अध्यापक एवं छात्र सार्वजनिक क्षेत्र एवं सार्वजनिक प्रणालियों की प्रबन्ध आवश्यकताओं की अनदेखी कर रहे हैं ?

सन् 1970 के दशक में भारतीय प्रबन्ध संस्थान, बंगलौर (Indian Institute of Management, Banglore) की स्थापना अक्टूबर 1973 में हुई। यहाँ भारतीय प्रबन्ध संस्थान बंगलौर की चर्चा इसलिए आवश्यक है कि इसकी स्थापना एक भिन्न उद्देश्य के साथ की गई। उद्देश्य था सार्वजनिक क्षेत्र के प्रबन्ध विकास पर बल तथा सार्वजनिक प्रणालियों के प्रति वचनबद्धता। सन् 1970 के दशक तक भारत में प्रबन्ध विद्यापीठ की संख्या 55 तक हो गई थी परन्तु सन् 1960 के दशक के विवाद आज भी प्रबन्ध शिक्षा को प्रभावित कर रहे थे।

सन् 1980 का दशक प्रबन्ध विद्यापीठों की विस्फोटक उत्पत्ति से पहचाना जाता है। इस दशक की प्रमुख उपलब्धियाँ निम्नांकित हैं :–

* अतिथि विद्वान (वाणिज्य) शासकीय महाविद्यालय, उमरिया (म.प्र.) भारत

- लगभग 50 प्रबन्ध विद्यापीठों का इस दशक में उदगम हुआ। इसमें से लगभग आधे विद्यापीठ निजी क्षेत्र में थे।
- बहुत से निजी क्षेत्र के महाविद्यालयों, जो कि विभिन्न विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध थे, ने एम.बी.ए. पाठ्यक्रमों का पठन श्र पाठन शुरू कर दिया। केवल मुम्बई में ही ऐसे आठ संस्थान थे जो एम.बी.ए. पाठ्यक्रमों को चला रहे थे।
- सन् 1984 में भारतीय प्रबन्ध संस्थान, लखनऊ (Indian Institute of Management, Lucknow) की स्थापना हुई।
- अंतर्राष्ट्रीय प्रबन्ध संस्थान, नई दिल्ली (International Management Institute, New Delhi) की स्थापना अंतर्राष्ट्रीय प्रबन्ध संस्थान, जिनेवा एवं मैकगिल विश्वविद्यालय, कनाडा के सहयोग से हुई तथा प्रबन्ध शिक्षा के वैश्वीकरण के विकास पर बल दिया गया।
- सन 1986 में अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद् (All India Council for Technical Education AICTE)के द्वारा नये प्रबन्ध विद्यापीठों के लिए पुनरावलोकित नियमों एवं मूलभूत सुविधाओं का अनुमोदन किया गया।
- सन् 1987 में अखिल भारतीय शिक्षा परिषद् का बिल पास हुआ जो कि भारत में प्रबन्ध शिक्षा के विकास में एक बड़ी उपलब्धि थी।
- 27 अगस्त 1988 में अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद् ने देश में एम.बी.ए. पाठ्यक्रमों में पुनरावलोकित नियमों के समावेश को स्वीकृत किया।
- 1980 के दशक के अन्त में कुछ नये प्रश्न तथा चिन्ताएँ उत्पन्न हुईं जो कि प्रबन्ध शिक्षा प्रणाली में निम्नांकित उपलब्धियों से संबन्धित थी :
- प्रबन्ध विद्यापीठों की कुकुरमुत्ता उत्पत्ति (Mushroom Growth)
- एक ऐसा विश्वास था कि देश के प्रमुख प्रबन्ध विद्यापीठ अपना जोश अपनी प्रवर्तन क्षमता खो चुके हैं।
- एक ऐसी भावना थी कि प्रबन्ध शोध एवं प्रबन्ध शिक्षण सामग्री के विकास में कमी आई है।
- एक ऐसा बोध था कि हमारी प्रबन्ध शिक्षण पद्धति देश के बाहर हो रही प्रगतियों के मुकाबले पिछड़ रही है।
- एक डर था कि विश्वविद्यालयों में प्रबन्ध विभागों की स्थापना को स्वीकृति तथा सम्बन्धित महाविद्यालयों में प्रबन्ध पाठ्यक्रमों को स्वीकृति यदि बिना आवश्यक शैक्षणिक तैयारी और मूलभूत सुविधाओं के अभाव में दी गयी तो क्या होगा।
- कुछ निजी क्षेत्र के प्रबन्ध विद्यापीठों ने प्रबन्ध शिक्षा का वाणिज्यीकरण (Commercialisation) शुरू कर दिया, जो कि आपत्तिजनक बात थी।

वर्तमान दृश्य –

- 1990 के दशक में बड़ी तेजी से प्रबन्ध – विद्यापीठों की स्थापना हुई इनमें ज्यादातर विद्यापीठ निजी क्षेत्र में थे।
- स्थापित – विद्यापीठों में से कुछ विद्यापीठ पाश्चात्य देशों के सहयोग से कुछ परिवर्तन लाये। कुछ विद्यापीठों ने तो अपने सहयोगी विदेशी – संस्थानों के माध्यम से प्रबन्ध में उपाधियाँ भी प्रदान करना शुरू कर दिया।
- एक गहन प्रश्न खड़ा हुआ कि क्या सरकार को अन्य उच्च शिक्षा की तरह प्रबन्ध शिक्षा को भी आर्थिक सहायता देकर सस्ते दामों पर उपलब्ध कराना चाहिए।
- भारतीय प्रबन्ध संस्थानों ने अपने शुरू के सालों में वरिष्ठ प्रबन्धकों को शिक्षण में समाविष्ट करके बहुत अच्छा काम किया। किसी भी प्रबन्ध विद्यापीठ में कम से कम 25 प्रतिशत समावेश उद्योग से लाये हुए लोगो का होना चाहिए।
- अखिल भारतीय प्रबन्ध विद्यापीठ संघ (Association of Indian Magagement Schools - AIMS) ने अपने आपको और मजबूत किया। इसके सिवाय संघ ने कई तरह के विकास के कार्यक्रम शुरू किये जिससे सदस्य विद्यापीठों को लाभ हो। इसके बावजूद अभी संस्थानों के बीच आपसी सहयोग, परामर्श आदि के क्षेत्र में बहुत कुछ करना बाकी था।

प्रबन्ध शिक्षा का भविष्य – आज प्रबन्ध शिक्षा यांत्रिकी, तकनीकी, औषधि निर्माण एवम् निर्माण शिक्षा के सांथ जोड़ी जाती है और तकनीकी शिक्षा के अंतर्गत आती है। प्रबन्ध विषय को एक अलग विषय के रूप में मान्यता देने की आवश्यकता है ताकि प्रबन्ध शिक्षा के विकास पर पूर्ण ध्यान दिया जा सके।

देश में प्रबन्ध शिक्षा को और उन्नत बनाने तथा अधिक संख्या में व्यावसायिक रूप से युवाओं को प्रशिक्षित करने हेतु भारत सरकार ने दो और प्रबन्ध संस्थानों, भारतीय प्रबन्ध संस्थान, इन्दौर (Indian Institute of Management, Indore) एवम् भारतीय प्रबन्ध संस्थान, कालीकट (Indian Institute of Management, Kalicut) की स्थापना की है।

आज सबसे बड़ी आवश्यकता भारतीय प्रबन्ध शिक्षा के वैश्वीकरण की है,ताकि वातावरण के इस परिवर्तन से जन्मी चुनौती का डटकर मुकाबला किया जा सके तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत के प्रबन्ध संस्थानों का नाम रोशन किया जा सके।व्यावसायिक शिक्षा के वैश्वीकरण की आवश्यकता आने वाले वर्षो में और बढ़ेगी खासकर भारत में। भारत सरकार द्वारा हाल में शुरू किये गये आर्थिक सुधारों के कारण भारतीय उद्यमों को भारी परिवर्तन एवं चुनौती को स्वीकार करना पड़ेगा और अपने आपको विश्वस्तरीय प्रतिस्पर्धा का सामना प्रभावशाली ढंग से करने के लिये सक्षम बनाने हेतु समय की माँग के अनुसार ढलना पड़ेगा।

पूरा विश्व अब एक बड़ा व्यावसायिक क्षेत्र होगा तथा स्थानीय, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय खिलाड़ी एक सांथ खेलेंगे। अति तीव्र प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ेगा, केवल वही संगठन चल पायेंगे जो हर तरह से उत्तम हैं और सच्चे मायने में विश्वस्तरीय हैं बाकी संस्थानों को मैदान छोड़ना ही पड़ेगा।

व्यावसायिक प्रबन्ध शिक्षा के वैश्वीकरण की प्रक्रिया विश्व के प्रबन्ध विद्यापीठों को आपस में जोड़ने की आवश्यकता का परिणाम है। उत्तरी अमेरिका के व्यावसायिक विद्यापीठों ने इस दिशा में अग्रणीय प्रयास किये। अब वह समय भी आ गया है जबकि विश्व के विभिन्न भागों में कार्यरत व्यावसायिक विद्यापीठों को एकजुट होकर कार्य करने की आवश्यकता है। भारत सरकार द्वारा लागू किये आर्थिक सुधार उदारीकरण की नीति की धारणा तथा उसके अभ्यास को प्रेरित करने हेतु व्यावसायिक संगठनों को न केवल विश्व स्तर पर सोचने बल्कि कार्य करने के लिए बाध्य करेंगे।

विश्व के विभिन्न भागों में कार्यरत व्यावसायिक शिक्षा एवं प्रशिक्षण प्रदान कर रहे संस्थानों के बीच सुस्थिर क्रिया प्रतिक्रिया तथा सम्बन्धों को सुदृढ़ बनाने के लिए निम्नलिखित सुझाव लाभकारी हो सकते हैं :

- विश्व के समस्त व्यावसायिक विद्यापीठों को विद्यार्थियों के चयन तथा अपनी भूमिका के निर्वाह सम्बन्धी एकरूप मानदण्डों का निर्धारण करना चाहिए।
- विश्व के समस्त व्यावसायिक विद्यापीठों को आवश्यक संसाधनों की कमी के संकट को दूर करने के लिये संसाधनों जैसे व्यावसायिक शिक्षा, तकनीकी शिक्षा एवं साहित्य आदि की एक संनिधि बनाने की गहन आवश्यकता है।

- अध्यापकों, छात्रों तथा व्यावसाय एवं प्रबन्ध सम्बन्धों, साहित्य की अन्तर्राष्ट्रीय विद्यापीठों के मध्य अनवरत आदान प्रदान होना चाहिए ताकि वे प्रभावी ढंग से व्यावसायिक शिक्षा तथा अन्तर्राष्ट्रीय प्रबन्ध के क्षेत्र में अपना योगदान दे सकें।
- विश्व स्तर पर व्यावसायिक विद्यापीठों का एक संघ बनाया जाना चाहिए जैसा कि राष्ट्रीय स्तर पर अखिल भारतीय प्रबन्ध विद्यापीठ संघ (Association of Indian Management Schools AIMS) है। इस संघ को अन्तर्राष्ट्रीय प्रबन्ध विद्यापीठ संघ (Association of International Business Schools I AIBS) के नाम से संबोधित किया जा सकता है। यह संघ पूरे विश्व के व्यावसायिक विद्यापीठों को एकत्र होने तथा अपनी समस्याओं एवं सभी योजनाओं के बारे में विचार विमर्श करने के लिये प्रोत्साहित करेगा ताकि व्यावसायिक शिक्षा एवं प्रशिक्षण को प्रोन्नत किया जा सके। संघ अग्रलिखित विभिन्न कार्य कलापों एवं प्रतिस्पर्धात्मक कार्यक्रमों का आयोजन कर सकता है :
- पाठ्यक्रमों में सुधार एवं उनका नवीनीकरण
- संयुक्त शोध कार्यक्रमों एवं परामर्श परियोजनाओं का आयोजन
- प्रशिक्षण एवं विकास कार्यक्रमों का आयोजन
- व्यावसायिक एवं प्रबन्ध शिक्षा से संबंधित विषयों पर गोष्ठियों तथा कार्यशालाओं का आयोजन
- कुछ स्पर्धाओं जैसे सर्वश्रेष्ठ प्रबन्ध विद्यापीठ पुरस्कार, सर्वश्रेष्ठ शिक्षक पुरस्कार, केस लेखन (Case - writing) प्रतियोगिता, विद्यार्थियों द्वारा लिखित सर्वश्रेष्ठ शोध पत्र पुरस्कार आदि को आयोजित किया जा सकता है।

भारत में व्यावसायिक शिक्षा एवं प्रशिक्षण प्रदान करने वाले संस्थानों को अपने पाठ्यक्रमों का पुनरावलोकन कर वैश्विक व्यावसायिक आवश्यकताओं के अनुरूप ढालने की गहन आवश्यकता है। यह अति आवश्यक है कि पाठ्यक्रमों में अधिक वैश्विक व्यावसाय के लक्षणों का समावेश हो। कुछ क्षेत्र जैसे अन्तर्राष्ट्रीय मानव संसाधन प्रबन्ध (International Human Resource Management), अन्तर्राष्ट्रीय वित्त प्रबन्ध (International Financial Management), अन्तर्राष्ट्रीय विपणन प्रबन्ध (International Marketing Management) को महत्व देने की आवश्यकता है ताकि वैश्विक व्यावसायिक शिक्षा को सही रूप में अपनाया जा सके।

अधिकतर भारतीय प्रबन्ध विद्यापीठों का उद्योग के साथ बहुत कमजोर सम्बन्ध है। कोई भी प्रबन्ध विद्यापीठ बिना औद्योगिक बाह्य परिस्थितियों के वैसा ही है जैसे मछली पानी के बिना होती है। इसी प्रकार कोई भी उद्योग व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करने वाले संस्थानों के अभाव में प्रभावी ढंग से कार्य नहीं कर सकता।

उद्योगों और व्यावसायिक विद्यापीठों में गहन संबन्ध दोनों ही के विकास के लिये आवश्यक है। इस प्रकार दोनों एक दूसरे की स्थानीय, राष्ट्रीय एवम् अन्तर्राष्ट्रीय आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम होंगे। उद्योग एवं प्रबन्ध शिक्षा एवम् प्रशिक्षण प्रदान करने वाले संस्थानों के अंतर्सम्बन्धों को प्रबल बनाने के लिये निम्नांकित सुझाव महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकते हैं :

- औद्योगिक क्षेत्र के लोगों को व्यावसायिक विद्यापीठों के पाठ्यक्रम के निर्माण एवं नवीनीकरण में सम्मिलित करना चाहिए।
- उद्योग एवं व्यावसायिक विद्यापीठों के बीच सतत रूप से प्रशिक्षण कार्यक्रमों, औद्योगिक भेंटो (Industrial Visits) आदि के माध्यम से मानव संसाधनों का विनिमय होना चाहिए ताकि दोनों को एक दूसरे की कार्यप्रणाली इत्यादि का ज्ञान हो सके।
- औद्योगिक एवं व्यावसायिक संस्थान प्रबन्ध विद्यापीठों की अग्रलिखित रूप में सहायता कर सकते हैं :
- संसाधनों जैसे पाठ्य पुस्तकें एवं अन्य पठन सामग्री, शिक्षणात्मक एवं सूचनात्मक यंत्र जैसे ओवर हैड प्रोजेक्टर, स्लाइड प्रोजेक्टर इत्यादि के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करना।
- विद्यार्थियों एवं शिक्षकों को शोध परियोजनाओं एवं संयुक्त शोध परियोजनाओं के अवसर उपलब्ध कराके।
- विद्यार्थियों के लिये ग्रीष्मकालीन परियोजनाओं के अवसर प्रदान करके। इस प्रकार की परियोजनाओं के माध्यम से औद्योगिक संस्थान अपनी समस्याओं के समाधान के लिये व्यावसायिक विद्यापीठों के छात्रों की सहायता ले सकते हैं तथा व्यावसायिक विद्यापीठ अपने छात्रों को वास्तविक व्यावसायिक जीवन की घटनाओं से परिचित करा सकते हैं।
- व्यावसायिक विद्यापीठों के विद्यार्थियों का उनके प्रांगण में जाकर चयन करके।

यदि हम उद्योग और शिक्षा जगत के सम्बन्धों पर दृष्टि डालें तो पायेंगे कि यह संबंध नितांत आवश्यक, सतत्, गहन, तथा अटूट है। अगर यह कहा जाये कि यह संबंध दोनों की सफलता का सार है तो अतिशयोक्ति न होगी।

निष्कर्ष – अंत में यह कहा जा सकता है कि प्रबन्ध की व्यावसायिक शिक्षा का प्रारंभ औपचारिक रूप से सन् 1954 में हुआ। तदोपरांत प्रबन्ध शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार निरन्तर बढ़ता रहा। समय के साथ नये नये प्रबन्ध संस्थानों एवं विद्यापीठों की स्थापना हुई, उद्योग समाज एवं सरकार ने भी प्रबन्ध शिक्षा के विकास में अपना योगदान दिया। सन् 1990 के दशक में बड़ी तीव्र, गति से प्रबन्ध विद्यापीठों की स्थापना हुई जिनमें अधिकतर विद्यापीठ निजी क्षेत्र में थे। आजकल भी काफी प्रबन्ध विद्यापीठों की स्थापना हो रही है तथा निजी क्षेत्र इस दिशा में काफी बड़ी भूमिका निभा रहा है। प्रबन्ध शिक्षा का प्रभावशाली ढंग से विकास होने के बावजूद भारतीय प्रबन्ध शिक्षा प्रणाली में आज भी कई त्रुटियाँ हैं, जिनका पता लगातार उनमें सुधार करने की गहन आवश्यकता है। आने वाले वर्षों में वैश्विक व्यावसायिक शिक्षा एवं प्रशिक्षण की नितान्त आवश्यकता होगी क्योंकि विश्व की व्यावसायिक सीमाएँ समाप्त होने लगी हैं। वैश्विक व्यावसायिक शिक्षा एवं प्रशिक्षण के उत्थान के लिये यह नितान्त आवश्यक है कि विश्व के सभी व्यावसायिक विद्यापीठों में एक अटूट अन्तर्सम्बन्धों की स्थापना हो, वे एक ऐसा सार्वजनिक मंच स्थापित करें जहाँ वे नियमित रूप से मिलें तथा विचार विमर्श के द्वारा वैश्विक व्यावसायिक शिक्षा की समस्याओं पर प्रकाश डालें तथा उनके प्रभावी समाधानों को खोजें।

भारतीय प्रबन्ध एवं व्यावसायिक विद्यापीठों को इस दिशा में कड़े कदम उठाने होंगे तथा उन्हें अपनी भूमिका तथा लक्ष्यों को पुनर्परिभाषित करना होगा। उनकी उन्नति तथा उनकी सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि वे कितने प्रभावपूर्ण ढंग से उदारीकरण तथा वैश्वीकरण से जन्मी चनौती का सामना करते हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :–

1. मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल।
2. रिसर्च लिंक पत्रिका सितम्बर, अक्टूबर 1998
3. **www.wikipedia.com**
4. **www.google.com**

पूंजी निर्माण में बीमाकर्ताओं का योगदान

डॉ. संगीता भारूका * डॉ. रेणु मेहता सोनी **

प्रस्तावना – सम्पूर्ण मानव जीवन एवं वातावरण में अनिश्चितता एवं जोखिम तत्व व्याप्त है। इस अनिश्चितता एवं जोखिम से बचाव हेतु मानव ने अनेक माध्यमों की खोज की है। बीमा उन माध्यमों में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। बीमा के माध्यम से व्यक्ति अपनी जोखिमों एवं अनिश्चितता में कमी कर सकता है।

वास्तव में बीमा सहभागिता के विचार पर आधारित है जिसमें एक की हानि को सभी में विभाजित किया जाता है, जिसमें समान प्रकार की जोखिम से घिरे व्यक्ति (बीमित) को बीमाकर्ता को निर्धारित अंशदान देकर एक कोष का निर्माण कर लेते है। बीमाकर्ता इस कोष से बीमित को बीमा पत्र में उल्लेखित घटना के घटित होने पर या घटना से हानि होने पर एक पूर्व निर्धारित राशि चुका देता है।

इस प्रकार हम यह कह सकते है कि बीमाकर्ता के पास बीमित प्रीमियम जमा करते है और यह प्रीमियम एक विशाल कोष का रूप धारण कर लेती है। यह धन बीमाकर्ता के पास जनता की अमानत के रूप में जमा रहता है। चूंकि विविध बीमाओं में जीवन-बीमा की प्रकृति दीर्घकालीन होती है। अत: कोष की प्रकृति भी दीर्घकालीन होती है।

जीवन बीमाकर्ताओं के पास विनियोग हेतु कोष बीमित व्यक्तियों की धरोहर होता है। अत: बीमाकर्ताओं का यह कर्तव्य हो जाता है कि इस कोष का विनियोग अत्यंत कुशलता, बुद्धिमता एवं सतर्कता से ऐसी प्रतिभूतियों में करें जिससे सुरक्षा के साथ-साथ उचित प्रतिफल भी नियमित रूप से प्राप्त होता रहे।

विश्व के सभी देशों में जीवन बीमा कोषों को विनियोग करते समय सुरक्षा तत्वों को प्राथमिकता प्रदान की जाती है। बीमित व्यक्तियों को आकर्षक बोनस देकर लुभाने हेतु बीमा कंपनियाँ ऐसी प्रतिभूतियों में भी इन कोषों को विनियोग करती है जिनसे उन्हें अधिक आय प्राप्त होती है।कोषों को विनियोग करने की अनिवार्यता एवं आय प्राप्ति के उद्देश्य की पूर्ति के परिणामस्वरूप बीमा उद्योग पूंजी निर्माण में अहम भूमिका का निर्वाह करता है।

भारतीय जीवन बीमा निगम एवं निजी क्षेत्र की बीमा कंपनियाँ भारत में अत्यंत महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली विनियोक्ता है। इनके द्वारा नियंत्रित विशाल पूंजी का विनियोग देश की अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में किया गया है। एक बड़ी सीमा तक इन्होंने राष्ट्र के पूंजी बाजार को सफलतापूर्वक प्रभावित किया है। केन्द्र सरकार, राज्य सरकारें, अर्द्ध सरकारी संस्थाओं तथा औद्योगिक एवं व्यापारिक कंपनियों द्वारा निर्गमित पूंजी में जीवन बीमाकर्ताओं के द्वारा विशाल पैमाने पर अभिदान किया गया है।

जीवन बीमाकर्ताओं द्वारा किया गया कुल निवश – भारत में जीवन बीमा के क्षेत्र में सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र की कंपनियाँ सक्रिय है। सार्वजनिक क्षेत्र में भारतीय जीवन बीमा निगम एकमात्र बीमा कम्पनी है, जबकि निजी क्षेत्र में लगभग 23 कंपनियाँ कार्यरत है, जिनमें मेक्स न्यूयार्क, बजाज अलायंस, बिरला सनलाइफ, आईसीआईसीआई, कोटक महिन्द्रा प्रमुख है। ग्राहकों से प्राप्त प्रीमियम की राशि वृहद कोष का रूप धारण करती है जिसे जीवन बीमाकर्ताओं द्वारा निवश किया जाता है। तालिका क्रं.01 में निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र के बीमाकर्ताओं द्वारा किया गया कुल निवेश प्रदर्शित किया गया है।

तालिका क्रमांक 01 : पूंजी निर्माण में जीवन बीमाकर्ताओं का अंशदान

(करोड़ रू. में)

वर्ष	भा.जी.बी. निगम	निजी बीमाकर्ता	कुल निवेश
2001-02	2,45,387.72	1,480.84	2,46,868.56
2002-03	2,58,732.22	2,351.84	2,61,084.06
2003-04	3,47,959.14	4,665.38	9,52,624.80
2004-05	4,18,288.99	10,162.94	4,28,451.93
2005-06	4,63,771.14	23,379.55	4,87,150.69
2006-07	5,59,200.56	44,979.24	6,04,179.80
2007-08	6,78,403	87,567	7,65,969
2008-09	7,99,593	1,16,772	9,16,368
2009-10	9,92,331	2,20,127	12,12,458
2010-11	11,48,589	2,81,528	14,30,118
2011-12	12,69,070	3,12,188	15,81,259
2012-13	14,02,991	3,41,902	17,44,894
2013-14	15,74,296	3,83,169	19,57,466

स्रोत: वार्षिक प्रतिवेदन आयआरडीए - 2001-2014.

विविध क्षेत्रों में बीमाकर्ताओं का निवेश योगदान – यह स्पष्ट है कि बीमा उद्योग पूंजी निर्माण में अहम भूमिका का निर्वाह करता है। बीमा उद्योग को प्राप्त प्रीमियम को अनिवार्यत: निवेश करना होता है। यह निवेश मुख्यत: केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार, अन्य अनुमोदित प्रतिभुतियों में किया जाता है। यही निवेश राष्ट्र के लिए पूंजी का निर्माण करता है। उदारीकरण से यह अनुमान लगाया गया है कि अधिक रोजगार एवं आय से लोगों के पास बचत भी अधिक होगी। यहाँ बचत लोगों को बीमा कराने के लिए प्रोत्साहित करेगी। इस परिणाम यह होगा कि देश में पूंजी का निर्माण बढ़ेगा।

यह उल्लेखनीय है कि बीमा व्यवसाय से अपेक्षित पूंजी की सहायता से राष्ट्र में आधारभूत संरचना के विकास में मदद मिलती है। इससे सड़के, रेलमार्ग, जल, विद्युत, दूरसंचार, औद्योगिक बस्तियाँ, बाँध, नहरों आदि के निर्माण के लिए पूंजी उपलब्ध होती है। बीमाकर्ता को विनियमन के अनुसार

* सहायक प्राध्यापक (वाणिज्य) श्री क्लॉथ मार्केट कन्या महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत
** रीडर (वाणिज्य) एम.बी. खालसा महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत

विनियोग करना होता है। धारा 27 और 27-क में जीवन बीमा कारोबार से संबंधित निवेशों के बारे में वैधानिक नियम दिये हुए है। तद्नुसार पॉलिसी धारियों के वर्तमान एवं भावी दावों के प्रति दायित्व की जो धनराशि आंकी गई है। वह निम्नलिखित न्यूनतम सीमा तक अवश्य निवेशित रहना चाहिए। यहीं निवेशित राशि पूंजी निर्माण को सहयोग करती है।

1. 25 प्रतिशत सरकारी प्रतिभूतियों में।
2. 25 प्रतिशत सरकारी अथवा अनुमोदित प्रतिभूतियों में।
3. शेष धारा 27-क में वर्णित अनुमोदित निवेशों में।

वर्तमान निवेश अधिनियमों में यह स्पष्ट किया गया है कि केन्द्र एवं राज्य सरकार की प्रतिभुतियों में कुल निवेशित राशि सामाजिक क्षेत्र में 15 प्रतिशत से कम एवं बाजार प्रतिभूति में निवेश की भागीदारी 35 प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकती है।

इरडा के विनियमों के अनुसार समस्त जीवन बीमाकर्ताओं को अपनी कंपनी में एक निवेश समिति बनानी होती है। इस समिति में बीमा कंपनी के दो निदेशक, एक मुख्य अधिकारी, वित्त और निवश मण्डलों के प्रधान एवं बीमांकक का होना अनिवार्य है। यह समिति प्रत्येक वर्ष के लिए निवेश नीति का निर्माण करेगी। इस निरीक्षक निर्देशक बोर्ड का अनुमोदन लेने के पश्चात् उसी के अनुसार कंपनी द्वारा निवेश किये जायेंगे। समिति अपने निर्णयों का पूर्ण अभिलेख रखेगी। जिसका निरीक्षण इरडा के अधिकारी कर सकते है। तालिका क्रं. 02 में विविध क्षेत्रों में बीमाकर्ताओं का निवेश योगदान प्रदर्शित है।

सुझाव- बीमा कंपनियों के पास जमा धन जनता की धरोहर है, जिसकी सुरक्षा करना प्रन्यासी का सबसे प्रमुख कर्तव्य है। अत: इसका विनियोग करने में अधिकतम दक्षता का उपयोग किया जाना चाहिए। इस प्रकार के निगमों में धन का विनियोग करते समय सुरक्षा एवं लाभ दोनों तत्वों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। सुरक्षा के प्रति उदासीनता एक भयंकर भूल होगी तथा इससे जीवन बीमाकर्ताओं का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाएगा। लाभ के प्रति उदासीनता का परिणाम घातक होगा, क्योंकि पर्याप्त लाभ के अभाव में बीमाकर्ता बीमा पत्र धारकों को आकर्षक बोनस नहीं दे पाएगा, जिसका प्रभाव व्यवसाय पर अत्यन्त प्रतिकूल पड़ेगा। अत: विनियोग नीति में सुरक्षा एवं लाभ दोनों तत्वों का संतुलित सामंजस्य होना अत्यंत आवश्यक है। यह नीति जीवन बीमाकर्ताओं द्वारा भारत में पूंजी निर्माण में उनके योगदान को और अधिक सकारात्मक बनाएगा।

निष्कर्ष - सुरक्षा की दृष्टि से सरकारी एवं अर्द्ध सरकारी प्रतिभूतियाँ सर्वोत्तम हैं, किन्तु साथ ही यह भी सत्य है कि आय की दृष्टि से सरकारी एवं अर्द्ध सरकारी प्रतिभूतियाँ अपेक्षाकृत कम आकर्षक होती है। अत: बीमा कोषों का विनियोग करते समय एक तरफ सुरक्षा तथा दूसरी ओर उचित आय के दोनों परस्पर विरोधी तत्वों में सामंजस्य स्थापित करना कठिन हो जाता है। औद्योगिक रूप से विकसित देशों में गैर-सरकारी क्षेत्रों में ऐसी विशाल संस्थाऐं होती हैं जिनके द्वारा निर्गमित पूँजी में विनियोग करने से पूर्ण सुरक्षा के साथ-साथ आकर्षक आय की संभावनाएं प्राप्त हो जाती है, किन्तु भारत जैसे विकासशील देश में अभी ऐसी सुविधाओं का अभाव है। अत: भारत में जीवन बीमा कोषों के अधिकांश भाग का विनियोग सरकारी प्रतिभूतियों में ही किया जाता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. wwww.irdaindia.com
2. www.licindia.com
3. इन्श्योरेन्स क्रोनिकल - आई.सी.एफ.आई.
4. संतोष के चौधरी एवं किशोर कुलकर्णी - रोल ऑफ द लाइफ इन्श्योरेन्स कॉर्पोरेशन इन इकानॉमिक डेवलपमेन्ट ऑफ इंडिया, हिमालिया पब्लिशिंग हाउस
5. डॉ. आ.एल. नौलखा - बीमा के तत्व, रमेश बुक डिपो
6. बालचन्द्र श्रीवास्तव - बीमा के तत्व, साहित्य भवन पब्लिकेशन
7. जीवन बीमा वित्त - आई.सी. 26, भारतीय बीमा संस्थान का प्रकाशन

तालिका क्रमांक 02

(रू. करोड़)

निवेशों के पेटर्न	2009-10	2010-11	2011-12	2012-13	2013-14
(अ) पारंपरिक उत्पाद:					
1. केन्द्रीय सरकार की प्रतिभूतियाँ	361520	420952	468082	512180	604651
2. राज्य सरकारों और अन्यों की अनुपोदित प्रतिभूतियाँ	136998	173733	214515	265989	333951
3. आवास और इन्फ्रास्ट्रक्चर	72439	89181	97320	118878	155026
4. अनुमोदित निवेश	245987	304977	385107	456256	503059
5. अन्य निवेष	56592	42159	46262	49084	29118
अ. कुल (1+2+3+4+5)	**873536**	**1031002**	**1211287**	**1402387**	**1625804**
(ब) युलिप निधियां					
1. अनुमोदित निवेश	293114	371899	346340	325283	322456
2. अन्य निवेश	38505	27217	23632	17224	9203
ब. कुल (6+7)	**331619**	**399116**	**369972**	**342507**	**331661**
कुल योग	**1205155**	**1430118**	**1581259**	**1744894**	**1957466**

स्रोत: वार्षिक प्रतिवेदन आयआरडीए 2009-10, 2010-11, 2011-12, 2012-13 एवं 2013-14.

****

मध्यप्रदेश राज्य सहकारी अनुसूचित जाति वित्त एवं विकास निगम 'मर्यादित' द्वारा संचालित 'अन्त्योदय स्वरोजगार योजना' का विस्तृत अध्ययन

डॉ. सोनिया चंदानी * डॉ. कविता चंदानी **

शोध सारांश – 'मध्यप्रदेश राज्य सहकारी अनुसूचित जाति वित्त एवं विकास निगम 'मर्यादित' द्वारा संचालित 'अन्त्योदय स्वरोजगार योजना' का विस्तृत अध्ययन' के अंतर्गत अनुसूचित जाति के गरीबी रेखा के नीचे जीवन व्यतीत करने वाले लोगों को रोजगार देने हेतु 'अन्त्योदयस्वरोजगार योजना' 1976 से संचालित की जा रही है। प्रस्तुत शोध–पत्र में योजना की सम्पूर्ण जानकारी, योजना के प्रकाशित प्रथम समंकोंसहित, समस्याएं, सुझाव एवं योजना की प्रगति की जानकारी प्रस्तुत की गई है।

शब्द कुंजी – मध्यप्रदेश सरकार, अनुसूचित जाति, मध्यप्रदेश राज्य सहकारी अनुसचित जाति वित्त एवं विकास निगम मर्यादित, अन्त्योदयस्वरोजगार योजना, अनुदान, आर्थिक उत्थान, प्रकाशित समंक, प्रशिक्षण, राजस्व अधिकारी का प्रमाण–पत्र आदि।

प्रस्तावना – अनुसूचित जाति के सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक विकास की दिशा में मध्यप्रदेश सरकार द्वारा म.प्र. राज्य सहकारी अनुसूचित जाति वित्त एवं विकास निगम मर्यादित भोपाल की स्थापना 1989 में की गई। इसका पंजीयन मध्यप्रदेश सहकारी समितियाँ अधिनियम, 1960 के अंतर्गत किया गया। राज्य में अनुसूचित जाति वर्ग के गरीबी रेखा के नीचे जीवन–यापन कर रहे लोगों को स्व–रोजगार प्रदान करने के लिए सन् 1976 में अन्त्योदय स्वरोजगार, योजना प्रारंभ की गई। इस योजना का उद्देश्य अनुसूचित जाति के लोगों का आर्थिक उत्थान करना है। योजना मुख्य रूप से अनुसूचित जाति वर्ग के लिए ही संचालित की जा रही है।

योजना का उद्देश्य– योजना का मुख्य उद्देश्य अनुसूचित जाति के गरीबी रेखा के नीचे जीवन–यापन कर रहे आवेदकों को स्वरोजगार के माध्यम से आर्थिक विकास करना है। इसमें कृषि, लघु–सिंचाई, उद्यान, डेयरी, ग्रामीण एवं कुटीर उद्योग, व्यापारिक क्रियाएँ परिवहन व्यापार, लघु व्यापार इत्यादि योजनाएँ आवृत्त की जाती है।

योजना का स्वरूप– योजना के अंतर्गत बेरोजगारों को कृषि, लघु कुटीर उद्योग, पशुपालन एवं फुटकर व्यापार के लिए बैंकों से ऋण उपलब्ध कराना एवं स्वीकृत ऋण का 50 प्रतिशत या अधिकतम रूपये 10,000/– अनुदान जो कम हो, निगम द्वारा दिया जाता है।

पात्रता की शर्तें – योजना के अंतर्गत लाभ उठाने हेतु पात्रता की आवश्यक शर्तें निम्न है –

- वह अनुसूचित जाति का हो।
- हितग्राही जिले का मूल निवासी हो।
- गरीबीरेखा के नीचे जीवन–यापन करने का राजस्व अधिकारी का प्रमाण–पत्र होना चाहिए।
- जाति प्रमाण–पत्र प्रस्तुत करना आवश्यक है।
- हितग्राही ने पूर्व में कहीं से ऋण न लिया हो,इसका शपथ–पत्र प्रस्तुत करना होता है
- उसकी आयु 18 से 45 वर्ष हो।

वार्षिक आय – हितग्राही की वार्षिक आय ग्रामीण क्षेत्र में रूपये 15,976 एवं शहरी क्षेत्र में रूपये 21,206/– से अधिक न हो, के संबंध में राजस्व अधिकारी का प्रमाण–पत्र देना आवश्यक है।

चयन प्रक्रिया – योजना के अंतर्गत आवेदक का चयन जिला स्तर पर गठित चयन समिति द्वारा किया जाता है। चयनित हितग्राहियों को ही पात्रतानुसार बैंकों के माध्यम से ऋण सहायता उपलब्ध कराने की कार्यवाही की जाती है।

शोध प्रविधि –प्रस्तुत शोध अध्ययन पारम्परिक अध्ययन पद्धति पर आधारित है। इस अध्ययन हेतु अनुसंधान एवं विश्लेषण की ऐतिहासिक पद्धति का प्रयोग किया गया है। यह शोध अध्ययन प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों समंकों पर आधारित है। प्राथमिक समंकों का एकत्रीकरण अनुसूचित जाति के लोगों जिन्हें मध्यप्रदेश सरकार द्वारा आर्थिक सहायता प्रदान की गई है, उनसे प्रश्नावली तथा साक्षात्कार अनुसूची द्वारा किया गया। इन अनुसूचित जाति के लोगों का चयन निदर्शन की देव निदर्शन प्रणाली द्वारा किया गया। पिछले 5 वर्षो में निगम द्वारा कुल जितने लोगों को ऋण द्वारा आर्थिक सहायता प्रदान की गई है, उसमें से विभिन्न योजनाओं के हितग्राहियों में से 200 निदर्शनों को देव निदर्शन प्रणाली द्वारा चुना गया। यह चुनाव आकस्मिक आधार पर किया गया। कुछ प्राथमिक समंकों का संकलन निगम कार्यालय के प्रबंधक, अधिकारियों, महत्वपूर्ण व्यक्तियों से साक्षात्कार द्वारा प्राप्त किया गया।

योजना की कुल औसत वृद्धि दर 2.92: है। जिससे उन्हें स्वरोजगार में सफलता मिली है। असाक्षरता के कारण ये लोग दूसरों पर योजना का लाभ उठाने हेतु निर्भर होते है और इन्हें योजनाओं की संपूर्ण जानकारी भी नहीं होती। इनका शैक्षणिक स्तर सुधारकर, योजनाओं की जानकारी कल्याणकारी कार्यक्रमों के माध्यम से जरुरतमंद लोगों तक पहुँचाकर लाभान्वित किया जा सकता है जिससे हितग्राहियों की संख्या में वृद्धि के प्रयास किये जा सके।

* सहायक प्राध्यापक, एम.के.एच.एस.गुजराती कन्या महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत
** सहायक प्राध्यापक, एम.के.एच.एस.गुजराती कन्या महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत

योजनाओं के ज्ञान की दृष्टि से बाधक तत्व – राज्य सरकार ने अनुसूचित जाति वर्ग के लोगों के शैक्षिक, बौद्धिक व आर्थिक विकास के लिए अनेक योजनाएँ लागू की है। साथ ही इस वर्ग के कल्याण के लिए भी विभिन्न योजनाएँ संचालित हैं परंतु सर्वेक्षण में पाया गया कि अनुसूचित जाति के व्यक्ति प्राय: जानकारी के अभाव में योजनाओं का लाभ नहीं ले पाते हैं। योजनाओं के ज्ञान की दृष्टि से आने वाले कठिनाईयाँ एवं प्रयास निम्न प्रकार हैं –

मध्यप्रदेश में शासकीय सेवक यदि समाजसेवी के रूप में अपनी भूमिका अदा करें तो कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के बेहतर परिणाम मिल सकते हैं। गाँव–गाँव तक कल्याणकारी कार्यक्रमों की जानकारी पहुँचाकर जरूरतमंद लोगों को लाभान्वित किया जा सकता है। अनुसूचित जाति के लोगों की बेहतरी के लिए गैर शासकीय संगठनों का भी और अधिक सहयोग लेने की आवश्यकता है। कई बार यह भी देखा गया कि योजना की जानकारी होने पर भी आवेदन करने का स्थान ज्ञात नहीं होता है। योजनाओं में अनिवार्य प्रशिक्षण देने के बाद स्थाई ऋण स्वीकृति दी जाना उचित होगा, जिससे वह प्रमाण–पत्र लेकर भटकता न रहे। ऋण स्वीकृति के बाद नियमानुसार ऋण वितरित करने का प्रयास किया जाना चाहिए, जिससे योजना का लक्ष्य पूरा हो सके। शासन से आशा की जाती है कि अनुसूचित जाति हेतु संचालित योजनाओं की जानकारी इस वर्ग को इस तरह पहुँचायी जाये कि प्रत्येक हितग्राही उसे बिना किसी मदद के समझ सके।

योजनाओं की प्रक्रिया को आवश्यकतानुसार संक्षिप्त एवं आसान किया जाना चाहिए ताकि अनुसूचित जाति वर्ग के लोग इस योजना की ओर आकर्षित हो सके। इस दृष्टि से प्रक्रिया का आधुनिकीकरण किया जा सकता है। हितग्राहियों ने बताया है कि संस्था के कर्मचारियों द्वारा दस्तावेजों की अधूरी जानकारी उपलब्ध कराई जाती है। साथ ही कर्मचारी कार्य के प्रति लापरवाह एवं उदासीन भी पाये गये। अत: औपचारिकतायें पूरी नहीं होने की वजह से ये वर्ग योजना का लाभ उठाने से वंचित हो जाते है। संस्था के कर्मचारियों द्वारा दस्तावेजों की स्पष्ट जानकारी दी जाना चाहिए। कर्मचारियों द्वारा योजना का क्रियान्वयन पूर्ण ईमानदारी एवं प्रभावी रुप से किया जाये, इस दिशा में प्रयास किये जाना चाहिये। शासन द्वारा संस्था के कर्मचारियों की गतिविधियों पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है।

अनुसूचित जाति द्वारा संचालित योजनाओं का अनेकानेक क्षेत्रों में विकास हेतु उचित तरीके से क्रियान्वयन न होने से योजना का पूर्ण लाभ नहीं उठा पाते। इसलिए क्रियान्वयन ठीक होना चाहिये। मध्यस्थों द्वारा अनुसूचित जाति वर्ग की अज्ञानता व मासूमियता का गलत फायदा उठाकर इन लोगों के नाम से ऋण लेकर ऋण का दुरूपयोग किया जाता है। जिससे यह वर्ग योजना का लाभ नहीं ले पाते और लाभ कोई और उठा लेता है। अनुसूचित जाति वर्ग व संस्थाओं के बीच से मध्यस्थों को हटाया जाना चाहिये ताकि योजनाओं का लाभ इन्हीं लोगों को मिल सके।

कई जगह स्वयं अनुसूचित जाति वर्ग द्वारा भी आर्थिक मजबूरी के तहत योजना के अंतर्गत लिये गये ऋण का दुरुपयोग करते पाया गया है। शासकीय योजनाओं में ऋण का दुरूपयोग तथा धोखाधड़ी करने वाले हितग्राहियों के विरूद्ध पुलिस थानों में एफ.आई.आर. दर्ज करवाकर कड़ी से कड़ी कार्यवाही की जाना चाहिए ताकि एक तो दोषी को सजा मिल सके, दूसरा अन्य हितग्राहियों को सबक मिल सके। इससे एक ओर तो ऋण के दुरूपयोग में कमी होगी तथा दूसरी ओर हितग्राहियों में गलत मंशा से ऋण प्राप्त करने की प्रवृत्ति पर अंकुश लगेगा।

योजना की एक समस्या अनुसूचित जाति का विकास हेतु जागरूक न होना है और असाक्षरता के कारण दूसरों पर योजना का लाभ उठाने हेतु निर्भर होना है। अनुसूचित जाति के लोगों को भी शैक्षणिक, आर्थिक एवं सामाजिक विकास हेतु जागरुक होना होगा। जिससे वे समाज के अन्य वर्गो के समकक्ष खड़े रह सकते है। अत: इन कठिनाईयों को दूर करने की दिशा में सार्थक प्रयास किया जाना आवश्यक है।

- सरकार द्वारा लागू अन्त्योदय स्वरोजगार योजनाओं की जानकारी इन लोगों तक पहुँचाने का पूर्ण प्रयास नहीं किया जाता, जिससे ये लोग योजना का लाभ नहीं उठा पाते हैं। अत: योजनाओं का व्यापक प्रचार–प्रसार इस संबंध में महत्वपूर्ण है, जिससे हितग्राहियों की संख्या में वृद्धि के प्रयास किये जा सके।
- कई बार यह भी देखा गया कि योजना की जानकारी होने पर भी आवेदन करने का स्थान ज्ञात नहीं होता है। योजनाओं में अनिवार्य प्रशिक्षण देने के बाद स्थाई ऋण स्वीकृति दी जाना उचित होगा, जिससे वह प्रमाण–पत्र लेकर भटकता न रहे। ऋण स्वीकृति के बाद नियमानुसार ऋण वितरित करने का प्रयास किया जाना चाहिए, जिससे योजना का लक्ष्य पूरा हो सके।
- शासन से आशा की जाती है कि अनुसूचित जाति हेतु संचालित अन्त्योदय स्वरोजगार योजनाओं की जानकारी इस वर्ग को इस तरह पहुँचायी जाये कि प्रत्येक हितग्राही उसे बिना किसी मदद के समझ सके।
- योजनाओं की प्रक्रिया को आवश्यकतानुसार संक्षिप्त एवं आसान किया जाना चाहिए ताकि अनुसूचित जाति वर्ग के लोग इन योजनाओं की ओर आकर्षित हो सके। इस दृष्टि से प्रक्रिया का आधुनिकीकरण किया जा सकता है।
- कई बार योजना संबंधी प्रक्रिया एक बार में पूर्ण नहीं करवाई जाती, जिससे उन्हें बार–बार कार्यालय के चक्कर लगाने पड़ते है। इन समस्याओं की वजह से हितग्राही द्वारा योजना को बीच में ही छोड़ दिया जाता है। योजना संबंधी समस्त औपचारिकताओं को एक बार में पूर्ण करने का प्रयास किया जाना चाहिये, ताकि आशानुरुप सफलता मिल सके।

संस्था के कर्मचारियों द्वारा दस्तावेजों की अधूरी जानकारी उपलब्ध कराई जाती है। साथ ही कर्मचारी कार्य के प्रति लापरवाह एवं उदासीन भी पाये गये। अत: औपचारिकतायें पूरी नहीं होने की वजह से ये वर्ग योजना का लाभ उठाने से वंचित हो जाते है। संस्था के कर्मचारियों द्वारा दस्तावेजों की स्पष्ट जानकारी दी जाना चाहिए। कर्मचारियों द्वारा योजना का क्रियान्वयन पूर्ण ईमानदारी एवं प्रभावी रुप से किया जाये, इस दिशा में प्रयास किये जाना चाहिये। शासन द्वारा संस्था के कर्मचारियों की गतिविधियों पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है।

उपसंहार – अनुसूचित जातियों में व्याप्त निरक्षरता, आर्थिक पिछड़ापन, रहन–सहन की कमजोर स्थिति एवं अस्पृश्यता जैसी समस्योओं के निवारण हेतु राज्य शासन द्वारा अन्त्योदय स्वरोजगार योजना के माध्यम से इनके जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के लिए सतत् प्रयास किए जा रहे हैं। योजना के अध्ययन के बाद कहा जा सकता है कि योजना में जो लक्ष्य निर्धारित किए गए हैं, वे बहुत कम और जो लक्ष्य अभी तक प्राप्त किए जा चुके हैं वे इस वर्ग के नगण्य साबित हुए हैं। अर्थात् कुछ विकास हुआ है और कुछ आर्थिक विकास की आवश्यकता महसूस होती है। साथ ही शासन से आशा की जाती है कि वे ऋण प्रक्रिया को आसान और नियमों को थोड़ा लचीला रखें। म.प्र. सरकार द्वारा बनाई गई अन्त्योदय स्वरोजगार योजना को सही तरीके

से क्रियान्वित किया जाए तो बेहतर परिणाम मिल सकते है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

पुस्तकें, पत्र–पत्रिकाएँ एवं वार्षिक रिपोर्ट एवं समाचार पत्र इत्यादि –

1. प्रकाश की ओर – पत्रिका–आयुक्त आदिवासी विकास, मध्यप्रदेश में आदिवासी शिक्षा (दिसम्बर 2001) मध्यप्रदेश शासन।
2. आदिवासी विकास की कारगर पहल – पत्रिका–आदिम जाति कल्याण संचालनालय, मध्यप्रदेश, भोपाल।
3. मध्यप्रदेश संदर्भ – पत्रिका–दैनिक नईदुनिया 2007–08
4. मनोरमा इयर बुक 2007–08 – पत्रिका–समकालीन भारत में दलित चेतना लेखक–चन्द्रभान प्रसाद
5. मध्यप्रदश सामान्य ज्ञान 2008 – उपकार प्रकाशन, आगरा
6. मध्यप्रदेश सामान्य ज्ञान, 2009 – आनन्द पब्लिशर्स
7. जागरण वार्षिकी – भारत दर्शन लेख
8. मनोरमा इयर बुक 2008 – पत्रिका
9. Rural Employment Generation Programme of KVIC-Margin Money Scheme – Printed & Published by Khadi and Village Industries Commission, Mumbai
10. स्वर्ण जयंती शहरी रोजगार योजना मार्गदर्शिका वर्ष 2009 नगरीय कल्याण संचालनालय मध्यप्रदेश, भोपाल
11. आदिम जाति, अनुसूचित जाति एवं पिछड़ा वर्ग कल्याण विभाग की योजनाओं का संक्षिप्त परिचय–वर्ष 2008, मध्यप्रदेश शासन, आदिम जाति, अनुसूचित जाति एवं पिछड़ा वर्ग कल्याण विभाग
12. मध्यप्रदेश का आर्थिक सर्वेक्षण वर्ष 2012–13 –आर्थिक एवं सांख्यिकी संचालनालय, मध्यप्रदेश
13. मध्यप्रदेश में आदिवासी विकास के पाँच दशक – अक्टूबर 2008 मध्यप्रदेश शासन, आदिम जाति एवं अनुसूचि जाति कल्याण विभाग
14. बदलाव की ओर 2004 मई (म.प्र. में आदिम जाति एवं अनुसूचित जाति कल्याण) म.प्र. शासन, आदिम जाति, अनुसूचित जाति एवं पिछड़ा वर्ग कल्याण विभाग
15. आदिम जाति अनुसूचित जाति तथा पिछड़ा वर्ग कल्याण विभाग के कार्यकलापों की समीक्षा–रिपोर्ट संभाग स्तरीय बैठक वर्ष 1995 भाग–एक।
16. मार्गदर्शिका–आर्थिक विकास योजनाएँ–म.प्र. राज्य अनुसूचित जाति वित्त एवं विकास निगम मर्यादित, भोपाल।
17. Master Circular - Reserve Bank of India.
18. प्रगति के नए सोपान–2004

आँकड़ों एवं सूचनाओं का संग्रहण (रिपोर्ट) –

1. जिला शहरी विकास अभिकरण कार्यालय, कलेक्टोरेट, इन्दौर
2. कार्यालय जिला अंत्यावासी सहकारी विकास समिति मर्यादित कलेक्टोरेट, इन्दौर
3. आदिवासी वित्त एवं विकास निगम, इन्दौर
4. आदिवासी विकास प्राधिकरण, इन्दौर
5. जिला सांख्यिकीय विभाग, कलेक्टोरेट, इन्दौर
6. आर्थिक एवं सांख्यिकी संचालनालय, मध्यप्रदेश
7. नगरीय प्रशासन एवं विकास संचालनालय, भोपाल (मध्यप्रदेश)
8. मुख्यालय अंत्यावसायी सहकारी विकास समिति मर्यादित कलेक्टोरेट, भोपाल
9. मध्यप्रदेश का सांख्यिकी संक्षेप–वर्ष 2008

****

पूर्व निमाड़ में रंगीन कपास के उत्पादन एवं विपणन की सम्भावनाएँ–एक अध्ययन

डॉ. दिपेश आर उपाध्याय *

प्रस्तावना – पूरी दुनिया में जनसंख्या के बल पर दम भरने वाला भारत आज कृषि की दृष्टि से विश्व में अपनी एक विशिष्ट पहचान रखता हैं। अन्तर्राष्ट्रीय मानचित्र में भारत को महत्वपूर्ण स्थान दिलाने में वाणिज्यिक फसलों का उल्लेखनीय स्थान है। जैसा की हम जानते हैं कि भारत एक कृषि प्रधान देश हैं और इस देश में जलवायु की विभिन्नता के कारण विभिन्न ऋतुओं में कई फसलें उगाई जाती हैं। जिसमें कपास अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखता हैं।

विश्व में किसी भी कृषि उपज ने मनुष्य के जीवन पर इतना अधिक प्रभाव नहीं डाला जितना कपास ने अज्ञात अतीतकाल में मानव जीवन पर प्रभाव डाला हैं, और आज भी यह रेशा अपना महत्व बनाये हुए हैं। कपास की फसल व्यवसायिक एवं नगद फसल हैं। इसी प्रकार अन्य कई नगद फसले ऐसी हैं जिनकी कपास के साथ सीधी प्रतिस्पर्धा रहती हैं। इसके बावजुद भारत में कुछ क्षेत्र ऐसे हैं, जहाँ कपास अधिक मात्रा में उगाई जाती हैं। वर्तमान समय में कपास की एक आकर्षक एवं अदभुत प्रजाति सफलता की कगार पर खड़ी हैं और वह हैं रंगीन कपास **'रंगीन कपास....!'** जी हा रंगीन कपास जिसमें कुदरत के रंग होते है, प्राकृतिक वर्णी कपास कुदरत का अनोखा चमत्कार हैं जो मानव सभ्यता को उपहार के रूप में प्राप्त हुआ हैं। प्रकृति में अज्ञात अतितकाल से ही सफेद कपास के साथ–साथ अन्य रंगो में रंगीन कपास भी उपलब्ध रहा जिसकी खेती दक्षिण अमेरिका, पूर्व एशिया और अफ्रिका में 2300 ई पू में होती थी।

पूर्व निमाड़ स्थित जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय के कपास अनुसंधान केन्द्र के कृषि वैज्ञानिकों द्वारा कड़ी मेहनत कर वर्ष 1995 में रंगीन कपास की किस्म K.C.-94-2 का उत्पादन करने में सफलता प्राप्त की यह एक बादामी रंग का रंगीन कपास था। 1 नवम्बर 1995 को दिल्ली में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय कृषि मेला एग्रो एक्सपो में मध्यप्रदेश की तात्कालिन कृषि सचिव द्वारा रंगीन कपास की खोज किये जाने की अधिकृत धोषणा करते हुए इससे बने कपड़े का प्रदर्शन किया था तब यह माना गया था की जल्द ही पूरी दुनिया में रंगीन कपास की खेती शुरू हो जाएगी , अफसोस जनक तथ्य यह हैं की रंगीन कपास की खेती किये जाने की अनुमति भारतीय कृषि अनुसंधान परिसद द्वारा इस तर्क के साथ नहीं दी गई की सफेद कपास की अन्य प्रजातियो से इसके फर्टिलाइजेशन (कन्टेमीनेशन) का खतरा हैं। कृषि वैज्ञानिक डॉ के सी मण्डलोई ने अपनी टीम के साथ रंगीन कपास की खोज की थी रंगीन कपास की रेसिंग गुणवत्ता सिरकाट लैब , मुम्बई द्वारा सफेद कपास से भी अच्छी बताये जाने के कारण निजी कंपनियों ने अधिक रूचि दिखाई थी, परंतु भारत सरकार द्वारा रंगीन कपास के व्यावसायिक उत्पादन को अनुमति नहीं देने से रंगीन कपास का व्यावसायिक उत्पादन प्रारंभ करने में अति विलम्ब का सामना करना पड़ रहा हैं।

प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से रंगीन कपास की प्राचीन एवं वर्तमान अवस्था का अध्ययन कर पूर्व निमाड़ में रंगीन कपास के उत्पादन एवं विपणन की संभावनाओं का वास्तविक चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास किया हैं ताकि रंगीन कपास के विकास कार्यक्रम में तेजी लाई जा सके ।

परिकल्पना –

1. पूर्व निमाड़ में रंगीन कपास के उत्पादन की अपार संभावनाऍं हैं।
2. रंगीन कपास के विविध उपयोगो को देखते हुए पूर्व निमाड़ में इसके विपणन की अनेक संभावनाएं हैं।

अध्ययन के उद्देश्य –

1. प्रस्तुत शोध पत्र के अध्ययन का प्रथम उद्देश्य सर्वेक्षण के माध्यम से अनछुए विषय का गहन अध्ययन कर पूर्व निमाड़ में रंगीन कपास के उत्पादन की सम्भावनाओं का अध्ययन करना हैं ।
2. रंगीन कपास की विपणन प्रणाली में क्या–क्या समस्यायें हैं एवं इन समस्याओं को किस प्रकार दूर किया जा सकता हैं, ताकि किसान रंगीन कपास का उत्पादन अधिक से अधिक मात्रा में कर सकें।
3. पर्यावरण स्नेही, रंगीन कपास को अपनाने मे किसानो का रूचि कम क्यों हैं ? आज विपणन की अपार संभावनाओं के होते हुए भी किसान इसके उत्पादन को लेकर मौन हैं। क्यों ?

अध्ययन का क्षेत्र – संपूर्ण भारत में म. प्र. का पूर्व निमाड़ मात्र एक ऐसा क्षेत्र हैं जहॉ सर्वप्रथम वस्त्र निर्माण योग्य रंगीन कपास की संकर किस्म का विकास कर सफल उत्पादन किया गया , साथ ही किस्म सुधार पर कई शोध कार्य भी इसी क्षेत्र में हुए किंतु विपणन के क्षेत्र में इस सम्बन्ध का यह पहला शोध हैं।

म. प्र. में रंगीन कपास की गुणवत्ता पर कई शोध कार्य पूर्व निमाड़ में स्थित जिला खण्डवा के पं जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय के जसवाड़ी स्थित कपास अनुसंधान केन्द्र में किया गया हैं। पूर्व निमाड़ जिला खण्डवा तथा बुरहानपुर में 1057 ग्राम आते है एवं यहाँ कि 60% से 70% जनसंख्या कृषि पर आधारित है। यहाँ लगभग 94,619 हेक्टेयर भूमि पर कपास का उत्पादन किया जाता है जो कुल कृषि योग्य भूमि का लगभग 30% भाग है।

रंगीन कपास की खेती के लिये ऐसी भूमि की आवश्यकता होती है जिसमें अधिक समय तक नमी रह सके तथा अच्छे उत्पादन के लिये 20 डिग्री से 30 डिग्री तक तापमान एवं 50 से 60 से मी तक की वर्षा उपयुक्त मानी जाती हैं साथ ही फसल पकने पर खुली धूप की आवश्यकता होती है। उपरोक्त जलवायु संबंधी सभी आवश्यकता पूर्व निमाड़ में विद्यमान है। तथा यहाँ की भौगौलिक संरचना भी रंगीन कपास के उत्पादन के अनुकूल है।

कपास के विपणन के लिये पूर्व निमाड़ में सुव्यवस्थित विपणन प्रणाली उपलब्ध है। तथा कपास के विपणन हेतु 3 नियमित मण्डियाँ तथा 2

*प्राचार्य, किशोरीलाल वर्मा मेमोरियल कॉलेज, पंधाना, जिला–खण्डवा (म.प्र.) भारत

उपमण्डियाँ उपलब्ध है जहाँ पूर्व निमाड़ में उत्पादित कपास का क्रय विक्रय सुव्यवस्थित रूप से हो रहा है। उपरोक्त सभी बातों को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत शोध पत्र के अध्ययन का क्षेत्र पूर्व निमाड़ रखा गया है।

शोध विधि – किसी भी विषय की अनुसंधान विधि अपेक्षित लक्ष्य की पूर्ति करने में सहायक होती है। चूँकि अनुसंधान किसी भी एक पद्धति को अपनाकर नहीं किया जा सकता है। अर्थात सिर्फ एक पद्धति के द्वारा विभिन्न तथ्यो का संकलन असंभव है। अत: प्रस्तुत शोध पत्र में अनुसंधान की विभिन्न पद्धतियों का यथा स्थान पर प्रयोग किया है। किसी भी अनुसंधान कार्य में समंको का संग्रहण प्रथम एवं महत्वपूर्ण चरण है। अनुसंधान के विशाल भवन का निर्माण संकलित समंको की नींव पर होता है उपरोक्त सभी बातो को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत अनुसंधान कार्य में प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनो प्रकार के समंको का प्रयोग समय–समय पर यथा स्थान पर किया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन में प्राथमिक समंको के रूप में पूर्व निमाड़ के उन किसानो से जिन्होने रंगीन कपास का उत्पादन किया है। प्रत्यक्ष साक्षात्कार विधि द्वारा विस्तृत जानकारी प्राप्त का विषय का गहन अध्ययन किया गया है। इसी क्रम में पूर्व निमाड़ जिला खण्डवा में स्थित पं जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय के जसवाड़ी स्थित कपास अनुसंधान केन्द के कृषि वैज्ञानिको से भी प्रत्यक्ष साक्षात्कार विधि द्वारा रंगीन कपास पर किये गये अनुसंधान कार्यो के संबंध मे जानकारी प्राप्त कर प्रस्तुत की गई हैं।

रंगीन कपास के व्यावसायिक उत्पादन पर किसी प्रकार का शोध नही हुआ है, इसकी व्यवसायिक सम्भावनाओं को ज्ञात करने के लिए कपास मण्डी खण्डवा एवं भारतिय कपास निगम से द्वितीयक समंको का संगृहण किया गया जिससे विपणन की संभावना का आंकलन करना संभव हो सका।

निष्कर्ष एवं सुझाव – प्रस्तुत शोध पत्र के क्षेत्र पूर्व निमाड़ का विस्तृत अध्ययन रंगीन कपास के व्यवसायिक उत्पादन की सम्भावनाओं को ज्ञात करने के उद्देश्य से किया गया पूर्व निमाड के प्राकृतिक एवं सामाजिक परिवेश के संबंध में प्राप्त जानकारी के अनुसार यहा का प्राकृतिक परिवेष एवं भौगौलिक परिस्थितियाँ रंगीन कपास उत्पादन के अनुकुल है। उत्तर में नर्मदा की घाटी , दक्षिण में ताप्ति की घाटी और इन दोनो घाटियों को अलग करती पूर्व पष्चिम में फैली हुई सतपुड़ा की पहाड़ियाँ स्थित है भारत के मानचित्र में देखा जाये तो पूर्व निमाड़ की स्थिति 21^0 05 एवं 22^0 25 अंश उत्तरी अक्षांश तथा 75^0 57 एवं 77^0 13 अंश पूर्वी देशांतर के बीच स्थित है यह क्षेत्र समुद्र सतह से अधिकतम 905 56 मीटर और न्युनतम 180 मीटर ऊचाई पर स्थित है पूर्व निमाड़ की भौगौलिक संरचना एवं प्राकृतिक परिवेश का विस्तारपूर्वक अध्ययन करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकलता है कि यह क्षेत्र पूर्ण रूप से कपास के व्यवसायिक उत्पादन के अनुकुल है।

रंगीन कपास की खेती के लिए भूमि में लगातार नमी रहनी चाहिए परंतु अत्यधिक नमी या उसके अभाव का फसल पर बुरा प्रभाव पड़ता है। कपास के पौधे के अंकुर फुटने के लिए 200 सेंटीग्रेट तापमान मिलना चाहिए तथा पौधे के विकास के समय 20^0–30^0 सेंटीग्रेट तापमान और फल लगने एवं फसल पकने के समय 30^0–35^0 सेंटीग्रेट तापमान एवं ठडी रातें होना चाहिये। जहा तक वर्षा का संबंध हैं तो रंगीन कपास के लिए 60 से. मी. से 120 से. मी . की औसत वार्षिक वर्षा आवश्यक है।

रंगीन कपास के उत्पादन संबंधि अनुकुलताओं का अध्ययन करने के पश्चात् प्राप्त परिणामों के अधार पर कहाँ जा सकता हैं कि पूर्व निमाड़ में रंगीन कपास के उत्पादन की जलवायु संबंधी सभी अनुकुलताए विद्यमान है। पूर्व निमाड का अधिकत्म औसत तापमान 35^0 सेंटीग्रेट हैं। तथा औसत न्यूनतम तापमान 11^0 सेंटीग्रेट के लगभग रहता हैं तथा यहा कि वार्षिक औसत वर्षा 80 से. मी. के लगभग रहती है जो रंगीन कपास की खेती के लिए उपर्युक्त है अर्थात गहन अध्ययन के पश्चात् हम कह सकते है कि पूर्व निमाड़ में रंगीन कपास के उत्पादन की अपार संभावनाएँ हैं। अत: प्रस्तुत शोध पत्र की पहली परिकल्पना **'पूर्व निमाड़ में रंगीन कपास के उत्पादन की अपार संभावनाएँ हैं।'** पूर्णत: स्वीकृत होती है।

पूर्व निमाड़ में परंपरागत सफेद कपास के विपणन का कार्य पूर्ण रूप से विकसित एवं सफल विपणन प्रणाली द्वारा सम्पन्न किया जाता है जिसके लिए पूर्व निमाड़ में 3 कपास मण्डियाँ उपलब्ध है अर्थात् इस आधार पर हम यह निष्कर्ष निकाल सकते है कि अगर पूर्व निमाड़ में रंगीन कपास का उत्पादन प्रारंभ होता है तो इसके विपणन के लिए कोई विपणन प्रणाली का निर्माण नहीं करना होगा और नहीं किसी कपास मण्डी की स्थापना करनी होगी। इस प्रकार कपास विपणन प्रणाली उपलब्ध बाजार तथा रंगीन कपास की उपयोगिता का अध्ययन करने के पश्चात् निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि रंगीन कपास के विपणन की अनेक संभावनाएँ है अर्थात प्रस्तुत शोध पत्र की दूसरी परिकल्पना **'रंगीन कपास के विविध उपयोगो को देखते हुए पूर्व निमाड़ में इसके विपणन की अनेक संभावनाएं हैं।'** पूर्णत: स्वीकृत है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. Naturally Color Cotton – P.No. 397
2. J.India Soc. Cotton, Improve –Sept. 1996- P.No. 188
3. के जे एजुकेशन सोसायटी भोपाल द्वारा प्रकाशित – कपास–पेज न 5
4. कृषि भास्कर जनवरी 2008
5. सामाजिक अनुसंधान – डॉ. डी. एस. बघेल।
6. जिला सांख्यिकीय पुस्तिका।
7. विपणन प्रबंध।
8. कपास समाचार 2005
9. ग्राम संस्कृति दिसम्बर 2004

****

स्मार्ट सिटी - अवधारणा और परिदृश्य

डॉ. सुरेन्द्र कुशवाह * पंकज कुशवाह **

शोध सारांश – स्मार्ट सिटी आधुनिक तकनीकी युग की अनिवार्य मांग है। प्रश्न यह खड़ा होता है कि स्मार्ट सिटी कैसी हो ? मेरे विचार में एक ऐसा स्वस्थ्य व स्वच्छ शहर जहां समान विचारधारा के लोग निवास करते हो, सभी आवश्यक मूलभूत सुविधाएँ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हों, उन्हें प्राप्त करना सुलभ हो, व्यवस्थित यातायात हों, लोगों को रोजगार/स्वरोजगार आसानी से प्राप्त हो सके। कुल मिलाकर एक काम काजी शहर जो देश की राष्ट्रीय आय व अंतर्राष्ट्रीय छवी को बढाने में अपना अहम् योगदान दे सके।

प्रस्तावना – जनगणना 2011 के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या का 31.2 प्रतिशत भाग शहरों में निवास करता है जबकि लगभग 68.8 प्रतिशत भाग गाँवों में फिर भी देश की जी.डी.पी. का लगभग 65 प्रतिशत भाग शहरी आबादी से आता है जिसमें निरन्तर वृद्धि होना सम्भव है जो भारत के आर्थिक विकास में शहरों के महत्व को स्वत: स्पष्ट करता है। इसी महत्व को दृष्टिगत रखते हुए भारत में प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी 100 शहरोंको स्मार्ट शहर बनाना चाहते है इसमें मध्यप्रदेश के पाँच शहर इन्दौर, उज्जैन, भोपाल, ग्वालियर और जबलपुर सम्मिलित है। मध्यप्रदेश देश का हृदय स्थल है, प्रदेश की जनसंख्या का 27.6 प्रतिशत भाग शहरों में निवास करता है और 72.4 प्रतिशत भाग ग्रामीण क्षेत्रों में। प्रदेश में वर्ष 2001 में 394 नगर थे जो 2011 में बढकर 476 हो गए, इस प्रकार प्रदेश में 2001 से 2011 के दषक में नगरों की संख्या में लगभग 20.81 प्रतिशत की वृद्धि हुई अर्थात प्रदेश में नगरीय जनसंख्या में तेजी से वृद्धि हो रही हैं, ऐसे में यह जानना कि स्मार्ट सिटी (शहर) क्या है? स्मार्ट सिटी की आवश्यकता क्यों है ? एक स्मार्ट सिटी में कौन-कौन सी सुविधाएं उपलब्ध होना चाहिए? आदि इस शोध अध्ययन के महत्व को बढा देती है।

अध्ययन के उद्देश्य – अध्ययन का मुख्य उद्देश्य स्मार्ट सिटी की अवधारणा और परिदृश्य को स्पष्ट करना है। इसके लिए निम्न सहायक उद्देश्य लिए गए है।

1. स्मार्ट सिटी क्यों आवश्यक है।
2. स्मार्ट सिटी की आवश्यकता क्या है।
3. स्मार्ट सिटी के निर्माण में क्या समस्याएं विद्यमान है।
4. समस्याओं के मद्देनजर यथासम्भव सुझाव प्रस्तुत करना।

शोध प्रविधि – प्रस्तुत शोध पत्र द्वितीयक समंको एवं सूचनाओं पर आधारित है। द्वितीयक समंको के सग्रहण हेतु समाचार पत्र पत्रिकाओं एवं इंटरनेट का प्रयोग किया गया है।

शोध व्याख्या –

स्मार्ट सिटी का अर्थ – स्मार्ट सिटी के अर्थ को लेकर विभिन्न विद्वानों में मतभेद है, स्मार्टनेस की परिभाषा सभी के लिए अलग होती है। डॉ. गौतम भाटिया के अनुसार - एक ऐसा शहर जो काम करता हो, जहां लोग साइकिल चला पाते हो, सडकों पर पैदल चलने की जगह हो, पार्क हो, यातायात सुलझा हुआ हो, सडके और इमारतें योजनाबद्ध तरीके से बनी हो, शहरी और सार्वजनिक यातायात सुलभ हो, बिजली, पानी, इंटरनेट जैसे आम सुविधाओं की आबाध्य आपूर्ति हो, बाकी शहर का कैरेक्टर तो धीरे-धीरे ही तैयार होता है।

मेरे विचार में स्मार्ट शहर से अभिप्राय अपराध रहित एक ऐसे शहर से है, जो स्वच्छ हो, जहां स्वस्थ मस्तिष्क के ईमानदार व कर्मठ लोग निवास करते है, जहां सभी संसाधन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हो। और उनका उपयोग उपभोग लोग आसानी से कर सके।

स्मार्ट सिटी क्यों आवश्यक है ? – जहाँ तक हमारे देश में स्मार्ट सिटी की आवश्यकता का प्रश्न है। सर्वसुविधा युक्त शहर उद्यमियों को आकर्षित करने में सफल होते है वही जिन शहरों/क्षेत्रों में मूलभूत अधोसरंचना का अभाव होता है, उद्यमिता हतोत्साहित होती है। यही कारण है कि भारत की जी.डी.पी. आय में लगभग 65 प्रतिशत भाग शहरों से आता है और माना जा रहा है कि सन् 2030 तक अर्थात अगले 15 वर्षो में हमारी कुल जी.डी.पी. की लगभग 75 प्रतिशत आय शहरों से अर्जित होगी। इससे स्पष्ट होता हैं कि हमारे आर्थिक विकास के लिए शहरों का कितना अधिक महत्व है। इसी महत्व को दृष्टिगत रखते हुए भारत में स्मार्ट सिटी का निर्माण आवश्यक प्रतित होता है।

स्मार्ट सिटी की आवश्कताएँ – डॉ. पीके चांदे ने स्मार्ट सिटी सन्दर्भ में अपने विचार व्यक्त करते हुए यह अहम सवाल उठाया कि 'क्या हम चमचमाती इमारतें, सडके, मॉल्स इत्यादि बनाना चाहते है? या फिर हम समाज के कामकाज को ज्यादा स्मार्ट बनाना चाहते है, ताकि एक आत्म निर्भर दीर्घकालिक, ज्ञानपरक समाज का निर्माण हो सके, एक ऐसा समाज जो तीव्र विकास के लिए समग्र तौर पर अपने कार्यो को एक सोच के साथ प्रभावी और जिम्मेदारीपूर्ण तरीके से अंजाम दे सके। मेरे विचार में एक स्मार्ट सिटी के लिए निम्न आवश्यकताएं महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

1. **स्मार्ट रहवासी –** सर्वप्रथम प्राथमिकता में ऐसे शहरों में निवास करने वाले व्यक्तियों को देना चाहुंगा जो शिक्षित, ईमानदार कर्मठ व परिवर्तनषील नवीन तकनीक को महत्व देने वाले हो और उनके रहन सहन में समानता हो।
2. **अपराध रहित शहर –** दूसरी प्राथमिकता में अपराध (क्राइम) रहित शहर को देना चांहूगा अर्थात स्मार्ट सिटी में जहां तक हो सके किसी भी प्रकार के अपराध की सम्भावना न हो, बच्चे विशेषकर महिलाएँ अपने को सुरक्षित महसूस करें उन्हे कही भी आने-जाने में भय न लगे।
3. **स्वच्छ शहर –** किसी भी शहर की स्मार्टनेस तभी सार्थक हो सकेगी जबकि वह स्वच्छ हो वहां के निवासी (नागरिक) शहर को स्वच्छ रखने में

* वाणिज्य विभाग, शासकीय स्नात्कोत्तर महाविद्यालय, धार (म.प्र.) भारत
** शोद्यार्थी (वाणिज्य) देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत

अपना शत् प्रतिशत योगदान देते हो साथ ही स्थानीय प्रशासन कचरे का निस्तारण व प्रदूषण नियत्रंण को प्राथमिकता दे।

4. मूलभूत सुविधाएं – स्मार्ट सिटी में सभी प्रकार भी मूलभूत सुविधाएं जैसे– 24 घण्टे विद्युत आपूर्ति पर्याप्त मात्रा में शुद्ध जल का वितरण, निश्चित दूरी पर सार्वजनिक शौचालय आवागमन के पर्याप्त साधन उपयोग/उपभोग की वस्तुओं के लिए व्यवस्थित बाजार आदि हो।

5. व्यवस्थित परिवहन – एक स्मार्ट शहर में यातायात की बेहतर सुविधा होना आवश्यक है ताकि एक व्यक्ति के लिए साइकिल चलाना भी सुगम व सुरक्षित हो, पर्याप्त चौड़ाई की गड्ढा रहित सडके हो, ट्राफिक कन्ट्रोल की व्यवस्थित प्रणाली हो वाहनों के आकार, वजन आदि पर नियंत्रित हो।

6. तकनीकी प्रणाली युक्त शहर – यदि हम डिजिटल इण्डिया के सपने को साकार करना चाहते है तो हमें हमारे शहर व गांवों को कम्प्यूटर व इंटरनेट से जोडना होगा। एक स्मार्ट सिटी की अवधारणा तभी सार्थक सिद्ध होगी जबकि वहां निर्बाद गति से नेटवर्क (इन्टरनेट) की आपूर्ति हो। शहर की आवश्यकतानुसार संचार व सूचना तकनीक का सुव्यवस्थित फ्रेमवर्क हो।

समस्याएँ – स्मार्ट सिटी के निर्माण में सबसे बडी समस्या यह हैं कि नए शहर का निर्माण किया जाए या पुराने शहर को स्मार्ट बनाया जाए। जहां तक पुराने शहरों को स्मार्ट बनाने की बात है वहां सरकार को काफी दिक्कतों का सामना करना पडेगा क्योंकि पुराने शहरों में एक बडी जनसंख्या पक्के मकानों में रहती है, जबकि लगभग उतनी ही जनता सडकों और झुग्गी–झोपडीयों में निवास करती है, इनमें समानता लाकर स्मार्ट सिटी का निर्माण करना आसान काम नही है। वहीं नए शहर का निर्माण करने में पूर्ण मूलभूत अधोसरंचना के निर्माण एवं उसे निरन्तर बनाए रखने हेतु भारी मात्रा में विनियोजन करना पडेग़ा।

सुझाव –

1. स्मार्ट सिटी ऐसी होने चाहिए जहां लोगों को अधिक से अधिक रोजगार व स्वरोजगार प्राप्त हो सके, अर्थात सरकार काम करने वाले शहरों का निर्माण करें।
2. जहाँ तक सम्भव हो सके स्मार्ट शहर के निवासियों में समानता हो उनका रहन–सहन समान हो। शहर में सभी पक्के मकान हो।
3. स्मार्ट सिटी में पर्याप्त विद्युत व्यवस्था, शुद्ध जल, व्यवस्थित परिवहन व्यवस्था, उत्तम स्वास्थय सुविधा आदि उपलब्ध हो।
4. स्मार्ट सिटी आर्थिक गतिविधियों को प्रोत्साहित करने में सक्षम तथा कुछ नया करने का अवसर प्रदान करने वाली हो।
5. स्मार्ट शहर में ऐसी व्यवस्था हो कि मूलभूत सुविधाओं का समुचित उपयोग हो सके तथा जल विद्युत उर्जा आदि का दुरूपयोग (बर्बादी) न हो सके।
6. पुराने शहरों को स्मार्ट बनाने हेतु वहां के निवासियों में जागरूकता लानी होगी, झुग्गी में रहने वाले लोगों को समान धारा में जोडने का प्रयास करना होगा, इसलिए उन्हे विशेष सुविधा, सहायता व शिक्षा देना होगी। ऐसे शहरों से भिक्षावृत्ति की समस्या को भी हल करना होगा।

निष्कर्ष – निष्कर्षत: हम कह सकते है कि शहरों में बढता औद्योगिकरण एवं वहां की चकाचौंध ग्रामीणों को आकर्षित कर रही है। फलत: लोग अपने पारम्परिक कार्य कृषि को छोडकर उद्योग व व्यवसाय में रूचि ले रहे है, जिससे शहरों का जी.डी.पी. की आय में निरन्तर योगदान बढ रहा है। वहीं शहरों में बढती आबादी के कारण कई समस्याएं जन्म ले रही है। ऐसे में यह चिन्ता का विषय हो जाता हैं कि क्यों न स्मार्ट सिटी का निर्माण किया जाए ? ताकि शहरों में विद्यमान समस्याओं को दूर करने के साथ ही हमारी अंतर्राष्ट्रीय छवी का ग्राफ और बढाया जा सके। जहाँ तक स्मार्ट सिटी का प्रष्न हैं एक ऐसा शहर जो सर्वसुविधा युक्त हो, सुविधाएं सुलभता से उपलब्ध हो अपराध रहित एवं भय मुक्त शहर हो, वहाँ के लोग (रहवासी) काम–काजी हो और उनका रहन–सहन समान हो, कुल मिलाकर एक ऐसा शहर जहाँ लोगों से लेकर सुविधाओं तक सभी कुछ स्मार्ट हो।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. बनर्जी तुषार, बी बी सी संवादाता और जानेमाने लेखक भाटिया गौतम– एक शहर कब हो जाता है, 'स्मार्ट'।
2. अग्रवाल ओ.पी., पूर्व आई ए. एस., स्मार्ट सिटी का मतलब ।
3. समाचार पत्र – पत्रिकाएँ (रोजगार निर्माण, प्रतियोगिता दर्पण) ।
4. www.jagran.com,www.bhaskar.com,etc.

****

भारत में गरीबी और खाद्य सुरक्षा

डॉ. एल.एन. शर्मा *

प्रस्तावना – आजादी के पश्चात् देश के समक्ष दो अहम् चुनौतियां थी, एक देश के सभी नागरिकों को खाद्य सुरक्षा प्रदान करना, अथवा खाद्यान्न उपलब्ध कराना दूसरा देश को आर्थिक रुप से आत्मनिर्भर बनाना जिसके अंतर्गत औद्योगिक, सामरिक तथा व्यावसायिक क्षेत्रों में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना था। आजादी के बासठ वर्षो में हम दूसरी चुनौती को तो शायद हल कर पाये हैं, जो अधिक कठिन थी किन्तु प्रथम चुनौती जो अपेक्षाकृत अधिक आसान थी । उसे प्राप्त करने में हम विफल ही नहीं पूरी तरह से शर्मनाक स्तर तक असफल रहे हैं ?

देश की कुल जनसंख्या 121.02 करोड़ (2011) है। इस 121.02 करोड़ जनसंख्या में कितनी जनसंख्या गरीब है, यह एक प्रश्न है कि गरीबों की वास्तविक संख्या कितनी है ? मौजूदा रुप में सरकार के पास इसका कोई वास्तविक आधार नहीं है। देश में सर्वप्रथम प्रो.मिन्हास ने 1956-57 से 1967-68 के बीच ग्रामों में निर्धनता के प्रतिशत में कमी का संकेत दिया। इसी प्रकार दाण्डेकर और रथ ने 1960-61 और 1967-68 के मध्य ग्रामीण और नगरीय दोनों क्षेत्रों में निर्धन वर्गों में स्थिर अनुपात बताया।

योजना आयोग द्वारा उच्चतम न्यायालय में हाल ही में पेश हलफनामे से एक बारगी गरीबी-रेखा राष्ट्रीय बहस के केन्द्र में आ गई। क्योंकि योजना आयोग के अनुसार शहरी इलाके में 32रू. और ग्रामीण अंचल में 26रू. प्रतिदिन कमाने वाले व्यक्ति को गरीब नहीं माना जा सकता। इस दृष्टि से शहरी क्षेत्रों के 5 सदस्यों वाले परिवार की एक इकाई के लिये 4824रू. और ग्रामीण क्षेत्र में 3905रू. प्रतिमाह की आमदनी को गुजारे की दृष्टि से पर्याप्त माना गया। सरकार की इस दलील से आम भारतीय जो गरीबी का दंश तो किसी तरह बर्तास्त कर सकते थे किंतु आसमान छूती मंहगाई के दौर में 32रू. और 26रू. में भरपेट भोजन भी नहीं खा सकते है, वे आक्रोशित एवं शर्मिंदा भी हैं। सच तो यह है कि पूर्व में निर्धारित 2100 कैलोरी और ग्रामीण क्षेत्रों में 2400 कैलोरी ऊर्जा देने वाले खाद्यान्न को भी भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद् अपर्याप्त मानती है। उनका कहना है कि एक स्वस्थ्य व्यक्ति के लिये 2800 कैलोरी ऊर्जा की आवश्यकता रहती है। आज जब मंहगाई आसमान छू रही है तब कोई भी व्यक्ति गरीबी रेखा के लिये निर्धारित उक्त आमदनी पर किस प्रकार गुजारा कर सकता है ? यह सबसे बड़ा प्रश्न है।

जिस तरह भारत कृषि प्रधान देश है उसी तरह गरीबी प्रधान देश भी है। यानि कि भारत की बहुसंख्य आबादी बहुत गरीबी में जीवन यापन कर रही है। गरीबी निर्धारण के लिए सरकार द्वारा निर्धारित अद्यतन मापदण्डों में 7 तथा 11 बिन्दुओं के आधार पर उत्पादक सर्वेक्षण किया गया। इन सभी रिपोर्टो के आधार पर देश में कुल आबादी की 28.5 से लेकर 60 प्रतिशत तक जनसंख्या गरीबी रेखा से नीचे पायी गयी अर्थात् लगभग 30 करोड से 55 करोड आबादी गरीबी रेखा से नीचे जीवन व्यतीत कर रही है। गरीबी मापने की जो प्रचलित सरकारी पद्धति है उसे सभी अर्थशास्त्री नकारते है। दरअसल सरकार में बैठे योजनाकारों द्वारा गरीबी मापने का जो पैमाना तय किया गया है वह गरीबी को मापने से ज्यादा गरीबी को छिपाने का काम करता है। ऐसा सरकार इसलिए भी करती है कि जिससे अर्थव्यवस्था की विकास दर ऊंची बनी रहे और नव उदारवाद की आर्थिक नीतियों का पोषण होता रहे। चाहें गरीबों की रोजमर्रा की बुनियादी जरुरतो की पूर्ति हो अथवा न हो। लेकिन उनको लाभ पहुंचाने वाली योंजनाओं के आबंटन में कटौती की जाती रहे। इतना ही नहीं गरीबों के कल्याणकारी योजनाओं में (नरेगा) योजना का बजट घटा दिया गया। जबकि इसके विपरीत बहुराष्ट्रीय कंपनियों को 2008-09 में सरकार द्वारा 418095 करोड़ रू. के राजस्व-कर माप कर दिये गए। इस धनराशि की तुलना में नरेगा के तहत गरीबों को 100 दिन के रोजगार की गारंटी देने के लिए मात्र 39 हजार करोड़ रू. रखे गए और इसी प्रकार गरीबी रेखा के नीचे गुजारा करने वाली 40 प्रतिशत आबादी के खाली पेट में दाना डालने के लिए महज 55 हजार करोड़ रू. का प्रावधान रखा गया। जबकि बहुराष्ट्रीय कंपनियों को करो में छूट की धनराशि रोजगार और आहार उपलब्ध कराने वाली योजनाओं को दी गयी राशि से चार गुनी ज्यादा है।

खाद्य सुरक्षा (विधेयक) अधिनियम एवं गरीब – संसद के शीतकालीन सत्र में खाद्य सुरक्षा विधेयक को अधिनियम का अमलीजामा पहनाकर सरकार मानों गरीबों को 'मूर्खो के स्वर्ग में गरीब' का सब्जबाग दिखाकर गरीबों को सुखमय जीवन जीने की गारंटी देने में सफल हो रही है।

देश में वर्तमान में 40 करोड़ 74 लाख लोग बी.पी.एल. सुविधाओं का लाभ ले रहे हैं। जबकि इसी वर्ग में कुपोषण एवं भुखमरी की समस्या सबसे अधिक गंभीर है। खाद्य सुरक्षा अधिनियम में ग्रामीण क्षेत्र की 75 प्रतिशत और शहरी क्षेत्र की 50 प्रतिशत आबादी को रियायती दर पर अनाज देने का प्रावधान है। इस अधिनियम में 'प्रायोरिटी' और 'जनरल' की दो श्रेणियां बनाई गई है किंतु इस तरह की श्रेणियों के साथ इसे लागू करने में अनेक व्यवहारिक कठिनाइयां आएगी। इनमें से 46 प्रतिशत लोगों को प्राथमिकता देने की बात कही गई है, जो गरीबी रेखा के नीचे जीवन-यापन करते हैं जबकि शहरी क्षेत्रों के 50 प्रतिशत लोगों को प्राथमिकता दी जाएगी। अत: खाद्य सुरक्षा कानून लागू करने में सरकार को अे क चुनौतियों का सामना करना पड़ सकता है, जो निम्न हैं-

1. **अतिरिक्त वित्तीय बोझ-** खाद्य सुरक्षा कानून लागू होने पर लगभग 35 हजार करोड़ रू. का अतिरिक्त बोझ अर्थव्यवस्था पर पडेगा। क्योंकि इसके प्रावधानों के अनुसार चावल-3रू.प्रति किलो, गेहूँ-2रू.प्रति किलो और मोटा अनाज-1रू.प्रति किलो के दर से वितरित करना है, ऐसे में खाद्य अनुदान बहुत अधिक हो जाएगा। एक आंकलन के अनुसार यह लगभग 95 हजार करोड़ से लेकर 1 लाख करोड़ तक हो सकता है।
2. **राज्यों में सर्वसम्मति का अभाव-** खाद्य सुरक्षा कानून लागू करने की जिम्मेदारी राज्य सरकार की होगी। किंतु अभी तक मणिपुर को छोड़कर

* प्राध्यापक (वाणिज्य) शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.) भारत

किसी राज्य ने इसे लागू करने का भरोसा नहीं दिलाया है। वास्तव में खाद्य सुरक्षा के विषय में राज्यों के बीच सर्वसम्मति नहीं है। एक ओर केरल राज्य जन वितरण प्रणाली को मजबूत करने के पक्ष में है तो बिहार जैसे राज्य खाद्यान्न की जगह नकद राशि देने के समर्थन में हैं। साथ ही खाद्य सुरक्षा अधिनियम के कारण पड़ने वाले आर्थिक बोझ को लेकर सभी राज्य आशंकित हैं। इसलिए 40 करोड़ गरीबों को खाद्य सुरक्षा उपलब्ध होगी ? यह सबसे बड़ी चुनौती है।

3. किसानों के हितों की असुरक्षा – खाद्य सुरक्षा कानून लागू होने पर प्रतिवर्ष 63 लाख टन अनाज की जरुरत पड़ेगी। खेती के प्रति कम होते रूझान, औद्योगिक घरानों के लिए बढ़ता जमीन अधिग्रहण, कृषि भूमि पर बढ़ता शहरीकरण और जलवायु परिवर्तन के कारण भविष्य में खाद्यान्न का उत्पादन कम होने की आशंका है और यदि खाद्य सुरक्षा प्रणाली को प्रभावी एवं कारगर बनाना है तो किसानो का ध्यान रखने के लिए सरकार को उनके अनाजों का आकर्षक समर्थन मूल्य की व्यवस्था करनी पड़ेगी। जबकि वर्तमान में समर्थन मूल्य व्यवस्था प्रभावी तरीके से काम नहीं कर पा रही है। क्योंकि जब फसल कटती है तो किसानों (विशेषकर छोटे और मध्यम) को समर्थन मूल्य से बहुत कम कीमत पर अपने अनाज खुले बाजार में बेचनें पर विवश होना पड़ता है। और इस प्रकार उन्हें मिल रहा समर्थन मूल्य उन बिचौलियों के काम आ जाता है जो कम कीमत पर अनाज खरीद कर समर्थन मूल्य पर अनाज को बेच देते है।

इसलिए प्रस्तावित खाद्य सुरक्षा कानून को लेकर आशंकित है क्योंकि उन्हें लगता है कि गरीबों को कम कीमत पर अनाज उपलब्ध कराने के नाम पर उनके उत्पादनों के समर्थन मूल्य को भी सरकार कम रखेगी। किसानों का यह डर काल्पनिक नहीं है। इसलिए इस अनिश्चय के वातावरण में न तो अनाज के उत्पादन को प्रोत्साहन मिलेगा और न ही खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित की जा सकेगी। किसानों की आशंका तब और अधिक मजबूत दिखती है जबकि गरीबों को मिलने वाले सस्ते अनाज के कारण कृषि क्षेत्र, कृषि श्रमिकों की कमी से बुरी तरह से प्रभावित है।

4. खुले बाजार में खाद्यान्नों की कीमतों में वृद्धि – खाद्य सुरक्षा और खाद्य पोषण की समस्या सिर्फ गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों की ही नहीं वरन् मध्य वर्ग की भी है। खुले बाजारों में अनाज की कीमतें तेजी से बढ़ रही हैं जिससे गरीबी और असंतोष में वृद्धि होगी। विश्व में स्थिरता और संतोष स्थापित करने के लिए पर्याप्त भोजन गोपनीय रुप से सबसे कारगार हथियार है। जार्ज मार्शल ने भी कहा है, 'भूख और असुरक्षा शांति की सबसे बड़ी दुश्मन है।' इसलिए खाद्य सुरक्षा अधिनियम के कारण खुले बाजार में खाद्यान्न की आपूर्ति कम होने की आशंका है। ऐसी दशा में वे लोग जो इस अधिनियम के दायरे में नहीं आते मजबूरन उन्हें ऊंची कीमतों पर खुले बाजार से अनाज खरीदना पड़ेगा। ऐसे में विधेयक यह कैसे सुनिश्चित करेगा कि जो परिवार गरीब नहीं हैं वह मंहगे अनाज पर निर्भर न रहें ?

गरीबों की भूख और कुपोषण से सुरक्षा के लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली व्यवस्था अपर्याप्त नहीं है किंतु सरकार की नीयत और व्यवस्था दोनों भूख और कुपोषण के जिम्मेदार है। अगर ऐसा नहीं है तो गोदामों के अंदर और बाहर रखा लाखों टन अनाज प्रतिवर्ष सड़ता है, और दूसरी ओर गरीब भुखमरी और कुपोषण से मरते है।

गरीबों से यह खिलवाड़ 1991 से प्रारंभ हुआ। जब उदारीकरण की नीतियों को अपनाने के बाद 1992 में नवीं पंचवर्षीय योजना लागू हुई। तो उसके वृद्धि और गरीबी पर आधारित दस्तावेज में यह उल्लेख किया गया कि नवीं पंचवर्षीय योजना के प्रारंभ में देश में 29 प्रतिशत लोग गरीब, दशवीं योजना के प्रारंभ (2002) में यह संख्या 17.7 प्रतिशत और ग्यारहवीं योजना के प्रारंभ (2007) में गरीबी 9.2 प्रतिशत हो जाएगी। क्योंकि योजनाकार मान चुके थे कि संसाधनों का अंधाधुंध दुरूपयोग, निजीकरण और अनुदान कम होने से जो विकास होगा उससे देश में गरीबी पूरी तरह से मिट जाएगी। वर्तमान के लिए उनका अनुमान था कि भारत में केवल 4.4 प्रतिशत लोग गरीब रह जाएगे। पर यह एक भयानक झूठ था जो धीरे-धीरे खुलता गया। वास्तव में यह समस्या केवल सस्ते अनाज से नहीं जुड़ी। यह प्रमाण इस बात का भी है कि उदारीकरण और निजीकरण की नीतियों से गरीबी नहीं मिट सकती। इन नीतियों से सबसे गरीब और सबसे अमीर के बीच का अंतर भी निरंतर अधिक हुआ जो पूर्व के छः गुने से बढ़कर बारह गुना हो गया है। इसलिए समस्या गरीबी रेखा के निर्धारण से नहीं बल्कि देश में अमीरी रेखा के निर्धारण की है। क्योंकि गरीब के हिस्से का अनाज, बच्चों के हिस्से का पोषण आहार, गरीब बीमार लोगों के हिस्से की दवाइयां इत्यादि राजनेताओं और नौकरशाहों के ऐशो-आराम एवं विदेशी दौरों पर ही व्यय हो जाती हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. अमर्त्य सेन, 'गरीबी और अकाल' राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली, 2011।
2. M.Maharajan,"Economic thought of mahatma Gandhi" Discovery house,1998.
3. डॉ.रेणु त्रिपाठी, 'ग्रामीण विकास और निर्धनता उन्मूलन' ओमेगा पब्लिकेशन्स, दिल्ली 2011।
4. वी.सी. सिन्हा, पुष्पा सिन्हा-'भारतीय आर्थिक नीति' मयूर पेपर बैक्स, नोएडा, 2008।
5. रुद्र दत्त, के.पी. सुन्दरम, 'भारतीय अर्थव्यवस्था' एस.चंद एण्ड कं. लि., नई दिल्ली, 2005।
6. आर्थिक समीक्षा- 2011-12।
7. भारतीय अर्थव्यवस्था (विशेषांक), प्रतियोगिता दर्पण वार्षिकी, 2012।

****

भारत के भविष्यक एवम् समाजवादी चिन्तक स्वामी विवेकानन्द

डॉ. विम्मी बहल * डॉ. ओ. पी शर्मा **

प्रस्तावना – स्वामी विवेकानंद भारत की महान आत्मा थे जिन्होनें अपनी रचनाओं और भाषणों से जहॉ एक ओर भारतीय सभ्यता और संस्कृति की महानता से विश्व के लोगों को परिचित कराया वही दूसरी ओर भारतीय समाज और धर्म में व्याप्त कमियों से भारत के लोगों को परिचित कराकर उसे दूर करने का प्रयास किया। अपने इसी प्रयास के अन्तर्गत जब उन्होनें भारतीय समाज तथा भारत की दुर्दशा एंव इसके समाधान के सम्बन्ध में जो विचार रखे, उसके आधार पर यह कहना उपयुक्त होगा की वे एक समाजवादी चिन्तक भी थे। उन्होंने एक अवसर पर कहा था कि मैं एक समाजवादी हूँ'।[1]समाजवादी विचारों ने उनके मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव डाला और उन्होंने स्वंय को समाजवादी कहना शुरू किया।[2]

विवेकानंद गरीबों, शोषितों और नि:सहाय लोगों के प्रति असीम संवेदना रखते थे। अपनी इस संवेदना को उन्होंने अपनी पुस्तकों और भाषणों में व्यक्त किया। एक बार एक साक्षात्कार में उन्होंने कहा था 'जब तक मेरे देश का एक कुत्ता भी भूखा रहता है, तब तक उसको भोजन देना और उसकी देखभाल करना मेरा कर्त्तव्य है'।[3] एक अन्य अवसर पर उन्होंने कहा– ' जो लोग भूख से मर रहे है, उनकी रक्षा करना ही वेदान्त का सार है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि उन्होंने वेद तथा वेदान्त के आधार पर इस समाजवादी दर्शन को ग्रहण किया कि समाज के सभी लोगों को जीने का हक है।

स्वामी विवेकानंद के दर्शन के मुख्यत: तीन स्रोत थे – प्रथम–वेद और वेदान्त, द्वितीय–रामकृष्ण परमहंस के साथ उनके सम्पर्क, तृतीय–उनके जीवन का अनुभव। इन तीन स्रोतों के माध्यम से ही विवेकानंद के दार्शनिक, धार्मिक, समाजवादी और राष्ट्रीय विचारों का निर्माण हुआ जो अंतत: राजनीतिक विचारों के आधार स्तम्भ बने। विवेकानंद ने भारतीय समाज के शोषक वर्गो की धूर्तता, कुटिलता और अमानवीय व्यवहार की तीव्र भर्त्सना की। उन्होंने भी आलोचना की जो ब्रिटिश सरकार के सहयोगी बने हुए थे। भारत के उच्च वर्गो, तुम शून्य हो, तुम भविष्य की सारहीन नगण्य वस्तु हो। उन्होंने नये भारत को हल की मूँठ पकड़े हुए किसानों की कुटिया में से, मछुआरों, मोचियों, भंगियों की झोपड़ियों में से उठने दो। उठने दो उसे परचून वाले की दुकान से और पकौड़ी बेचने वाले की भट्टी से, उठने दो कारखाने से, हाटों से और बाजारों से।

इन साधारणजनों ने हजारों वर्षों तक उत्पीड़न सहा है, जिसके परिणाम स्वरूप उनमें आश्चर्यजनक सहनशक्ति उत्पन्न हो गई है। उन्हें रोटी का आधा टुकड़ा ही दे दीजिए, फिर तुम देखोगे कि सारा विश्व भी उनकी शक्ति को सम्भालने के लिए पर्याप्त नहीं होगा। जिस क्षण तुम तिरोहित हो जाओगे उसी क्षण तुम नवजाग्रत भारत उद्घाटन घोष सुनोगे।[4]

उपरोक्त वक्तव्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि विवेकानंद का यह मानना था कि शक्तिशाली भारत के भविष्य का निर्णय जनता की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक उन्नति से ही सम्भव होगा। विवेकानंद ने भारतीय समाज की जो व्यवस्था की उसका स्वरूप भी समाजवादी है।

विवेकानंद को दो अर्थों में समाजवादी कहा जा सकता है। प्रथम उनमें यह समझने की ऐतिहासिक दृष्टि थी कि भारतीय समाज में दो उच्च जातियों अर्थात् ब्राहम्णों तथा क्षत्रियों का वर्चस्व रहा है और इन दोनों वर्गों ने भारत की गरीब जनता का निरन्तर शोषण किया है। यही कारण था कि उन्होंने सामाजिक समानता का समर्थन किया। यह समानता पुरातनवाद तथा ब्राहम्णों की स्मृतियों में व्याप्त ऊॅच नीच के सिद्धान्त का प्रबल प्रतिवाद प्रस्तुत करता है। इस प्रकार उनका सामाजिक सिद्धान्त तत्वत: समाजवादी है[5]

वे समाजवादी इसलिए भी थे क्योंकि उन्होंने देश के सभी लोगों के लिए 'समान अवसर' के सिद्धान्त का समर्थन किया। उन्होंने कहा यदि प्रकृति में असमानता है, तो भी सब के लिए समान अवसर होना चाहिए– अथवा यदि कुछ को अधिक और कुछ को कम अवसर दिया जाये तो दुर्बलों को सबलो से अधिक अवसर दिया जाना चाहिए।' 'अन्य शब्दों में ब्राहम्ण को शिक्षा की उतनी आवश्यकता नही है जितनी की चाण्डाल को। यदि ब्राहम्ण को एक अध्यापक की आवश्यकता है तो चाण्डाल को दस अध्यापक की क्योंकि जिसे प्रकृति ने जन्म से सूक्ष्म बुद्धि नहीं दी है उसे अधिक सहायता दी जानी चाहिए।इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि स्वामी विवेकानंद का समाजवादी दृष्टिकोण वेदान्ती समाजवाद था जिसमें हिंसा और वर्ग संघर्ष का कोई स्थान नही था। उनके समाजवाद में न्याय, प्रेम,चरित्र की शुद्धता ओर भ्रतृद्व, सामाजिक समानता, शोषण वर्गों का उन्मूलय आदि बातों का प्रमुख स्थान था।

वे भारतीय समाज में प्रचलित जातिगत उत्पीड़न और भूखमरी से भलिभाँति परिचित थे, और इस समस्या का समाधान तत्कालीन आश्यकता समझते थे। यही कारण था कि वे चाहते थे –'समाजवाद को भी एक बार परख लिया जाये, यदि और किसी लिए नहीं तो उसकी नवीनता के लिए ही सही सुख–दुख का पुनर्वितरण उस स्थिति की अपेक्षा तो अच्छा ही है जिसमें कुछ व्यक्ति सदैव दुख और कुछ सदैव सुख का अनुभव करते है इस कष्टमय संसार में प्रत्येक व्यक्ति को कभी तो सुख प्राप्त होना ही चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. दत्त.पी.एन.स्वामी विवेकानंद।
2. दामोदरन. के. इडिण्यन थाट – एक क्रिटिकल सवै।
3. द लाइफ आफ विवेकानंद।
4. द कम्पलीट वर्क्स ऑफ स्वामी विवेकानंद।
5. भारत और उसकी समस्यायें स्वामी विवेकानंद।

* अटल बिहारी वाजपेयी हिन्दी विश्वविद्यालय,भोपाल (म.प्र.) भारत
** विभागाध्यक्ष, राजीव गांधी शासकीय महाविद्यालय, कालापीपल (म.प्र.) भारत

Impact of Agricultural Investment on Agricultural Production: Evidence from Madhya Pradesh

Dr. Rajeev Singh Chauhan * Dr. Kamlesh Kumar Shrivastava **

Introduction - Investment in agriculture sector is constantly increasing in this state.it was Rs. 60528.65 crores in ninth plan,which increased toRs. 81612.00 crores in tenth plan and Rs.185962.82 in the eleventh plan.It shows 34.83 % increasetenth plan over ninth plan ,207.23 % increase in eleventh plan over ninth plan and 127.86 % increase over tenth plan. These are good signs for agricultural health of this state.

Cereals Production Increased From The Level Of Ninth Plan 126.38 Lactones To 139.54 Lactones In Tenth Plan And 159.12 Lactones Targeted In Eleventh Plan Pulses Production Increased From The Level Of Ninth Plan 34.26 Lactones To 38.96 Lactones In Tenth Plan And 45.19 Lactones Targeted In Eleventh Plan. Food grain Production Increased From The Level Of Ninth Plan 160.64 Lactones To 178.50 Lactones In Tenth Plan And 204.31 Lactones Targeted In Eleventh Plan. Oilseeds Production Increased From The Level Of Ninth Plan 57.45 Lactones To 60.40 Lactones In Tenth Plan And 80.32 Lactones Targeted In Eleventh Plan. Sugarcane Production Decreased From The Level Of Ninth Plan 4.17 Lactones To 2.5 Lactones In Tenth Plan And Again Increased From The Level Of Tenth Plan 3.15 Lactones Targeted In Eleventh Planvi) Cotton Production Increased From The Level Of Ninth Plan 2.14 Bales To 6.00 Bales In Tenth Plan And 8.00 Bales Targeted In Eleventh Plan.

The agriculture investment scenario of this state is very positive. During the selected three plan period, the investment in agriculture sector increased more than three times in this state. And it has shown positive effect on agricultural production. Irrigation is main factor to increase farm productivity and it is appreciable that in the eleventh plan, 42.40%agricultural investment allotted to irrigation sub-sector. It will increase farm productivity and therefore promote peasant's economic welfare in this state.

It is true that irrigation is the key of Indian agriculture, but each sub-sector of state agriculture has its own importance. So, in the investment pattern in agriculture sector, all sub – sectors should be given their proper priority in investment allocation.

Objectives - The main objectives of this study are to analyze the investment trends and pattern of state agriculture and its impact on farm production during three plans- ninth, tenth and eleventh plan. Although, some specific objectives are framed as-

i) to examine investment in agriculture during selected plans.
ii) to examine the investment & pattern in state agriculture.
iii) to examine the production and production .
iv) to examine the priorities within agriculture investment in the state.
v) to examine the investment trends within agriculture sub-sectors in the state.
vi) to study the comparative growth rates of investment in agriculture as whole & as well as sub-pectoral investment growth rates during selected plans.
vii) to suggest policy measures tom augment agricultural productivities as well as overall agricultural development.

Data base & research methodology - It analyzes the investment in agriculture sector and agricultural production in Madhya-Pradesh. The paper is based on secondary data. It analyzes the investment in agriculture sector and agricultural production in Madhya-Pradesh. This papers discusses the investment in agriculture and as well as in its sub-sectors.

Major Results Of Agriculture Investment In Madhya-Pradesh

1. Constant Increase In Agricultural Investment - Investment in agriculture sector is constantly increasing in this state.it was Rs. 60528.65 crores in ninth plan,which increased toRs. 81612.00 crores in tenth plan and Rs.185962.82 in the eleventh plan.It shows 34.83 % increasetenth plan over ninth plan ,207.23 % increase in eleventh plan over ninth plan and 127.86 % increase over tenth plan. These are good signs for agricultural health of this state.

2. Crop Husbandry: Still Dominating Share - The share of crop husbandry in agriculture investment in the state is still dominating. This share has been 64.40 % in ninth plan, 76.66 % in tenth plan and 51.94 % in the eleventh plan in total agriculture investment in the state.

3. Major Agriculture Investment Shift To Irrigation - during the selected plan-period, major shift in agriculture investment gone to irrigation sub-sector. The allocation of agriculture investment to irrigation sector, investment

* Asst. Professor (Economics) Vijaya Raje Scindia Govt. Girls P.G. College, Morar, Gwalior (M.P.) INDIAIA
** Professor (Economics) Vijaya Raje Scindia Govt. Girls P.G. College, Morar, Gwalior (M.P.) INDIA

increased and gone from 16.60 % in ninth plan and 09.98 5 in tenth plan to 42.40 % in the eleventh plan. It is 155.42 % increase over ninth plan and 324.9 5oincrease over the tenth plan.

4. Research & Education: Investment Increased, Ratio Decreased - The ratio of investment in agricultural research and education within agriculture investment in the state decreased. It was 12.32 5 in ninth plan which decreased to 8.20 % in tenth plan and 8.47 % in the eleventh plan. The investment in monetary terms, increased in the eleventh plan- by 112.23 % over ninth plan and 135.91 % over tenth plan.

5. Soil Conservation: Investment Increased, Ratio Decreased - The ratio of investment in soil conservation within agriculture investment in the state decreased. It was 6.67 % in ninth plan which decreased to 5.17 % in tenth plan and 2.57 % in the eleventh plan. The investment in monetary terms, increased in the eleventh plan- by 18.36 % over ninth plan and 13.25 % over tenth plan.

Major Results of Agri-Investment and Agri-Production

1. Positive impact: All major crops production increased - All selected crops production increased during the selected plans.

i) Cereals Production Increased From The Level Of Ninth Plan 126.38 Lactones To 139.54 Lactones In Tenth Plan And 159.12 Lactones Targeted In Eleventh Plan. It shows 14.03 % increase over Tenth plan and 25.91 % targeted increase over Ninth plan in the eleventh plan.

ii) Pulses Production Increased From The Level Of Ninth Plan 34.26 Lactones To 38.96 Lactones In Tenth Plan And 45.19 Lactones Targeted In Eleventh Plan. It shows 16.00 % increase over Tenth plan and 31.90 % targeted increase over Ninth plan in the eleventh plan.

iii) Food grain Production Increased From The Level Of Ninth Plan 160.64 Lactones To 178.50 Lactones In Tenth Plan And 204.31 Lactones Targeted In Eleventh Plan. It shows 14.46 % increase over Tenth plan and 27.20 % targeted increase over Ninth plan in the eleventh plan.

iv) Oilseeds Production Increased From The Level Of Ninth Plan 57.45 Lactones To 60.40 Lactones In Tenth Plan And 80.32 Lactones Targeted In Eleventh Plan. It shows 32.98 % increase over Tenth plan and 39.81 % targeted increase over Ninth plan in the eleventh plan.

v) Sugarcane Production Decreased From The Level Of Ninth Plan 4.17 Lactones To 2.5 Lactones In Tenth Plan And Again Increased From The Level Of Tenth Plan 3.15 Lactones Targeted In Eleventh Plan. It shows 26.00% increase over Tenth plan and 24.46 % targeted decrease over Ninth plan in the eleventh plan.

vi) Cotton Production Increased From The Level Of Ninth Plan 2.14 Bales To 6.00 Bales In Tenth Plan And 8.00 Bales Targeted In Eleventh Plan. It shows 33.33 % increase over Tenth plan and 273.83 %targeted increase over Ninth plan in the eleventh plan.

Conclusion - The agriculture investment scenario of this state is very positive. During the selected three plan period, the investment in agriculture sector increased more than three times in this state. And it has shown positive effect on agricultural production. Irrigation is main factor to increase farm productivity and it is appreciable that in the eleventh plan, 42.40%agricultural investment allotted to irrigation sub-sector. It will increase farm productivity and therefore promote peasant's economic welfare in this state.

Suggestions - Some policy measures with reference to agriculture investment pattern and farm production and productivity in Madhya-Pradesh may be suggested as-

1. It is true that irrigation is the key of Indian agriculture, but each sub-sector of state agriculture has its own importance. So, in the investment pattern in agriculture sector, all sub –sectors should be given their proper priority in investment allocation. .
2. In the state eleventh five year plan , special priority is given to irrigation sub-sector, is a praisable step. But, the investment pattern of this plan reflects that this allocation is made by on the cost of agriculture research and education and soil conservation. This trend ought to be avoided.
3. Sugar is an important agriculture production. The level of sugarcane production is targeted very low in the both plan in tenth plan as well as in the eleventh plan. This target required to be hiked.
4. Agriculture research and education has long term objectives. It is suggested to augment the monetary investment as well as share within agriculture investment in the state.

(Table 1,2,3 & 4 see in next page)

References :-

1. Alternative Economic Survey Of India 2007-08 (2008) Decline Of The Development State,Alternative Survey Group, Daanish Books ,New Delhi
2. Economic Survey Of India (2007-08) Economic Division, Ministry Of Finance,Govt. Of India ,Newdelhi.
3. Eleventh Five Year Plan-2007-12,Volume-III 'Agriculture,Rural Development,Industry,Services And Physical Infrastructure.Planning Commission ,Govt Of India ,New Delhi
4. India Infrastructure Development Report 2008 (2008),3i Network Oxford University Press,New Delhi.
5. India Rural Developmentreport 2005 (2005) ,NIRD,Rajendra Nagar,Hyderabad.
6. India :Sustaining Reform,Reducing Poverty,(2005) A World Bank Development Policy Review Oxford University Press,New Delhi.
7. Madhya-Pradesh Human Development Report 2007 'Infrastructure For Human Development' (2008) Oxford University Press,New Delhi.
8. Rural Development Statistics 2004-5 (2005) ,Rajendra Nagar,Hyderabad India Infrastructure Development Report 2008 (2008),3i Network Oxford University Press,New Delhi.

Table -01 - Major Trends In Agricultural Investment And Production In Madhya-Pradesh Investment In Agriculture-Sector In Madhya-Pradesh (Rs.In Crores)

S.	Heads	Ninth Plan		Tenth Plan		Eleventh Plan	
		Investment	% ShareOf Ag.Invst.	Investment	% ShareOf	Investment Ag.Invst.	% ShareOf Ag.Invst.
1	Crop Husbandry	38981.15	64.40	62566.00	76.66	96581.92	51.94
2	Research& Education	7458.82	12.32	6678.00	08.20	15754.25	08.47
3	Minor Irrigation	6199.25	10.24	4000.00	04.90	3550.00	01.91
4	Micro & Minor Irrigation	3849.62	06.36	4146.00	05.08	75295.00	40.49
5	Soil Conservation	4039.81	06.67	4222.00	05.17	4781.63	02.57
	Total	60528.65	100	81612.00	100	185962.80	100

Sources: State Planning Board, Govt. Of M.P. Approaches To Ninth, Tenth & Eleventh Plans

Table-02 - Investment In Agriculture-Sector In Madhya-Pradesh(Rs.In Crores)

S.	Heads	Ninth Plan		Tenth Plan		Eleventh Plan	
		Investment	% Change Over Last Plan	Investment	% Change Over Last Plan	Investment	% Change Over Last Plan
1	Crop Husbandry	38981.15	-	62566.00	60.50	96581.92	54.36
2	Research & Education	7458.82	-	6678.00	-10.47	15754.25	-135.91
3	Minor Irrigation	6199.25	-	4000.00	-35.54	3550.00	-11.25
4	Micro & Minor Irrigation	3849.62	-	4146.00	7.70	75295.00	1716.10
5	Soil Conservation	4039.81	-	4222.00	9.51	4781.63	13.26
	Total	60528.65	-	81612.00	34.83	185962.80	127.86

Sources: State Planning Board, Govt. Of M.P. Approaches To Ninth, Tenth &Eleventh Plan

Table-03 - Investment In Agriculture-Sector In Madhya-Pradesh(Rs.In Crores)

S.	Heads	Ninth Plan		Tenth Plan		Eleventh Plan	
		Investment	% ShareOf Ag.Invst.	Investment	% ShareOf Ag.Invst.	Investment Ag.Invst.	% ShareOf
1	Crop Husbandry	38981.15	64.40	62566.00	76.66	96581.92	51.94
2	Research& Education	7458.82	12.32	6678.00	08.20	15754.25	08.47
3	Minor Irrigation	6199.25	10.24	4000.00	04.90	3550.00	01.91
4	Micro & Minor Irrigation	3849.62	06.36	4146.00	05.08	75295.00	40.49
5	Soil Conservation	4039.81	06.67	4222.00	05.17	4781.63	02.57
	Total	60528.65	100	81612.00	100	185962.80	100

Sources: State Planning Board, Govt. Of M.P. Approaches To Ninth, Tenth & Eleventh Plans

Table-04 - Agriculture Production In Madhya-Pradesh

S.	Crops	Unit	Ninth Plan		Tenth Plan		Eleventh Plan	
			Production	% Change Ov -er Last Plan	Production	% Change Ov -er Last Plan	Production	% Change Ov -er Last Plan
1	Cereals	LakhTons	126.38	-	139.54	10.41	159.12	14.03
2	Pulses	LakhTons	34.26	-	38.96	13.72	45.19	16.00
3	Food Grains	LakhTons	160.64	-	178.50	11.20	204.31	14.46
4	Oilseeds	LakhTons	57.45	-	60.40	05.14	80.32	32.98
5	Sugarcane	LakhTons	4.17	-	2.50	-40.10	3.15	26.00
6	Cotton	LakhBales	2.14	-	6.00	180.37	8.00	33.33

Sources: State Planning Board, Govt. Of M.P. Approaches To Ninth, Tenth & Eleventh Plans

****

Climatic Changes And Agriculture : Food Security Concern In India

Dr. Kamlesh Kumar Shrivastava * Dr. Rajeev Singh Chauhan ** Sunil Sharma ***

Abstract - Climatic changes are serious concerns in each country on the planet for its agriculture future. Health of agriculture sector has decisive role in fighting against extreme hunger and malnutrition. No country can achieve the goal of food security without its agricultural growth and now agricultural growth is highly dependent of climatic conditions. Hence, climate smart agriculture is the only warranted way for development strategy to a nation. India has the responsibility to feed 1400 million people by 2026.This is 36 % more than 2001 level. Loss of food and low level of agricultural productivity are very critical problems for Indian agriculture Frequent .Floods ,Frequent Droughts Frequent Earth Quakes Unwarranted rains Cold waves Hot waves, Degradation of forests (fire events) Loss of wild lives. Comprehensive and broad coverage of agricultural risks are needed to protect agriculture sector from climatic disturbances. Crop insurance and farmer subsidy has vital role to sustaining agriculture in India

Keywords- Climate smart Agriculture, Food Security, Crop Insurance , Zero tillage, Agricultural risks.

Introduction - India has the responsibility to feed 1400 million people by 2026.This is 36 % more than 2001 level. This will require 70.9 MTs more food grain production from 196.8 MTs level of2001 to 267.7 MTs.Due to economic reforms, poverty is increasing (from 23 % to 37 % Tendulkar). Ensuring food security in India, as current level of schemes and after implementing the proposed food security bill, how can the required level of food be achieved. The only answer is adoption of climate smart agricultural practices. Agriculture provides directly or indirectly livelihood to more than 50 % population of our country. Agriculture is key for alleviation of hunger and malnutrition in India.

Agriculture plays crucial role for food security and nutrition. Food security improves nutrition and health. Health improves efficiency in workforce in both physical and mental. Hence, agriculture improves the productivity of people. But the challenges of climate change cannot be met by improving human efficiency and productivity. These challenges need more and the solution can only be found in agriculture.

Objectives - The main objective of this paper is to establish indispensible role of climate smart agricultural practices for policy makers so that agriculture sector may become more efficient and more productive.

1. To know the vulnerability of climate changes upon Indian agriculture sector.
2. To explain the importance of agriculture for food security in India.
3. To establish link between Food security Bill and Food production in India.
4. To identify the climate smart agricultural tools for Indian agriculture.
5. To highlight the ways of effecting agriculture the changes in climate as natural disasters.
6. To discuss the best practices and technologies for agriculture to use.
7. To identify available solutions and develop agricultural research for enhancing climate smart agriculture.
8. To discuss the measures that can help to increase agricultural production and productivity as well as mitigation of agricultural risks.
9. To discuss the factors affecting agricultural production as environmental imbalances.
10. To suggest some policy measures to improve agricultural production to ensure food security in India.

Research methodology - This paper is based simply on the information available as secondary sources. It discuss two aspects of climate change –first environmental issues of climate changes and second its impact of agriculture production and productivity. In this paper ,the authors have tried to explain the need of agricultural development for food and nutritional security in India. Secondary data are used to explain the vulnerability of climate change effect on Indian agriculture. No high statistical tools are used tin this paper. All detail statistical information is given at the end of the paper in tables.

Vulnerability of climate change - Climate change affects agriculture, but nobody knows, when, where, how and who will be affected. It affects more small and marginal framers than large farmers. So, It is very hard to predict and protect affecting farmers from natural disasters. The coverage of agricultural risks in nearly impossible.

Main Challenges for agriculture -

* Professor (Economics) Vijaya Raje Scindia Govt. Girls P.G. College, Morar, Gwalior (M.P.) INDIA
** Asst. Professor (Economics) Vijaya Raje Scindia Govt. Girls P.G. College, Morar, Gwalior (M.P.) INDIA
*** Research Scholar (Economics) Jiwaji University, Gwalior (M.P.) INDIA

1. Dependency on monsoon and lack of irrigation capacity.
2. Lack of agriculture infrastructure like-access to credit and post harvest facilities –storage, transportation, marketing, payment system etc.
3. Constant increase in the share of marginal holdings (below 2 h.a. 1996 -80.32 % and 2001 -81.8 %)
4. Insufficiency of institutional credit and rural indebtedness.
5. Climate change impact like- frequent drought, floods, cold waves, hails unwarranted rains etc.
6. Frequent crop failure due to adverse climatic conditions.

Effects of climate change :

1. Frequent Floods
2. Frequent Droughts
3. Frequent Earth Quakes
4. Unwarranted rains
5. Cold waves
6. Hot waves
7. Degradation of forests (fire events)
8. Loss of wild lives

Findings :

1. Agriculture is constantly playing a crucial role in terms of employment and livelihood security in India. It has a definite role to eliminate hunger and mal nutrition.
2. Water is a key constraint for achieving food production targets for ensuring food and nutritional security today and will remain in future. So, it is undoubtedly experienced to prioritize enhancing water use efficiency.
3. Increase in food production at local level is the best option to reduce vulnerability poor people to climate change variations. Increase in food production will help to enhance food security as well as agricultural sustainability.
4. Drought ,floods, cold waves, heat waves, salinity, pests and diseases are some climate driven important challenges for climate smart agriculture. These challenges effect people at very large scale. Millions and millions people are affected with a single natural disaster and resulted in loss of crops, persons and livestock at large scale. (**See Tables-02, 03, &04)**
5. Comprehensive and broad coverage of agricultural risks are needed to protect agriculture sector from climatic disturbances. Crop insurance and farmer subsidy has vital role to sustaining agriculture in India.
6. Crop rotation, applications of green technology and zero tillage targets are best practices for agriculture.

Conclusion - On the basis of above discussions and findings, It may easily be said that agriculture is the most affected sector of all sectors of an economy. Agriculture sector is needed to pay high attention due to its impotence in terms of livelihood and food security. Agriculture is the backbone of Indian economy. Although foodgrain production is increasing constantly (table 01), but, the rate of per capita availability of foodgrain s not increasing in the affirmative manner. As compare to rice and wheat, the proportion of pulses in decreasing constantly. The reason is that the production of pulses is not increasing at high rate. White the pulses are most important component of our food basket. In recent years, the climatic conditions are going from bad to worse and more ahead. Tradition farmers are shifting their from agricultural activities to non-farm activities for their livelihood search. So, Horticultural crops have resistances to face climatic challenges. Fruits, flowers, Vegetables and spices farming is only way to mitigate climatic curses and to secure farmers upto some limit.

Policy Suggestions :

1. Adoption of ecosystem approach, working at landscape scale and ensuring inter- sectoral coordination and cooperation which is crucial for effective climate change response.
2. Institutional and financial support is required to smallholders to make the transition to climate smart agriculture.
3. Greater consistency between agriculture, food security and climate change policy making is required to achieve at national and regional level.
4. Green technology and zero tillage practices will lead to augment agricultural production and productivity
5. Public -private partnership will be very helpful to fill the gap between demand and supply of investment in agriculture.
6. Minimizing post harvest loss and augmenting agriculture product storage capacity.
7. Some states of India, land reform program are still lacking

1. Finally broad and faster operation of second green revolution (to increase production of pulses, oilseeds, fruits and vegetables).

(Table 01 see in next page)

Table 02 - Vulnerability Of Natural Disasters In India (1982-2012)

S.	Details	Numbers
1	Total large events	431
2	Total No. of deaths	143039
3	Average deaths per year	4614
4	No. of affected people	1521726127
5	No. of people affected per year	49087940
6	Economic loss (in rupee)	48.064 Trillion
7	Per year economic loss	1.55 trillion

Sources: www.ndmindia.nic.in, www.ndma.gov.in

(Table 3 & 4 see in next page)

References :-

1. Aggarwal, P.K. (2008). Global climate change and Indian agriculture: Impacts, adaptation and mitigation. Indian Journal of Agricultural Sciences 78: 10-16.
2. Auffhammer, M., Ramanathan, V. and Vincent, J.R. (2012). Climate change, the monsoon, and rice yield in India. Climatic Change 111(2), 411-424.
3. IPCC, 2007. Climate change 2007: The physical science basis. In: Solomon, S., Qin, D., Manning, M., Chen, Z., Marquis, M., Averyt, K.B., Tignor, M. and Miller, H.L. (Eds.). Contribution of Working Group I to the Fourth

Assessment Report of the Intergovernmental Panel on Climate Change. Cambridge University Press, Cambridge, United Kingdom and New York, NY, USA, 996 p.
4. Soora, N.K., Singh, Anil Kumar, Agarwal, P.K., Rao, V.U.M. and Venkateswarlu, B. (2012). Climate Change and Indian Agriculture: Impact, Adaptation and Vulnerability – Salient Achievements from ICAR Network Project, IARI Publication, 32 p.
5. Srivastava, A.K. (2010). Climate Change Impacts on Livestock and Dairy Sector: Issues and Strategies, pp 127-135. Lead Papers. 2010. National Symposium on Climate Change and Rainfed Agriculture, February 18-20, 2010. Indian Society of Dryland Agriculture, Central Research Institute for Dryland Agriculture, Hyderabad, India.
6. Venkateswarlu, B. and Shanker, A.K. (2012). Dryland agriculture: bringing resilience to crop production under changing climate, pp. 19-44. In: Crop Stress and its Management: Perspectives and Strategies. Springer Netherlands.
7. Vermeulen, S.J., Aggarwal, P.K., Ainslie, A., Angelone, C., Campbell, B.M., Challinor, A.J., Hansen, J.W., Ingram, J.S.I., Jarvis, A., Kristjanson, P., Lau, C., Nelson, G.C., Thornton, P.K. and Wollenberg, E. (2012). Options for support to agriculture and food security under climate change. Environmental Science & Policy 15: 136-144.
8. Economic Survey of India 2014-15 (2015) Economic Division, Ministry of Finance, Government of India New Delhi.
9. www.ndmindia.nic.in,
10. www.ndma.gov.in
11. www.unisdr.org/eng/hfa/hfa.htm
12. www.unisdr.org/eng/about_isdr/bd-yokohama-strat-eng.htm

Table 01 - Status of food grain production in India

Year	Food grain production (in M.T.)	Food grain productionIndex	Food grain production	Per capita per year availability (Kg)	Per capita per year availability	Per capita per year availability
1950-51	50.8	100	-	394.9	100	-
1970-71	108.4	213.4	113.4	468.8	118.7	18.7
1990-91	176.4	347.3	247.3	510.0	129.1	29.1
2009-10	218..1	429.3	329.3	444.5	112.6	12.6
2010-11	244.5	481.3	381.3	437.1	110.7	10.7
2011-12	259.3	510.4	410.4	453.6	114.9	14.9
2012-13	257.1	506.5	406.5	450.3	114.0	14.0
2013-14	264.8	521.3	421.3	510.8	129.3	29.3

Sources: i) Economic survey of India2014-15
ii) www.ndmindia.nic.in, iii) www.ndma.gov.in

Table 03 - Affected Persons By Natural Disasters (1982-2012)

Disasters / Year	Floods (Numbers in Millions)			Droughts (Numbers in Millions)		
	Numbers	Index	Increase	Numbers	Index	Increase
1982	30M	100	0	100M	100	0
1993	39M	130	30	159M	159	592
1999	42M	140	40	300M	300	200
2005	41M	137	37	317M	317	217
2012	51M	170	70	391M	391	391

Sources: www.ndmindia.nic.in, www.ndma.gov.in

Table 04 - Economic Loss By Natural Disaster (Within Rural Area)

Disasters / Year	Floods (Numbers in Millions)			Droughts (Numbers in Millions)		
	Numbers	Index	Increase	Numbers	Index	Increase
1982	7.0	0	0	2.15	00	
1993	4.3	61.50	-38.5	2.51	115.7	15.7
1999	3.3	47.14	52.86	3.19	148.37	48.37
2005	2.63	38.0	62.0	2.36	110.0	10.0
2012	2.5	35.71	64.29	2.29	107.0	7.0

Sources: www.ndmindia.nic.in, www.ndma.gov.in

****

समाज में नैतिक मूल्यों के प्रति उदासीनता एवं सामाजिक दृष्टिकोण

डॉ. सुनीता बाथरे *

प्रस्तावना – 'मंजर ही हादसों का अजीबो–गरीब था।
वो आग में जला जो नदी के करीब था।।
बस्ती के सारे लोग ही आतिश परस्त थे।
घर जल रहा था और समन्दर करीब था।।'

आज जीवन में चहुँ ओर जीवन–मूल्य व नैतिक मूल्य में गिरावट देखी जा रही है। बात अमेरिका की है। खचाखच भरे एक सभागृह में प्रतिष्ठित वक्ता ने प्रवेश किया। वे मानव मूल्यों को लेकर व्याख्यान देने वाले थे। उनके प्रेरक भाषणों की बड़ी ख्याति थी, पर उन्होंने भाषण शुरु करने की बजाय अपने हाथ में सौ डॉलर का एक नोट दिखाया और पूछा, 'इसे कौन लेना चाहेगा?' उनके इस प्रश्न पर सभागार में सारे हाथ ऊपर उठ गए। फिर वक्ता ने नोट को हाथों में मसला और पूछा, 'अब इस नोट को कौन लेना चाहेगा?' इस बार भी बहुत सारे हाथ ऊपर उठे। उन्होंने कहा, 'मैं यह नोट आपको दूंगा पर मुझे जरा इसके साथ यह करने दीजिए'। ऐसा करके उन्होंने डॉलर के उस नोट को जमीन पर पटक दिया और उसे हाथों से जमीन पर मसल दिया। अब वह मुड़ा–तुड़ा नोट मैला भी हो गया। उसकी मूल चमक चली गई थी, लेकिन था फिर भी वह सौ डॉलर का नोट। वक्ता ने प्रश्न फिर दोहराया, 'इस मैले–कुचैले नोट को कौन लेना चाहेगा? सभागृह में अब भी कई थे, जो वह नोट लेने के लिए उत्सुक थे। यह देखने के बाद वक्ता बोले, 'मेरे प्रिय मित्रों, मैंने नोट के साथ चाहे जो किया हो, लेकिन आप इसे लेने के लिए फिर भी उत्सुक थे। ऐसा इसलिए है क्योंकि उसकी हालत चाहे जो भी हो जाए, इसकी कीमत नहीं गिरती। यह सौ डॉलर का नोट ही रहता है। इसी तरह जीवन में भी अपने फैसलों या परिस्थितियों के कारण हम कुचले जाते हैं। अपनी चमक खो देते हैं। हमें लगता है कि हमारा कोई मूल्य नहीं है। हम अहमियत खो बैठे हैं। लेकिन याद रखिए आप के साथ चाहे जो हो आप अपना मूल्य नहीं खोते। आपकी हैसियत आप जीवन में क्या करते हैं या आप किसे जानते हैं, इससे तय नहीं होती बल्कि इससे तय होती है कि आप क्या हैं और आपके जीवन–मूल्य क्या हैं।'

आज की परिस्थिति में समाज में नैतिक मूल्यों के प्रति उदासीनता में अनेक चुनौतियाँ हैं, ये मूलत: दो प्रकार की हैं – आंतरिक व बाह्य चुनौतियाँ प्रथम में वैचारिक द्वंद्व व भावनात्मक विक्षोभ आते हैं जिनके कारण मनोरोग पैदा होते हैं बाह्य पारिवारिक विघटन सामाजिक असामंजस्य आते हैं। पाश्चात्य समाज में नैतिक मूल्यों के प्रति उदासीनता कहीं ज्यादा, खेद है आज अधिकतर लोग डिउरों के कथन से सहमत होंगे – 'पागलों में पागल के समान रहना अच्छा है, बजाय अकेले विवेकशील रहने के।' युवा लोग गैर जिम्मेदार तरीके से व्यवहार कर रहे हैं क्योंकि ऐसा करना फैशन है, भारतीय भाग्यशाली जो सुरक्षित समाज में पले–बढ़े हैं। भौतिकवादी समाज ने स्वतंत्रता व स्वच्छंदता की सूक्ष्म सीमा रेखा को पार कर लिया।

पश्चिमीकरण, सोशल मीडिया का चलन, आतंकवाद, भ्रष्टाचार, व्याभिचार के बोलबाला में नैतिक मूल्यों के प्रति उदासीनता बढ़ाई वैश्वीकरण के इस दौर में रहने, सोने, खाने–पीने की आदतों में रहन–सहन, आचार–विचार को बदल दिया है। जल्दी सोना, जल्दी उठना, सूर्य नमस्कार, भूमि देवता को प्रणाम, बड़ों के पाँव छूकर दिन की शुरुआत तो मानों लुप्त ही हो गई है। पैसा कमाने की अंधी दौड़ ने भ्रष्ट आचरण को बढ़ावा दिया। खान–पान को लें, माँ बच्चों को पिज्जा, बर्गर, नूडल्स, पाश्ता जैसे आहार खिलाकर संतुष्टि का अहसास करती वहीं ठंडाई, शीतल पेय छाछ, नींबू का रस का स्थान माजा, कोकाकोला ने ले लिया बात खाने–पीने तक सीमित नहीं – 'जैसा खायें अन्न वैसा बने मन।' संयुक्त परिवार का स्थान एकाकी परिवार ने ले लिया जिसमें पति–पत्नी व बच्चे होते। महंगाई के दौर में पति–पत्नी का काम करना आवश्यक परिणामस्वरूप नौकों के बीच पले–बढ़े बच्चों में भावनात्मक लगाव कम रहता। जिन आदर्शों, नैतिक मूल्यों की शिक्षा बुजुर्गों के माध्यम से मिल जाती थी, खेल के मैदान में बच्चे सहकार से मिल–जुल कर सारी बातें सीख जाते थे वह आज संभव नहीं। अधिक धन कमाने की लालसा ने मानव को अंधा बना दिया। चोरी, डकैती, छल, झूठ, प्रपंच, अनैतिकता के कारण समाज में नैतिक मूल्यों के प्रति उदासीनता व्याप्त है।

सेन्टर ऑफ कॉमर्स फॉर चाइल्ड लेबर द्वारा किया गया सर्वेक्षण में सनसनीखेज तथ्य प्रकाश में आए हैं जिनमें पारिवारिक व्याभिचार के बढ़ने के संकेत मिलते पिता, भाई अन्य नजदीकी पुरुष रिश्तेदार द्वारा पारिवारिक हिंसा की घटनाएं नैतिक मूल्य के पतन की पराकाष्ठा ही है। औद्योगीकरण ने नगरीकरण को जन्म दिया व सामाजिक वातावरण दूषित कर दिया नगरों की भीड़–भाड़ घनी एवं गंदी बस्तियों का अनैतिक वातावरण, व मादक पदार्थों के प्रयोग ने जीवन को नैतिक मूल्य से दूर किया। नैतिक मूल्यों के प्रति उदासीनता कम की जा सकती है हमें भारतीय दर्शन की उस अविरल आध्यात्मिक धारा को देखना होगा–

- हमें अपने देहबल, आत्मबल, मनोबल में वृद्धि करनी होगी तभी जीवन मूल्य की प्राप्ति संभव।
- आत्म–स्वरूप को खोजना होगा बाहर के भटकाव से निकलकर अंतस में झाँकना होगा – 'आत्मा साक्षी है, व्यापक है, पूर्ण है, एक है, मुक्त है चैतन्यस्वरूप है, क्रिया रहित, इच्छारहित व शांत है। मात्र भ्रम होने के कारण संसारी जैसा भासता है।'

* प्राध्यापक (अर्थशास्त्र) पं. शंभूनाथ शुक्ल शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शहडोल (म.प्र.)भारत

- ईमानदारी, निष्ठापूर्वक किये गये श्रम से प्राप्त सफलता का संतोष काफी बड़ा है। आंतरिक सदगुणों का विकास जरूरी है। समाज में अच्छे कार्यों की स्थापना करनी होगी तभी जीवन व समाज के सभी अंगों का विकास होगा।
- आध्यात्मिकता की तह में जाना होगा जिसकी जलती मशाल ही उदासीनता के तमस को चीरते हुये नया प्रकाश प्रदान करेगी सद्गुरु बाबा नानक का कथन सार्थक – 'यह शरीर एक महल है ईश्वर का घर है इसके भीतर परमात्मा ने असीम ज्योति रखी है।'
- नैतिक मूल्यों को बनाये रखने के लिये परिवार / समाज में भावनाओं का धागा पूरे परिवार को जोड़ सकता है, इसके लिये यदि आप एक ही शहर में दूर-दूर रहते हैं तो यह जरूरी है कि पखवाड़े या महीने में एक बार परिवार के सभी सदस्य इकट्ठा हो साथ खाना खाएं, अपनी बातें बताएं, हंसी-मजाक करें। यदि अलग-अलग शहरों में रहते हैं तब भी दो -चार महीनों में ऐसा जरूर करें।
- परिवार में शादी-ब्याह, जन्मदिन या खुशी के मौकों पर शिरकत जरूरी है। कोशिश करें कि ऐसे अवसर हाथ से न जाने पाएं।
- आधुनिक तकनीक का प्रयोग कर अपने दोस्तों, पुराने पड़ोसियों से टेलीफोन, इंटरनेट के माध्यम से संपर्क में बने रहना चाहिए।
- अपना अहंकार छोड़ें। छोटी-छोटी बातों पर बातचीत बंद हो जाये तो अकड़ें नहीं, अनदेखा करें और बढ़कर मेल-मिलाप की पहल करें।
- दु:ख और संकट के समय अपने परिवार / समाज का साथ अवश्य दें, इससे भरोसा और प्रेम पक्का होता है।
- महिलाओं को सम्मान की दृष्टि से देखना आवश्यक है। हेलेन बोसान्क्वेट ने अपने ग्रंथ 'दि फैमिली' में इसाई परिवारों का उल्लेख किया कि ईसा मसीह स्वयं महिलाओं के प्रति पवित्र विचार रखते थे। दि स्टेटस ऑफ वुमेन इन चाइना के लेखक फेवर – 'चीन में मातृ सत्तात्मक परिवार की मुलक मिलती है। पारसी परिवार की प्रथा विचित्र एवं अनोखी संस्कार भी उतना ही अद्भुत मृत व्यक्ति के लिये रोने का प्रावधान है जो रिश्तों की गहराई पर निर्भर करता किसके लिये कितना समय तक रोया जाये पिता की मृत्यु पर 30 दिन पत्नी की मृत्यु पर यह अवधि 6 माह तक बढ़ जाती है।'जेम्सी बेनेडिक्ट कार्टर ने अपनी पुस्तक रिलीजन एंड न्यूमा में रोमन के पारिवारिक परिवेश का प्रतिपादन किया, धार्मिक संस्कार पर अवलंबित व आधारित। परिवारों में कर्त्तव्य का पूजा-उपासना की तरह निष्ठापूर्वक पालन किया जाता महिलाओं का सम्मान किया जाता।
- प्राचीन काल में विश्व ही नहीं, भारत में भी मातृसत्तात्मक परिवार थे इन पुरातन परंपराओं में परिवर्तन आया और सब कुछ पुरुषों के अधिकार क्षेत्र में चला गया। आज यह स्थिति लगभग पूरे समूचे विश्व की है जहाँ पुरुष का अधिपत्य है। इतिहासकारों के अनुसार जो परिवार मातृसत्तामक होते वहां सुख-शांति, समृद्धि विकास की संभावना अधिक होती पुरुष-प्रधान परिवार की स्थिति अत्यंत दयनीय होती इसके मूल में संवेदना की भाव का न होना प्रमुख कारण समाज में नैतिक नियमों के प्रति उदासीनता कम करनी है तो आवश्यक है परिवार का आधार महिलाओं को मानकर उनके वंचित अधिकार प्रदान किया जाये। मातृत्व के साथ पितृत्व अर्थात् प्यार के साथ सहकार की सघल-सजल भावना ही आज समाज के नैतिक नियमों को जीवंत कर समाज को तपस्थली बनाने में सहायक सिद्ध होगी।
- समाज में चरित्र-निर्माण को प्राथमिकता देनी होगी। उनका स्वभाव उत्तम माना जाता है, जो सहिष्णु होते हैं और स्वयं कष्ट लेकर दूसरे का दु:ख दूर करते हैं। दयालुता, अभिमान शून्यता, परोपकारिता और जितेन्द्रिय होता है – ये 4 स्तंभ हैं, जिन पर धरती टिकी है। प्रसिद्ध जर्मन लेखक हरमन टेम्स के उपन्यास 'सिद्धार्थ' में नायक से जब पूछा जाता है कि वह जीवन में क्या कर सकता है? तो उसका उत्तर था – 'मैं सोच सकता हूँ, मैं इंतजार कर सकता हूँ मेरे पास संयम है।'
- समाज में सकारात्मक लोगों को बढ़ावा / प्रोत्साहन मिलना चाहिए। अच्छी आदतें अच्छा चरित्र निर्माण करती हैं, ये हमारी जीवनशैली का परिचायक होती हैं, आदत के अनुरूप कार्य करना सहज लगता है। आदतों के विपरीत असहज व कठिनाई होती है। आदतें हमारे मन में बनी वे गहरी लकीरें हैं, जिनसे हमारी जीवन ऊर्जा सहज प्रवाहित होती है इन लकीरों को आसानी से मिटाया नहीं जा सकता है और आदतों के विपरीत इन लकीनों की तरह अन्य लकीरें बनाने में समय व श्रम लगता है। प्रसिद्ध विचारक अर्ल नाइर्टिंगेल का कहना – 'हम वैसे ही बन जाते हैं, जैसा कि हम ज्यादातर सोचते रहते हैं।' पं. श्रीराम शर्मा का कथन – 'जो जैसा सोचता है और करता है वह वैसा ही बन जाता है।'
- समाज में नैतिक मूल्यों को बढ़ावा देने हेतु प्रेम, आदर, सहकार की भावना विकसित करने की आवश्यकता है। बुद्ध के प्रिय शिष्य आनंद ने पूछा लोग अनादर करते हैं, उल्टा सीधा कहते तब ऐसे स्थान को छोड़ चाहिए, फिर कहां जाएं? जहां कोई अपशब्द न कहे इस पर बुद्ध बोले – हम कब तक भागते रहेंगे जहां गलत व्यवहार हो रहा हो वहां तब तक रहें जब तक सामान्य व्यवहार न हो जाए।
- परिवार / समाज में निरंतर आत्म-समीक्षा, आत्म-मूल्यांकन, आत्म-मंथन होना चाहिए। इस तरह समाज में व्याप्त नैतिक मूल्यों के प्रति उदासीनता कम की जा सकती है। साथ ही समाज में चरित्र निर्माण व व्यक्तित्व विकास कर शांति, खुशहाली का मार्ग तय किया जा सकता है।

'यदि आपका चरित्र अच्छा है तो आपके परिवार में शांति रहेगी, यदि आपके परिवार में शांति रहेगी तो समाज में शांति रहेगी, यदि समाज में शांति रहेगी तो राष्ट्र में शांति रहेगी।' – कन्फ्यूशियस

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. दैनिक भास्कर, 08 अप्रैल 2014
2. अखंड ज्योति, जनवरी 2014
3. दैनिक भास्कर, 14 मई 2014
4. सहजयोग।
5. इंटरनेट।

****

India's Role in Afghanistan Post 2014 : Strategy, Policy and Implementation

Irshad Ahmad Mir * Dr. Ranjana Mishra **

Abstract - With the finished deadline of the withdrawal of NATO forces in Afghanistan, led to the great concern about the future of the country and outside. While some are optimistic that the process of transition will continue despite the challenges, most say that the existing state structures are too vulnerable after this withdrawal Forces. Moreover, there are issues relating to interethnic disharmony, pervasive culture of militancy, radicalization, warlords, rampant corruption, narcotic trafficking, growing public apathy, all of which could make matters worse. In such a scenario, India, with its last more than one decade of constructive engagement in Afghanistan, has much at stake. The prospect of Afghanistan ruled by a regressive regime that is moreover amenable to Pakistan's strategy of expanding its strategic depth and denying any space to India, poses a challenge to India's continued efforts to bring peace, development in Afghanistan. In this context, the main purpose of this paper is to examine India's strategic, political and economic objectives in Afghanistan and the range of proactive measures undertaken by it to secure the objectives.

Keywords - India, Afghanistan, Post ISAF drawdown, Strategic-Depth, Taliban, Trade route, Soft-Power. Turkmenistan-Afghanistan-Pakistan-India (TAPI) gas pipeline.

Introduction - A strong and stable government in Afghanistan is essential to Indian security, trade, commercial and strategic interests as Afghanistan's unique geo-strategic location positions it as a viable land bridge to Central Asia, Iran and Afghanistan's energy resources.[1] The relationship of both these countries dated back to the ancient Hindu Kingdoms that existed during the time of Alexander the Great. These were further strengthened by the signing of "Friendship Treaty" in 1950.India traditionally had strong links with various governments in Kabul throughout its history except for the brief period between September 1996 and 2001 when Afghanistan was ruled by Taliban govt. because its cult was towards Pakistan. India considered Taliban as a great threat to its security, especially in the state of Jammu and Kashmir. However, the post-Taliban period in Afghanistan has provided opportunities for India's extensive association in the realm of state-building, economy, reconstruction and development efforts. After the of Taliban regime India's relations with Afghanistan gained momentum and involved in many developmental projects, providing millions of dollars in aid assistance in diverse areas, including infrastructure, communications, education, healthcare, social welfare, training of officials, including diplomats and policemen, economic development and institution-buildings. These sectors have been identified by the Afghan Government as priority areas of development.[2] India is the fifth largest bilateral donor country (behind US, Japan, UK and Germany). India wants to marginalize Pakistan's influence in the region as well as in the Afghanistan. By doing so, it can get secure access to Central Asian Republic's natural resources as well. India's interests in Afghanistan have centered on supporting the nascent democratic regime, thereby denying space for the return of the Taliban[3].

While concerns pertaining to enduring stability in Afghanistan in view of the ISAF drawdown are justified, India's cautious approach can severely undermine the progress made thus far while simultaneously providing other players the opportunity to influence events in Afghanistan. Considering the political, economic, diplomatic and soft power investments already committed by India in Afghanistan, this is the time for India to take calculated risks and proceed to enhance engagement on all fronts with Afghanistan: political, economic, diplomatic, infrastructure development, strategic and military. It is imperative for India to pursue its objectives in Afghanistan with adequate safeguards to address adverse events.[4]

Indian Initiatives in Afghanistan - The Post Taliban era, engagement by India with Afghanistan witnessed a gradual shift in the Indian policy which, rather than being anti-Pakistan, had moved to a strong commitment for building peace and stability in Afghanistan. India's strategy in Afghanistan is guided by the desire to prevent an Islamist government that would readily provide Pakistan with strategic depth and a safe haven for terror groups rather than facilitating a pro-India government in Afghanistan.[5] India has opted to pursue a 'soft power' strategy to engage Afghanistan, preferring to contribute substantially in the civilian sector rather than in defence and security. India is particularly active

* Research Scholar (Political Science) R. D. University, Jabalpur (M.P.) INDIA
** Deptt. of Political Science,Govt. Mahakaushal Arts & Commerce (Autonomous) College, Jabalpur, (M.P) INDIA

in the construction, infrastructure, human capital building and mining sectors. Within the framework of two bilateral agreements, India has pledged over $ 2 billion in aid to Afghanistan. India has also agreed to build the 600-km-long Bamiyan- Herat rail link which will serve to connect the Hajigak mines to Herat and further to the Iranian port of Chabahar via the Delaram-Zaranj highway, which India had constructed in 2009. This makes India the fifth largest investor[6] in Afghanistan's stability and quest for economic and social development. Some of the important projects of India, by cost, are:

1. Supply of 250,000 tons of wheat.
2. Construction of the Parliament building ($ 178 million).
3. Construction of the Pul-i-Khumri to Kabul power line ($120 million).
4. Salma Dam power project ($ 130 million).
5. Construction of the Delaram-Zaranj road ($ 150 million)[7]
6. Food assistance to primary school children, and construction and rehabilitation of schools ($ 321 million).

Thus he ISAF drawdown and its implications for Afghanistan dictate certain changes which need to be incorporated in the Indian strategy in Afghanistan[10].

(**See map in next page)**

Indian Objectives in Afghanistan:Strategy and Policy Implementation - India's interests in Afghanistan cover a wide range of issues to include trade, commerce, and security, and to ensure a stable government in Afghanistan. Countering Pakistan's influence in Afghanistan and its attempts to install a weak and pliable regime is one of the objectives. However, this is not the only and primary motive for India seeking a larger role. India seeks to project itself as a regional power beyond the confines of South Asia and sees the building of stable, long-term relations with the Central Asian Republics (CARs) and Afghanistan as crucial to its economic, trade and security interests.[11]

Countering Pakistan - To a large extent, India's approach towards Afghanistan has been a function of its Pakistan policy. It is important for India that Pakistan does not get a foothold in Afghanistan and so historically India has attempted to prevent Pakistan from dominating Afghanistan. India would like to minimize Pakistan's involvement in the affairs of Afghanistan and to ensure that a fundamentalist regime of the Taliban variety does not take root again. Pakistan, on the other[12] hand, has viewed Afghanistan as a good means of balancing out India's preponderance in South Asia**.** Good India-Afghanistan ties are seen by Pakistan as detrimental to its national security interests as the two states flank the two sides of Pakistan's borders. [13]

Containing Islamist Extremism - India's other major interest is to make sure that Islamist extremism remains under control in its neighborhood and its struggle against Islamist extremism is also closely intertwined with the rise of extremism in Pakistan and Afghanistan. Pakistan has long backed separatists in Jammu and Kashmir in the name of self-determination and India has over the years been a major victim of the radicalization of Islamist forces in Kashmir which have been successful in expanding their network across India. Any breeding ground of radical Islamists under the aegis of Pakistan has a direct impact on the security of India, resulting in a rise in infiltration of terrorists across borders[14]as well attacks. It is vital for both India and Afghanistan that the latter would never again emerge as a safe haven for terrorism and extremism.

A Bridge to Central Asia - Afghanistan is also viewed as a gateway to the Central Asian region where India hopes to expand its influence. Central Asia is crucial for India not only because of its oil and gas reserves that India wishes to tap for its energy security but also because other major powers such as the US, Russia and China have already started competing for influence in the region. The regional actors view Afghanistan as a potential source of instability even as their geopolitical rivalry remains a major cause of Afghanistan's troubles[15].

Development of Turkmenistan-Afghanistan-Pakistan-India (TAPI) Gas Pipeline - The 2008 Agreement for the TAPI gas pipeline is an important development with far-reaching geo-strategic implications. Sponsored by the Manila-based Asian Development Bank (ADB) at a cost of approximately $ 10 billion, the proposed 1,700-km-long pipeline will transport 33 billion cubic meters of natural gas annually. The pipeline commences from Daulatabag gas field in Turkmenistan, through Herat in northwest Afghanistan to Kandahar, further to Quetta and Multan in Pakistan and, finally, terminating at Fazilka in India As part of its policy of having inclusive growth, India will seek to help Afghanistan in reaping the benefits of the natural resources by assisting in building infrastructure, undertaking mining projects and developing the distribution network. India's resurgent economy, fiscal management and developed human capital resources can play a pivotal role in facilitating Afghanistan's journey towards fiscal stability[16].

Expanding Regional Influence - A major factor behind India's pro-active Afghanistan agenda has been India's attempt to carve out for itself a greater role in regional affairs, more in consonance with its rising economic and military profile. India wants to establish its credentials as a major power in the region that is willing to take responsibility for ensuring stability around its periphery. By emerging as a major donor for Afghanistan, India is trying to project itself as a significant economic power that can provide necessary aid to the needy states in its neighborhood[17].

Expanding Regional Influence - A major factor behind India's pro-active Afghanistan agenda has been India's attempt to carve out for itself a greater role in regional affairs, more in consonance with its rising economic and military profile. India wants to establish its credentials as a major power in the region that is willing to take responsibility for ensuring stability around its periphery[18]. By emerging as a major donor for Afghanistan, India is trying to project itself as a significant economic power that can provide necessary aid to the needy states in its neighborhood. Moreover, India's

long-term ambition to emerge as a "great power" will be assessed by the international community in terms of its strategic capacity to deal with the instability in its own backyard[19].

Conclusion - India needs to significantly scale up its operations in Afghanistan, especially in the economic, industrial, communications, Information Technology (IT), human capital developments, construction, reconstruction, diplomatic, intelligence and military fields. The vacuum created by the ISAF drawdown should not be permitted to be exploited by other regional players, notably China. Considering the inevitability of militant attacks by Pakistan's proxy groups and their negative implications on India, all out efforts need to be undertaken to have a robust, well integrated, counter-terrorism infrastructure in place to restore balance with minimal cost to human life and property, and in the shortest timeframe

References :-

1 Christine Fair. India in Afghanistan, strategic interests, regional concerns. Foreign Policy October 26, 2010.
2 . Iram Khalid, ¯The New Great Game inAfghanistan: Role of India (A Pakistani Perspective) South Asian Studies, Vol. 26 (2), 2011, p 244.
3. Government of India, India's Assistance Programme in Afghanistan, New Delhi: Ministry of External Affairs, 2008.
4. C Fair, "2014 and Beyond: US Policy Towards Afghanistan and Pakistan, Part I," November 3, 2011.
5. Kanti Bajpai, Saira Basit, V Krishnappa, India's Grand Strategy: History, Theory, Cases (Routledge, 2014), p. 389.
6. MEA, Reply to * Question No 519, "Indian Projects in Afghanistan", August 2013, retrieved October 28, 2014.
7. Bharat Rakshak, "Afghanistan News and Discussion," August 19, 2009, retrieved November 3, 2014.
8. J Bentley, "Reaching the Limits of Our Patience with Pakistan Terror Safe Havens," June 07, 2012, retrieved October 10, 2014.
9. The White House, "Joint Statement by President Obama and Prime Minister Singh of India", November 08, 2010,
10. P. Stobdan and Suba Chandran, The Last Colony: Muzaffarabad-Gilgit-Baltistan (Indian Research Press, 2008), p. 3.
11. G. Srinivasan, "Afghanistan's entry to SAARC will lead to $2-bn gain for sub-continent," The Hindu BusinessLine, March 29, 2007.
12. Marvin G. Weinbaum, "Pakistan and Afghanistan: The Strategic Relationship," Asian Survey, Vol. 31, no. 13,(1991), pp. 498-99.
14. Rifaat Hussain, "Pakistan's Relations With Afghanistan: Continuity and Change," Strategic Studies, 22(4), 2002.
15. Ahmad Rashid, Taliban: The Story of Afghan Warlords, (Oxford: Pan Books.2001), pp. 183-187
16. Stephen Blank, US Interests in Central Asia and the Challenges to Them. Carlisle, PA: Strategic Studies Institute,US Army War College, 2007, pp. 31-32.
17. Shanthie Mariet D'Souza, "The TAPI Pipeline: A Recipe for Peace or Instability?" Issue No 19 of ISAF Brief, pp. 2-3, 2011, Institute of South Asian Studies, National University of Singapore.
18. Foster, A Pipeline through a Troubled Land: Afghanistan, (2008), p. 8.
19 M.K.. Bhadrakumar, "The Taliban turns its Attention on India," The Hindu, November 28,2005.

****

Origin of Taliban with Reference to Role of Pakistan

Dr. Ram Shankar * Jawaid Ahmad Mir **

Abstract - The withdrawal of Soviet troops from Afghanistan pushed the country into worst ever period in its given history. The whole country fragmented into a cluster of geo-physical units, each held by the chiefs of the most dominant ethno-tribal Afghan factions. Some Afghan groups claiming to be the Mujahidin were engaged in consistent in fighting for territorial expansion and tribal domination in their respective areas. They carved out local government and were reluctant to submit to any centralized authority. Their ethnic diversity and tribal incompatibility pushed whole country in to an uncalled state of affairs which in turn cost her huge human loss and excessive property damage. The maintenance of law and order had become rhetoric as entire country was at the verge of ruin and destruction. This uncertainty and confusion proved the Taliban into action. The time was ripe for Pakistan and Saudi Arabia to promote a new force, the Taliban provided spiritual and military leadership. In 1996 they took over most of Afghanistan. They then set out to enforce the most fundamental form of Islam seen in the 20th century.)
Keywords - Origin, Deeni Madrassas, Taliban, Afghanistan, Role, Pakistan, America.

Introduction - The geo-political location of Afghanistan along with its untapped natural resources is a major contributing factor to its socio-economic and political instability. Afghanistan has a long history of drug trafficking and human rights abuse facilitated by the insurgent warlords posing a great threat to its stability. Increased interference of international and regional powers on the one hand, the emergence of Taliban and Al-Qaida on the other hand can adequately explain the political importance of the country at global level. Afghanistan is situated between strategically important and economically potent countries of Pakistan, China, and Central Asian countries.

Soviet Union intervened in Afghanistan in the 1979 which was aimed to check the American ambition in the region and their intention to extend their influence over South Asian region during cold war days. To counter the Soviet ambitions U.S.A. used Pakistan as base and provide every assistance to Afghan militants, pursuant to which; the Soviets withdrawn from Afghanistan in 1989. After the withdrawal of Soviet troops Afghanistan fall prey to turmoil and chaos. Whole country was thereafter plunged into a civil war among various Afghan factions claiming to be the Mujahidin. Because of their constant conflicts, Afghanistan registered a chaotic situation in 1994 with wholesale loot, plunder and mass hijacking of the innocent and other men/women associated with these warring factions. Amidst this unhealthy state of affairs emerged a new militant and Mujahidin group termed the "Taliban"-'consisting of students of Islamic Knowledge Movement' which ruled from 1996 until 2001.

Origin of the Taliban - The Taliban (a Pushtoon organization centered around Kandahar)[1] had its birth in the rugged mountains of the Pak-Afghan border, in Pakistan in August 1994.[2] The Arabic word "Talib" defines an urge for knowledge and the seekers of the same are accordingly called Taliban (plural), a name on which emerged an unprecedented radical socio-religious and political movement towards the late 20th century in Afghanistan.[3] In the beginning, the movement was confined to a limited area but soon spread to other parts and assumed an appealing character with the takeover of the Afghan government with its fundamentals based on the Quran (Holy book of the Muslims) and the Hadith (Sayings of the Prophet).PBUH

As regards its origin, the movement was religious oriented for having emanated from those traditional educational institutions, the Deeni Madrassas, which imparted religious knowledge throughout Medieval Central Asia to which Afghanistan was an indispensable part. The Taliban intended to rebuild Afghanistan while Islamizing all its socio-economic and political institutions through the use of power. Quite precisely, the Deeni Madrassas provided a comprehensive curriculum which was the admixture of religious and worldly knowledge; the common feature was the "invocation of struggle against the un-Islamic rule, tyranny and social injustice" as laid down in the Quran and the Hadith.[4] Perhaps motivated the Quranic message, the Afghans set a track record of persistent resistance against the British during the three Anglo-Afghan wars in the 19th century[5] and the Soviets in the 20th century[6] while ignoring their age-long ethno-tribal conflicts. The concept of Jihad was, therefore deeply entrenched into the Afghan psycho-social and religious fabric; the Taliban carried forward that very legacy in the late 20th century.

*Asst. Professor (Political Science) Rani Durgavati University, Jabalpur (M.P.) INDIA
** Research Scholar (Political Science) Rani Durgavati University, Jabalpur (M.P.) INDIA

The Taliban's Rise to Power - Soviet Russia was finally forced to withdraw from Afghanistan in 1989 followed by a civil war[7] among various Afghan groups for politico-territorial and tribal supremacy. True after the Soviet withdrawal, a provisional government had been formed under one moderate leader Sabghattullah Mujadedi with Burhan-ud-Din Rabbani as the President, Ahmad Shah Masood the chief commander and Hikmatyar as the Defense Minister. But this did not prove a lasting arrangement as Rashid Dostam distanced himself from the government and aligned with his arch rival Hikmatyar for power control. These Afghan chiefs had formed local governments in their respective areas and did not acknowledge any centralized authority.[8] Their ideological and tribal disagreement brought whole country on the verge of extinction due to massive human loss and immense property damage.[9]

All this demanded the emergence of some strong powerful group with committed, pious, and dedicated followers to come to the protection of the mass of otherwise worn-out Afghan people. Since the Taliban had already distinguished itself by its sound religious ideology based on social justice and political stability, lots of people, therefore, rallied round its cadres. It is a fact that in the beginning, it had a limited footing but over a period of time it picked up especially under the charismatic leadership of Mullah Mohammad Omar and earned fame and popularity across the country. Its fame gained currency with the occurrence of an event on 20th September, 1994 when a civilian family traveling from Herat to Kandahar was interrupted and looted by a so called Mujahidin. Three innocent girls of the family were raped till death.[10] This brutal and murderous act sent a wave of adequate shock throughout the country especially among the religious elite. Mullah Mohammad Omar, the architect of the Taliban movement took up arms and disarmed the most "barbaric" factions and helped the oppressed and innocent. To some, the Taliban appeared as a mysterious force due to its deeds and penetrating ideology.[11] Mullah Omar in person moved into the countryside and was successful in bringing greater number of people within the fold of Taliban, the representative of a real Islamic thought in actual practice. With this, he conducted a series of military operations in 1994 and in due course of time all major cities like Kandahar, Herat, Jalalabad, Kabul etc. were captured so that by July, 1996 the Taliban established control over 29 provinces. Instantly he announced an Islamic government based on the Quran and Sharia thereby ruling out the scope of tribal consideration.[12]

Pakistan's Role - While it is true that Taliban owes much to the Madrassa education, some extraneous forces equally contributed to its growth. Some world powers, big and small, extended patronage to the Taliban in diverse forms. However, they had their personal interests to achieve. United States for instance, wanted to keep away Iran and Russia and use Taliban as a watch-dog for the American interests in the region.[13] Similarly, Pakistan's involvement in Afghan affairs is attributed to her strategy to bread 'fundamentalism' for onward transmission to the Kashmir problem. Pakistan fully supported and uses Taliban to fuel Kashmiri militancy.[14] In addition, Pakistan wanted to repatriate refugees who had flown to her country creating a number of problems. She also intended to establish a government in Afghanistan that could facilitate her to import gas and oil resources from Central Asian through the shortest Turkistan-Afghanistan-Pakistan route with the help of Saudi based oil company DELTA and United States UNOCAL. It is generally accepted that these oil companies had a proper understanding to the effect of laying out oil and gas pipe lines worth billions of dollars across Turkmenistan, Herat, Kandahar, Baluchistan, and Pakistan.[15] A stable government in Afghanistan and its amicable relations with Pakistan was quite essential for the accomplishment of these multifarious objectives. Since pre-Taliban regime in Afghanistan under Burhan-ud-Din Rabbani was adverse to Pakistan's move, Pakistan and its Inter Services Intelligence agency (ISI), therefore, sponsored the Taliban movement and its subsequent government with a view to fulfill its prime objective to transport Central Asian resources to Asian markets at quite cheap rates. Pakistan's active involvement perhaps for these considerations is amply vindicated by President Rabbani's letter read out by United Nations Secretary General to the General Assembly on 3 April, 1996.[16] Circumstantial evidence also points to the fact that the Taliban being the brain child of Pakistan was provided moral and material support to an appreciable extent. Indeed Pakistan's Interim Minister General Nasser-U-Din Babar in Benazir's government is actually said to had floated the idea of creating an Afghan Trade Development Cell to ensure Pakistan's direct access to Central Asia republics. For this purpose, Pakistan owned the Taliban and sent for them large shipment of arms from Karachi,[17] a fact which got reinforced with the seizure of a Pakistani convoy carrying arms by some local Afghan warlords under Mansur Ackekzai and Ustad Haleem on Kandahar-Karachi route. Pakistan even went to the extent of sending in its soldiers to Afghanistan in the name of Jihad, a reality that is amply substantiated by the observation of some merchants who noticed the presence of many arms bearing Pakistani in the Kabul's central market. In this way, Pakistan provided a major force to and served as a strong economic life-line for the Taliban through and through. She provided recruits to the Taliban and military training to those very Afghans who had come over for education through Deeni Madrassas. Because of which borders were always soft between Pakistan, and Afghanistan. This is because of Pakistan's whole-hearted moral and material support that some believe the Taliban to be the "brain-child" of Pakistan.[18] That the Taliban emerged as a strong military power controlling 85% of the Afghan territory is essentially due to the Pakistan's adequate patronage.

Conclusion - In conclusion, the Taliban was the product of both the internal and external forces. It cherished the dream of bringing back the Afghan society to the shore of structural change through traditional values and Islamic knowledge. In

a way, it was a reaction against the self-seeking and destructive elements claiming to be the Mujahidin. In their upcoming, however, the Deeni Madrassas operating in Afghanistan, Pakistan and bordering territory of Central Asia played a significant role. Here they were imparted religious education and military training as well. Because of which the minds of the Taliban volunteers were occupied by the Islamic thought for Jihad and social justice. No doubt, some nations were involved in it for their vested interests. Still then, it was indigenous for its leadership was in the hands of the natives who while advocating Islamic cause did not part with their strong traditions. But being inexperienced in running the administration of the country, the Taliban carried out some development activities to restore the damage suffered during the Soviet occupation of Afghanistan. They imposed strict laws on the Afghans thus alienating them. While it had set to address to the pervasive phenomenon of despair and chaos, it died down for its own follies.

References :-

1. Martin Ewans, Afghanistan: A New History, Lahore: Vanguard, 2002, pp.182.
2. Ram Major General Samay, The New Afghanistan; Pawn of America, New Delhi, 2004, pp.113.
3. Tayler and Francis, "Afghanistan Introductory Survey," The Europa-World Year Book, Vol. I, London, 2004, pp. 422.
4. Shreedhar Mahindra Ved, Afghan Buzkashi, Vol. II, Delhi, 2002, pp. 37.
5. Shaul Shay, The Endless Jihad, Mujahidin, The Taliban and Bin Laden, Herzliya, 2002, pp. 28.
6. Ahmad Rashid, Taliban, Islam, Oil and the Great Game in Central Asia, New York, 2000, pp. 21.
7. K. Warikoo, The Afghanistan Crisis: Issues and Perspectives, New Delhi, 2002, Preface, pp. XVII.
8. Tayler and Francis, "Afghanistan Introductory Survey," The Europa-World Year Book, Vol. I, London, 2004, pp. 422.
9. Taliban, Islam, Oil and the New Great Game in Central Asia, pp. 22.
10. Kamal Matinudin, Taliban Phenomenon 1994-1997, Oxford, 2000, pp. 26.
11. Ibid, pp. 10.
12. J. N. Dixit, An Afghan Diary Zahir Shah to Taliban, Delhi, 2002, pp. 496.
13. www.saagory/paper3/paper209html.com
14. Ram Major General Samay, The New Afghanistan; Pawn of America, New Delhi, 2004, pp.72.
15. Ralph N. Magnus and Eden Naby, Mullah, Marx and Mujahid, USA, 2000, pp. 190.
16. The Afghanistan Crisis: Issues and Perspectives, pp. 293.
17. Neamatullah Nojumi, The Rise of Taliban in Afghanistan, New York, 2002, pp. 117.
18. William Maley, (Ed.), Fundamentalism Reborn, London, 1998, pp. 85-86.

****

Political Feminism And India

Arsheed Aziz Khanday * Dr. Poornima Sharma **

Abstract - For ages women in India have been subjected to varying degrees of social discrimination, i.e., the female is confined to the traditionally ascribed role within the four walls of the house. She had been the object of prejudice in an orthodox milieu and had to be content with a secondary place in society. women are often presumed to have different assets and liabilities than men and behave differently, and as a result of this both men and women feel that sex makes a difference in politics. Participation of women in politics can be seen even at a low degree at different levels of law-making and decision making bodies. They have developed in themselves a sense of self-awareness and national consciousness. Things are changing and the Indian society is in a transitory phase. Women in India are on the warpath for their rights and right place in society. Education had inculcated a sense of individuality amongst women and had aroused an interest in their human rights. It was then that the feminist trend in Indian literature had appeared on the horizon & women came into conflict with the double standards of social law through ages & the conventional moral code.
Key Words - Women, Orthodox, Consciousness, Warpath, Education, Feminist.

Introduction - The movements and struggles launched for the women's causes particularly under justice and Socio-economic, political and cultural equality, are generally termed as the feminist movements. In modern times feminist movements and women's studies have become a fascinating area among the scholars throughout the world particularly in the third world countries of Asia, Africa and Latin America. In fact with the rise of feminist movements, women's causes are globalized and accordingly unified efforts are being carried out by the world level agencies to emancipate women from the socio political inhumanisations.[1]

Feminist was defined in terms of two long goals namely that "the freedom from oppression, involves not only equality but also the right of women to freedom of choice and the power to control their own lives with in and outside of the home. Having control over their lives and bodies is essential to ensure a sense of dignity and autonomy for every women," The second goal of feminism is the removal of all forms of inequality and oppression through the creation of more just social and economic order, nationally and internationally. This means the involvement of women in national liberation struggles in plans for national development, and in local and global strategies for change. Charlotte Bunch, the American black feminist, at the international Tribune of women started, "feminism is an and must be a transformational politics which address every aspect of life." The feminists accepted the 'working definition' of Alision Jaggares Which identifies feminism with the various social movements dedicated to ending the subordination of women".[2] "Many others also agree that feminist theories ultimately are the tools designed for a purpose – the purpose of understanding women's subordination in order to end it".[3]

Feminist movement - Feminism in general is the movement for the political social and educational equality of women with men. It had its roots in the Humanism of the eighteenth century and in the Industrial Revolutions. Both had generally contributed to the emergence of society from a federal aristocracy to an industrial democracy. Originally women had been regarded as inferior to men physically and intellectually and their minds where assumed to be unfit for much learning. Both law and theology had ordered their subjections. Although marry Astel and others had pladed for larger opportunities for women, the first great feminist document was of MaryWollstonecrafts "vindication of the rights of women" 1970. During the frunch revolution too, women's republican clubs demanded that Liberty, Equality and fraternity be applied regardless of sex. It was in 1848, however, the feminist movement became really materialized.[4] The "subjection of women" and the origin of the family, Private property and the state published by Jhon Stuart Mill and Engels respectively can be referred can be beginning of the serious academic discussions on women's issues.[5] Jhon Stured Mill was the most influential of the English advocates and his subjection of women. Is one of the earliest, as well as the most famous, works of propaganda. Mill observes that the progress of a country can be judged by the status of its women as she occupies a significant place in the family in particular and society in general. In this sense, women in politics cannot be viewed in isolation from the general picture of women in society. Political status of women refers to the degree of equality and freedom enjoyed by them in shaping and sharing of power and in the value given by the society to their role in the total development of society and polity.

By the 1980's, many writers identified many theories such as liberal, socialistic and radical theories of feminism. Some other classification also came such, as post-modern feminism, stand point feminism, power feminism, victim feminism and new feminism.[6] The liberal theories that developed from the seventeenth century onwards believe that individuals have the right to own the property, sell their labor

* Research Scholar (Political Science) R. D. University, Jabalpur (M.P.) INDIA
** H.O.D (Political Science) Hitkarni Science, Commerce & Arts College, Deotal Garaha (M.P.) INDIA

and go about their lives within legal framework that protects them from arbitrary interference by governments or other individuals. Later, these rights were combined with the democratic claim that the individuals also have a right to choose their own representatives to govern them. However, most of the early liberal democratic theorists denied these rights to women. Some women publically argued that they were just as intelligent and rational as men and that even if they appeared inferior, it was because of their lack of education rather than a quality inherent in themselves.

The feminist of the eighteenth century claimed that women's equal worth entitled them to the same rights as men in terms of education, employment property and the protection of civil law. During the nineteenth century feminists like Elizabeth Cody Station and Susin Anthony in united states and Harriet Taylor and JhonStard Mill in Britain emphasized women's citizenship rights on the same basis as men. These ideas where further extended to the twentieth century, when feminists insisted that women are entitled to participate in the public world of politics and paid employment.Socialist feminists promise equal rights and opportunities to all individuals, stress economic and social rights and freedom from exploitation and priorities to the interests of the working class people. At the social point of view the socialist theory views women as the exploited class. The theory suggests that women's oppression can be ended by the total abolition of capitalist economy based on private ownership and its replacement by a communist system with service motto than the pursuit of profit. All socialist feminist stress economic and social rights and freedom from exploitation. Many feminist have argued that only in the context of a general movement of economic equality that the needs of all groups of women, rather than those of an elite minority, can be met. The socialist feminist are against the sexual division of labour and wish the full participation of men in child rearing, and stress on the social construction of feminist and change the particular ways in which gender is constructed.

Socialism covers a huge range of political theories and practices from reformist social democracy to revolutionary Marxist Communism. Many feminist claimed that a systematic application of Marxist theory holds the key to ending women's oppression, and the attempt to utilize Marxism for feminist ends has been an important stand in recent feminist thought. Some others claim that the goals of feminist thought. Some others claim that the goals of feminism cannot be separated from those of feminism cannot be separated from those of socialism, and that Marxist theory can contribute to feminist understanding.[7]

Political Feminism in India -With the slogan of decentralization of political power and revitalization of Panchayati Raj system, started under the regime of Rajiv Gandhi in 1990s, women's issues and their political degradation attained the central focus of debate. As a result, through the 73rd and 74thConstitutional Amendment Act of 1993 and 1994, women became politically empowered at least at the grassroots level, as a starting point. Thus political feminism reached to a new epoch in Indian politics today. In an overview ,political feminism begins with the movements and the constitutional efforts aimed at enfranchising women. In many of the countries including the Western developed countries women attainting voting rights through a series of struggles. A lot of legislations were put into practice for this purpose. The right of voting is considered as the first step towards their political position and status. Hence, it seems worth looking at the process of women enfranchisement in different parts of the world including India.

In India, women's right to equal political participation including their right to vote, was accepted very gracefully much earlier than most of the Western countries. With the dawn of twentieth century there formed some women's organizations like the All India Women's Conference, the National Council for women, etc., Women's Indian Association of Madras was founded by Margaret Cousins under the inspiration of Annie basant(first elected women president of india National Congress 1917) under the auspices of this organization a delegation led by Sarojini Naidu, with the support of Mahatma Gandhi met lord Morley when he visited India in 1917. It demanded equal voting rights for women along with men. That was indeed the first attempt made by women for their political rights.[8] Sarojini Naidu was the first Indian women to make politics her full-time occupation It was Gandhiji who gave a new direction, strength and new inspiration to the freedom movement and drew into it women in large numbers. At the time of Quite India Movement (1942) when all the top leaders were arrested and the movement became practically leaderless, women joined hands with others and carried on the processions, holding meetings, demonstrations and organizing strikes. [9]

The constitution of India guarantee's to all men and women equal political rights. But ironically, women are still deprived a lot and do not get their due share, and the social norms customs, traditions, the economic factors and the cultural constraints all block their way. To beat it all, they remain ignorant of their legal rights. Women have almost accepted their secondary role by devaluating themselves by looking upon men as their protectors.

References :-

1. Sarala Ranganathan, Women and social order: A profile of major Indicators and determinants, Kanishka Publishers, New Delhi, 1998, p.2.
2. Jagger A.,Introduction: Living with contradictions, Harvester, Brigton, 1994, p.2.
3. Jagger and Rothenberg (ed.), Feminist Frameworks: Alternative Theoritcal Accounts of the relations between women and men McGraw Hill, New York, 1993, p. xvii.
4. Clark F. Ansley (ed.) The Colombia Encyclopedia,Colombia University press, New York, 1993 1946, pp. 614-15.
5. Clarke F. Ansley (ed.) The Colombia Encyclopedia, op. cit. p. 1918.
6. Valerie Bryson, Feminist debates: Issues of theory and practice, Micmillan, Hong kong, 1999, P.8.
7. Wolf. N. Fire with Fire: The New Female Power & How it will change the 21century, Chatto & Windus, London 1993, p.2.
8. Kameswarma Kuppa Swamey, "Women and political awaking", Roshni, July September 1987, p.8.
9. Vijay Agnew, Elite Women in indian politics, Vikas publishing House, New Delhi, 1979, p.110.

नेपाल की राजधानी काठमांडू में सम्पन्न हुए दक्षेस का 18वाँ शिखर सम्मेलन के सन्दर्भ में - भारतीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी की भूमिका

डॉ. जे. के. संत *

प्रस्तावना – दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन(दक्षेस) दक्षिण एशियाई देशों का संगठन है, जिसकी स्थापना वर्ष 1985 में की गई थी, यह संगठन सामूहिक आत्मनिर्भरता पर जोर देते हुए आर्थिक, तकनीकी, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास के प्रति कटिबद्ध है, इसके सात संस्थपक सदस्य हैं- बाग्लादेश, भूटान, भारत, मालदीव, नेपाल, पाकिस्तान और श्रीलंका, वर्ष 2005 में अफगानिस्तान दक्षेस का आठवॉ सदस्य बना था।

दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन 'दक्षेस'(SAARC- south asian association for regional cooperation) का 18वॉ शिखर सम्मेलन 26-27 नवम्बर 2014 को नेपाल में काठमांडू में सम्पन्न हुआ, तीन वर्ष के अन्तराल पर यह शिखर सम्मेलन नवम्बर 2011 में मालदीव में आयोजित हुआ था। नेपाली प्रधानमंत्री सुशील कोइराला की मेजबानी में आयोजित 18वें शिखर सम्मेलन का थीम था, दक्षेस के सभी आठ सदस्य देशों के राष्ट्र प्रमुख दो दिन के इस शिखर सम्मेलन में शामिल थे इनमें मेजबान प्रधानमंत्री सुशील कोइराला के अतिरिक्त भारतीय प्रधानमंत्री दरेन्द्र मोदी, अफगानिस्तान के राष्ट्रपति अशरफ गनी, बांग्लादेश की प्रधानमंत्री शेख हसीना, भूटान के प्रधानमंत्री त्शेरिंग टोबगे, मालदीव के राष्ट्रपति अब्दुल्ला यामीन, पाकिस्तान के प्रधानमंत्री नवाज शरीफ व श्रीलंका के राष्ट्रपति महिंद्रा राजपक्षे शामिल थे, इनके अतिरिक्त पर्यवेक्षक राष्ट्रों के प्रतिनिधि भी शिखर सम्मेलन में उपस्थित थे (चीन, यूरोपीय संघ, ईरान, जापान, द. कोरिया, मॉरिशस, म्यांमार व अमरीका सहित कुल नौ देशों को दक्षेस में पर्यवेक्षक का दर्जा प्राप्त है)

1. भारतीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की शिखर सम्मेलन में भागीदारी– शिखर सम्मेलन में भागीदारी के लिए भारतीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी 25 नवम्बर 2014 को ही काठमाण्डू पहुॅच गए थे, चार माह के भीतर ही भारतीय प्रधानमंत्री की नेपाल की यह दूसरी यात्रा थी, इससे पूर्व अगस्त 2014 में द्विपक्षीय सम्बन्धों के सिलसिले में नेपाल की यात्रा उन्होंने की थी, नेपाली प्रधानमंत्री सुशील कोइराला भी नरेन्द्र मोदी के शपथ ग्रहण समारोह में भाग लेने के लिए मई 2014 में भारत आए थे, अपने शपथ ग्रहण के समय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी यद्यपि सभी दक्षेस नेताओं से मिले थे, तथापि दक्षेस के शिखर सम्मेलन में उनकी यह पहली ही भागीदारी थी, वस्तुत: शिखर सम्मेलन में उपस्थित दक्षेस राष्ट्र प्रमुखों में से 6 राष्ट्र प्रमुख ऐसे थे जिन्होंने पहली बार ही दक्षेस के किसी शिखर सम्मेलन में भाग लिया था।

2. भारतीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की शिखर सम्मेलन में घोषणाएं एवं प्रस्ताव – शिखर सम्मेलन के उद्घाटन सत्र को सम्बोधित करते हुए दक्षेस देशों के लिए अनेक घोषणाएं भारतीय प्रधानमंत्री ने की तीन से पॉच वर्ष की अवधि के लिए कारोबारी वीजा व तात्कालिक चिकित्सा वीजा की घोषणाएं इनमें शामिल थी, हर व्यक्ति व राष्ट्र की जीवन में अच्छे पड़ोस को समान रुप से महत्वपूर्ण उन्होंने बताया तथा दक्षेस के सभी देशों को भारत में कारोबार के समान अवसर प्रदान करने का आश्वासन उन्होंने दिया, प्रधानमंत्री ने कहा कि दक्षेस के रुप में हम उस गति से आगे नहीं बढ़ पाये हैं जिसकी उम्मीद हमारी जनता करती है, इसका सम्भावित कारण उन्होंने कहा कि यह हो सकता है कि हम अपने मतभेदों की दीवार के पीछे अटके हैं, तथा अतीत की छाया से उबरने में हिचक रहे हैं, उन्होंने स्पष्ट किया कि इससे हमारे मतभेद नहीं सुलझेंगे, बल्कि हम अवसरों से भी निश्चित रुप से वंचित रह जाएंगे, भारतीय प्रधानमंत्री ने कहा कि इस क्षेत्र के लिए भारत का सपना पॉच स्तम्भों- व्यापार, निवेश, सहयोग, अपनी जनता के बीच सम्पर्क व सभी जगह निर्बाध सम्पर्क पर निर्भर करता है, उन्होंने कहा कि सीमा की बाधाएं प्रगति रोकती हैं, जबकि अन्तर्राष्ट्रीय भागीदारी इसकी रफ्तार बढ़ाती है, पाकिस्तान के असहयोग के चलते दक्षेस का यह शिखर सम्मेलन एक बार तो पूर्ण विफलता के कगार पर जा पहुॅचा था, ऊर्जा सहयोग हेतु क्षेत्रीय समझौते, रेल सम्पर्क सम्वर्द्धन हेतु दक्षेस क्षेत्रीय रेल समझौते व सड़क सम्पर्क बढ़ाने के लिए दक्षेस मोटर समझौते सहित तीन महत्वपूर्ण समझौतों पर हस्ताक्षर इस सम्मेलन में किए जाने थे, वर्षों के प्रयासों के पश्चात् यह प्रस्ताव शिखर सम्मेलन में मंजूरी के मुकाम तक पहुॅचे थे, किन्तु पाकिस्तान के रवैए के चलते केवल ऊर्जा समझौते पर हस्ताक्षर ही शिखर सम्मेलन में हो सके, पाकिस्तान ने अपनी आंतरिक तैयारियॉ पूरी न हो पाने के कारण शेष दोनों समझौते सम्पन्न करने को फिलहाल टलवा दिया है, रेल समझौते व मोटर वाहन समझौते को तीन माह के भीतर परिवहन मंत्रियों के बैठक में अन्तिम रुप देने का लक्ष्य अब निर्धारित किया गया है, सम्मेलन में हस्ताक्षरित ऊर्जा समझौते के शीघ्रातिशीघ्र कार्यान्वयन की बात सम्मेलन में स्वीकार किए गए काठमांडू घोषणा-पत्र में कही गई है, 36 बिन्दुओं वाले इस घोषणा पत्र में दक्षेस से जुड़े सभी पुराने मुद्दों के साथ-साथ ब्ल्यू इकोनॉमी (समुद्र आधारित अर्थव्यवस्था), माइग्रेशन व 2015 के बाद की परिस्थितियों पर भी बातें कही गई हैं, सभी तरह के आतंकवाद की भर्त्सना करते हुए एक 'साइबर क्राइम मॉनिटरिंग डेस्क की स्थापना को सहमति सदस्य देशों ने इसमें व्यक्त की है, 'सार्क' के लिए समर्पित उपग्रह की स्थापना के भारत के भारत के प्रस्ताव का घोषणा-पत्र में स्वागत किया गया है, वर्ष 2016 को दक्षेस सांस्कृतिक विरासत का वर्ष इसमें घोषित किया गया है, दक्षेस का शिखर सम्मेलन आगे से दो-दो वर्ष के अन्तराल पर तथा आवश्यकता पड़ने पर इससे पूर्व आयोजित करने, मंत्रिपरिषद् तथा स्थायी समिति की बैठके वर्ष में कम-से-कम एक बार तथा कार्यक्रम समिति के बैठके वर्ष में कम-से-कम दो बार सम्पन्न करने को सहमति घोषणा-पत्र में व्यक्त की गई है, दक्षेस का

* सहायक प्राध्यापक (राजनीति शास्त्र) शासकीय तुलसी महाविद्यालय, अनूपपुर (म.प्र.) भारत

आगामी 19वॉ शिखर सम्मेलन पाकिस्तान में आयोजित किया जाएगा।

3. नेपाल के साथ भारतीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की महत्वपूर्ण समझौतों/सहमति-पत्रों पर द्विपक्षीय वार्ता – काठमांडू में दक्षेस शिखर सम्मेलन से इतर सदस्य राष्ट्रों के राष्ट्र प्रमुखों से भी मोदी की अनौपचारिक वार्ताएं हुईं, किन्तु पाकिस्तानी प्रधानमंत्री नवाज शरीफ व उनके बीच दूरी बनी रही द्विपक्षीय सम्बन्धों पर मेजबान प्रधानमंत्री सुशील कोइराला के साथ भारतीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की विस्तृत वार्ता हुई, शिखर सम्मेलन शुरु होने से एक दिन पूर्व 25 नवम्बर को सम्पन्न इस वार्ता के पश्चात् द्विपक्षीय सहयोग के एक दर्जन महत्वपूर्ण समझौतों/सहमति-पत्रों पर हस्ताक्षर किए गए, आधारिक संरचना के लिए नेपाल को एक अरब डॉलर (रु 600 करोड़) की सहायता जिसकी घोषणा प्रधानमंत्री मोदी ने अगस्त 2014 में अपनी नेपाल यात्रा के अवसर पर की थी, के लिए समझौता इसमें शामिल है, एक अन्य समझौते के तहत् रु 600 करोड़ की लागत से भारत का सतलज जलविद्युत् निगम नेपाल में अरुण नदी पर 900 मेगावाट का जलविद्युत् संयंत्र स्थापित करेगा, जिससे विद्युत् उत्पादन 2021 से हो सकेगा, इस संयंत्र से उत्पादित विद्युत् का 22 प्रतिशत भाग नेपाल को मुफ्त में दिया जाएगा, एक अन्य समझौते के तहत् भारतीय पर्यटक अब (अधिकतम रु 25 हजार तक) रु 500 व 1000 के नोट भी नेपाल ले जा सकेंगे, इससे पूर्व अधिकतम रु 100 के नोट ले जाने की अनुमति भारतीय पर्यटकों को थी, हस्ताक्षरित समझौतों में एक मोटर वाहन समझौता भी है जिसके तहत् दोनों देशों के बीच निर्धारित मार्गों पर बसों व अन्य वाहनों के परिचालन को परमिट दिए जाएंगे तथा साथ ही पर्यटकों के निजी वाहनों की आवाजाही भी सुगमता से हो सकेगी, पारस्परिक पर्यटन को बढ़ावा यूथ एक्सचेंज व पारम्परिक औषधियों के क्षेत्र में सहयोग, नेपाल में पुलिस प्रशिक्षण अकादमी की स्थापना तथा काठमांडू-वाराणसी, लुम्बिनी-बोधगया व जनकपुर-आयोध्या के बीच जुड़वॉ शहर सम्बन्धी समझौते दोनों देशों के बीच 25 नवम्बर, 2014 को हस्ताक्षरित समझौतों में सामिल हैं। इनके साथ ही काठमांडू व नई दिल्ली के बीच सीधी बस सेवा की शुरुआत भी प्रधानमंत्री मोदी ने काठमांडू में झंडी दिखा कर की, एक दिन पूर्व ही भारत के केन्द्रीय मंत्री नितिन गडकरी ने नई दिल्ली के अम्बेडकर से झंडी दिखाकर इसे काठमांडू के लिए रवाना किया था, भारत की सहायता से काठमांडू के निर्मित एक ट्रॉमा सेंटर का उद्घाटन भी प्रधानमंत्री मोदी ने 25 नवम्बर, 2014 को किया, अपनी इस यात्रा के दौरान प्रधानमंत्री मोदी ने भारत में निर्मित एक हल्का ध्रुव मार्क-III हेलीकॉप्टर नेपाल को उपहार में दिया, 25 नवम्बर, 2014 को काठमांडू में आयोजित एक समारोह में प्रधानमंत्री मोदी ने इस हेलीकॉप्टर की चाबियॉ नेपाली प्रधानमंत्री सुशील कोइराला को भेंट कीं, सैन्य व नागरिक अभियानों के लिए हिन्दुस्तान एयरोनॉटिक्स लि. द्वारा निर्मित इस हेलीकॉप्टर का मूल्य रु 40.23 करोड़ बताया गया है।

4. दक्षेस बैठक में मोदी ने शरीफ को नजरंदाज किया – भारत और पाकिस्तान के रिश्तों पर जमीं बर्फ नेपाल की राजधानी में चल रहे 18वें दक्षेस शिखर सम्मेलन के दौरान दिनांक 26.11.2014 बुधवार को साफ दिखाई पड़ी। मंच पर अपनी सीट पर बैठने के बाद पाकिस्तान के प्रधानमंत्री नवाज शरीफ ने अपने भारतीय समकक्ष की ओर देखना भी मुनासिब नहीं समझा।

5. मोदी-शरीफ के हाथ मिलाने में किसने निभाई अहम भूमिका- दिनांक 28.11.2014 दिन शुक्रवार को नेपाल के प्रधानमंत्री और सार्क शिखर सम्मेलन के मेजबान सुशील कोइराला ने भारतीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी और उनके पाकिस्तानी समकक्ष नवाज शरीफ के आपस में एक-दूसरे से हाथ मिलाने को अहम करार दिया।

6. मोदी-शरीफ ने गर्मजोशी से मिलाए हाथ, सार्क सम्मेलन में ऊर्जा समझौते पर भी हुए दस्तखत – दिनांक 27.11.2014 दिन गुरुवार को खटाई में पड़ता दिखाई दे रहा सार्क शिखर सम्मेलन कुछ हद तक कामयाब हो गया, जब सभी सदस्य देशों के बीच हुए ऊर्जा समझौते पर पाकिस्तान ने भी दस्तखत कर दिये। बताया गया कि पाकिस्तान के मान जाने की खबर सार्क नेताओं के उस अनौपचारिक रिट्रीट के बाद आई, जो धुलीखेल में आयोजित किया गया था।

7. नरेन्द्र मोदी की पसंद शाकाहारी, नवाज की पसंद हलाल गोश्त- दिनांक 26.11.2014 दिन बुधवार को दक्षेस शिखर सम्मेलन में भाग लेने काठमांडो आए सदस्य देशों के नेताओं की प्राथमिकताओं के साथ ही खाने का जायका और पसंद भी एकदम अलग है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी को जहां कम तेल वाला सादा शाकाहारी भोजन परोसा गया, वहीं उनके पाकिस्तानी समकक्ष नवाज शरीफ का दस्तरखान हलाल गोश्त से सजाया गया।

8. सार्क देशों को बिजनेस वीजा देगा भारत – पीएम नरेंद्र मोदी- दिनांक 26.11.2014 दिन बुधवार को प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने कहा कि भारत, सार्क देशों को तीन से पांच साल का व्यावसायिक वीजा जारी करेगा। साथ ही उन्होंने प्रक्रियाओं को सरल तथा सुविधाओं को बेहतर आह्वान किया।

पहला दक्षेस शिखर सम्मेलन से लेकर 18वां दक्षेस शिखर सम्मेलनों पर एक नजर –

क्र0	तारीख	देश	मेजबान शहर	मेजबान नेता
01	7-8 दिसम्बर, 1985	बांग्लादेश	ढाका	अताउर रहमान
02	16-17 नवम्बर, 1986	भारत	बंगलुरु	राजीव गांधी
03	2-4 नवम्बर, 1987	नेपाल	काठमांडू	मरीच मान सिंह श्रेष्ठ
04	29-31 दिसम्बर, 1988	पाकिस्तान	इस्लामाबाद	बेनजीर भुट्टो
05	21-23 नवम्बर, 1990	मालदीव	माले	मौमून अब्दुल गयूम
06	21 दिसम्बर, 1991	श्रीलंका	कोलम्बो	छीनगिरी बंदा विजयतुंग
07	10-11 अप्रैल, 1993	बांग्लादेश	ढाका	शेख हसीना वाजिद
08	2-4 मई, 1995	भारत	नई दिल्ली	पी.वी. नरसिंह राव
09	12-14 मई, 1997	मालदीव	माले	मौमून अब्दुल गयूम
10	29-31 जुलाई, 1998	श्रीलंका	कोलम्बो	श्रसिमाओ भंडारनायके
11	4-6 जनवरी, 2002	नेपाल	काठमांडू	शेर बहादुर देउबा
12	5-6 जनवरी, 2004	पाकिस्तान	इस्लामाबाद	जफरुल्ला खान जमाली
13	12-13 नवम्बर, 2005	बांग्लादेश	ढाका	खालिदा जिया
14	3-4 अप्रैल, 2007	भारत	नई दिल्ली	मनमोहन सिंह
15	1-3 अगस्त, 2008	श्रीलंका	कोलम्बो	श्री विक्रमनायके
16	28-29 अप्रैल, 2010	भूटान	थिम्पू	जिग्मे थिनले
17	10-11 नवम्बर, 2011	मालदीव	आडू सिटी	मोहम्मद नशीद
18	26-27 नवम्बर, 2014	नेपाल	काठमांडू	सुशील कोइराला
19	2016 (पाकिस्तान में प्रस्तावित)			

दक्षेस के मुख्य उद्देश्य –

1. दक्षिण एशिया क्षेत्र की जनता के कल्याण एवं उनके जीवन-स्तर में सुधार करना।
2. दक्षिण एशिया के देशों की सामुहिक आत्म-निर्भरता में वृद्धि करना।
3. क्षेत्र के आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक विकास में तेजी लाना।
4. आपसी विश्वास, सूझ-बूझ तथा एक-दूसरे की समस्याओं का मूल्यांकन करना।

5. आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, तकनीकी और वैज्ञानिक क्षेत्र में सक्रिय सहयोग एवं पारस्परिक सहायता में वृद्धि करना।
6. अन्य विकासशील देशों के साथ सहयोग में वृद्धि करना, तथा
7. सामान्य हित के मामलों पर अन्तर्राष्ट्रीय मंचो पर आपसी सहयोग मजबूत करना।
8. क्षेत्र में आर्थिक वृद्धि, सामाजिक उन्नति एवं सांस्कृतिक विकास को त्वरित गति प्रदान करना एवं सभी लोगों को सम्मानपूर्वक जीवन जीने एवं उनकी सम्पूर्ण क्षमताओं को साकार करने के अवसर प्रदान करना।

दक्षेस के मुख्य सिद्धान्त –

1. संगठन के ढांचे के अन्तर्गत सहयोग, समानता, क्षेत्रीय अखण्डता, राजनीतिक स्वतन्त्रता, दूसरे देशों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना तथा आपसी लाभ के सिद्धान्तों का सम्मान करना।
2. इस प्रकार का सहयोग द्विपक्षीय और बहुपक्षीय सहयोग का स्थान नहीं लेगा बल्कि उनका पूरक होगा।
3. इस प्रकार का सहयोग द्विपक्षीय और बहुपक्षीय उत्तरदायित्वों का विरोधी नहीं होगा।

दक्षेस की सफलता के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं –

1. महाशक्तियों को क्षेत्र से दूर रखा जाए।
2. द्विपक्षीय और बहुपक्षीय को बढ़ावा दिया जाए।
3. अन्तर्राष्ट्रीय मंचो पर दक्षेस देशों द्वारा सर्वसम्मत दृष्टिकोण अपनाया जाए।
4. सहयोग के नए क्षेत्र ढूंढे जाएं, विशेषकर व्यापार, उद्योग, वित, ऊर्जा और मुद्रा और क्षेत्रों में सहयोग को बढ़ावा दिया जाए।
5. सांस्कृतिक सम्पर्क एवं एक–दूसरे के देश के लोगों की आवाजाही को प्रोत्साहन दिया जाए।
6. दक्षेस को आर्थिक मंच के साथ राजनीतिक विमर्श का मंच भी बनाया जाए।
7. टकराव पैदा करने वाले मुद्दों को टाला नहीं जाए बल्कि बातचीत द्वारा इनका समुचित समाधान किया जाए।

सहयोग क्षेत्रों का निर्धारण एवं निष्कर्ष – दक्षेस का मूल आधार क्षेत्रीय सहयोग पर बल देना है। अगस्त 1983 में क्षेत्र ऐसे नौ क्षेत्र रेखांकित किए गए थे– कृषि, स्वास्थ सेवाएं, मौसम विज्ञान, डाक–तार सेवाएं, ग्रामीण विकास, विज्ञान तथा तकनीकी, दूरसंचार तथा यातायात, खेलकूद तथा सांस्कृतिक सहयोग। दो वर्ष बाद ढाका में इस सूची में कुछ और विषय जोड़ दिए गए– आतंकवाद की समस्या, मादक–द्रव्यों की तस्करी तथा क्षेत्रीय विकास में महिलाओं की भूमिका। इस प्रकार क्षेत्रीय सहयोग का मुख्य उद्देश्य सार्क देशों के आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास की गति को त्वरित करना है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :–

1. समसामयिक वार्षिकी 2015 Vol-1
2. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध डॉ0 बी.एल. फड़िया 19वां संस्करण,साहित्य भवन पब्लिकेशन्स– आगरा।
3. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध प्रो0 बी0 एम0 जैन राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
4. प्रतियोगिता दर्पण।
5. दैनिक भास्कर।
6. वेब साइट।

****

भारत में पंचायती राज की स्थापना – लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का एक सफल प्रयोग

महेश कुमार रचियता *

शोध सारांश – इस अध्ययन में लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण तथा पंचायती राज की स्थापना, महत्व तथा समस्याओं को जानने का प्रयास किया गया है जिसमें स्वतन्त्र भारत में सर्वप्रथम पंचायती राज की स्थापना, बलवन्त राय मैहता कमेटी की सिफरिशों के आधार पर 2 अक्टूबर 1959 को तीन स्तरीय पंचायती राज की स्थापना की गई जो पूर्ण रूप से लागू नहीं हो सकी उसके बाद इसे संवैधानिक दर्जा देने के लिए 73वां संवैधानिक संशोधन संसद में पेश किया जो 1992 को पास हुआ और 1993 में लागू हुआ। संसद ने इस व्यवस्था का एक सामान्य ढांचा निर्धारित कर दिया जिसके आधार पर राज्यों को पंचायती राज व्यवस्था लागू करने के लिए कहा गया।

शब्द कुंजी – पंचायती राज, विकेन्द्रीकरण, सामुदायिक विकास, प्रशासन, ग्रामसभा।

प्रस्तावना – भारत में ग्राम पंचायतों का इतिहास बहुत पुराना है। प्राचीन काल में आपसी झगड़ों का फैसला पंचायतें ही करती थी। परन्तु अंग्रेजी राज के जमाने में पंचायतें धीरे–धीरे समाप्त हो गयी और सब काम प्रान्तीय सरकारें करने लगी। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद राज्यों की सरकारों ने पंचायतों की स्थापना की ओर विशेष ध्यान दिया। प्रो. रजनी कोठारी के अनुसार, राष्ट्रीय नेतृत्व का एक दूरदर्शितापूर्ण कार्य था पंचायती राज की स्थापना इसमें भारतीय राज–व्यवस्था का विकेन्द्रीकरण हो रहा है। इसकी शुरूआत का श्रेय पं. जवाहरला नेहरू को है। पं. नेहरू का कहना था कि गांवों के लोगों को अधिकार सौंपना चाहिए। उनको काम करने दो चाहे वे हजारों गलतियां करें। इससे घबराने की जरूरत नहीं। पंचायतों को अधिकार दो।

वस्तुत: ग्रामीण विकास की अनिवार्य आवश्यकताओं ने ही वर्तमान पंचायती राज संस्थाओं की सृष्टि की थी। सामुदायिक विकास कार्यक्रम के समय ऐसा अनुभव किया गया कि लोगों की सहभागिता के बिना ग्रामीण समुदाय का पुनर्निर्माण सम्भव नहीं है और वह सहभागिता केवल पंचायती राज संस्थाओं के ही माध्यम से प्राप्त की जा सकती है।

पंचायती राज का नया प्रतिमान : 73वां संविधान संशोधन – संविधान के 73वें संशोधन अधिनियम 1992 ने पंचायत राज व्यवस्था को न केवल नई दिशा प्रदान की है, अपितु यह लोकतन्त्र की जड़ों को सींचने में भी सार्थक सिद्ध हुआ है। लगभग चार दशक पूर्व स्थापित पंचायती राज व्यवस्था जब डममगाने लगी तो इसी संशोधन ने उसे पुन: सम्बल प्रदान किया।

संविधान के 73वें संशोधन द्वारा संविधान में नया अध्याय 9 जोड़ा गया है। अध्याय 9 द्वारा संविधान में 16 अनुच्छेद और एक अनुसूची–ग्यारहवीं अनुसूची जोड़ी गई है। 24 अप्रैल 1993 से 73वां संविधान संशोधन अधिनियम 1993 लागू किया गया है।

संविधान (73वां) अधिनियम 1992 के पारित होने से देश के संघीय लोकतान्त्रिक ढांचे में एक नए युग का सूत्रपात हुआ है और पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा प्राप्त हुआ है। यह अधिनियम असम, त्रिपुरा, मेघालय और मिजोरम के अनुसूचित 5 व 6 क्षेत्रों, नागालैण्ड राज्य मणिपुर राज्य के पहाड़ी क्षेत्रों, जिनके लिए जिला परिषदें मौजुद हैं तथा पं. बंगाल राज्य के दार्जिलिंग क्षेत्र में लागू नहीं है। इस अधिनियम को अभी तक जम्मू कश्मीर में भी लागू नहीं किया गया। इसके परिणाम स्वरूप देश में ग्राम स्तर पर 232278 पंचायतों, मध्य स्तर पर 6052 पंचायतों और जिला स्तर पर 535 पंचायतों के चुनाव करवा लिए हैं। ये पंचायतें लगभग 29.2 लाख चुने गए प्रतिनिधियों द्वारा संचालित की जा रही है।

यद्यपि संविधान के अनुच्छेद 243–छ में पंचायतों की स्व–शासन की संस्थाओं के रूप में कल्पना की गई है लेकिन शक्तियों और कार्य सौंपने का कार्य राज्य विधानमण्डल की अच्छा के अधीन रखा गया है इसकी प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

ग्राम सभा – ग्राम सभा गांव के स्तर पर ऐसी शक्तियों का प्रयोग करेगी और ऐसे कार्यों को करेगी जो राज्य विधानमण्डल विधि बनाकर उपलब्ध करें।

पंचायतों का गठन – अनुच्छेद 243ख त्रिस्तरीय पंचायती राज का प्रावधान करता है। प्रत्येक राज्य में ग्राम स्तर, मध्यवर्ती स्तर और जिला स्तर पर पंचायती राज संस्थाओं का गठन किया जाएगा। किन्तु उस राज्य में जिसकी जनसंख्या 20 लाख से अधिक नहीं है वहां मध्यवर्ती स्तर पर पंचायतों का गठन करना आवश्यक नहीं होगा।

पंचायतों की संरचना – राज्य विधानमण्डलों को विधि द्वारा पंचायतों की संरचना के लिए उपलब्ध करने की शक्ति प्रदान की गई है। परन्तु किसी की शक्ति प्रदान की गई है। परन्तु किसी भी स्तर पर पंचायत के प्रादेशिक क्षेत्र की जनसंख्या और ऐसी पंचायत में निर्वाचन द्वारा भरे जाने वाले स्थानों की संख्या के बीच अनुपात समस्त राज्य में यथासम्भव एक ही होगा।

पंचायतों के सभी स्थान पंचायत राज्य क्षेत्र के प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों से प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा चुने गए व्यक्तियों से भरे जाऐगें। इस प्रयोजन के लिए प्रत्येक पंचायत क्षेत्र को ऐसी रीति से निर्वाचन क्षेत्रों में विभाजित किया जाएगा कि प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र की जनसंख्या और उसको आबंटित स्थानों की संख्या के बीच अनुपात समस्त पंचायत क्षेत्र में यथासाध्य एक ही हो।

ग्राम स्तर पर पंचायत का अध्यक्ष ऐसी रीति से चुना जाएगा जो राज्य विधानमण्डल विधि द्वारा विहित करें। मध्यवर्ती और जिला स्तर पर पंचायत के अध्यक्ष का निर्वाचन उसके सदस्यों द्वारा अपने में से किया जाएगा।

* प्राध्यापक (राजनीतिक विज्ञान) डॉ. बी.आर.ए. राज. महाविद्यालय, श्रीगंगानगर (राज.) भारत

पंचायतों में आरक्षण – प्रत्येक पंचायत में क्षेत्र की जनसंख्या के अनुपात में अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए स्थान आरक्षित रहेगे। ऐसे स्थानों को प्रत्येक पंचायत में चक्रानुक्रम में आबंटित किया जाएगा। आरक्षित स्थानों में से 1/3 स्थान अनुसूचित जातियों और जनजातियों की स्त्रियों के लिए आरक्षित रहेगें। प्रत्येक पंचायत में प्रत्यक्ष निर्वाचन से भरे गए स्थानों की कुल संख्या के 1/3 स्थान जिनके अन्तर्गत अनुसूचित जातियों और जनजातियों की स्त्रियों के लिए आरक्षित स्थानों की संख्या सम्मिलित है। महिलाओं के लिए आरक्षित रहेगें और चक्रानुकम से पंचायत के विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों को आबंटित किए जाऐगें।

पंचायतों का कार्यकाल – पंचायती राज संस्थाओं का कार्यकाल 5 वर्ष होगा। किसी पंचायत के गठन के लिए निर्वाचन 5 वर्ष की अवधि के पूर्व और विघटन की तिथि से 6 माह की अवधि के अवसान से पूर्व करा लिया जाएगा।

वित्त आयोग – संविधान के अनुच्छद 243-झ में पंचायतों की वित्तीय स्थिति की समीक्षा करने और अनुच्छेद 243-ज में उल्लिखित प्रमुख मामलों को विनियमित करने के सिद्धान्तों के सम्बन्ध में राज्यपाल से सिफारिशें करने के लिए राज्य वित आयोग के गठन का प्रावधान किया गया है।

दसवें वित आयोग ने राज्य वित आयोगों की रिपोर्टों के न होने के कारण 1996-2000 की अवधि के लिए पंचायती राज संस्थाओं को 4,381 करोड़ रूपये का तदर्थ प्रावधान किया था।

ग्यारहवें वित आयोग ने ग्रामीण स्थानीय निकायों के लिए 1600 करोड़ रूपये प्रति वर्ष की सिफारिश की है और कुल अनुदान में से 197.06 करोड़ रूपये पंचायतों के वितपोषण पर डाटा बेस के विकास के लिए और 98.61 करोड़ रूपये की राशि इन अनुदानों के प्राथमिक प्रभार के रूप में पंचायतों के लेखों के रख-रखाव के लिए निर्धारित की है। आयोग ने यह भी सिफारिश की है कि जहां पर चयनित स्थानीय निकाय अस्तित्व में नही है कि जहां पर ट्रस्ट के रूप में स्थानीय निकायों की निधियों को अपने पास रखेगी और यह कि केन्द्र सरकार ऐसे निकायों के मामले में भी सिफारिश किए गए अनुदान का कुछ भाग अपने पास रखेगी और यह कि केन्द्र सरकार ऐसे निकायों के मामले में भी सिफारिश किए गए अनुदान का कुछ भाग अपने पास रखेगी और यह कि केन्द्र सरकार का कुछ भाग अपने पास रख सकती हैं जिनको अभी कार्य और दायित्व सौंपे नहीं गए हैं। इसके अलावा, आयोग ने यह भी सिफारिश की कि स्थानीय निकायों के लेखों की आडिट का कार्य नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षा को सौंपा जाए जो इसे अपने निजी स्टाफ द्वारा अथवा स्वयं द्वारा निश्चित पारितोषिक का भुगतान करके बाहरी एजेन्सी को लगाकर करवा सकता है और यह प्रयोजनार्थ स्थानीय निकायों द्वारा कुल खर्च की आडिट से सम्बन्धित सी एण्ड जी की रिपोर्ट को लोक लेखा समिति की भांति गठित की गई राज्य विधायिका की समिति के समक्ष रखा जाना चाहिए।

पंचायतों के निर्वाचन – पंचायतों के निर्वाचन कराने के लिए राज्य निर्वाचन आयुक्त की नियुक्ति का प्रावधान है। राज्य निर्वाचन आयुक्त को केवल उसी रीति और उसी आधार पर उसके पद से हटाया जा सकता है जैसे उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को। पंचायतों के लिए निर्वाचक नामावली तैयार करने का और पंचायतों के सभी निर्वाचनों के संचालन का अधीक्षण, निदेशन और नियन्त्रण निर्वाचन आयोग में निहित होगा।

पंचायतों के कार्य – 11वीं अनुसूची में 29 विषय हैं जिन पर पंचायतें विधि बनाकर उन कार्यों को कर सकेगी।

नई पंचायत राज व्यवस्था की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता इसमें समाज के कमजोर वर्गों एवं महिलाओं के लिए स्थान आरक्षित किए जाने की है। दूसरी विशेषता पंचायती राज संस्थाओं का कार्यकाल सुनिश्चित किया जाना है। बीच में एक ऐसा समय आया जब पंचायती राज संस्थाओं के चुनाव अपेक्षित से हो गए। वर्षों तक इन संस्थाओं के चुनाव नहीं हुए जिससे जनसाधारण की इस व्यवस्था के प्रति आस्था डगमगाने लगी। इसी आस्था को पुन: कायम किया जाना है। संविधान में ग्यारहवीं अनुसूचि जोड़कर पंचायती राज संस्थाओं के अधिकार एवं शक्तियां सुनिश्चित कर दी गई है।

पंचायती राज संस्थाओं की समीक्षा – ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा की गई पहल – पंचायती राज संस्थाओं के कार्यों की समीक्षा करने के लिए माननीय प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में 2 अगस्त 1997 को पंचायती राज पर मुख्यमन्त्रियों का सम्मेलन विज्ञान भवन, नई दिल्ली में आयोजित किया गया था जिससे पंचायती राज संस्थाओं को शक्तियां और जिम्मेदारियां सौपने जिला आयोजना समितियों का गठन करने, राज्य वित आयोगों की रिपोर्टों का कार्यान्वयन जिला परिषद के साथ जिला ग्रामीण विकास एजेन्सियों को जोड़ने, चुने गये पंचायती राज प्रतिनिधियों को प्रशिक्षण जैसे महत्वपूर्ण मामलों पर विस्तृत चर्चा की गई। सम्मेलन में सम्बन्धित 8 राज्यों से पंचायत उपलब्ध (अनुसूचित क्षेत्रों पर विस्तार) अधिनियम 1996 के सम्बन्ध में 23 दिसम्बर 1997 से पहले अपेक्षित राज्य कानून बनाने का भी आग्रह किया गया था।

विस्तृत चर्चाओं के आधार पर सम्मेलन में दो समितियों (क) 23 दिसम्बर 1997 से पूर्व केन्द्रीय अधिनियम 1996 के अनुरूप राज्य कानून बनाने के लिए सिफारिश करने के लिए मन्त्री (ग्रामीण क्षेत्र और रोजगार) की अध्यक्षता में संविधान की अनुसूची-5 के अन्तर्गत शामिल किए गए 8 राज्यों के पंचायत और जनजाति विकास मन्त्रियों की समिति और (ख) पंचायती राज संस्थाओं को शक्तियां, कार्य और जिम्मेदारियां सौंपने और पंचायती राज प्रणाली को सुप्रवाही बनाने की सिफारिश करने सम्बन्धित मामलों की जांच करने के लिए प्रधानमन्त्री की अध्यक्षता में मुख्यमन्त्रियों की समिति के गठन की सिफारिश की गई।

अनुसूची -5 राज्यों के पंचायत और जनजाति विकास मन्त्रियों की समिति और प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में मुख्यमन्त्रियों की समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी है जिन्हें उपयुक्त कार्यवाही के लिए राज्यों को भेज दिया गया है। मुख्यमन्त्रियों की समिति की महत्वपूर्ण सिफारिशें निम्नलिखित थीं।

1. विभिन्न ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के अन्तर्गत लाभार्थियों का चयन ग्राम सभा पर छोड़ दिया जाए।
2. 10000 रूपये तक के कार्यो के लिए तकनीकी मन्जुरी की आवश्यकता को त्याग दिया जाए।
3. ग्राम पंचायतों को पर्याप्त जन-शक्ति सहायता प्रदान करने के लिए नई प्रक्रिया।
4. ऐसी जन-शक्ति पर पूर्ण नियन्त्रण का अधिकार ग्राम पंचायतों को प्रत्यारोपित किया जाए।
5. जिला परिषद के अध्यक्षों को जिला ग्रामीण विकास एजेन्सियों का अध्यक्ष बनाया जाए।
6. निलम्बन/बरखास्तगी से पूर्व पंचायती राज संस्थाओं को सुनवाई के लिए उचित अवसर प्रदान करना।
7. ग्राम पंचायत का अध्यक्ष केवल ग्रामसभा के प्रति उत्तारदायी हो।
8. जिला आयोजना समितियों का शीघ्रता से गठन किया जाए।

यह सुनिश्चित करने के उद्देश्य से कि पंचायती राज संस्थाएं स्थानीय शासन के साधन के रूप में कार्य करें, यह महत्वपूर्ण है कि उनको कार्य करने और वित्तीय स्वायतता की गारन्टी मिले और उनकी कार्य प्रणाली में पारदर्शिता सुनिश्चित की जाए। इसे अधिकतर राज्यों में पूरा किया जाना है। ग्राम स्तर पर पंचायती राज संस्थाओं की विफलता को सुनिश्चित करने में शायद ग्राम सभा की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। ग्राम सभा के सक्रिय होने से सामाजिक लेखा परीक्षा करने और पंचायत राज कार्यकर्ताओं की जिम्मेदारियां निश्चित करने में स्थानीय लोगों की भूमिका को प्रभावी रूप से सुनिश्चित किया जाएगा। यह आवश्यक है कि ग्रामीण समुदाय ग्राम सभा की बैठको को उपयोगी समझे। इसके लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि ग्राम सभा को अधिकार सम्पन्न बनाया जाए।

ग्रामीण क्षेत्र और रोजगार मन्त्रालय ने 13 मई, 1998 को ग्रामीण विकास और पंचायती राज के राज्य मन्त्रियों का एक सम्मेलन आयोजित किया। बैठक का उद्घाटन माननीय प्रधानमंत्री द्वारा किया गया था। इस सम्मेलन मे लिए गए संकल्प इस प्रकार हैं –

1. पंचायतों के ढांचे और कार्य प्रणाली का अध्ययन करने के लिए एक कार्य बल की स्थापना की जाए।
2. 73वां संशोधन अधिनियम और केन्द्रीय अधिनियम 40 के प्रावधानों पर अमल किया जाए।
3. प्रत्येक तिमाही में एक पूर्व निर्धारित दिन को ग्राम सभाओं की बैठक बुलाई जाए।
4. पंचायती राज संस्थाओं की विफलता को सुनिश्चित करने में शायद ग्राम सभा की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। ग्राम सभा के सक्रिय होने से सामाजिक लेखा परीक्षा करने और पंचायत राज कार्यकर्ताओं की जिम्मेदारियां निश्चित करने में स्थानीय लोगों की भूमिका को प्रभावी रूप से सुनिश्चित किया जायेगा। यह आवश्यक है कि ग्रामीण समुदाय ग्राम सभा की बैठकों को उपयोगी समझे। इसके लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण पहले यह है कि ग्राम सभा को अधिकार सम्पन्न बनाया जाए।

ग्रामीण क्षेत्र और रोजगार मन्त्रालय ने 13 मई, 1998 को ग्रामीण विकास और पंचायती राज के राज्य मन्त्रियों का एक सम्मेलन आयोजित किया। बैठक का उद्घाटन माननीय प्रधानमंत्री द्वारा किया गया था। इस सम्मेलन में लिए गए संकल्प इस प्रकार हैं –

1. पंचायतों के ढांचे और कार्य प्रणाली का अध्ययन करने के लिए एक कार्यबल की स्थापना की जाए।
2. 73वां संशोधन अधिनियम और केन्द्रीय 40 के प्रावधानों पर अमल किया जाए।
3. प्रत्येक तिमाही में एक पूर्व निर्धारित दिन को ग्राम सभाओं की बैठक बुलाई जाए और 4 पंचायती संस्थाओं के प्रत्येक स्तर की स्वायतता और स्वतंत्रता का सम्मान किया जाए और ग्राम स्तरीय पंचायतों को अधिकार प्रदान किया जाएं। संकल्प के अनुसरण पर पंचायती राज संस्थाओं के ढांचों और कार्यप्रणाली का अध्ययन करने के लिए राज्य मंत्री (स्वतन्त्र प्रभार) ग्रामीण क्षेत्र और रोजगार मंत्रालय की अध्यक्षता में एक कार्यबल गठित किया गया है। राज्य सरकारों से यह सुनिश्चित करने का अनुरोध किया गया है कि ग्राम सभा की बैठक प्रत्येक तिमाही में एक बार वरीयत: 26 जनवरी–गणतन्त्र दिवस, 1 मई–श्रम दिवस, 15 अगस्त–स्वतन्त्रता दिवस और 2 अक्टूबर–गांधी जयन्ती के अवसर पर आयोजित की जाए।

निष्कर्ष – पंचायती राज संस्थाओं के भारतीय संविधान का हिस्सा बन जाने से अब कोई भी पंचायतों को दिए गए अधिकारों, दायित्वों और वितीय साधनों को उनसे छीन नहीं सकेगा। 73वां संविधान संशोधन न केवल पंचायती राज संस्थाओं में संरचनात्मक एकरूपता लाने का प्रयास है बल्कि यह सुनिश्चित भी करता है कि इन संस्थानों में समाज के कमजोर वर्गों की हिस्सेदारी रहे। इसमें प्रत्येक पंचायत में पंचायत क्षेत्र में कुल जनसंख्या के अनुपात में अनिवार्य आरक्षण की भी व्यवस्था की गई है। इसमें एक ऐसा भी प्रावधान रखा गया है जिसके अन्तर्गत राज्य विधानमण्डल, यदि उचित समझे तो पिछड़ी जातियों के नागरिकों के लिए आरक्षण का प्रावधान रख सकते हैं।

अब तक पंचायती राज संस्थानों की विफलता का कारण उनके चुनाव समय पर न कराना और उन्हें बार–बार भंग या स्थगित किया जाना रहा है। उदाहरणार्थ बिहार में 22 वर्षो के बाद अप्रैल–मई 2001 में पंचायती राज स्थापित करने के लिए छ: चरणों के चुनावों में सरकारी आंकड़ों के अनुसार 127 तथा गैर सरकारी आंकड़ों के अनुसार 300 से अधिक नागरिक मारे गए। घायल होने वालों की संख्या हजारों में है यद्यपि वर्तमान अधिनियम में इस समस्या पर समुचित ध्यान दिया गया है। और उम्मीद है कि पंचायती राज संस्थान निचले स्तर पर लोकतन्त्र के कारगर उपकरण साबित होगें क्योंकि उनके निर्वाचकों की निश्चित अवधि पर समयबद्ध व्यवस्था की गई है। इन संस्थानों को अब छह महीने से अधिक समय के लिए भंग या स्थगित नहीं किया जा सकता।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :–

1. बी.एल. फड़ीया, लोक प्रशासन, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, 2006, पृष्ठ 939
2. रिपोर्ट आफ दा कमेटी आन पंचायती राज इन्स्टीट्यूट, गर्वनमैंट आफ इण्डिया, न्यू दिल्ली, 1978 पृष्ठ 173, 174
3. राजस्थान पत्रिका, दैनिक भास्कर, हिन्दुस्तान टाईम्स और टाईम्स ऑफ इण्डिया
4. रेनहार्ड बेडिक्स, नेशनल बिल्डिंग एण्ड सीटीजनशिप, न्यूर्याक, 1964, पृष्ठ 266
5. रजनी कोठारी, पोलटिक्स इन इण्डिया, ओरिएण्ट ब्लैक्सवन, हैदराबाद, 2005, पृष्ठ 132
6. वही, पृष्ठ 4
7. वही, पृष्ठ 4
8. वार्षिक रिपोर्ट, ग्रामीण विकास मन्त्रालय, भारत सरकार, 2002–2003, पृष्ठ 2
9. वार्षिक रिपोर्ट, ग्रामीण विकास मन्त्रालय, भारत सरकार, 2003–04, पृष्ठ 4

****

DSS Divya Shodh Samiksha (An International Refereed Research Journal) July to September 2015
ISSN 2394-3807, E-ISSN 2394-3513, Imapct Factor - 0.745 (2014)

जनजातियों का इतिहास, स्वतंत्रता, संघर्ष में योगदान

ज्योति विश्वास * डॉ. वाई.बी. कसवे **

शोध सारांश – इतिहास इस बात का साक्षी है कि मानव समाज हजारों और लाखो वर्षो की विकास प्रक्रिया से गुजरता हुआ वर्तमान अवस्था तक पहुचा है। आदिवासी शांतिप्रिय लोग होते है। उनका पारम्परिक रुप से अधिकृत भूमि के प्रति लगाव अतुलनीय है। जब भी कोई उनकी भूमि पर अतिक्रमण करता है तो उसका वीरतापूर्वक प्रतिरोध करते है। एक समय ऐसा भी था, जब इन्होंने साहूकारों, दलालों, ठेकेदारों, जमीदारों तथा सरकारी प्रशासकों विशेष रुप से वन अधिकारी, पुलिस व राजस्व विभाग के पदाधिकारियों द्वारा किए गए शोषण के विरुद्ध हिंसात्मक कार्यवाही की। विशेष रुप से ब्रिटिशो के आगमन के पश्चात् इतिहास दर्शाता है कि आत्म संरक्षण के लिए ब्रिटिशो तथा अन्य शोषको के खिलाफ आदिवासियों के द्वारा अनेकानेक संघर्ष किए गए। तथा आदिवासियों के द्वारा आन्दोलन कर स्वतंत्रता भी प्राप्त की गई।

प्रस्तावना – महाभारत काल में समाज आर्यो और अनार्यो के दो वर्गो में विभाजित हो गया। रामायण काल में दक्षिण की अनार्य जातियों में ' राक्षस सबसे प्रबल थे। इसके अतिरिक्त निषाद, वानर, कोल, भील, शाबर आदि जातियों का भी उल्लेख मिलता है। लेकिन महाभारत काल आते–आते आर्य और अनार्य एक–दूसरे के साथ इस प्रकार मिल गये थे, कि कौरवो की सेनाओ में मुण्डा योद्धाओ का उल्लेख पाया जाता है, और पाण्डवो के तो मामा शल्य ही अनार्य थे। अत: यह मानना उचित नहीं है कि जिन मूल निवासियों को आर्य–अनार्य संघर्ष के कारण दुर्गम पहाड़ो और गहन वनो में पलायन करना पड़ा, वे सभ्यता की दौड़ में पीछे रह गये और आज जनजातियों के अपने पूर्वजों से धरोहर के रूप में पिछड़ापन प्राप्त हुआ, यह उचित नही है। यदि यह सत्य होता तो कालान्तर में विभिन्न जनजातियाँ अपने छोटे परन्तु शक्तिशाली एवं स्वतंत्र राज्य स्थापित करने में समर्थ न होती, परन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि प्रत्येक जनजाति इतिहास के किसी न किसी युग में अपनी आदिम अवस्था में रही है। समाज में प्रत्येक जनजाति को बराबर का सम्मान व दर्जा प्राप्त था। सुरक्षा के बढ़ती आवश्यकता के प्रत्येक जनजाति एक मुखिया के तहत संगठित थी। जनजाति के सदस्यो के द्वारा सबसे सक्षम व्यक्ति को मुखिया के रुप में चुना जाता था। उसका मुख्य कर्तव्य कबीले की सुरक्षा था। धीरे–धीरे मुखिया ने कबीले पर अपना अधिकार जमाना आंरभ कर दिया और अपने स्वयं के लिए कुछ सुविधाएँ उपलब्ध करा ली। जनजाति का मुखिया बने रहने के लिए उसका युद्ध एवं सुरक्षा में कुशल होना आवश्यक होता था। इस प्रक्रिया से गणराज्यों तथा महाराजाओ की संस्थाओ व व्यवस्थाओ का सूत्रपात हुआ। वनजातियाँ वृहत् साम्राज्यों, गणराज्यों तथा महाराजाओ के साथ सम्बद्ध थी।

आर्य भाषा बोलने वाले नोद्रिक लोग, जो सामान्यत: आर्य कहलाते थे। ऐसा विश्वास है कि इन्होंने उत्तर–पश्चिम दिशा से भारतीय प्रायद्वीप में प्रवेश किया तथा इनका द्रविड़ो के साथ दीर्घकालीन संघर्ष हुआ तथा उन्हे दस्यु कहकर पुकारने लगे। दस्यु शब्द का उपयोग सामान्यत: शत्रुओ के लिए किया जाता है। यह दो प्रजातियों तथा सभ्यताओं के लोगो के बीच संघर्ष था। आर्य लोग अधिक संगठित होने के कारण विजयी रहे। पराजित द्रविड़ो की विजयी आर्यो द्वारा दास अवस्था में शूद्रों की तरह रखा गया। इससे शूद्र वर्ण यानी चतुर्थ वर्ण का प्रादुर्भाव हुआ, जिसका उल्लेख ऋग्वेद के अंतिम स्त्रोतों में है। कुछ द्रविड़ जिन्होंने पराजय को स्वीकार नहीं किया तथा आर्यो के समक्ष आत्मसमर्पण नहीं किया, दूरवर्ती पहाड़ियो तथा जंगलो में अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाए रखा। ऐसा विश्वास किया जाता है कि वे भारत की विभिन्न वर्तमान जनजातियों के अग्रदूत है।

आर्यो के बाद मध्य एशिया के पारसी, ग्रीक, शक स्नू एवं यायावार जनजातियों ने उत्तर, पश्चिम दिशा से भारत में प्रवेश किया। कालान्तर में अरबो, ईरानियो पूर्वी अफ्रीका से अवधियों तथा बर्मा व फकोंटक क्षेत्रो से तिब्बती– बर्मियों द्वारा छोटे–छोटे समूहो में समय–समय पर प्रवाहागमन हुआ। वे मात्र लूटमार करने आये थे। तत्पश्चात् आठवी शताब्दी के आस–पास मुगल आक्रमणकारियों ने भारत में घुसपैठ की, बाद में ये मुगल साम्राज्य की स्थापना करने में सफल रहे। भारत के विभिन्न भागो की जनजातियों को मुगलों तथा कुछ स्थानो पर स्थानीय शासको की भी चुनौतियों का सामना करना पड़ा। जिसके परिणामस्वरुप उनके अधिकारो का पर्याप्त अपक्षरण हुआ। मुगल शासकों द्वारा जनजातियों व उनके मुखियाओ को तंग किया गया। उन्होंने छोटे नागपुर व अन्य क्षेत्रो के उरांव, मुण्डा तथा हो जनजातियों के ऊपर आंतक फैलाया। पश्चिमी भारत के भील भी मुस्लिम आक्रमणो से पीड़ित हुए। उन्हें इस्लाम धर्म अपनाने के लिए बाध्य किया गया। जिन्होने उनका प्रतिरोध किया, उन्हे प्रताड़ित किया गया तथा उनके साथ पशुओ के समान दुर्व्यवहार किया गया। राजपूताने के मीणा सरदार तथा राजाओ ने मुगलो से लम्बे समय तक टक्कर ली। लेकिन आपसी फूट के कारण पराजय हुई तथा अपना राज्य गँवाना पड़ा। उन्होने मुस्लिम से युद्ध जारी रखा, परन्तु अपने खोये हुए राज्य को वापस लेने में सफल नहीं हो सके। मध्य भारत गौड़ राज्य जो कि जबलपुर के पास गड़हा में स्थायी रुप से स्थापित था, मुगलो के साथ युद्ध करना पड़ा। गौड़ शासको ने गोड़वाना क्षेत्र पर लगभग दो सौ वर्षो तक शासन किया। चाँद और अन्य क्षेत्रो में उन्हे मुगलों और मराठो के दीर्घकालिक आक्रमणों का सामना करना पड़ा, जिससे उसकी शक्ति क्षीण होती गई तथा अठारहवीं शताब्दी के अन्त में गोण राज्य का अन्त हो गया। जब मुगलों ने दक्षिण भारत पर आक्रमण किया तब उन्होंने उत्तर–पश्चिम भारत के उद्यमी जनजाति बजौरा के पशुओ को अपने परिवहन के उपयोग में लाने के लिए उन्हें बाध्य किया। इस प्रकार आन्ध्रप्रदेश व दक्षिण के अन्य समीपवर्ती क्षेत्रो में बन्जौरा ने प्रवेश किया। अंतत: वे दक्षिण पठार में बस गये।

जनजाति मुखियाओ की क्षीण होती शक्ति तथा मुगल शासकों व उनके व्यापारिक मित्रो के बढ़ते अत्याचारो के परिणामस्वरुप जनजातियों का बहुत बड़ी संख्या में इस्लाम धर्म परिवर्तन हुआ। कई जनजातियों ने इस्लाम में

* शोधार्थी (राजनीति शास्त्र) रानी दुर्गाबाई विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.) भारत
** सहायक प्राध्यापक (राजनीति शास्त्र) शासकीय महाविद्यालय, किरनापुर जिला–बालाघाट (म.प्र.) भारत

धर्म परिवर्तन के बावजूद अपनी जनजातीय विशिष्टता को बनाये रखा, जैसे- लक्षदीप समूह के मुस्लिम तथा गुजरात के सिंधी मुस्लिम। एक तरफ मुगलों ने जनजातीय शक्ति को धीरे-धीरे नष्ट किया, तो दूसरी तरफ जमींदारों ठेकेदारो व छोटे-छोटे राजस्व एवं पुलिस अधिकारियों ने शोषण के द्वारा उनका आर्थिक आधार तहस-नहस कर दिया।

देश में अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के विचार से वाणिज्यिक उपनिवेशवादी नीति का पालन करते हुए ब्रिटिशों ने जनजातीय क्षेत्रो में प्रवेश करने का भरसक प्रयास किया, लेकिन बहुत समय तक सफल न हो सके। जनजातियाँ अपने परम्परागत निवास स्थान में किसी प्रकार के अतिक्रमण को सहन नहीं कर सकी और आदिवासी असंतोष की खुली अभिव्यक्ति के रुप में सशस्त्र विद्रोह हुए। इनको दबाने के लिए ब्रिटिशो को यदा-कदा बल प्रयोग करना पड़ा। परन्तु वह अपनी भूल को जल्द ही समझ गये और जनजातीय क्षेत्रो को विनिमय मुक्त क्षेत्र घोषित कर तथा उनकी परम्परागत प्रशासनिक प्रणाली को मान्यता प्रदान कर आदिवासियों से समझौता कर लिया। फिर भी ब्रिटिशो ने आदिवासियों से दोहरी चाल चली। एक तरफ आदिवासियों से समझौता किया तो दूसरी तरफ मिशनरियो को प्रोत्साहित किया, जो प्रेम व मानवता का संदेश लेकर जनजातीय क्षेत्रो में प्रवेष कर चुके थे। परन्तु जिनका मूल उद्देश्य जनजातियों को ईसाई धर्म में परिवर्तन करना था। कुछ मिशनरियों ने जनजातियों के लिए शिक्षा व स्वास्थ्य के क्षेत्र में वास्तव में सराहनीय कार्य किए। लेकिन परोक्ष रुप से बदले में उन्हे ईसाई धर्म में परिवर्तित कर लिया। ठेकेदारों, जमींदारों, राजस्व व पुलिस अधिकारियों के नये शोषण वर्ग ने मिशनरियों के साथ मिलकर जनजातियों का खूब शोषण किया तथा तथा उनके परम्परागत, सामाजिक व आर्थिक प्रणाली में बाधाए उत्पन्न की। सरकार उनकी भूमि की भी सुरक्षा न कर सकी। शनै-शनै उनकी उपजाऊ भूमि पर नये अप्रवासियों द्वारा कब्जा कर लिया गया। कुछ खुशहाल जिन्दगी बिताने वाली जनजातियाँ शोषण के कारण यथार्थ रुप से दरिद्रता की शिकार हो गई।

अंग्रेजो ने अपने व्यावसायिक हितो की पूर्ति के लिए भारत में अपनी सत्ता स्थापित की थी। अतएव उनकी नीति शोषण की नीति भी उन्होंने भारतीय वन सम्पदा को अपने हितो का साधन बनाया और कानून बनाकर वन जातियो का शोषण किया। उन्होंने जानबूझकर आदिवासियों को मुख्य जनाधार से मिलने न देकर अलगाँव की नीति अपनाई उन्होने न केवल आदिवासियों का विकास का मार्ग अवरुद्ध कर उन्हें पिछड़ा रहने के लिए बाध्य किया वरन् उनके भूमि एवं वन के अधिकारों को छीनकर उनकी आर्थिक स्थिति को सोचनीय बना दिया। अंग्रेजो का इस नीतियों का लाभ उठाकर गैर आदिवासी, जागीदारो, ठेकेदारो एवं साहूकारो ने भी आदिवासियों का अधिकाधिक आर्थिक शोषण किया। इन शोषणो के विरुद्ध आदिवासियों के उभरते विद्रोह को अंग्रेज सरकार ने हर बार कठोरता से दबाया एवं उनके अधिकारो को निरंतर कम करने की नीति अपनाई।

आगस्त क्लीन बेंट ने आदिवासियों का दमन करके वर्ष 1796 के नियम के माध्यम से दमनकारी शोषण नीति की नींव डाली। वर्ष 1827 में निर्मित नये नियमों द्वारा पहाड़ियो एवं अन्य वन्य जातियों की सामान्य अदालतों को आंशिक न्यायाधिकार में ले लिया गया। इन अधिकारो के छीने जाने के परिणामस्वरुप इन आदिवासियों के द्वारा अंग्रेजी शासन के विरुद्ध वर्ष 1789, 1801, 1807 एवं 1808 के असफल विद्रोह किए गए। इन आक्रोशों को दबाए रखने के उद्देश्य से अंग्रेजी शासन ने पहाड़ी, तलहटियों में सेवानिवृत्त फौजियों को भूमि आवंटित कर दी गई। विदेशियों एवं गैर आदिवासियों के हाथो में अपनी भूमि जाती देख आदिवासियों द्वारा वर्ष 1831-32 में प्रसिद्ध कोल विद्रोह हुआ। अंग्रेजी शासको द्वारा अनियमित रुप से लगान वृद्धि एवं आदिवासियों से वलपूर्वक बेगार करने की नीति अपनाई गई, परन्तु बढ़ते असंतोष को रोकने के हेतु वर्ष 1833 अधिनियम 12 के द्वारा प्रशासनिक सुधारो के माध्यम से छोटा नागपुर 'नान रेगुलेटेड एरिया 'घोषित कर दिया गया। और कुछ कृषि सुधार कार्य किए गए तथा आदिवासियों की भूमि को गैर आदिवासियो के हाथ में जाने पर रोक लगाई गई, परन्तु अशिक्षित आदिवासियों को अज्ञानता के कारण कोई लाभ नही मिला एवं साहूकारो तथा जमीदारो के द्वारा अनुचित दमन से पनपते असंतोष के कारण आदिवासियों द्वारा 1855 के प्रसिद्ध असफल 'संथाल विद्रोह' हुआ, जो बाद में 1857 के भारतीय स्वतंत्रता की नीव बनी।

इस संथाल विद्रोह के दमन के उपरांत पहले एक सम्पूर्ण रुप से लागू मेमोरेज्म द्वारा फिर वर्ष 1861 में ' इंडियन कांऊसिल एक्ट द्वारा इस क्षेत्र में विभागो की स्थापना की अनुमति दे दी गई। जिसके परिणामस्वरुप वर्ष 1864 में 'इम्पीरियल फारेस्ट डिपार्टमेंट' की स्थापना हुई। वर्ष 1865 में अंग्रेजी सरकार ने जंगल कानून लागू कर आदिवासियों का जंगलो पर से अधिकार पूर्णत: समाप्त कर वनो को सरकारी अधिकार में ले लिया। इस कानून के द्वारा प्रतिबंधो को व्यापक और कठोर कर दिया गया। जंगलो को सुरक्षित, संरक्षित एवं ग्रामीण जंगलो की तीन प्रकार की श्रेणियों में वगीकृत किया गया, परन्तु वर्गीकरण परिवर्तन का अधिकार शासन ने अपने ही हाथो में रखा, भूमि अधिकारो के छीन जाने एवं अनियत्रित लगान वृद्धि के फलस्वरुप 1809-10 में व्यापक असंतोष भड़कने के कारण अंग्रेजी सरकार के द्वारा आदिवासी क्षेत्रों को वर्ष 1874 के अधिनियम 14 के अंतर्गत अनुसूचित जिले घोषित कर देने से मात्र एक प्रषासनिक आदेश द्वारा कार्यपालिका को विस्तृत अधिकार मिल गए। कालांतर में जमींदारों द्वारा बलपूर्वक बेगार कराने असमय अनुदान लेने एवं निरतंर लगान वृद्धि के विरुद्ध वर्ष 1887 में 'सरदारी विद्रोह' हुआ। जिसमें असंतोष को दूर करने के लिए रांची में लैफ्टिनेंट गवर्नर द्वारा वर्ष 1890 में आयोजित सभा भी विफल रही। इसी समय बहुत से आदिवासियों ने देशी शासको के अत्याचारों से बचाव हेतु शासन वर्ग का धर्म ईसाई मिशनरियों द्वारा चलाये गये सामूहिक धर्म परिर्वतन द्वारा अंगीकार कर लिया, परन्तु वर्ष 1895 में हिन्दू जमीदारों तथा साहूकारो एवं ईसाई मिशनरियों को शासक वर्ग मानते हुए बिरसा मुण्डा के नेतृत्व में 'मुण्डा विद्रोह' हुआ, परिणामस्वरुप अंग्रेज शासको को बाध्य होकर शोषण के विरुद्ध सुरक्षा प्रदायक अधिकारो का लेखा तैयार करना पड़ा।

ह्यूटन (1931) के अनुसार अंग्रेजो की नीतियों में आदिवासियों को कोई लाभ नहीं पहुचाया गया। उनके अधिकारो की उपेक्षा की जाने लगी। परिणामस्वरुप आदिवासियों में अंग्रेजो के विरुद्ध आक्रोष व्याप्त होने लगा। इसलिए देश में होने वाले असहयोग, सविनय अवज्ञा एवं भारत छोड़ो आन्दोलनो में जनजातियों के प्रतिनिधियों ने स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लेकर देश की आजादी में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. चट्टोपाध्याय, कमलादेवी-ट्राईबलिज्म इन इण्डिया, विकास पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1978
2. दास, एम. एल.-ट्राईबल डेवलपमेंट एण्ड सोशियों कल्चर, मैट्रिक्स कनिष्क, पब्लिशर्स नई दिल्ली 1993
3. अग्रवाल, आर.आर.-कम्यूनिटी डेवलपमेंट इन इण्डिया, अग्रवाल प्रेस, इलाहाबाद 1960,
4. उपाध्याय, डॉ0 विजय शंकर एवं डॉ0 विजय प्रकाश-भारत की जनजाति संस्कृति, म0प्र, हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 1996
5. तिवारी, डॉ0 शिवकुमार - भारत की जनजातियॉ, नार्दन न्यू दिल्ली, 1992

भारत में बढ़ता भ्रष्टाचार - एक समस्या

डॉ. ज्योति मार्टिन *

प्रस्तावना – भ्रष्टाचार का शाब्दिक अर्थ है भ्रष्ट अथवा बिगडा हुआ आचरण। भ्रष्टाचार का अर्थ दो रूपों संकीर्ण एवं व्यापक में किया जाता है। संकीर्ण रूप में इसका अर्थ केवल घूस अथवा आर्थिक लाभ प्राप्त करना माना जाता है। भ्रष्टाचार के व्यापक रूप में अपने निजी स्वार्थपूर्ण उद्देश्यों के लिए सार्वजनिक सत्ता का दुरुपयोग करते हुए नगद धनराशि अथवा भेंटो और उपहारों के रूप में सब प्रकार की बेईमानी से लाभ प्राप्तों का समावेश होता है। प्रो.डी.एम. वैली के अनुसार कि ' भ्रष्टाचार घूसखोरी भी एक साधारण परिभाषा है,जिससे व्यक्ति अपने निहित स्वार्थो के हेतु अपने पद का दुरुपयोग करता है। पर यह आवश्यक नही कि निहित स्वार्थ केवल पैसे के रूप में हो। '

मानव जीवन के नैतिक परिवेश में गिरावट लाने वाला भ्रष्टाचार एक ऐसे कैंसर के समान है जो आदिकाल से चला आ रहा है। सामाजिक, राजनैतिक, प्रशासनिक भ्रष्टाचार को विभिन्न लोगों ने विभिन्न प्रकार से समझा है,चाहे वह दर्शक हो अथवा इससे पीड़ित। एक अवांछनीय व्यवहार के रूप में इसके कानूनी ,नैतिक ,सामाजिक और धार्मिक आदि कई विभिन्न रूप हो सकते है। वृहत्तर तौर पर भ्रष्टाचार में अवांछनीय तथा स्वार्थ हेतु सत्ता का दुरुपयोग तथा गलत प्रभाव डालना समझा जा सकता है। घूसखोरी सत्ता का दुरुपयोग, कालाबाजारी,अनुचित फायदे तथा इसी प्रकार के अन्य कार्य प्रषासन, राजनैतिक ,व्यवस्था एवं उद्योग से संबंधित होते है। परन्तु भ्रष्टाचार में केवल यही सब सम्मिलित नहीं है। यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि भ्रष्टाचार के कारण न केवल सत्ता में रहने वाले लागों के नैतिक जीवन में गिरावट आती है । वरन् सभी नागरिकों पर भी इसका प्रभाव पड़ता है।

यह शाश्वत सत्य है कि युग परिवर्तन के साथ-साथ भ्रष्टाचार के रूप में भी परिवर्तन हुए और इसमें बढोतरी हुई है। वास्तव में बहुत पुराने समय 5 वीं सेन्चुरी बी.सी. में विदेशी ताकतों अथवा ग्रीक लोगों को घूस देने संबंधी भ्रष्टाचार का जिक्र है। जैसे-जैसे रोमन साम्राज्य का विकास हुआ, रोमन समाज में भ्रष्टाचार बढ़ता गया। घूसखोरी की प्रक्रिया इतनी पुरानी है कि प्राचीन सभ्यता के पैनल कोड में इसका जिक्र है चाहे यह जीयूज से संबंधित हो या चाइनीज, जापानी, ग्रीक, रोमन या हिन्दुओं से। इन सभी में इसका जिक्र है। प्राचीन भारत में भ्रष्टाचार से संबंधित विश्वसनीय सूचनायें स्मृति ग्रंथो, कौटिल्य के अर्थशास्त्र, संस्कृत पुस्तकों तथा ऐतिहासिक रचनाओं में विद्यमान है। राजा से प्रार्थना की जाती थी कि ऐसे लोगों से वह रक्षा करे जो दुष्प्रवृत्ति के थे तथा औरों की सम्पत्ति को हड़प लेना चाहते थे। हिन्दू कानून की किताबों में घूसखोरी एवं भ्रष्टाचार को खुली चोरी की संज्ञा दी गई है। मनु के अनुसार- कि राजा के लोग हमेशा भ्रष्टाचार से ग्रसित रहे। कौटिल्य ने भ्रष्टाचार का उल्लेख करते हुए भ्रष्ट तरीके से एकत्र की गई सम्पत्ति का अधिग्रहण करने हेतु राज्य को चालीस मार्ग सुझाये थे। दिल्ली सल्तनत के मशहूर शासकों ,अलाउद्दीन खिलजी ,मोहम्मद तुगलक आदि के शासन कालों में भी भ्रष्ट अधिकारियों एवं कर्मचारियों के बारे में विवरण मिलते है। मनु ने सरकारी रिकार्ड में हेरा-फेरी और एक मद से प्राप्त अधिक धन किसी दूसरे से प्राप्त करके दिखाना,ऐसे रिकार्ड में हेराफेरी जिन्हे आजकल मस्टररोल कहा जाता है, ऐसे सामानों का भुगतान जो प्राप्त ही नहीं हुए ,झूठे टेस्ट रिपोर्ट जिनसे सोने चांदी की गुणवत्ता पर असर पड़ता हो,चीजों के कीमतों की गलत बयानी, कम नाप तौल आदि सभी तरीकों का उन्होने भ्रष्टाचार के स्वरूप में जिक्र किया गया है। परन्तु आधुनिक भ्रष्टाचार जिसके अन्तर्गत अपने कार्यो को करवाने के लिए मंत्रियो तथा अन्य राजनेताओं तथा नौकरशाहों को अवैध रूप से मोटी रकम देना, लोकतांत्रिक शासन प्रणाली में विधायिका में अपना बहुमत सिद्ध करने के लिए सांसदो विधायकों को अपने पक्ष में करने के लिए मोटी रकमें देना तथा मंत्री पद का प्रलोभन देना तथा व्यापारी वर्ग द्वारा अपने अनुकूल आर्थिक नीतियां निर्धारित कराने के लिए राजनीतिक दलों को अवैध तरीके से चंदा देना या नौकरशाहों की जेबे गरम करना आधुनिक भ्रष्टाचार के कतिपय उदाहरण है। गहरी चिंता पैदा करने वाली इस समस्या का भारतीय परिप्रेक्ष्य में अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि चुनावों में उत्तरोत्तर बढ़ता खर्च तथा इसमें असामाजिक तत्वों की प्रत्यक्ष भागीदारी, भोगवादी, उपभोक्ता संस्कृति का प्रचार-प्रसार ,राजनीतिक सिद्धांतहीनता, अंग्रेजी संस्कृति में पली भ्रष्ट नौकरशाही, जबरदस्त सामाजिक, आर्थिक असमानता,असंतुलित विकास ,गरीबी बेरोजगारी,दहेज दिखावा जैसी सामाजिक बुराईयों में व्यक्तिवादिता का विकास, राष्ट्रवाद, मानववाद जैसे आदर्शो के प्रति मोहभंग, सादगी, ईमानदारी जैसे मूल्यों का उत्तरोत्तर ह्रास नैतिक मान्यताओं की स्थापना के स्थान पर तरह-तरह के कानूनों द्वारा अपराध आदि अनगिनत ऐसे कारण है जो भ्रष्टाचार के पौधे को पोषण प्रदान करते है।

पिछले दशकों से भ्रष्टाचार का इतना प्रसार हुआ है कि सरकारी विभागों में अब लाभदायक एवं गैर लाभदायक पदों एवं साधनों की सूचियां बनने लगी है। न्याय का कभी मंदिर कहा जाने वाला अदालत तथा उसके न्यायधीश भी भ्रष्टाचार की दौड़ में स्वयं को शामिल करने लगे। शैक्षणिक चिकित्सा इतना तक कि धार्मिक क्षेत्र भी भ्रष्टाचार से बचा नहीं है। भ्रष्टाचार की स्थिति एवं वास्वविकता का आंकलन करते हुए स्व. राजीव गांधी ने ठीक ही कहा था कि 'केन्द्र से यदि सामाजिक कार्यक्रमों के कार्यान्वयन के लिए एक रुपया भेजा जाता है तो वह भ्रष्ट अधिकारियो से छनते हुए आम नागरिकों तक मात्र 18 पैसा ही पहुंच पाता है। '

अगर प्राचीन काल में जन सेवाओं में भ्रष्टाचार था तो उससे लड़ने के तरीके भी उस समय निर्धारित किये गये। मनु ने राजा को सुझाव दिया कि राजा को विभिन्न पोषाकों में जासूसी की नियूक्ति करनी चाहिए जो जगह-जगह समाज में जाकर भ्रष्ट लोगो की पहचान करें। कौटिल्य ने भ्रष्ट

* सहायक प्राध्यापक (राजनीतिक विज्ञान) शासकीय महाविद्यालय, ढ़ाना जिला- सागर (म.प्र.) भारत

कर्मचारियों, क्लर्क या सेवक को कोई ढिलाई न दिखाते हुए भ्रष्टाचार हेतु उन्हें कड़ी से कड़ी सजा जिसमें मृत्यु भी शामिल है ,पर जोर दिया।

भ्रष्टाचार से लड़ने के लिए 1860 के पहले कोई भी कानून नहीं था और जो भी बना इतना कठोर नहीं था। 1860 में ही घूसखोरी को एक अपराध घोषित किया गया।

भारतीय दण्ड संहिता(द इंडियन पैनल कोर्ट)एक्ट दडत-1869 के अध्याय में जन सेवकों से संबंधित अपराधों में घूसखोरी को अपराध मानते हुए कानूनी पुस्तक में प्रवेश मिला। इसमे 3 साल तक की सजा अथवा जुर्माना या दोनों हो सकते थे। आज विशेष पुलिस स्थापना को केन्द्रीय अन्वेषण व्यूरो (सी.बी.आई.) के रूप मे अच्छी तरह जाना जाता है,इसके द्वारा धन एवं सम्पत्ति की सुरक्षा तथा गबन से बचने के लिए मजबूत प्रयास किये गये।'द क्रिमनल लॉ आरडिनैन्स' सन 1944 अभी भी अधिकारिक तौर पर लागू है जिसका प्रयोग भारतीय दण्ड संहिता तथा भ्रष्टाचार निरोधक कानून आदि के अन्तर्गत किया जाता है। स्थानीय कमेटी के सुझावों के अनुसार भ्रष्टाचार निरोधक कानून सुधार एक्ट सन 1964 कानून के रूप मे आया और इसके अनुसार भ्रष्टाचार निरोधक एक्ट 1947 , क्रिमिनल लॉ अमैन्डमैन्ट एक्ट 1950, दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना एक्ट 1946 तथा सी.आर.पी.सी. 1898 में आवश्यक सुधार किया गया इसमे कोई संदेह नहीं कि 1947 से जन सेवाओं में भ्रष्टाचार से निपटने हेतु संगठित प्रयास किये जा रहे है। भ्रष्टाचार रोकने के लिए अनेक कमेटियां, कमीशन, प्रशासनिक सुधार आयोग,संसदीय समितियां आदि गठित की गई । इन सबके बावजूद भी अपेक्षित परिणाम जनता के सामने नहीं आया। आंध्रप्रदेश के हाई कोर्ट के मुख्य न्यायधीश रहे प्रसिद्ध कानूनविद श्री पी.जगमोहन रेड्डी ने यहां तक कहा कि हमारे समाज में भ्रष्टाचार प्रशासन के सभी अंगों को धीरे-धीर खाये जा रहा है और स्थिति कैंसर की भांति हो गई है। जनमत के अनुसार यह बढ़ता ही जा रहा है। कनूनी मशीनरी होने के बावजूद भी भ्रष्टाचार संबंधी गतिविधियों में रूकावट नहीं आ रही है। एक ऐसी भावना भी व्याप्त है कि कानूनी विधानों से भ्रष्ट लोगों को ही संरक्षण मिल रहा है।

यह सर्वादित है कि भ्रष्टाचार समाज के नैतिक ताना बाना तथा समस्त नागरिकों के नैतिक स्वरूप को छिन्न भिन्न करके इसमें गिरावट लाता है । इससे सरकारी कार्य की कार्यकुशलता में कमी आती है। विकास हेतु योजनायें कितनी भी अच्छी क्यों न हो? भ्रष्टाचार के कारण उनका मकसद समाप्त हो जाता है । इस पर नियंत्रण पाना राष्ट्र के लिए अति आवश्यक है। यद्यपि प्रशासनिक और न्यायिक तौर पर भ्रष्टाचार से निपटने हेतु अनेक प्रयास किये गये परन्तु सामाजिक क्षेत्र में भी जब तक समाज में जरूरी इच्छा शक्ति का उदय नहीं होगा तब तक इससे निपट पाने मे कठिनाई होगी इसलिए वर्तमान में जनलोकपाल बिल भारत में नागरिक समाज द्वारा प्रस्तावित भ्रष्टाचार निरोधी बिल एक महत्वपूर्ण मसौदा है यह सषक्त जनलोकपाल के स्थापना का प्रावधान करता है जो चुनाव आयुक्त की तरह स्वतंत्र संस्था होगी । जनलोक पाल के पास भ्रष्ट राजनेताओं एवं नौकरशाहों पर बिना किसी अनुमति लिए ही अभियोग चलाने की शक्ति होगी। भ्रष्टाचार विरोधी भारत (इंडिया अगेन्स्ट करप्सन)नामक गैर सरकारी समाजिक संगठन का निर्माण करेंगें। संतोष हेगडे वरिष्ठ अधिवक्ता, प्रशांत भूषण ,मैग्सेसे पुरुस्कार विजेता सामाजिक कार्यकर्ता अन्ना हजारे एवं वर्तमान में दिल्ली के मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल ने यह बिल भारत के विभिन्न सामाजिक संगठनों और जनता के साथ व्यापक विचार विमर्श के बाद तैयार किया था। इसे लागू कराने के लिए सुप्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्ता और गांधीवादी अन्ना हजारे के नेतृत्व में 2011 में अनशन शुरू किया गया। 16 अगस्त 2011 मे हुए जन लोकपाल बिल आंदोलन को मिले व्यापक जन समर्थन ने मनमोहन सिंह के नेतृत्व वाली भारत सरकार को संसद में प्रस्तुत सरकारी लोकपाल बिल के बदले एक सशक्त लोकपाल के गठन के लिए सहमत होना पडा,परंतु समाज आज भी घूसखोरों एवं भ्रष्टाचारियों के विरुद्ध आवाज उतनी बुलंद नहीं कर रहा है जितनी की डकैती या बलात्कारियों के खिलाफ करता है । ये भ्रष्टाचारी समाज में अधिक सम्मान पूर्ण स्थान बना लेने में सफल हो जाते है।

एक सर्वे के अनुसार अधिकतर लोग मानते हैं, कि मौजूदा और आने वाले कानूनों के बावजूद भ्रष्टाचार बना रहेगा। सूचना के अधिकार के अलावा लोकायुक्त, केन्द्रीय सतर्कता आयोग,प्रस्तावित राष्ट्रीय भ्रष्टाचार निरोधक कदमों और कारपोरेट गवर्नेन्स के निर्देशो के बावजूद अगर भ्रष्टाचार कम नही हो रहा है तो इसकी बडी वजह राजनीतिक हस्तक्षेप और न्याय में देरी है। ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल के करप्शन परसेप्शन इंडेक्स मे भारत नीचे आ गया है। 2009 के सर्वे में भारत 84 वें स्थान पर था। लेकिन 2010 में यह 87 वें स्थान पर आ गया। जबकि चीन 78 वें और ब्राजील 69 वें स्थान पर है।

भारत के प्रमुख आर्थिक घोटाले जो सुर्खियों में रहे हैं-बोफोर्स घोटाला-64 करोड़ रुपये, यूरिया घोटाला-133 करोड़ रुपये,चारा घोटाला-950 करोड़ रुपये,शेयर बाजार घोटाला 4000 करोड़ रुपये ,सत्यम घोटाला-7000 करोड़ रुपये,स्टैंप पेपर घोटाला-43 हजार करोड़ रुपये,कामनवेल्थ गेम्स घोटाला-70 हजार करोड़ रुपये , 2जी स्पेक्ट्रम घोटाला-1 लाख 67 हजार करोड़ रुपये, अनाज घोटाला-2 लाख करोड़ रुपये (अनुमानित) कोयला खदान आवंटन घोटाला-192 लाख करोड़ रुपये एवं इसी प्रकार और भी विभिन्न क्षेत्रों में कई अन्य घोटालों का खुलासा हो रहा है।

इस प्रकार भ्रष्टाचार निवारण हेतु जब तक प्रशासन और न्यायपालिका का खुले रूप से भ्रष्टाचारियों पर प्रहार नहीं होता और जब तक समाज का इसमें पूर्ण सहयोग एवं जन लोकपाल बिल पर अमल नही होता तब तक भ्रष्टाचार निवारण में पूरी सफलता अर्जित नहीं की जा सकती। पंडित जवाहरलाल नेहरू का यह सपना कि हम महान भारत का निर्माण करने जा रहे है जो काफी मजबूत और सुन्दर होगा उस युग तक तो प्राप्त न हो सका पर हमें भ्रष्टाचार के विरुद्ध आवाज बुलंद करके भविष्य में यह सपना साकार करना है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. कैलाशनाथ गुप्ता, भ्रष्टाचार कारण और निवारण अनुभव प्रकाशन, गाजियाबाद 1999
2. तंबोला एवं झा-विविध आपराधिक संग्रह , सुविधा ला हाउस, भोपाल 2000
3. http.//kosh.khsindia.org/hindi
4. http.//samjikbhrstachar.blogspot.in/
5. http.//hi.wikipedia.org

****

पंचायती राज व्यवस्था में ई गवर्नेंस का महत्व

डॉ. मालती तिवारी *

प्रस्तावना – पंचायती राज व्यवस्था की आधारभूत न्यू पर राष्ट्र निर्माण की धारणा महात्मा गाँधी की धारणा को साकार करने 20 वीं शताब्दी के अन्तिम दशक के तथा 21 वीं सदी में तीव्र समाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, क्षेत्रों में तथा राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय परिवर्तनों के स्वरूप में बदलाव आया। नयी सदी में शासकों एवं शासितों के आपसी सम्बन्धों को पुन: परिभाषित करने की राज्य का ऐसा स्वरूप लोकप्रिय है जो पारदर्शी उत्तरदायित्व एवं जवाब देही हो। गाँधी जी का कथन – 'हर गांव में पंचायत का राज होगा हर गांव अपने पांवों पर खड़ा होगा तथा समाज ऐसे अनगिनत गाँवो से निर्मित होगा जहां जिन्दगी मिनार की शक्ल में नहीं होगी जहां ऊपर की तंग चोटी को नीचे के चौड़े पाये पर खड़ा होना पड़ता है वहा तो समुह की लहरों की तरह जिन्दगी एक के बाद एक घेरे की शक्ल में होगी।' सुचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विकास जहां समुच्य विश्व को ग्लोबल विलेज 'वैश्विक गांव' का रूप दिया वही शासन शैली को भी परिवर्तित किया। विगत एक दशक से भारत में ई गवर्नेस लोकप्रिय हुई । ई गवर्नेस का सीधा अर्थ शासन सम्बन्धी कार्यो में सूचना तकनीक का अधिक से अधिक इस्तमाल किया जाना है। मिनोचा के शब्दों में ' ई शासन वह है जहां राजनैतिक उत्तरदायित्व, कानून पालक सूचना में पारदर्शिता जो कुशल सरकार एवं समाज में सहयोग हो'। सूचना प्रौद्योगिकी की विश्वव्यापी क्रांति के साथ जो प्रकृतियाँ उभरी है उन्हीं में से एक है – ई. शासन सूचना एवं प्रौद्योगिकी अनेक तकनीकों जैसे–कम्प्युटर, इलेक्ट्रानिक्स तथा दूरसंचार इत्यादि का संयुक्त आयामों को समाहित करता है, कम्प्युटर, टेलीफोन, दूरसंचार इन्टरनेट के माध्यमों से प्रशासनिक एवं तकनीकी निष्पादन ही ई. गवर्नेन्स है। बीसवीं शताब्दी के 80 दशक में प्रमुख चिन्तक एल्विन टाफ्लर ने अपनी पुस्तक 'द थर्ड वेव' में लिखा था कि 'मानव सभ्यता को दो प्रमुख क्रांतियों ने प्रभावित किया है। प्रथम दस हजार वर्ष पूर्व कृषि क्रांति ने मानव के खानाबदोश जीवन को सुस्थिर आधार देते हुये सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक विकास की गति दिखाई और द्वितीय क्रांति सत्रवीं शाताब्दी में औद्योगिक क्रांति के रूप में मानव के भौतिक वादी आधुनिक जीवन में परिवर्तन किया। तीसरी क्रांति के रूप में सूचना औद्योगिक क्रांति की कल्पना थी जो वर्तमान में हमारे सामने परिवर्तित है भारत के विकास को परिवर्तित करने उतारू है। 'सूचना आधुनिक' समाजो की कुंजी है भारत में सन् 2001 को ई शासन वर्ष के रूप में परिलक्षित हुआ।

राज्यो में ई गवर्नेंस की उपयोगिता – भारत के विभिन्न राज्यों आंध्रप्रदेश, मध्यदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु, गुजरात, महाराष्ट्र, छत्तीसगढ़ में तेजी से उल्लेखनीय प्रगति हुई है भारत के विकास में ई गवर्नेंस ने अनेक नवाचारी परियोजना की सफलता से समुचक प्रशासन उत्साहित है। मध्यप्रदेश के धार जिले में ग्राम दूत परियोजना के माध्यम से 31 इन्टरनेट जोडकर मंडी व्यापार, कृषि भू–पट्टे, नकल रिकार्ड, शिक्षा स्वास्थय, जन शिकायत निवारण समस्या समाधान, इत्यादि प्रशासनिक प्रक्रिया सम्पादित हुये है। सूचना क्रांति की दुनिया को नजदीक लाने के अनेक अवसर छत्तीसगढ़ राज्य में प्रांरभ किया गया है। चांइस परियोजना के अन्तर्गत अनेक नागरिक सेवाएं जैसे – जन्म प्रमाण पत्र, आय प्रमाण पत्र, जाति प्रमाण पत्र, मूल निवास प्रमाण पत्र आदि 35 सेवाएं ऑनलाइन दे रही है। शासन द्वारा नियुक्त सेवा केन्द्रों के माध्यम से 10 लाख से अधिक दस्तावेज नागरिको को उपलब्ध कराये जा चुके है वर्तमान में छ.ग. राज्य में 318 चाइंस केन्द्र तथा 26–30 समान्य केन्द्र स्थापित है। छ.ग. देश पहला राज्य है जिसने 37 लेयर्स पर समस्त ग्रामीणों की भौगोलिक सूचना प्रणाली तैयार किया। भौगोलिक सूचना प्रणाली के अन्तर्गत राज्य के 20007 ग्रामों के पटवारी नक्शे का कम्प्युटरीकरण पटवारी नक्शे के ऑनलाइन अद्यतीकरण के साफ्टवेयर का प्रयोग किया जा रहा है। साथ ही सभी जिला पंचायतो एवं ग्रामीण विभाग को ज्ञान साफ्टवेयर दिया गया है जिसके माध्यम से पंचायत एवं ग्रामीण विकास विभागों में संचालित जल ग्रहण परियोजना के लिए किया जा रहा है वर्तमान में ई गवर्नेस ग्रामीण क्षेत्रों में सूचना एवं संचार की दिशा में तेजी से वृद्धि कर रही है।

शासन की विशेषताएं –

1. सूचना प्रौद्योगिकी का समन्वित रूप जिसका उद्देश्य कार्यो में कुशल पारदर्शिता तथा प्रभाव लाना इसमें ई नागरिक, ई लोकतंत्र, ई शासन, सम्मिलित है।
2. प्रशासनिक नेतृत्व तथा प्रौद्योगिकी का एकीकरण।
3. सरकारी काम काज में गुणात्मक बदलाव, कार्यो में अधिक पारदर्शिता, जवाब देही निश्चित हो सके।
4. प्रशासनिक ढ़ाँचे में संरचनात्मक सुधार के साथ–साथ सरकारी कार्य प्रक्रिया में सुधार किया जा सकें।
5. कानून–कायदों तथा दिन–प्रतिदिन की कार्यप्रक्रिया को सरलीकृत किया जा सके।
6. ई गवर्नेंस सुशासन सुनिश्चित करने का उपाय है यह रूढ़ीवाद जटिल जड़ तथा लाल फीता स्याही से ग्रस्थ शासन तंत्र के स्थान पर लोकतात्रिक, ऊर्जावान, जनाभिमुख एवं गतिमान शासन तंत्र की स्थापना है। ई लोकतंत्र सरंचना है ता ई–शासन प्रक्रिया है। ई–शासन की अवधारणा मूलत: **स्मार्ट सरकार** की मान्यता को पोषित करती है। जिसका अर्थ –

S - Small (नौकरशाही का आकार कम करना)
M - Moral (प्रशासन में नैतिकता स्थापित करना)
A - Accountable (लोक सेवाओं में जवाबदेयता लाना)
R - Reliable (जनता में प्रशासन के प्रति विश्वास उत्पन्न करना)

* विभागाध्यक्ष (राजनीति शास्त्र) शासकीय महाप्रभु वल्लभाचार्य स्नातकोत्तर महाविद्यालय, महासमुन्द (छ.ग.) भारत

T - Transparent (सरकारी नितियों, निर्णयों, कार्यो तथा सेवाओं में पारदर्शिता लाना)

ई गवर्नेंस का औचित्य एवं प्रयास – ई गवर्नेस से पंचायती राज व्यवस्था के उपयोग में लोकतंत्र की विकृतियों का समाधान कर लोकतंत्र को जीवन्त एवं प्राणवान् बनाया जा सकता है। ई–गवर्नेस का संबन्ध व्यवस्था के बुनियादी बदलाव से चाहे संबन्धित न हो लेकिन सरल, संवेदनशील, जवाबदेही ,पारदर्शी, कार्यकुशल खुलापन, जनसहभागी, सरल, चुस्त, शीघ्रगामी सेवाएं प्रदान कर सम्भव बनाया जा सकता है

1. **जन सहभागिता का अभिकरण –** ई. गवर्नेस पंचायती राज व्यवस्था में नितियों के निर्माण एवं निष्पादन में जनभागीदारी की गारंटी की हिमायत करता है। गांवों के विकास के कार्यो के क्रियान्वयन के जुड़ने सुचनाएं एवं सेवाएं प्राप्त करने का औसर प्राप्त होता है जिससे लोकतंत्रिय विकेन्दीयकरण की भावना को पुष्ट करती है।

2. **पारदर्शी ढ़ाँचा –** पंचायती राज व्यवस्था में ई गवर्नेस गोपनीय ढ़ाँचे का निर्माण कर नागरिको एवं प्रशासन के मध्य समन्वय, संयोग एवं खुलेपन के फुलों का निर्माण करता है। यह लोगों को उनकी प्रगति के लिए संचालित कार्यक्रमों को जानने का हक देकर भ्रष्टाचार की संभावना कम करता है।

3. **संसूचित समाज –** ई गवर्नेस पंचायती राज में सूचनाएं एवं सेवाएं प्रदान कर गांवों के लोगों की आवश्यकताएं जैसे – कृषि, स्वास्थ्य, शिक्षा संबन्धी दस्तावेजों का पंजीकरण तथा सेवाएं उपलब्ध कराई जा सकती है।

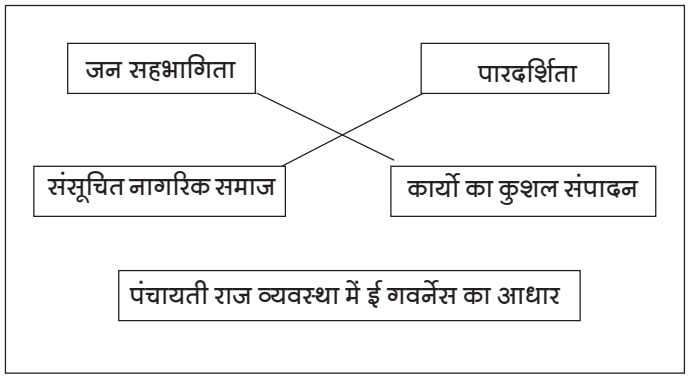

निष्कर्ष :– पंचायती राज व्यवस्था में प्रशासनिक क्रियान्वयन ई शासन के अवधारणा के अधार पर स्मार्ट सरकार द्वारा प्रशासनिक कार्यो में सुधार लाना ई शासन का केन्द्रिय चिन्तन है। नागरिकों का प्रतिनिधित्व करना तथा सरकार में नागरिकों की सहभागिता बढ़ाना इसके उद्देश्य है। ई शासन का व्यवहारिक स्वरूप संगठनात्मक, कार्यात्मक तथा प्रक्रियात्मक सूचनाएं देना। विकास परख एवं समाजिक कल्याण से संबधित विवरण ई शासन का अस्तित्व कम्प्युटर तथा सूचना प्रौद्योगिकी की अन्य तकनीकों में है जिसमें कागजी कार्यवाही में कमी आती है तथा बाबू राज पर अंकुश लगता है। भारत के राज्यों के पंचायती राज व्यवस्था में ई गवर्नेस की उपयोगिता एवं महत्व से विकास की संभवनाएं निश्चित की जा सकती है। ई गवर्नेस द्वारा पंचायती व्यवस्था के सहभागीय संवेदनशील ई गवर्नेस के ठोस क्रियान्वयन से शासन के ढ़ांचे में अन्तिम पायदान पर खड़े ग्रामीणों के सशक्त सहभागी बनाकर विकास की प्रगति को संभव बना सकते हैं। पंचायती राज व्यवस्था में ई गवर्नेस की प्रक्रिया सपना नहीं बल्कि हकीकत है। इस हकीकत को लागू करने के लिए सरकारों के परिपक्व निर्णय के लिए लोगों की चेतना आवश्यक है। ई गवर्नेस मॉडल है जिसमें पंचायती राज व्यवस्था को विकसित करने के प्रयास में सरकारी, गैर सरकारी, बुध्दिजीवियों, युवावर्गो, नितिनियोजकों प्रशासकों के प्रशासनिक क्रियाकलापों के बीच विशाल नेटवर्किंग कर सुदृढ़ एवं त्वरित निर्णय लेने होंगे एवं ग्रामीणों के प्रचार प्रसार के लिए जागरूकता कार्यक्रम चलाएं जाये।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. भारतीय लोक प्रशासन – डॉ. सुरेन्द्र कटारिया पृ. 612,614
2. लोक प्रशासन – अमिताभ अग्रवाल/स्मिता अग्रवाल पृ. 565
3. भारत में पंचायती राज – डॉ. आर.पी. जोशी/डॉ. रूपा मंगलानी पृ. 289 से 292
4. युवा उत्थान – जनसम्पर्क विभाग छत्तीसगढ़ शासन
5. लोक प्रशासन हरिश कुमार खत्री पृ. 67,68
6. रिसर्च जनरल ऑफ सोशल एण्ड लाईफ साइन्सेस – 2013
7. हमर छत्तीसगढ़ 2015 – सूचना एवं प्रौद्योगिकी

****

मध्यप्रदेश महिला नीति, 2015 – एक विवेचन

डॉ. सुरेश काग * गिरधारीलाल भालसे **

प्रस्तावना – वर्तमान समय में केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा महिला सशक्तिकरण की दिशा में अनेक नीतियों एवं कार्यक्रमों का निर्धारण किया जा रहा है। मध्यप्रदेश शासन का लक्ष्य भी महिलाओं का पूर्ण सशक्तिकरण है। राज्य की महिला नीति की मूल अवधारणा महिलाओं के प्रति समाज की मानसिकता में सकारात्मक परिर्वतन लाना है जिससे उनके साथ विद्यमान विभेदकारी असमानता की स्थिति समाप्त हो। महिलाओं के प्रति समानता एवं उनकी सुरक्षा, आर्थिक आत्मनिर्भरता एवं विकास में समान भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु शासन द्वारा विभिन्न योजनाओं का संचालन एवं क्रियान्वयन किया जा रहा है।

मध्यप्रदेश में महिलाओं की स्थिति – प्रदेश में महिलाओं के विकास के विभिन्न संकेतकों में सकारात्मक परिर्वतन परिलक्षित हुआ है। वर्ष 2011 की जनगणना के आधार पर राष्ट्रीय स्तर पर स्त्री–पुरुष अनुपात 1000 पर 940 है जो मध्यप्रदेश में 931 है। (ग्रामीण जनसंख्या में 936 तथा शहरी जनसंख्या में 918) । मध्यप्रदेश में कुल लिंगानुपात में उत्तरोत्तर वृध्दि परिलक्षित हुई है। वर्ष 2001 में लिंगानुपात 919 था जो कि वर्ष 2011 में बढ़कर 930 हो गया है। राष्ट्रीय स्वास्थ्य सर्वे के अनुसार 0–4 वर्ष के बच्चों का लिंगानुपात वर्ष 2010–11 में 911 था जो वर्ष 2012–13 में 916 हो गया है। प्रदेश में वर्ष 2001 से 2011 के मध्य दशकीय जनसंख्या की वृद्धि दर 20.3 प्रतिशत है, जो पुरुषों में 19.6 प्रतिशत तथा महिलाओं में पुरुषों से अधिक 21 प्रतिशत है।

देश की महिला साक्षरता दर वर्ष 2001 में 53.7 प्रतिशत थी जो वर्ष 2011 में बढ़कर 65.5 प्रतिशत हो गई (ग्रामीण क्षेत्र में 58.8 प्रतिशत तथा नगरीय क्षेत्र में 79.9 प्रतिशत) है। मध्यप्रदेश में महिला साक्षरता वर्ष 2001 में 50.30 प्रतिशत थी जो वर्ष 2011 में बढ़कर 59.2 प्रतिशत हो गई है। (ग्रामीण क्षेत्र में 52.4 प्रतिशत तथा नगरीय क्षेत्र में 76.50 प्रतिशत)। वर्ष 2001 में महिला एवं पुरुष की साक्षरता दर में अंतर 25.80 प्रतिशत था जो वर्ष 2011 में घटकर 20.00 प्रतिशत रह गया है।

मध्यप्रदेश में बाल विवाह की स्थिति नेशनल फैमिली हेल्थ सर्वे अनुसार 2007–2008 में 53.70 प्रतिशत थी जो 2012–13 में घटकर बालकों का प्रतिशत 21.30 एवं बालिकाओं का प्रतिशत 10.60 रह गया है। विभिन्न सूचकांकों में यह सकारात्मक परिर्वतन समाज की सकारात्मक सोच को इंगित करता है।

महिलाओं को राजनैतिक रुप से सशक्त करने के लिए पंचायत राज संस्थाओं एवं नगरीय निकायों में महिलाओं के लिए 50 प्रतिशत आरक्षण दिया गया है। महिला जनप्रतिनिधियों की निर्णय क्षमता विकसित करने के लिए ओरियेन्टेशन प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये जा रहे हैं। वन समितियों में भी 50 प्रतिशत महिलाओं को स्थान दिया गया है।

महिला नीति की अभिकल्पना –

1. समता, सम्मान, न्याय एवं सुरक्षा।
2. सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक सषक्तिकरण।
3. गरिमा पूर्ण जीवन एवं निर्णय लेने का अधिकार।

महिला नीति के उद्देश्य –

1. महिलाओं से संबंधित मुद्दों के प्रति संवेदनशीलता विकसित करना।
2. लिंग आधारित विभेदकारी स्थितियों को समाप्त करना।
3. गुणवत्तापूर्ण एवं व्यवसाय मुलक शिक्षा तथा क्षमता एवं कौशल विकास प्रदान करना।
4. रोजगार के अवसर उपलब्ध करना ।
5. विकास के संसाधनों पर नियंत्रण तथा निर्णय में भागीदारी सुनिश्चित कराना।
6. सुरक्षा के लिए व्यापक व्यवस्था सुनिश्चित करना।
7. जीवन कौशल,शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के लिए गुणवत्तापूर्ण सेवाएं उपलब्ध कराना ।
8. सम्पत्ति संबंधी अधिकारों का संरक्षण ।

मध्यप्रदेश शासन द्वारा महिलाओं के लिए संचालित महत्वपूर्ण योजनायें एवं कार्यक्रम – महिलाओं के हित में संचालित विभिन्न कार्यक्रम एवं नवाचारी गतिविधियों का संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार हैं –

1. समाजिक सशक्तिकरण – वर्तमान समय में बालिका जन्म के प्रति सकारात्मक वातावरण निर्माण के लिए मध्यप्रदेश में 'लाड़ली लक्ष्मी योजना' संचालित हैं जिसमें 20 लाख से अधिक बालिकाएं लाभाविन्त हो चुकी हैं। 'बेटी बचाओं अभियान' और 'स्वागतम् लक्ष्मी योजना' कन्या अभिभावक पेंशन योजना के द्वारा समाज की मानसिकता में सकारात्मक परिर्वतन लाने का प्रयास किया जा रहा है। बाल विवाह की रोकथाम के लिये 'लाडो अभियान' के माध्यम से वर्ष 2014–15 में 1511 बाल विवाह रोके गये एवं 41 प्रकरण पुलिस में दर्ज कराये गये। बेटियों की शिक्षा–दीक्षा के लिये 'गांव की बेटी योजना' एवं 'प्रतिभा किरण योजना' संचालित है। मुख्यमंत्री कन्या विवाह एवं निकाह योजना के माध्यम से गरीब परिवार की बेटियों के विवाह कराये जा रहें है। संस्थागत प्रसव के लिए जननी सुरक्षा कार्यक्रम अन्तर्गत जननी एक्सप्रेस संचालित की जा रही है। प्रदेश में 9,506 'शौर्य दलों' के 95,060 पुरुष एवं महिला सदस्य समाज में महिलाओं के प्रति होने वाली हिंसा को रोकने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

खेल के क्षेत्र में प्रदेश में महिला हॉकी अकादमी स्थापित की गई है। घरेलु हिंसा से महिलाओं को संरक्षण अधिनियम अन्तर्गत उषा किरण योजना संचालित की जा रही है। विभिन्न इकाइयों, संरक्षण अधिकारी, न्यायिक अधिकारी, पुलिस, चिकित्सक एवं सेवा प्रदाताओं को सघन प्रशिक्षण दिया गया है।

* सहायक प्राध्यापक (राजनीतिशास्त्र) शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सेंधवा, जिला–बड़वानी (म.प्र.) भारत
** शोधार्थी (राजनीतिशास्त्र) शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सेंधवा, जिला–बड़वानी (म.प्र.) भारत

मध्यप्रदेश शासन द्वारा महिलाओं के प्रति अपराधों पर अंकुश लगाये जाने के उद्देश्य से पुलिस थानों में महिला डेस्क, विशेष महिला थाना, 1090 महिला कॉल सेन्टर स्थापित किये गये हैं। थाना स्तर पर 141 महिला डेस्क की स्थापना की गई है। जहां महिला पुलिस महिलाओं की शिकायत सुनकर उनकी सहायता करती है। वर्ष 2013 में 3,725 तथा 2014 में 4,135 शिकायतें महिला डेस्क द्वारा दर्ज की जाकर निराकृत की गई। महिला हेल्प लाईन के माध्यम से वर्ष 2015 में 8,020 शिकायतों का निराकरण किया गया है।

2. आर्थिक सशक्तिकरण – ग्रामीण एवं शहरी महिलाओं को आर्थिक रुप से सुदृढ़ बनाने के उद्देश्य से महिलाओं द्वारा संचालित स्व-सहायता समूहों का गठन किया गया है।

तेजस्विनी ग्रामीण महिला सशक्तिकरण कार्यक्रम के अन्तर्गत 12,759 महिला समूहों को विभिन्न योजनाओं से जोड़कर आर्थिक उपार्जन के साधन उपलब्ध कराये गये है। इनके 60 फेडरेशन गठित हुए है जिनमें 1,66,000 महिलाएं जुडी है। इनके द्वारा 24 करोड़ रुपये की बचत की गई है। मध्यप्रदेश में शासकीय सेवाओं में महिलाओं को 30 प्रतिशत आरक्षण दिया गया हैं। विकास की मुख्य धारा में लाने के लिए महिलाओ कों कृषि कार्यों, वनोपज, ग्रामोद्योग, विपणन एवं मंडी संबंधी आय उपार्जन गतिविधियों से जोड़ा जा रहा है। शिक्षा विभाग में 50 प्रतिशत आरक्षण दिये जाने का प्रावधान किया जा रहा है।

3. राजनैतिक सशक्तिकरण – महिलाओं के राजनैतिक सशक्तिकरण के प्रयासों का परिणाम है कि केवल आरक्षित स्थानों पर ही नहीं बल्कि अनारक्षित स्थानों पर भी महिलाएं नगरीय निकायों एवं पंचायती राज संस्थाओं में 50 प्रतिशत आरक्षण के साथ प्रतिनिधि चुनी गई है।

4. शैक्षणिक सशक्तिकरण – बालिकाओं के शैक्षणिक उन्नयन के लिये नि:शुल्क साईकिल वितरण, नि:शुल्क गणवेश वितरण योजना एवं अनुसूचित जाति/जनजाति परिवार की बेटियों की शिक्षा निरंतर रखने के लिए बालिका शिक्षा प्रोत्साहन योजना चलाई जा रही है। उच्च अध्ययन के लिए छात्रवृत्ति दिये जाने का प्रावधान भी किया गया है। बालिकाओं के लिए गांव की बेटी योजना, प्रतिभा किरण योजना तथा छात्रवृत्ति संबंधी कई योजनाएं जैसे अनुसूचित जनजाति कन्या साक्षरता प्रोत्साहन, इकलौती बेटी छात्रवृत्ति, मेधावी छात्रा प्रोत्साहन योजना, नि:शक्तजन छात्रवृत्ति, पितृहीन छात्राओं को छात्रवृत्ति, बालिका छात्रावास योजना, छात्रा आवास योजना आदि का प्रावधान किया गया है। बालिकाओं को स्कूल चलो अभियान से भी जोड़ा गया है।

5. संसाधनों का आवंटन – महिला नीति के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए अतिरिक्त भौतिक, वित्तीय एवं मानव संसाधनों की आवश्यकता होती है। समस्त विभाग अपने विभागीय बजट में महिला नीति के बिन्दुओं के अनुसार महिला घटकों का आकलन कर बजट में शामिल करने का प्रावधान शासन द्वारा किया गया है।

6. महिला नीति का पुनर्विलोकन –

1. शासन के सभी विभागों द्वारा अपने क्षेत्राधिकार में महिला नीति संबंधी निर्देशों की प्रगति की निरंतर समीक्षा कर महिला सशक्तिकरण संचालनालय के साथ सक्रिय रुप से समन्वय स्थापित किया जा रहा है।
2. समस्त विभाग द्वारा अपनी स्वयं की क्रियान्वयन रणनीति एवं निगरानी तंत्र स्थापित करना।
3. विभागों को महिलाओं से संबंधित मुद्दों की पहचान कर उनका यथोचित समाधान करना।
4. सत्त समीक्षा एवं आश्यकता अनुसार नीतियों का निर्धारण करना। महिला नीति में महिलाओं की सुरक्षा समता, समानता, सम्मान और विकास की प्रक्रिया में उनकी भागीदारी को सुनिश्चित करना प्राथमिकता से शामिल किया गया है।

निष्कर्ष – मध्यप्रदेश शासन महिलाओं की समानता, सुरक्षा, स्वतंत्रता, उनके लिए न्याय, विकास एवं सशक्तिकरण के लिए प्रतिबद्ध है। महिलाओं के सामाजिक ,आर्थिक ,राजनैतिक एवं शैक्षणिक सशक्तिकरण एवं विकास के लिए संचालित लाईफ साईकिल अप्रोच आधारित प्रदेश के अनेक कार्यक्रम एवं योजनाओं की देश अलग पहचान बनी हैं। महिला नीति की अभिकल्पना अनुसार इस महत्वपूर्ण कार्य को क्रियान्वित करने के लिए सरकारी विभागों में मीडिया, समाज सेवी संस्थाओं, संगठनों लेखक, साहित्यकार, बुध्दिजीवी वर्ग, पंचायती राज संस्थाओं एवं जनप्रतिनिधियों को एकजुट होकर अपनी अपनी सकारात्मक भूमिका का निर्वहन करना होगा ताकि महिला नीति के लक्ष्यों की प्राप्ति एवं सार्थक परिणाम प्राप्त किए जा सकें।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. 'पंचायिका', पंचायतों की मासिक पत्रिका, अंक-06, पृष्ठ-7, जून-2015
2. दैनिक भास्कर समाचार पत्र।
3. 'पंचायिका', पंचायतों की मासिक पत्रिका, अंक-06, पृष्ठ-8-9, जून-2015

****

युवाओं में बढ़ता तनाव (एक सम सामयिक अध्ययन)

प्रो. अंजना सेठिया *

शोध सारांश – ऑखों में उम्मीद के सपने नई उड़ान भरता हुआ मन कुछ कर दिखाने का दमखम और दुनिया को अपनी मुट्ठी में करने का साहस रखने वाला युवा कहा जाता है किन्तु आज के आधुनिक युग का एक सत्य यह भी है कि आज के युवा बहुत मनमानी करते है। लक्ष्यहीनता के माहौल ने युवाओं को इतना दिग्भ्रमित करके रख दिया है कि उन्हें समझ नहीं आ रहा है कि करना क्या है। इन सबसे युवाओं में तनाव बढ़ रहा है। उसे सर्वत्र तनाव, निराशा प्रतीत होती है। इसलिए कोशिश यह रखनी चाहिए कि आप खुशनुमा पलों को तलाश करें और सकारात्मक सोच रखे।

शब्द कुंजी – युवा और तनाव

प्रस्तावना – 'तनाव के धुन ने गेहूँ की तरह युवाओं के दिमाग को खोखला कर दिया है। भीतर में शांति की धुन बजाइये और अपने दिलो–दिमाग को तरोताजा कीजिये।'

किसी एक बिंदु पर निरन्तर व व्यर्थ का किया जाने वाला चिन्तन जब चिंता का रूप धारण कर ले, मस्तिष्क में स्थान बना लें, इस स्थान बनाने का नाम ही तनाव है। जब युवा या कोई भी व्यक्ति किसी एक बात विशेष पर अपने क्षुद्र अहंकार के चलते बार–बार नकारात्मक सोच रखता है तब तनाव की स्थिति निर्मित होती है।

तनाव से घिरा हर व्यक्ति जानता है कि तनाव में जीना बुरा है पर तनाव को छोड़ पाना क्या हर किसी के हाथ में है। ऐसा कौन है, जिसे तनाव नहीं होता। तनाव दस्तक देगा ही, लेकिन उसके लिए दरवाजा खोलना और उसे पाल लेना समझदारी नहीं हैं। बुद्धि मारी जाती है जब व्यक्ति तनावग्रस्त होता है और बुद्धि का उपयोग करके ही व्यक्ति इस चक्रव्यूह से बाहर निकल सकता है। अच्छी चीजों पर विचार होगा तो जीवन में अच्छी चीजें आएगी। इसलिये हमेशा सकारात्मक सोच, सार्थक सोचे। कम्प्यूटर का सिद्धान्त है– तनाव की जड़ यानी अपनी भावना को पकड़ लेने के बाद उसे उखाड़ना सरल हो जायेगा। सबसे पहले हमें उन कारणों को समझना जरूरी होगा जिनके कारण तनाव जन्मता है।

1. **चिंता –** तनाव का प्रमुख कारण है चिंता। चिता की दहलीज पर व्यक्ति एक बार जलता है पर चिंता की दहलीज पर जीवन भर जलता रहता है। किसी सार्थक, सकारात्मक, विधायात्मक बिन्दू पर किया गया चिंतन और मनन तो व्यक्ति को सार्थक परिणाम देता है किन्तु निरर्थक, नकारात्मक बिन्दु पर पुन:–पुन: किया जाने वाला चिन्तन व्यक्ति के मनोमस्तिष्क में तनाव भर देता है। लॉरेन ई. मिलर करती है कि आप जीवन के घटनाएं तय नहीं कर सकते, लेकिन उन पर कैसी प्रतिक्रिया की जानी चाहिए, यह तो आपके हाथ ही है। हम दूसरा विकल्प चुनते है, तो बुरी घटना भी हमारे जीवन में सकारात्मक बदलाव लाती है। तनावग्रस्त व्यक्ति की स्थिति वैसी ही हो जाती है जैसी जाले में फंसी मकड़ी की। जिसने जाला भी खुद बनाया और फंसी भी खुद।
2. **भय –** तनाव का दूसरा कारण है भय। मनुष्य के भीतर भय की ऐसी ग्रंथि निर्मित हो जाती है कि वह हाथी और शेर जैसी शक्ति रखते हुए भी गीदड़ से भी प्राप्त हो जाता है।

चिंता और भय से ग्रस्त युवा मुकाबला करने के बजाय अपने आपको कमजोर महसूस करता है। जैसे सूखी घास के ढेर में लगी छोटी–सी चिंगारी शुरूआत में थोडी ही दिखाई देती है लेकिन धीरे–धीरे पूरी घास को ही राख में तब्दील कर देती है, ऐसी ही स्थिति भयग्रस्त व्यक्ति की हो जाती है।

3. **उत्तेजना –** उत्तेजना युवाओं में तनाव का एक प्रमुख कारण है। युवाओं की आदत पटाखो की तरह होती है कि एक तीली लगाई और बम फूटा। छोटी सी बातों में उत्तेजना शांति को भंग करती है, चारों और अशांति का साम्राज्य है। आशंका, आवेग, आग्रह ये सब उत्तेजना के इर्द–गिर्द घुमते रहते है और यही युवाओं में तनाव को बढ़ाता है।
4. **वैचारिक असामंजस्य –** तनाव का एक और प्रमुख कारण होता है जो केवल युवाओं में ही नहीं पूरे परिवार और समाज को तनावग्रस्त कर देता है और वह है हमारा वैचारिक असामंजस्य। वैचारिक असामंजस्य भी तनाव को बहुत बढ़ा रहा है।

तनाव के और भी कई कारण ही सभी कारणों में हमारी नकारात्मक सोच जुड़ी है वह हमारी बुद्धि को विपरित बना देती है किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि तनाव से छुटकारा नहीं पाया जा सकता। आवश्यकता सिर्फ अपने आप पर नियंत्रण रखने की और अनुकूल वातावरण बनाने की है। अगर थोड़ी सावधानियाँ रखी जाय तो तनाव से बचा जा सकता है।

तनाव दूर करने के उपाय निम्न है –

1. **सकारात्मक सोच –** तनाव दूर करने का महत्वपूर्ण उपाय है तनाव मुक्ति की औषधि सकारात्मक सोच अपनी सोच को हमेशा विधायात्मक रखे। जैसी सोच होती है वैसा ही अनुकूल और प्रतिकुल हमारा जीवन होता है। सकारात्मक सोच एक ऐसा यंत्र है जिससे चुटकियों में ही व्यक्ति तनावयुक्त हो सकता है। यदि आज का युवा सकारात्मक सोच रखेगा तो वह तनाव से मुक्त होगा।
2. **प्रसन्न रहना –** सदैव प्रसन्न रहना तनाव से बचने का अच्छा टॉनिक है। जिस प्रकार अंधे के लिए लकड़ी सहारा बनती है और बीमार के लिए दवा वैसे ही तनावगस्त युवा के लिए प्रसन्नता औषधि का काम करती है। प्रसन्नता हमारे भीतर उत्साह पैदा करती है। दुनिया के जितने भी महापुरूषों ने बड़े–बड़े कार्य किये हैं उनके पीछे उनका उत्साह ही था।
3. **व्यस्त रहना –** युवाओं में तनाव दूर करने का सबसे महत्वपूर्ण उपाय हर समय व्यस्त रहो हर हाल में मस्त रहा–यही तनाव–मुक्ति की रामबाण दवा है। अगर युवा लगनपूर्वक एवं उत्साह से कार्य करे तो सभी कार्य सरलता से सम्पन्न हो जाते है और तनाव भी नहीं होता।

* सहायक प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान) शासकीय संस्कृत महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत

4. मदद करना – हमेशा मदद करने को तैयार रहना चाहिए। मदद से मिली संतुष्टि तनाव भुला देगी।

5. वर्तमान में जीना – लिव इन प्रेजेंट। वर्तमान में जीना/ अतीत + हमेशा चिंता को बढ़ावा देता है और भविष्य सपनों का जाल बुनता है। अत: वर्तमान में जीने/तनाव से मुक्त रहे, हर हाल में मस्त रहे।

इस प्रकार युवाओं में बढ़ता तनाव उनकी स्वयं की देन है। गलाकाट प्रतिस्पर्धा, एक दूसरे से आगे बढ़ने की हौड़ अंहकार की भावना, अस्त-व्यस्त जीवन शैली इन सबने तनाव को बढ़ाया है। तनाव से बचना और मुक्त होना हमारे ही हाथ में है। जीवन को बहुत सहजता से जीना होगा। सहजता तनाव-रहित जिन्दगी की धुरी है। सहज जिंए, सौम्य रहें व्यस्त और मस्त रहें। तनाव की क्या बिसात जो फिर भी टिक जाए।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. संबोधि टाईम्स-1 जुलाई 2014, 1 अक्टुबर 2014
2. दैनिक भास्कर (मधुरिमा) 17 दिसम्बर 2014
3. इन्टरनेट से प्राप्त जानकारी के आधार पर।
5. व्यक्तिगत विचार।

****

प्रदूषण मुक्त नर्मदा-एक अनुशीलन

डॉ. गुलाब सोलंकी * प्रो. वीणा बरड़े **

प्रस्तावना – नर्मदा अमरकंटक से निकलकर भरूच के समीप खम्भात की खाड़ी में गिरती हैं। नर्मदा को रेवा, सोमोदेवी तथा मैकलसुमा भी कहा जाता हैं। नर्मदा नदी भारत की पांचवी बड़ी नदी हैं तथा पश्चिम भारत में स्थित सभी नदियों में अधिक लम्बाई वाली हैं। यह भारत की सबसे पुरानी नदी हैं। आदिमानव के पद चिन्ह आज भी नर्मदा के तटो पर पाए जाते हैं। बहुत से स्थानो पर नर्मदा नदी के किनारे सुन्दर घाट और मनोहर मंदिर बने हुए हैं।

भारत की सात प्रमुख पवित्र नदियों में नर्मदा भी सम्मिलित हैं। पुराणकार नर्मदा को गंगा सदृश पवित्रय् प्रदान करते हैं। नर्मदा एक मात्र ऐसी नदी हैं, जिसकी परिक्रमा की जाती हैं। सब सरिताएं पूर्व की ओर जाती हैं, नर्मदा पश्चिम की ओर जाती है।

महाभारत के अनुशासनपर्व के अनुसार- 'नर्मदा में स्नान करने एवं संयमित जीवन बिताने में एक पखवाड़े में मनुष्य राजा हो जाता हैं।'

नर्मदा की जन्मकथा पुराणों की मोहमयी कुहेलिका से उभरकर हमारे सामने आती हैं। नर्मदा शिव तनया हैं। अनादि काल में भगवान शंकर पर्वत शिखर पर ध्यान मग्न थे, उनके अनजाने हो किसी समय उनके नील कण्ठ से नर्मदा नि:सृत हुई हैं। जन्म लेते ही वे शिव की तपस्या में लीन हो गयी, शिव ने नयन खोले तो इस असाधारण तपस्विनी को देखकर चकित हुए, शिव प्रसन्न हुए, वर दिया-तुम अमृतमयी होगी, जो फल तीर्थवारि में अवगाहन से होता हैं, वह तुम्हारे दर्शनों से सुलभ होगा। तुम अपनी आंकाक्षा के अनुरूप चिरकुमारी होगी। मुझे तुम निरंतर अपने निकट पाओगी। नर्मदा का मानवीकृत देवी रूप हमें उसके उद्भव काल में देखने को मिलता हैं, जब अपने विचित्र हाव-भाव से सभी सुर-असुरो को भ्रमित कर मुग्ध किया था। नर्मदा नाम ही इसीलिए प्राप्त हुआ हैं। (नर्मदा पुराण 05 अध्याय)

सौंदर्य की नदी नर्मदा हैं, यह नदी वनो, पहाड़ो और घाटियों में से बहती हैं। मैदान इसके हिस्से में कम ही आया हैं। सीधा, सपाट बहना तो यह जानती ही नहीं हैं।

यह चलती हैं, तो इतराती, बलखाती वन प्रांतरो में लुकती, छुपती, चट्टानो को तराशती डग-डग पर सौंदर्य की सृष्टि करती पग-पग पर सुषमा बिखेरती हैं।

नर्मदा तट का भूगोल तेजी से बदल रहा हैं। नर्मदा जल के उपयोग हेतु बड़ी योजनाएं जिसमें अपर वेदना, नर्मदा सागर, औंकारेश्वर, तवा, मान परियोजना, बरगी, जोबट, महेश्वर आदि बांधो के कारण अनेक गांव एवं नर्मदा के सेकड़ो किलोमीटर लम्बे किनारो का अस्तित्व समाप्त होता जा रहा हैं।

जल प्रदूषण एक आम समस्या बनती जा रही हैं।

जल प्रदूषण के कारक - देखे

अन्य नदियों की तरह नर्मदा जल भी प्रदूषण की वेदी पर चढ़ रहा हैं। आज भी कुछ स्थानो पर शवो को नदी जल में डाला जाता हैं, जले हुए शरीर के अंगो को नर्मदा जल में विर्सजित किया जाता हैं। गणेश मूर्तियां, दूर्गा मूर्तियां, ताबुज आदि विविध धार्मिक भावनाओं की सामग्री नदी जल में डाली जाती हैं।

वर्तमान में चाहे औंकारेश्वर तट हो या महेश्वर, मण्डेश्वर, खलघाट या अन्य तट हो गांवो, शहरो की गंदी नालियों का पानी नर्मदा जल में मिल रहा हैं, किन्तु हमारी सरकार या हमारा समाज ध्यान नहीं दे रहा हैं। आज यदि औंकारेश्वर की नर्मदा या तटो को देखे तो नर्मदा का मटमैला जल एवं बस्ती के गंदे नालो का पानी नर्मदा जल में मिल रहा हैं। जिस जल के लिए आस्थावान पहुंचते हैं, उनकी आत्मा को ठेस लगती हैं और उनके हृदय में ये भाव उठते होंगे।

नर्मदा थारो पाणी मन क कर ड उदास
हऊ चली आयी, दर्शन करन ड छोड़ी घर बार।
पाणी देरक्यो, घाट देरक्यो
देक्रयो मिलतो नाल्या नक गंदो पाणी, मन म्हारो हुयो उदास।

श्रद्धालु नर्मदा में स्नान, दीप प्रज्जवलित एवं प्रवाहित कर अपनी मनोकामना करता हैं किन्तु नर्मदा जल प्रदूषित न हो इस ओर कोई ध्यान नहीं देता हैं आज भी नदी में जानवरो को नहलाना, कचरा फैकना, शवो का डालना, नालो का पानी मिलने से रोकने पर जब तक दण्ड प्रावधान नहीं होगा जल प्रदूषण जैसी विकराल समस्या का हल नहीं होगा।

वर्तमान भारत सरकार द्वारा नदियों को प्रदूषण मुक्त करने हेतु योजनाएं बनायी गयी हैं, जिसमें सर्वप्रथम गंगा नदी को जोड़ा गया हैं, जिसके लिए आम नागरिको को जोड़ने का प्रयास किया, जिससे प्रदूषण को समाप्त करने के लिए लाखों हाथ आगे बढ़े हैं।

अविरल निर्मल गंगा प्रधानमंत्री मोदी की वरियता हैं। प्रधानमंत्री ने इस मसले पर मंत्री समूह बनाया। गंगा की सफाई के पश्चात नर्मदा को प्रदूषण मुक्त करने का लक्ष्य हैं। लोकविश्वास और शास्त्रीय प्रमाण हैं, कि नर्मदा पापमोचिनी हैं, मुक्तदात्री हैं, पितृतारिणी हैं, और भक्तो की कामनाओं की महार्तीर्थी हैं।

इसलिए भारत की सवा करोड़ जनसंख्या धार्मिक भावना से जुड़ी हुई हैं, हमारी भावना को ठेस न लगे इसलिए प्रत्येक भारतवासी को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अपना योगदान देना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. नर्मदा नदी की आत्मकथा-अमृतलाल बैगड़।
2. महिश्मति अमृतलाल बैगड़।
3. धर्मधारा हृदय

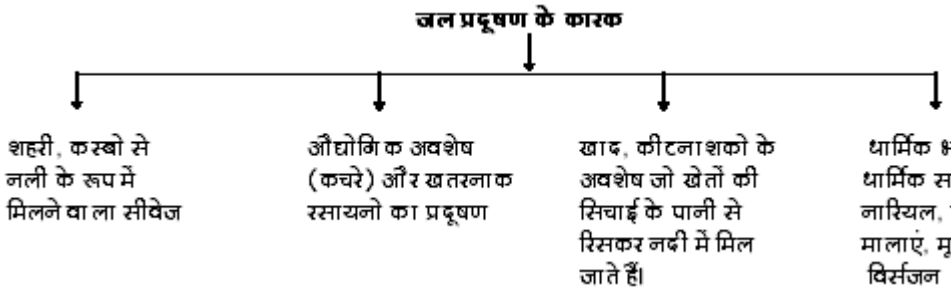

* प्राध्यापक (हिन्दी) शासकीय महाविद्यालय, धामनोद, जिला – धार (म.प्र.) भारत
** सहायक प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान) शासकीय महाविद्यालय, धामनोद, जिला-धार (म.प्र.) भारत

भारतीय समाज एवं जनसंख्या गतिकी

डॉ. दीपिका गुप्ता *

प्रस्तावना – एक अरब की जनसंख्या किसी भी देश के लिये जनसंख्या का बहुत बड़ा आकार है। भारत से अधिक जनसंख्या वाला दुनिया में केवल एक ही देश है और वह है चीन। हमारी जनसंख्या के वृहद् आकार का अनुमान इसी तथ्य से लग सकता है कि उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिका दोनों की जनसंख्या मिलाकर भी भारत की जनसंख्या से कम है। अकेले उत्तरप्रदेश की जनसंख्या ब्रिटेन की जनसंख्या से दो गुनी है। भारत की जनसंख्या की वृद्धि के बारे में यह एक भयानक तथ्य है कि जितनी कुल जनसंख्या जापान की है उतनी जनसंख्या हमारे यहाँ केवल दर वर्षो में बढ़ जाती है। भारत की एक दशक में बढ़ी हुई जनसंख्या ब्रिटेन की कुल जनसंख्या की दुगुनी, फ्रांस की जनसंख्या की दुगुनी, कनाडा की जनसंख्या की पाँच गुनी और संयुक्त राज्य अमेरिका की आधी से अधिक जनसंख्या के बराबर है।

भारत की जनसंख्या विश्व की कुल जनसंख्या का लगभग 15 प्रतिशत से अधिक है, जबकि भारत का कुल क्षेत्रफल विश्व के क्षेत्रफल का मात्र 2.4 प्रतिशत है। मतलब हुआ क्षेत्रफल की दृष्टि से विश्व के अपेक्षाकृत एक बहुत छोटे भाग में विश्व जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग रहता है। हर वर्ष भारत की जनसंख्या में श्रीलंका अथवा आस्ट्रेलिया की सम्पूर्ण जनसंख्या के बराबर वृद्धि हो जाती है। जब हम आजादी की लड़ाई लड़ रहे थे तब हम प्राय: कहा करते थे कि हम 'तीस कोटि जन' हैं यानी हम तीस करोड़ लोग हैं। उन्हें हम गुलाम नहीं रख सकते। हमारी पहली जनगणना 1872 में हुई थी।

यह जनसंख्या आधी–अधूरी थी। इसमें कई दोष थे और तब 1881 की जनगणना सबसे पहली जनगणना थी तब से भारत में जनगणना नियमित रूप से प्रति दस वर्ष में होती है। पिछली जनगणना 2001 में हुई है। यह देश की स्वतन्त्रता के बाद छठी जनगणना है। सन् 1891 के पहले की जनगणना के बारे में हमारे पास कोई तथ्य पूर्ण आँकड़े नहीं है। इस काल की जनसंख्या का आकार प्राचीन अभिलेखों और ऐतिहासिक ग्रन्थों द्वारा ही जाना जा सकता है। यूनान के प्राचीन इतिहासकारों के अनुसार जब सिकन्दर महान् ने 326 ई.पू. भारत पर आक्रमण किया था तब भारत एक विकसित और घनी आबादी वाला देश था तथा यहाँ 5 लाख पैदल सेना थी। पहली जनगणना के समय सन् 1872 में जनसंख्या लगभग 10 करोड़ थी। एक स्थान पर राधाकमल मुखर्जी लिखते हैं कि 19वीं शताब्दी के मध्य में भारत की जनसंख्या 10.5 करोड़ थी। 1891 की जनगणना के बारे में किंग्सले डेविस और एस. चन्द्रशेखर के अनुसार अधिक प्रमाणित लगते हैं। इन दोनों विद्धानों का मत है कि 1871 में यहाँ की जनसंख्या लगभग 25 करोड़ थी। ये सब आँकड़े पुख्ता नहीं है और इसलिए इस जनगणना को सन् 1891 में देखते हैं।

वृद्धि – 1891 में यहाँ की जनसंख्या 23.59 करोड़ थी। इस जनसंख्या की वृद्धि दर हमें ज्ञात नहीं है लेकिन 1921 की जनगणना में यह वृद्धि दर 0.32 प्रतिशत थी। इस अवधि में देश में अकाल पड़े और महामारियों का प्रकोप भी हुआ। वास्तव में सन् 1911 से लेकर सन् 1921 के बीच देश में हैजा, प्लेग, मलेरिया आदि बीमारियों ने महामारी का रूप धारण कर लिया। इस अवधि में 1.3 करोड़ से लेकर 2.0 करोड़ लोगों की अकाल मृत्यु हो गयी। इसी कारण जनसंख्या वृद्धि ऋणात्मक हो गयी। सन् 1891 से 1920 यानी प्रति 10 वर्षो में जनसंख्या वृद्धि की जो दर रही इसे हम निम्न तालिका में प्रस्तुत करेंगे। सन् 1891 से 1920 के बीच भारत की जनसंख्या तथा उसकी वृद्धि पर –

वर्ष	जनसंख्या (करोड़ में)	दशक में जनसंख्या वृद्धि (करोड़ में)	दशक में प्रतिशत वृद्धि/कमी
1891	23.59	–	–
1901	23.84	0.25	1.06
1911	25.21	1.37	5.75
1921	25.13	0.80	0.32

सन् 1921 से सन् 1951 के मध्य जनसंख्या वृद्धि में ईजाफा हुआ। सन् 1931 में देश में जो जनगणना हुई इसे अब भी बहुत विस्तृत और महत्वपूर्ण जनगणना समझा जाता है। इसका कारण यह है कि सन् 1941 में जो जनगणना हुई वह केवल मनुष्यों की गिनती मात्रा थी। इस अवधि में दूसरा विश्वयुद्ध चल रहा था और ब्रिटिश सरकार उसमें उलझी हुई थी और इसके बाद सन् 1951 में पहली जनगणना थी। सन् 1921 से सन् 1951 की जनगणना के आँकड़े हम निम्न तालिका में रखते हैं –

सन् 1921 से सन् 1951 के बीच की भारत की जनसंख्या तथा उसकी वृद्धि दर

वर्ष	जनसंख्या (करोड़ में)	दशक में जनसंख्या वृद्धि (करोड़ में)	दशक में प्रतिशत वृद्धि/कमी
1921	25.13	–	–
1931	27.90	2.77	11.02
1941	31.87	3.97	14.23
1951	36.11	4.24	13.30

तालिका को देखने से स्पष्ट है कि देश की जनसंख्या वृद्धि के संबंध में एक नई प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। जहाँ 1921 से पहले जनसंख्या की वृद्धि अनियमित तथा धीमी थी वहाँ 1931 के बाद लगातार इसमें वृद्धि होती गयी। इसी कारण 1921 की जनगणना को महाविभाजक वर्ष कहा जाता है। वर्ष 1921–31 की दशाब्दी में जनसंख्या 2.77 करोड़ बढ़ गई जो पिछली दो शाब्दियों में हुई कुल वृद्धि (1.29 करोड़) की तुलना में दुगुने से भी अधिक थी। 1931–41 के दशक में हुई वृद्धि तो इससे भी बहुत अधिक 3.97 करोड़ थी। तेजी से बढ़ने का यह क्रम आगे भी चलता रहा। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान पड़े अकाल तथा देश विभाजन की घटनाओं के बावजूद 1941–51 के दशक में देश की जनसख्या 4.24 करोड़ बढ़ गयी। यह वृद्धि पंजाब, हरियाणा, दिल्ली तथा जम्मू–कश्मीर की जनसंख्या के जोड़ के बराबर थी।

* अटल बिहारी वाजपेयी हिंदी विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.) भारत

प्रतिशत विश्लेषण के आधार पर 1921-31 के दशक में भारत की जनसंख्या में 11.02 प्रतिशत, 1931-41 के दशक में, 14.23 प्रतिशत तथा 1941-51 के दशक में 13.30 प्रतिशत की वृद्धि हो गयी। इस अवधि में जनसंख्या वृद्धि का प्रमुख कारण था अकाल एवं महामारी पर नियंत्रण, इससे मृत्युदर में कमी आ गयी। पहले जन्म एवं मृत्यु दर दोनों ऊँची थी, फलस्वरूप जनसंख्या में वृद्धि नहीं हो पा रही थी, परन्तु इस अवधि में स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सम्बन्धी सुविधाओं में विस्तार से मृत्युदर तो घट गयी परन्तु जन्म दर में कोई कमी नहीं आयी। परिणामस्वरूप जनसंख्या में तेजी से वृद्धि हो गयी।

सन् 1951 से 1991 के बीच भारत की जनसंख्या तथा उसकी वृद्धि दर

वर्ष	जनसंख्या (करोड़ में)	दशक में जनसंख्या वृद्धि (करोड़ में)	दशक में प्रतिशत वृद्धि/कमी
1951	36.11	-	-
1961	43.92	+ 07.81	+ 21.63
1971	54.82	+ 10.90	+ 24.82
1981	68.33	+ 13.51	+ 24.64
1991	84.33	+ 16.10	+ 23.56

उपरोक्त तालिका में हमने जनसंख्या वृद्धि की दर को स्वतन्त्रता प्राप्ति के 50 वर्षों में प्रस्तुत किया है। 1951-61 के दूर वर्षों में जनसंख्या वृद्धि 7.81 करोड़ यानी 21.63 प्रतिशत हो गयी। यह वृद्धि पिछले दशक की तुलना में बहुत ज्यादा थी - 13.30 प्रतिशत से 21.63 प्रतिशत। यह वृद्धि आस्ट्रेलिया, फ्रान्स और स्वीडन की वर्तमान कुल जनसंख्या के जोड़ के बराबर थी। 1961-71 के दशक में जो जनसंख्या में वृद्धि हुई वह 24.82 प्रतिशत थी। यह वृद्धि राजस्थान, उड़ीसा, केरल, असम, त्रिपुरा तथा मेघालय की कुल वर्तमान जनसंख्या के जोड़ से भी अधिक थी। सन् 1981 की जनगणना के अनुसार जनसंख्या वृद्धि की दर 24.64 प्रतिशत था, जो पिछले दशकों की तुलना में कहीं अधिक था, और अगले दशक में वृद्धि की दर 23.56 प्रतिशत था। यदि स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय से जनसंख्या वृद्धि का हिसाब लगाया लाये तो स्पष्ट होता है कि 45 वर्षों में जनसंख्या ढाई गुना से भी ज्यादा हो गयी।

धार्मिक संगठन - धर्म सर्वाधिक भारतीयों के सांस्कृतिक और राजनीतिक जीवन को प्रभावित करने वाले प्रमुख बलों में से एक है। क्योंकि धर्म लोगों के परिवार और सामुदायिक जीवन के लगभग सभी पक्षों में आभासी रूप से व्याप्त होता है, यह महत्वपूर्ण है कि धार्मिक संगठन का विस्तापूर्वक अध्ययन किया जाए।

देश में धार्मिक समुदायों का स्थानिक वितरण दर्शाता है कि कुछ निश्चित राज्यों और जिलों में एक धर्म की संख्यात्मक प्रबलता विशाल है, जबकि उसकी का दूसरे राज्यों में प्रतिनिधित्व नगण्य है।

भारत-बंगलादेश सीमा व भारत-पाक सीमा से संलग्न जिलों, जम्मू और कश्मीर, उत्तर-पूर्व के पर्वतीय राज्यों और दक्कन पठार व गंगा के मैदान के प्रकीर्ण क्षेत्रों को छोड़कर हिन्दू अनेक राज्यों में एक प्रमुख समूह के रूप में वितरित हैं (70 ये 90% तक और उससे अधिक) विशालतम धार्मिक अल्पसंख्यक मुस्लिम जम्मू और कश्मीर, पश्चिम बंगाल और केरल के कुछ जिलों उत्तरप्रदेश के अनेक जिलों, दिल्ली में व उसके आस-पास और लक्षद्वीप में सांद्रित हैं।

धार्मिक समूह	2001	
	जनसंख्या (दस लाख में)	कुल का प्रतिशत
हिन्दू	827.6	80.5
मुस्लिम	138.2	13.5
ईसाई	24.1	2.3
सिक्ख	19.2	1.9
बौद्ध	8.0	0.9
जैन	4.2	0.4
अन्य	6.6	0.6

ईसाई जनसंख्या अधिकांशत: देश के ग्रामीण क्षेत्रों में वितरित हैं। मुख्य सांद्रण पश्चिमी तट के साथ गोआ एवं केरल और मेघालय, मिजोरम और नागालैंड के पहाड़ी राज्यों, छोटा नागपुर क्षेत्र और मणिपुर की पहाड़ियों में भी देखा जाता है।

अधिकांश सिक्ख देश के अपेक्षाकृत छोटे क्षेत्र विशेष रूप से पंजाब, हरियाणा और दिल्ली में संकेंद्रित हैं। भारत के सबसे छोटे धार्मिक समूह जैन और बौद्ध देश के गिने-चुने क्षेत्रों में संकेंद्रित हैं। जैनियों का प्रमुख संकेंद्रण राजस्थान के नगरीय क्षेत्रों, गुजरात और महाराष्ट्र में है जबकि बौद्ध अधिकांशत: महाराष्ट्र में संकेंद्रित हैं। बौद्ध बाहुल्य अन्य क्षेत्र सिक्किम, अरूणाचल प्रदेश, जम्मू और कश्मीर में लद्दाख, त्रिपुरा और हिमाचल प्रदेश में लाहुल स्पिति हैं।

भारत के अन्य धर्मों में जरतुश्त, जनजातीय एवं अन्य देशज निष्ठाएँ और विश्वास सम्मिलित हैं। ये समूह छोटे समूहों में संकेन्द्रित हैं और देश-भर में बिखरे हुए हैं।

भारत में किसी धर्म को न मानने वालों की संख्या तेजी से बढ़ रही है। हालांकि अभी इनका कुल देश की आबादी में प्रतिशत कम है, लेकिन उम्मीद की जा रही है कि आने वाले दिनों में इसमें बढ़ोत्तरी देखने को मिलेगी। ताजा जनगणना के धार्मिक आंकड़ों के मुताबिक भारत के 1.21 अरब लोगों में से 28.7 लाख लोग खुद को किसी भी धर्म का अनुयायी नहीं मानते हैं। यह कुल आबादी का 0.24 फीसदी है। 2011 की जनगणना के फॉर्म में पहली बार किसी धर्म को न मानने वालों का कॉलम जोड़ा गया था। इस आंकड़े में नास्तिक, तर्कवादी और किसी धर्म में रुचि न रखने वाले पर किसी अज्ञात शक्ति में भरोसा करने वाले लोग शामिल हैं। ताजा आंकड़ों से एक रोचक तथ्य सामने आया है कि देश के ग्रामीण इलाकों में शहरों के मुकाबले किसी धर्म को मानने वाले ज्यादा लोग हैं। गाँवों में करीब 46.45 लाख लोग किसी धर्म को नहीं मानते तो शहरों के इनकी संख्या करीब 12.24 लाख है।

राजनीतिक दल अल्पसंख्यकों के नाम पर भले ही किसी धर्म विशेष के अधिकारों की वकालत करते हों लेकिन हकीकत यह है कि देश में बहुसंख्यक माना जाने वाला हिन्दू समुदाय भी सात राज्यों तथा एक केन्द्र शासित प्रदेश में अल्पसंख्यक है। कई प्रदेश तो ऐसे हैं जहाँ हिंदुओं की आबादी 10 फीसद से भी कम है। जनगणना-2011 के अनुसार मिजोरम, नागालैंड, मेघालय, जम्मू-कश्मीर, अरूणाचल प्रदेश, पंजाब मणिपुर और लक्षद्वीप में हिन्दू समुदाय अल्पसंख्यक हैं। ये प्रदेश ईसाई या मुस्लिम बहुल है। कई प्रदेशों की कुल आबादी में हिंदुओं का अनुपात तेजी से कम हुआ है।

राज्यवार देखें तो मिजोरम ऐसा राज्य हैं जिसकी कुल आबादी में हिन्दुओं का अनुपात काफी कम है। 2011 की जनगणना के अनुसार मिजोरम में मात्र 2.75 फीसदी हिन्दू है। 2001 मेंवहां 3.55 फीसदी हिन्दू थे लेकिन बीते

दस वर्षों में उनकी आबादी का फीसद घट गया। इसी तरह लक्षद्वीप में 2001 में 366 फीसद हिन्दू थे जो 2011 में घटकर मात्र 2.77 फीसद रह गए हैं। इसी तरह जम्मू-कश्मीर में भी हिन्दुओं का प्रतिशत 29.63 से घटकर 28.44 रह गया है।

पूर्वोत्तर के ही नागालैंड और मेघालय में भी हिन्दू अल्पसंख्यक हैं। इन दोनों देशों में हिन्दुओं की आबादी क्रमश: 8.75 फीसद और 11.53 फीसद हैं। मणिपुर में हिन्दुओं की आबादी 41.39 फीसद है जबकि 2001 में यह 46.01 फीसद थी। पंजाब में भी हिन्दू अल्पसंख्यक हैं, यह राज्य सिख बाहुल है और यहां पर हिन्दुओं की आबादी 38.49 फीसद है। जिन राज्यों में हिन्दू अल्पसंख्यक हैं उनमें से कई में उनकी जनसंख्या वृद्धि की दर भी काफी कम है। नागालैंड में तो 2001 से 2011 के बीच हिन्दुओं की वृद्धि नकरात्मक रही। 2001 से 2011 के बीच पूरे देश में जहां हिंदुओं की आबादी में 16.8 फीसद वृद्धि हुई वहीं केरल में मात्र 4.9 फीसद और लक्षद्वीप में 6.3 फीसद की दर से हिंदुओं की संख्या बढ़ी।

हिन्दू आबादी का प्रतिशत राज्य

आबादी	**(प्रतिशत)**
मिजोरम	**2.75**
लक्षद्वीप	**2.77**
जम्मू-कश्मीर	**28.44**
नागालैंड	**8.75**
मेघालय	**11.53**
मणिपुर	**41.39**
अरुणाचल प्रदेश	**29.04**
पंजाब	**38.4**

आंकड़ों के मुताबिक 2001 से 2011 के बीच देश की कुल हिस्सेदारी 0.8% बढ़ी है। जबकि हिंदुओं की हिस्सेदारी 0.7% घटी। 121 करोड़ की आबादी में हिन्दू 96.63 करोड़ और मुस्लिम 17.22 करोड़ हैं। सरकार ने सामाजिक-आर्थिक जनगणना के आंकड़े तीन जुलाई को जारी किए थे। तब से ही सारी सियासी पार्टियां जाति के आंकड़े उजागर करने की मांग कर रहीं थीं। पर सामने आ गए धर्म के आंकड़े। अब यही पार्टियाँ सरकार की नीयत पर सवाल उठा रही हैं। कहा जा रहा है कि बिहार चुनाव में ध्रुवीकरण के मकसद से आंकड़े जारी किए गए। बहरहाल, अन्य धर्मों की बात करें तो सिख और बौद्ध भी कम हुए हैं। कुल आबादी में सिख 0.2% और बौद्ध 0.1% घटे हैं। भारत की आबादी बढ़ने की रफ्तार 2001-2011 के बीच 17.7% थी। इसकी तुलना में मुस्लिमों की आबादी 24.6% की रफ्तार से बढ़ी। बाकी धर्मों की आबादी बढ़ने की रफ्तार राष्ट्रीय औसत से कम रही।

दशक	**मुस्लिम**	**हिन्दू**
1981 से 1991	22.8%	32.9%
1991 से 2001	20.0%	29.3%
2001 से 2011	16.8%	24.6%

यानी पिछले दशक में मुस्लिम आबादी बढ़ने की दर 4.7% कम हुई है। जबकि हिंदुओं की 3.2% घटी। (देखे अगले पृष्ठ पर)

इन राज्यों में मुस्लिम बढ़े -

राज्य	वृद्धि
असम	3.3%
उत्तराखण्ड	2.03%
केरल	1.86%
पश्चिम बंगाल	1.76%
गोवा	1.49%

बड़े राज्य - महाराष्ट्र 0.94%, यूपी 0.76%, बिहार 0.34%, राजस्थान 0.6%, म.प्र. 0.2%

इन राज्यों में हिन्दू घटे -

राज्य	**प्रतिशत**
अरुणाचल प्रदेश	-5.56%
मणिपुर	-4.62%
असम	-3.42%
सिक्किम	-3.17%
त्रिपुरा	-2.2%

बड़े राज्य -महाराष्ट्र -0-54%, यूपी -0.88%, बिहार -0.54%, राजस्थान -0.26%, म.प्र. 0.2%, तामिलनाडू -0.53%, म.प्र. -0.26%।

भारत में लिंग अनुपात- विश्व में लिंग अनुपात के प्रारूप की भांति इस अनुच्छेद में भी लिंग अनुपात से अभिप्राय है प्रति 1000 पुरूषों की संख्या के पीछे स्त्रियों की संख्या 1981 की जनगणना के अनुसार देश में प्रति 1000 पुरूषों के पीछे 934 स्त्रियाँ थीं। भारत में भी, जैसा कि विश्व के अन्य भागों में हैं, जन्म के समय पुरूषों की संख्या स्त्रियों से अधिक होती है। भारत में लगभग 937 मादा बच्चों का जन्म प्रति 1000 नर बच्चों के जन्म के पीछे होता है। जबकि विकसित देशों में उच्च नर मृत्यु दर शीघ्र ही 04 वर्ष की आयु के आस-पास संतुलन बना देती है। भारतीय संदर्भ में पुरूष तथा स्त्रियों की मृत्यु दर में अंतर दोनों लिंगों में संतुलन बनाने में सहायता नहीं करता। भारत में स्त्री मृत्यु दर पुरूष मृत्यु दर से शैशव अवस्था में तथा पुनर्जनन में अधिक होती है। स्त्रियों के प्रति सामान्य तौर पर बरती गई लापरवाही ही बाल्यावस्था में उच्च स्त्री मृत्यु दर के लिए उत्तरदायी है। भारत में स्त्रियों की कमी का एक और कारण यह भी रहा है कि भूतकाल में मादा बच्चों की हत्या कर दी जाती थी तथा महामारियों का प्रकोप स्त्रियां के प्राणों के लिए अधिक घातक था। भूतकाल की इन बातों का प्रभाव आज भी भारतीय लिंग अनुपात के संतुलन पर स्पष्टत: परिलक्षित है।

भारत में लिंग अनुपात की दृष्टि से नगरीय और ग्रामीण क्षेत्रों में विभिन्न धार्मिक समुदायों में विभिन्न सामाजिक समुदायों में तथा विभिन्न क्षेत्रों में बहुत अंतर है। जहां तक भारत की ग्रामीण तथा नगरीय जनसंख्याओं के लिंग अनुपात का संबंध है भारत की दशा पश्चिमी देशों से ठीक विपरीत है। भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में लिंग अनुपात 951 स्त्रियां प्रति 1000 पुरूष तथा नगरीय क्षेत्रों में लिंग अनुपात केवल 880 स्त्रियों प्रति 1000 पुरूष था। (1981)

इस प्रकार भारत की नगरीय जनसंख्या में स्त्रियों की बहुत कमी है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि भारत में नगरीय व ग्रामीण क्षेत्रों के लिंग अनुपात का अंतर मुख्यत: ग्रामीण क्षेत्रों से नगरीय क्षेत्रों में पुरूष प्रधान प्रवास (माईग्रेशन) के कारण ही है। भारत में अधिक पुरूष ग्रामीण क्षेत्रों से नगरीय क्षेत्रों में प्रवास करते हैं। इस प्रकार का प्रवास ग्रामीण क्षेत्रों के अपकर्षण तथा नगरीय क्षेत्रों के अपकर्षण कारकों का प्रतिफल है। ग्रामीण क्षेत्रों में सीमित कृषि संसाधनों पर बढ़ते जनसंख्या दबाव के कारण नवयुवक रोजगार की खोज में नगरों को भागता है। नगर में रहन-सहन की उच्च लागत और आवास की समस्या के कारण पुरूष अपने परिवारों को गांव में ही छोड़ जाते हैं प्रचलित संयुक्त परिवार व्यवस्था के कारण वैसे भी पुरूषों के परिवार गांव में ही रह जाते हैं। वहां उनकी देखभाल व सुरक्षा में भी सहायता हो जाती

है। इस प्रकार मुख्यता पुरूष–प्रधान प्रवास जो ग्रामीण क्षेत्रों से नगरीय क्षेत्रों की ओर है, के ही कारण नगरीय क्षेत्रों का लिंग अनुपात कम है।

ऐसे ही भारत के विभिन्न धार्मिक समुदायों में भी लिंग अनुपात में अंतर पाया जाता है। भारत में ईसाईयों में लिंग अनुपात सर्वाधिक यानि 986 स्त्रियाँ प्रति 1000 पुरूष था, तथा सिक्खों में सब से कम यानि 860 स्त्रियाँ प्रति 1000 पुरूष था। (1971)। हिन्दुओं में लिंग अनुपात 930 था जो लगभग राष्ट्रीय औसत के बराबर था। इसका स्पष्ट है क्योंकि भारत की जनसंख्या में लगभग 80% लोग हिन्दु हैं। मुसलमानों का भी भारत में लिंग अनुपात अपेक्षाकृत निम्न 922 स्त्रियाँ प्रति 1000 पुरूष था (1971)। ठोस आंकड़ों के अभाव में इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन है कि कहाँ तक इन समुदायों के लिंग अनुपात का संबंध उनके स्वाभाविक लिंग अनुपात की भिन्नता का फल है। सिक्खों में अतीव निम्न लिंग अनुपात का संबंध भी कहाँ तक जन्म के समय मादा बच्चों की कमी से संबंधित है, यह कहना बहुत कठिन है, क्योंकि संतोषजनक आंकड़े उपलब्ध ही नहीं है। ईसाईयों में उच्च लिंग अनुपात का कारण है स्त्रियों में अपेक्षाकृत निम्न–मृत्युदर। इसी प्रकार मुसलमानों में अपेक्षाकृत उच्च स्त्री मृत्यु दर उनके निम्न लिंग अनुपात के लिए उत्तरदायी है।

ईसाई धर्म को छोड़कर देश के अधिकांश प्रमुख धर्मों में लिंगानुपात बहुत बुरा है। सिख धर्म में तो महिलाओं का अनुपात देश में सबसे कम है। धर्म आधारित 2011 की जनगणना के मुताबिक, सिक्खों में 1.09 करोड़ पुरूष हैं और 98.84 लाख महिलाऐं हैं। प्रतिशत के हिसाब से 52.56 फीसदी पुरूषों के मुकाबले महिलाऐं महज 47.44 फीसदी हैं।

जारी किए गए आंकड़ों के मुताबिक देश में ईसाई पुरूषों की संख्या 1.37 करोड़ और महिलाओं की 1.40 करोड़ है। देश में यह एकमात्र धार्मिक समुदाय है, जहाँ लिंगानुपात महिलाओं के पक्ष में है। देश में 96.62 करोड़ हिन्दू हैं। इनमें 49.83 करोड़ पुरूष हैं, और 46.79 करोड़ महिलाऐं हैं। यानी हिन्दू महिलाओं की संख्या 48.42 प्रतिशत है।

मुस्लिम धर्म की बात करें तो यहाँ पर 8.82 करोड़ पुरूषों के मुकाबले 8.39 करोड़ महिलाऐं हैं। मतलब मुस्लिम महिलाओं का अनुपात 48.75 प्रतिशत है। 84.42 लाख आबादी वाले बौद्ध समुदाय में महिलाऐं 41.46 लाख यानी 49.11 प्रतिशत हैं। 44.51 लाख आबादी वाले जैन समुदाय में महिलाऐं 48.82 प्रतिशत है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. भारत के महारजिस्ट्रार एवं जनगणना आयुक्त का कार्यालय।
2. द हिन्दू (समाचार पत्र)
3. द इकोनोमिक टाइम्स (समाचार पत्र)
4. दैनिक भास्कर (समाचार पत्र)
5. राज्य योजना आयोग की एक रिपोर्ट
6. धमेन्द्र 'स' सोशियालॉजी (यू.पी.एस.सी. स्टडी मटेरियल)

यानी पिछले दशक में मुस्लिम आबादी बढ़ने की दर 4.7% कम हुई है। जबकि हिंदुओं की 3.2% घटी।

धर्म	2011 में		2001 में		वृद्धि	आबादी में घट/बढ़
	जनसंख्या	प्रतिशत	जनसंख्या	प्रतिशत		
हिन्दू	96.63	**79.8**	82.75	**80.5**	16.8%	-0.7%
मुस्लिम	17.22	**14.2**	13.8	**13.4**	24.6%	+0.8%
ईसाई	2.78	**2.3**	2.40	**2.3**	15.5%	00%
सिख	2.08	**1.7**	1.92	**1.9**	8.4%	-0.2%
बौद्ध	0.84	**0.7**	0.79	**0.8**	6.1%	-0.1%
जैन	0.45	**0.4**	0.42	**0.43**	5.4%	-0.03%

****

भारतीय समाज में विवाह संस्था पर सामाजिक अधिनियमों का प्रभाव - ग्वालियर शहर के संदर्भ में एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

अर्चना सेन *

शोध सारांश -विवाह को जन्म-जन्मांतर का बंधन माना जाता है तथा विवाह विच्छेद करना सामाजिक दृष्टि से हेय माना जाता है, परंतु कुछ एक दशको में हुये परिवर्तनों के कारण निश्चयात्मक तौर से अब यह नहीं कहा जा सकता कि आज की युवा पीढ़ी जन्म-जन्मांतर के बंधन या धार्मिक कर्तव्य और संस्कार तथा सामाजिक दायित्व बोध से ही विवाह करता है। हिंदुओ में भी विवाह का स्वरूप अब समझौते का बनता जा रहा है। तलाक को कानूनी मान्यता मिल चुकी है लेकिन, इसका तार्त्पय यह नहीं है कि प्रत्येक हिंदु के लिये अब विवाह का स्वरूप पश्चिम की तरह, समझौते का हो गया है और इसे आसानी से तोड़ा जा सकता है, वर्तमान समय में भी हिंदुओं के लिये कानूनी विवाह, विवाह के लिये पंजीकरण, अंतर्जातीय और अंतधार्मिक विवाह लोकप्रिय नहीं है। कानूनी प्रतिबंध के होते हुये बाल विवाह का प्रचलन है तथा कानूनी संरक्षण के होते हुये भी विधवा विवाह नहीं हो पा रहे। दहेज लेना व देना दोनों ही अपराध है इसके बावजूद भी दहेज का प्रचलन न केवल बना हुआ है बल्कि यह बहुसंख्यक हिंदुओं के प्रभाव के कारण अन्य समुदायों में भी प्रचलित हो गया है जहाँ इसका प्रचलन पहले नहीं था।

प्रस्तावना - विवाह एक सर्वव्यापी और सार्वभौतिक संस्था है जो सभी समाजों में विद्यमान है सभ्य और असभ्य तथा आदिम और आद्युनातन जैसे समाज विवाह संस्था से संबद्ध रहे है। वस्तुत: विवाह नामक संस्था प्रत्येक काल और प्रत्येक समाज में रही है, चाहे उसके स्वरूप जो भी रहे हो। मनुष्य की यौन और संतानोत्पत्ति की मूल प्रवृतियों की संतुष्टि विवाह के माध्यम से ही संभव रही है। वंश, कुल और परिवार की निरंतरता विवाह संस्था से ही बनी रही है तथा जीवन के विविध पक्ष उससे अनुप्राणित होते रहे है। सही अर्थो में विवाह, परिवार का प्रधान आधार रहा है, जिससे संतान की उत्पत्ति के साथ-साथ उसका विकास क्रम भी अभिव्यक्त रहता है केवल यौन संतुष्टि ही विवाह-संस्था का आधार नहीं थी बल्कि इसका धार्मिक और सामाजिक आधार भी रहा है। मजूमदार एवं मदान ने उचित ही लिखा है कि विवाह संस्था का संबधं एक विशेष सामाजिक स्वीकृति से है जो साधारणत: कानूनी अथवा धार्मिक संस्कार के रूप में होती है और जो भिन्नलिगींय व्यक्तियों को यौन संबंध स्थापित करने तथा उससे संबंधित सामाजिक आर्थिक संबंधों का उन्हें अधिकार देते है।'

वर्तमान समय में औद्योगीकरण, नगरीकरण पश्चिमीकरण के साथ जीवन में भौतिक मूल्यों के समावेश मानवाधिकार स्त्री -शिक्षा के प्रचार-प्रसार के वैधानिक विधानों की सुखवादी पहल इत्यादि के कारण विवाह से संबंधित परम्परागत पक्ष और जीवन - साथी के चुनाव में परिवर्तन हुआ है। इसलिए विश्व के सभी देशों और समाजों के समाज की संरचनात्मक इकाई परिवार को जन्म देने वाली संस्था विवाह के अध्ययनों का महत्व बढ़ा।

भारत में वैसे तो विवाह संबंधी कई अध्ययन हुए है। इनमें एम.एन. श्री निवास (1942) किंग्सले डेविस (1942), के एम कपाड़िया (1968), प्रमिला कपूर (1970), आर के शर्मा, (1981), भल्ला डी एम. (1992), मित्रा एम. (1994) इत्यादि प्रमुख है यह अध्ययन मुख्यत: विवाह की अवधारणात्मक, धार्मिक पक्ष, स्वरूपों रीति रिवाजों और विवाह से संबंधित विधान या दहेज, बाल- विवाह जैसी समस्याओं से संबंधित रहे है। जहाँ तक विवाह संस्था में परिवर्तन का संबंध है अंग्रेजी शासन काल के प्रारंभ से ही ऐसे कानून बनते रहे है, जिनके द्वारा विवाह के परंपरागत नियमों में परिर्वतन का प्रयत्न किया गया इसका उदाहरण बंगाल सती रेग्युलेशन एक्ट है जो 1829 में बना जिसमें सती के नाम पर महिला को जिंदा जलाने की कुप्रथा को समाप्त करने का प्रयास किया गया। बाद में इस विधान ने अनेकों संशोधन किये गऐ और इसे ज्ञातव्य अपराध माना गया। विधवा पुनर्विवाह अधिनियम (1856), सतीप्रथा निषेध अधिनियम (1829), बाल विवाह अवरोध अधिनियम (1929), संपत्ति अधिकार अधिनियम (1937), विवाह विच्छेद अधिनियम (1956), हिंदू विवाह तथा विशेष विवाह अधिनियम (1956), हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम (1956), लड़कियों से संबंधित अनैतिकता व व्यापार संबंधी अधिनियम (1956), दत्तक ग्रहण अधिनियम (1956), दहेज निरोधक अधिनियम (1961), मातृत्व लाभ अधिनियम (1961), विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

साधारणत: विवाह शब्द का अर्थ है वधू को उसके पिता के घर से विशेष रूप में ले जाना अथवा किसी विशेष कार्य के लिए अर्थात पत्नी बनाने के लिए ले जाना। विवाह के लिए संस्कृत साहित्य में और भी अनेक शब्द प्रचलित है, जैसे- उद्धाह , परिणय, उपमय, पाणिग्रह आदि। उद्धाह् का अर्थ है, वधू को उसके पिता के घर से ले जाना। परिणय का अर्थ है चारों और घूमना, यानि अग्नि की परिक्रमा अथवा प्रदक्षिणा करना। उपमय का अर्थ है किसी को निकट लाकर अपना बनाना तथा पाणिग्रहण का अर्थ है वधू का हाथ ग्रहण करना।

हिंदू विवाह एक धार्मिक संस्कार है जो दो विषमलिंगी व्यक्तियों को धार्मिक व सामाजिक उत्तरदायित्वों के निर्वाह हेतु एक पारिवारिक जीवन में आबद्ध करता है और जो जीवन की सार्थकता की दृष्टि से उनके लिए आवश्यक है हिंदुओं के लिए विवाह एक संस्कार है क्योंकि धार्मिक विधियों से अर्थात् मंत्रो के माध्यम से देवताओं के साक्ष्य में संपन्न वह एक पवित्र जीवन-बंधन है। हिंदू-विवाह एक सामाजिक समझौता न होकर धार्मिक संस्कार इसीलिए भी है क्योंकि ऐसा विश्वास किया जाता है कि यह बंधन व्यक्तियों द्वारा निश्चित न होकर पूर्व निश्चित होता हैं। हिंदू विवाह में एक व्यक्ति के लिए,

* शोधार्थी (समाजशास्त्र) 42 बी/ए, विकास नगर, फूलबाग, ग्वालियर (म.प्र.) भारत

चाहे वह पुरूष हो अथवा स्त्री, आवश्यक माना गया है। स्त्रियों के लिए महत्वपूर्ण प्रारंभिक संस्कारों का विधान न होने के कारण विवाह अत्यधिक महत्वपूर्ण ही नहीं अपितु अनिर्वाय भी है। पुरूष के लिए भी यह एक आवश्यक संस्कार है। मनु के अनुसार संतानोत्पत्ति करने के लिए ही स्त्री और पुरूष की सृष्टि हुई है। इसीलिए वेदों की धारणा है कि धर्म की साधना पुरूष को अपनी पत्नी के साथ करनी चाहिये।

प्रजनार्थं स्त्रिय: सृष्टा: संतानार्थं च मानवा:।
तमासात्साधारणो धर्म: श्रुतो पत्न्या सहोदित:।। (मनुष्मृति, 9/26)

हिंदू दर्शन के अनुसार एक हिंदू के जीवन की सार्थकता धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष अर्थात पुरूषार्थ की उचित साधना में निहित है। मोक्ष जीवन का चरम लक्ष्य है और उसकी प्राप्ति धर्म, अर्थ एवं काम की साधना से ही संभव है। बिना विवाह व गृहस्थ जीवन विधाऐं यह साधना पूरी नहीं हो सकती। इसीलिए विवाह एक स्त्री और पुरूष का पुनीत कर्त्तव्य ही नहीं अपितु आवश्यक कर्त्तव्य भी है। विवाह गृहस्थ जीवन में यज्ञों के संपादन और ऋणों से मुक्ति के लिए भी आवश्यक है। पुन: पितृऋण से व्यक्ति मुक्त तब ही होता है जब वह विवाह कर संतान उत्पन्न करता है। संभवत: इन्हीं बातों के आधार पर मनु ने स्पष्ट कहा है, एक पुरूष स्वयं में पूर्ण नही होता वह अपनी स्त्री और संतान के साथ ही पूर्ण होता है।

एतावनेव पुरूषो यज्जायात्मा प्रजेतिह।
विप्रा: प्राहस्तया चैत धोमर्ता स हमृतांगना। (मनुस्मृति, 9/45)

उपलब्ध-साहित्य की समीक्षा – परंपरागत हिंदू विवाह के संबंध में कपाड़िया ने लिखा है, 'परिवार और समुदाय के प्रति विवाह एक सामाजिक कर्त्तव्य होता था, और इसमें व्यक्तिगत स्वार्थो की कतई गुंजाईश नही होती थी। पती-पत्नी के आपसी संबंधों में एकाधिकारवादी संयुक्त परिवार प्रणाली और जीवन में सर्वव्यापी प्रभुत्व रखने वाली जाति-प्रथा ने किसी भी निजी पहलू निजी रूचियों और आकांक्षाओं को मान्यता देने की कोई गुंजाईश नहीं छोडी थी'।

श्रीमती कमला सिन्हा (1972) का मानना है कि भारत में विवाहित महिलाओं की मानसिकता आज भी पुरानी है, अंतर्जातीय विवाह को निभा लेती है, उनकी तारीफ करनी चाहिए महिलाओं की ओर से तलाक के मामले बहुत कम सुनने को मिलते है जबकि कानून में इसके प्रावधान है।

श्री संतोष यादव ने 1981 में राजस्थान की स्त्रियों के अध्ययन में पाया कि राजस्थान की परंपरागत सामाजिक संरचना में उच्च जातियों में विधवा पुनर्विवाह का निषेध सांस्कृतिक परंपरा का आदर्श एवं सामाजिक पुर्न विवाह का निषेध सांस्कृतिक परंपरा का आदर्श एवं सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक माना जाता है। 25 सितम्बर 2013 को टाइम्स ऑफ इण्डिया में प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार पश्चिम बंगाल देश के उन चार राज्यों में से हैं। जहाँ बाल विवाह सबसे ज्यादा होते हैं। केन्द्र सरकार द्वारा किये देशव्यापी सर्वे के अनुसार राज्य में जितनी भी शादियां होती हैं। उनमें से 54.07 प्रतिशत 18 वर्ष की कम लड़कियों की होती हैं।

सर बी.वी. शाह ने बड़ौदा युनिवर्सिटी के 200 छात्रों पर सर्वेक्षण किया व 200 छात्रों में से 130 छात्रों ने अपनी ही जाति में विवाह करने की इच्छा प्रकट की तथा मात्र 70 छात्रों ने अंतर्जातीय विवाह करने की इच्छा प्रकट की।

अध्ययन का उद्देश्य – प्रस्तुत अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य है कि सामाजिक विधानों के द्वारा विवाह संस्था के परम्परागत स्वरूप में कितना परिवर्तन हुआ है तथा देश व विशेष तौर से मध्यप्रदेश में सामाजिक अधिनियमों का विवाह पर योजनाओं की स्थिति क्या है?

अध्ययन की परिकल्पना –

1. विवाह की अनिवार्यता में कमी आई है वर्तमान में लोग विवाह करना आवश्यक नहीं मानते है।
2. सामाजिक अधिनियमों के द्वारा विवाह संस्था में परिवर्तन हुआ है, एवं इसका अस्तित्व खतरे में है।

अध्ययन का विषय – प्रस्तुत शोध प्रबंध का विषय है- 'भारतीय समाज में विवाह संस्था पर सामाजिक अधिनियमों का प्रभाव' ग्वालियर शहर के संदर्भ में एक समाज शास्त्रीय अध्ययन।

अध्ययन क्षेत्र – संगीत साधना के महान प्रवर्तक संगीत सम्राट तानसेन की जन्म स्थली वीरांगना रानी लक्ष्मीबाई की समाधि स्थल एवं कवियों एवं कलाकारों की आराध्य नगरी ग्वालियर, मध्य प्रदेश का एक प्राचीन ऐतिहासिक नगर है जिसे अध्ययन संग्रह के रूप में चुना गया है।

शोध विधि – प्रस्तुत अध्यन में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया हैं

न्यायदर्श/प्रतिदर्श अभिकल्प – शोधार्थी द्वारा प्रस्तुत शोध अध्ययन में न्यादर्श का चयन हेतु उद्देश्यपूर्ण निदर्शन विधि का चयन किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में शोधकर्ता ने 200 उत्तरदाताओं को अध्ययन के लिए चुना है। जिसमें शिक्षित पुरूषों एवं शिक्षित स्त्रियों को अध्ययन के लिए चुना गया है जो कि 20 से 50 वर्ष की आयु के है।

तथ्यों का संकलन – प्रस्तुत शोध प्रबंध में तथ्य संकलन हेतु दोनों प्रकार के स्त्रोतों का उपयोग किया गया है। शोधार्थी ने अपने शोध अध्ययन के लिए प्राथमिक तथ्यों का संकलन स्वनिर्मित प्रश्नावली तथा साक्षात्कार अनुसूचि द्वारा सूचनाऐं एकत्रित की गई तथा द्वितीयक स्त्रोत के अंतर्गत विभिन्न पुस्तकालयों से पुस्तकों, पत्र, डायरिया, जनरल्स एंव पेपर आदि के द्वारा तथ्य संकलित किए गए हैं।

तथ्यों का विश्लेषण एवं व्याख्या – तालिका क्रमांक 1
क्या आप अंतर्जातीय विवाह से सहमत हैं

क्रमांक	प्रकार	संख्या	प्रतिशत
1	हाँ	132	66 प्रतिशत
2	नहीं	68	34 प्रतिशत
3	योग	200	100 प्रतिशत

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि 66 प्रतिशत उत्तरदाता अंतर्जातीय विवाह करने में सहमत हैं तथा 34 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे हैं जो अंतर्जातीय विवाह करने के पक्ष में नहीं है। सामाजिक अधिनियम बनने के बाद भी तथा अंतर्जातीय विवाह से सहमत होने के बावजूद भी ऐसे अधिकांश परिवार है जिनके किसी सदस्य ने अंतर्जातीय विवाह नहीं किया है उनका मानना है कि ऐसे विवाह आज भी समाज द्वारा स्वीकार नहीं किये जाते हैं और इसका एक प्रमुख कारण बढ़ता हुआ आनर किलिंग भी है।

तालिका क्रमांक 2
समलैंगिक विवाह को मान्यता प्रदान की जानी चाहिए

क्रमांक	प्रकार	संख्या	प्रतिशत
1	हाँ	13	6.5 प्रतिशत
2	नहीं	187	93.5 प्रतिशत
3	योग	200	100 प्रतिशत

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि 93.5 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे हैं जो समलैंगिक विवाह को मान्यता प्रदान नहीं करना चाहते हैं इनका मानना है कि समाज में समलैंगिकता को जहां एक विकार के रूप में लिया जाना चाहिए, समाज इसे सहज रूप में न ले, अन्यथा समाज में कई बीमारियां तथा समस्याऐं खड़ी हो सकती है वही 6.5 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे है जो समलैंगिक विवाह करने में कोई बुराई नहीं मानते हैं।

तालिका क्रमांक 3

क्या आप विवाह के पूर्व लिव इन रिलेशनशिप के पक्ष में है?

क्रमांक	प्रकार	संख्या	प्रतिशत
1	हाँ	12	6 प्रतिशत
2	नहीं	188	94 प्रतिशत
3	योग	200	100 प्रतिशत

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि -94 प्रतिशत शिक्षित पुरूष एवं शिक्षित स्त्रियों के अनुसार वह लिव इन रिलेशनशिप के पक्ष में नहीं है। उनके अनुसार भारतीय समाज में इसे ज्यादा बढावा नहीं मिलेगा यह परिवार एवं विवाह नामक संस्था के अस्तित्व पर भी सवाल खड़ा करती है। वही 6 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार वह इसे बुरा नहीं मानते है उनका मानना है कि यह लोगों का व्यक्तिगत मामला है।

निष्कर्ष - निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि वर्तमान में सामाजिक अधिनियमों ने विवाह संस्था को प्रभावित किया है। वर्तमान में विवाह की अनिवार्यता में कमी आई है। 10 प्रतिशत उत्तरदाता इसका प्रमुख कारण व्यैक्तिक स्वतंत्रता में बाधा होना मानते हैं। 77 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार सामाजिक विधानों के कारण विवाह विच्छेद में वृद्धि हुई है। अब इसे पहले की तरह हीन भावना से नहीं देखा जाता है। 66 प्रतिशत उत्तरदाता अंतर्जातीय विवाह से सहमत है परन्तु 76 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे है जिनके परिवार में किसी ने अंतर्जातीय विवाह नहीं किया। नेशनल काउंसिल ऑफ एप्लाइड इकोनोमी रिसर्च की एक रिपोर्ट के अनुसार देश भर में अंतर्जातीय विवाह करने वालों की संख्या पांच प्रतिशत है।

93.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार समलैंगिक विवाह को मान्यता प्रदान नहीं की जानी चाहिए, क्योंकि ऐसा संबंध भारतीय परिवेश और संस्कृति में मान्य नहीं है। भले ही सुप्रीम कोंट ने लिव-इन-रिलेशनशिप में रहना अपराध नहीं माना है परन्तु अधिकांश उत्तरदाताओं के अनुसार इससे परिवार एवं विवाह संस्था प्रभावित होगी और उनके अनुसार इससे अधिक हानि महिलाओं को ही होती है, क्योंकि कोई भी पुरूष ऐसी महिला से विवाह करना नहीं चाहता जो लिव-इन-रिलेशनशिप में रही हो।

63.5 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात से सहमत है कि विवाह संस्था का अस्तित्व खतरे में है, क्योंकि वर्तमान में विवाह संस्था परिवर्तन के दौर से गुजर रही है विवाह पूर्व और विवाह के अतिरिक्त सहवास, विवाह रहित संतानोत्पत्ति, समलैंगिक विवाह की मान्यता, सहनिवास, बेमेल विवाह एवं अन्य तलाक की दरों को देखते हुए कहा जा सकता है कि विवाह के परंपरागत स्वरूप में परिवर्तन आया है तथा इसका अस्तित्व खतरे में हैं

सुझाव -

1. सती प्रथा निषेध अधिनियम को महिमामंडित करने वालों के लिये दिया जाने वाले दण्ड पर्याप्त नहीं है, सती प्रथा को समाप्त करने के लिये समाज में जन जागृति बढ़ने से इस प्रथा को पूर्णत: समाप्त किया जा सकता है।
2. विधवा महिला के पुन: विवाह करने पर महिलाओं का विधवा के प्रति खराब व्यवहार किये जाने पर विरोध करना चाहिए तथा उन्हें समाज की मुख्य धारा से जोड़ने का प्रयास करना चाहिए।
3. आस-पास के ग्रामीण क्षेत्रों में पड़ोस व परिचित में बाल-विवाह किये जाने पर पुलिस या प्रशासन में शिकायत करने पर विवाह को रोका जा सकता हैं
4. अंतर्जातीय विवाह को कानूनी संरक्षण प्रदान किया जाना चाहिए यह राष्ट्रीय एकीकरण को बढ़ावा देने में एवं जाति प्रथा को समाप्त करने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। इससे दहेज संबंधी घटनायें भी कम जो सकती है।
5. दहेज निरोध अधिनियम सही तरीके से लागू किया जाना चाहिए तथा इसके लिये कठोर दण्ड का प्रावधान होना चाहिए।

प्रभाव-

1. प्राचीन काल में हिन्दू विवाह से संबंधित गोत्र, जाति, प्रबर आदि अनेक निषेधों का पालन करना पड़ता था। किन्तु नवीन विधानों ने गोत्र, जाति से संबंधित बंधन समाप्त कर दिये गये है।
2. प्राचीन हिंदू-विवाह एक धार्मिक संस्कार था, उनमें विवाह से संबोधित अनेक धार्मिक क्रियाओं का समावेश था। हिंदू-विवाह अधिनियम, 1955 के अनुसार अब विवाह स्त्री-पुरूष के बीच एक कानूनी समझौता बन गया है।
3. विशेष विवाह अधिनियम, 1954 के तहत अंतर्जातीय एवं अंतधार्मिक विवाहों को मान्यता प्रदान की गई है। जो पहले निषिद्ध माने गये थे जिससे वर्तमान में किसी जाति एवं धर्म में विवाह किया जा सकता है। जिससे प्रेम विवाह एवं कोर्ट मैरिज की प्रवृति बढ़ी है।
4. प्राचीन समय में विवाह साथी चुनने का दायित्व परिवारजनों पर ही था अत: वर-वधू अपना साथी चुनने में स्वतंत्र नहीं थे। किंतु अब वे स्वयं अपनी इच्छानुकूल जीवन साथी से विवाह करने लगे है तथा चयन में परिवार तथा नातेदारी का हस्तक्षेप कम हो रहा है वर्तमान में इंटरनेट द्धारा विवाह किया जाना युवक एवं युवतियां पसंद कर रहे हैं।
5. वर्तमान में सामूहिक विवाह भी होने लगे हैं आज विभिन्न समाजों और जातियों के विभिन्न संगठनों द्धारा दहेज से मुक्ति पाने के लिये सामूहिक विवाहों का आयोजन किया जाता है।
6. सामाजिक विधानों का सर्वाधिक प्रभाव सती प्रथा की समाप्ति तथा बहुविवाह के अंत के रूप में दिखाई देता है एवं बाल-विवाह की समाप्ति या अल्पता भी देखी गई है इसके अलावा स्त्रियों को प्राप्त नवीन अधिकारों के कारण उनमें व्यक्तिवाद की भावना पनपी है, वे संयुक्त परिवार से पृथक रहने पर जोर देने लगी। इसमें संयुक्त परिवारों के विघटन की प्रक्रिया तीव्र हुई है। विवाह विच्छेद की बढती प्रवृत्ति के कारण परिवार बिखर रहे हैं और बच्चों की परवरिश, पालन-पोषण समुचित रूप से नहीं हो पाता है।
7. यदि लिव इन रिलेशनशिप को बढ़ावा मिला तो न तो समुदाय रहेगा और न परिवार। इससे रिश्ते-नाते सब खत्म हो जाऐंगे और तब फ्री सेक्स के मामले में भारत भी ब्रिटेन और अमेरिका से पीछे नहीं होगा। यह कहा जा सकता है कि सुप्रीम कोर्ट के इस प्रकार के फैसलों से जनता का विश्वास उस पर से उठ सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. कपाड़िया के.एम. 1958, मैरिज एण्ड फैमिली इन इण्डिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, बोम्वे।
2. सिन्हा कमला, 20 अगस्त 1972 वीकली हिन्दुस्तान।
3. सर.बी.वी. शाह, 1940, सोशल बेक ग्राउण्ड ऑफ बड़ौदा।
4. श्रीमती जी.बी. 1955, वूमन इन मार्डन गुजराती लाइफ,एम.ए.थीसिस, बंबई पृ. 48-49
5. मजूमदार एवं मदान, 1958, इन इंट्रोक्शन टू सोशल एंथ्रोपोलोजी।
6. मनु स्मृति, 9:95
7. यादव संतोष 1987, 19 वीं 20 वीं शताब्दीं में स्त्रियों की स्थिति प्रिन्टवेल पब्लिशर्स, पृ. 153
8. इन्टरनेट।

जनजातीय बालश्रमिकों की सामाजिक स्थिति (झाबुआ जिले के सन्दर्भ में)

निशा जैन *

प्रस्तावना – बाल मजदूरी एक सामाजिक बुराई है क्योंकि परिवार के निर्वाह के लिए मजदूरी कमाने की आर्थिक बाध्यता बच्चों को शिक्षा, खेलकूद एवं मनोरंजन के पर्याप्त अवसरों से वंचित करती है, उनके शारीरिक, मानसिक विकास को रोकती है, उनके व्यक्तित्व के सामान्य विकास में रूकावट डालती है, साथ ही व्यक्तिगत लाभ की दृष्टि से बच्चों को अल्प आयु में ही काम करने की जिम्मदोरी से बांध देना नैतिक दृष्टि से सामाजिक अपराध है। कम मजदूरी देकर अधिक काम लेना ही वस्तुत: बालश्रम के रोजगार की मौलिक मान्यता है और यही मान्यता बालश्रमिकों के षोषण एवं उन पर होने वाले अत्याचारों को बढ़ावा देती है। बालश्रम की समस्या ने आज न केवल तीसरी दुनिया के देश (पिछड़े देश) ग्रस्त हैं बल्कि विकसित देश भी इस समस्या का सामना कर रहे हैं। अमेरिका, ब्रिटेन, जर्मनी आदि देशों में बालश्रम की घटनाएं निरन्तर तेजी से बढ़ रही है। जिनमें सर्वाधिक लगभग 10 करोड़ बालश्रमिक अकेले भारत में हैं। ऐसा अनुमान है कि इन 10 करोड़ में से 7.5 करोड़ ग्रामीण क्षेत्रों में व 2.5 करोड़ शहरी क्षेत्रों में अपना श्रम बेचने को बाध्य है। भारत में जनजातीय लाखों करोड़ो बच्चों को अपने अधिकार प्राप्त करने की दिशा में प्रयास किये जा रहे है। इन प्रयासों के बावजूद भी बालश्रमिकों की स्थिति में कोई खास सुधार नहीं हुआ है बालश्रमिक हर सुविधा से वंचित व अभावग्रस्त जीवनयापन करने को मजबूर हैं एवं समाज में बालश्रमिक की समस्या तेजी से उभरकर सामने आ रही है।

उद्देश्य – प्रस्तुत शोध का प्रमुख उद्देश्य जनजातीय बालश्रमिकों की सामाजिक स्थिति का अध्ययन करना है।

अध्ययन क्षेत्र– प्रस्तुत शोध हेतु मध्यप्रदेश के झाबुआ जिले के तीन गांव (पारा, खरडू, एवं राणापुर) का चयन किया गया।

शोध प्रारूप – प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत शोध की प्रकृति उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए झाबुआ जिले के जनजातीय बालश्रमिक भील, भीलाला, पटलिया जाति के 30 बालश्रमिकों को दैव निदर्शन विधि के आधार पर चयन किया गया है, प्रत्येक गांव से 10–10 उत्तरदाताओं का चयन किया गया है।

तथ्यों का संकलन –

1. **प्राथमिक संकलन** – साक्षात्कार अनुसूची, अवलोकन पद्धति।
2. **द्वितीयक संकलन** – सामाचार पत्र–पत्रिकाएं, पूर्व अध्ययनों एवं विभिन्न शासकीय कार्यालयों से प्राप्त सूचनाए।

उद्देश्य का विश्लेषण – बालश्रम समस्या के प्रति एक वैचारिक एवं मनोवृतीय क्रांति है। संयुक्त राष्ट्रसंघ की पहल पर 1954 से अब तक लगभग 165 देशों द्वारा प्रतिवर्ष दिसंबर माह में अंतर्राष्ट्रीय बाल दिवस मनाना, संपूर्ण विश्व बिरादरी का ध्यानाकर्षित के लिए 1979 को अंतर्राष्ट्रीय बाल वर्ष के रूप में मनाना, संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा 20 नवंबर 1989 को पारित एक बच्चा होने का अधिकार जो बालविकास से सम्बन्धित मैग्नाकार्टा है, अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा पारित कई महत्वपूर्ण कन्वेंशन–विश्व समाज द्वारा किए गए थे सारे ऐतिहासिक प्रयास 'बाल समाज' के प्रति इनकी प्रतिबद्धता एवं वचनबद्धता को दशति है। वस्तुत: यह एक गंभीर, जटिल एवं ज्वलंत समस्या है।

प्रस्तुत अध्ययनमें साक्षात्कार के माध्यम से बालश्रमिकों की कुछ प्रमुख समस्याओं को उजागर किया गया है जो निम्न प्रकार से है –

तालिका क्रमांक – 1

ऋणग्रस्तता को दर्शाने वाली तालिका

क्र.	ऋण (रुपयों में)	संख्या	प्रतिशत
1.	500–1000	05	16.67%
2.	1000–2000	07	23.33%
3.	2000–3000	15	50%
4.	कर्ज नहीं	03	10%
	योग	**30**	**100%**

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि अध्ययन में सम्मिलित सर्वाधिक 15 (50%) बालश्रमिकों के अनुसार उनके परिवार पर 2000–3000 रु. के मध्य कर्ज है जबकि 3 (10%) बालश्रमिकों के परिवार पर किसी प्रकार का कर्ज नहीं है। स्पष्ट है कि मात्र 10% बालश्रमिकों के परिवार पर किसी प्रकार का कर्ज नहीं है जबकि शेष बालश्रमिकों के परिवार कर्ज से डुबे हैं।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि परिवार की आय से आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पाने से बालश्रमिकों के परिवार द्वारा कर्ज का सहारा लिया जाता है। जिसे चुकाने के लिए बालकों को मजबूरन बालश्रमिक बनना पड़ता है।

तालिका क्रमांक – 2

पारिवारिक आय को दर्शाने वाली तालिका

क्र.	माता–पिता की आय (हजार में)	संख्या	प्रतिशत
1.	1000–2000	05	16.67%
2.	2000–4000	15	50%
3.	4000–5000	07	23.33%
4.	5000–6000	03	10%
	योग	**30**	**100%**

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि 15 (50%) उत्तरदाता बालश्रमिकों के परिवार की आय 2000–4000 रु. के मध्य है। जबकि 3 (10%) उत्तरदाता बालश्रमिकों के परिवार की आय 5000–6000 रु. है जबकि

* प्राध्यापक (समाजशास्त्र) शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत

शेष बालश्रमिकों के परिवार की कम आय होने के कारण परिवार का भरण-पोषण तथा प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर पाना संभव नहीं होता जिससे बालश्रमिकों पर परिवार की जिम्मेदारी एवं परिवार की सहायता के लिए बालश्रमिक बनना पड़ता है।

तालिका क्रमांक - 3

पारिवारिक दबाव को दर्शाने वाली तालिका

क्र.	कारण	संख्या	प्रतिशत
1.	पारिवारिक षोषण (व्यवहार)	18	60%
2.	परिवार द्वारा मार-पीट	06	20%
3.	पर्याप्त मात्रा में भोजन न देना	04	18.33%
4.	सामान्य	02	6.67%
	योग	**30**	**100%**

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि अध्ययनमें सम्मिलित सर्वाधिक 18 (60%) उत्तरदाता बालश्रमिकों के अनुसार कार्य पर न जाने की दशा में उनके माता-पिता का व्यवहार खराब होता है जबकि 2 (6.67%) उत्तरदाताओं के अनुसार कार्य पर न जाने की दशा में उनके माता-पिता का व्यवहार सामान्य होता है। स्पष्ट है कि बालकों के माता-पिता भी यही चाहते हैं कि उनका बालक काम पर जाये। यही कारण है कि सर्वाधिक माता-पिता अपने बच्चों के कार्य पर न जाने की दशा में उन्हें विभिन्न प्रकार से दबाव डालते हैं।

निष्कर्ष -

1. अधिकांश बालश्रमिकों के लिए प्रमुख कारण ऋणग्रस्तता है जिससे छुटकारा पाने के लिए माता-पिता अपने बच्चे को बालश्रमिक बनने के लिए विवश करते हैं।
2. पारिवारिक आय कम होने के कारण यह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति अच्छे से नहीं कर पाते हैं जिससे बालश्रमिक अपनी आवश्यकताओं और घर की सहायता के लिए बालश्रमिक बनता है।
3. बालश्रमिक माता-पिता के दबाव में आकर काम करते हैं।

सुझाव -

1. सरकार को व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करने हेतु प्राथमिक स्तर से ही कार्ययोजना निर्मित करना चाहिए।
2. सरकार को बालश्रम रोकने हेतु सख्त कानूनों का निर्माण करना चाहिए और जो कानून पूर्व से ही बने हैं उनका पालन पोषण कठोरता से किया जाना चाहिए।
3. सरकार को सभी क्षेत्रों में रोजगार के अवसर पूर्णत: उपलब्ध कराए जिससे बालश्रमिकों के माता-पिता को रोजगार मिले और उन्हें अपने बच्चों को कार्य पर न भेजना पड़े।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. डॉ. कृष्ण बीर सिंह, 'बालश्रमिकों की सामाजिक स्थिति' शोध समीक्षा और मूल्यांकन, जयपुर (राजस्थान), सन् 2009 अगस्त।
2. मनीष कुमार श्रीवास्तव, 'बालश्रमिक एक सामाजिक अभिशाप' मासिक पत्रिका कुरूक्षेत्र, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली, नवम्बर 2007, पृ.क्र. 16
3. प्रोफेसर के.एम. मोदी, 'बालश्रम - समस्या कारण एवं दुष्प्रभाव' मासिक पत्रिका कुरूक्षेत्र, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली, नवम्बर 2007, पृ.क्र. 22
4. ऋतु सारस्वत, 'बालश्रम - मानवता पर एक अभिशाप' मासिक पत्रिका कुरूक्षेत्र (स्नेह राय), ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली, मई 2006, पृ.क्र. 6
5. डॉ. रवि प्रकाश यादव 'बालश्रम समस्या पर एक नजर', मासिक पत्रिका, कुरूक्षेत्र (महादेव पकरासी) ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली, मई 2004, प्र.क्र. 14

****

छतरपुर नगर में औद्योगिक विकास का भौगोलिक अध्ययन

डॉ. एस.एन. मिश्र * डॉ. दिनेश प्रसाद मिश्र **

शोध सारांश – किसी देश व नगर विकास के लिये औद्योगिकरण अत्यंत आवश्यक है, आधुनिक युग औद्योगिक युग के नाम से जाना जाता है। किसी नगर की अर्थव्यवस्था का मूल आधार उद्योग धन्धे है यद्यपि छतरपुर नगर प्रारम्भिक काल से ही औद्योगिक गतिविधियों से अछूता रहा है। जबकि अद्योग धन्धों के विकास हेतु आपेक्षित सभी प्राकृतिक एवं भौतिक साधनो की प्रमुखता होते हुये भी यह नगर औद्योगिक दृष्टि से बहुत पिछड़ा है लगभग 50 प्रतिशत लोग विभिन्न लघु एवं कुटीर उद्योग धन्धों से जीवन निर्वाह करते है। यहॉ पर लोहा, चूने का पत्थर, अभ्रक, तॉबा एवं बालू के पत्थर प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। खनिज, वन, पशुधन एवं मॉग पर आधारित अनेक उद्योगो की प्रबल संभावनाये है।

स्थिति एवं विस्तार – छतरपुर नगर 24^0– 55 उत्तरी अक्षांश तथा 79^0– 35 पूर्वी देशान्तर पर स्थित है नगर का क्षेत्रफल 18 वर्ग कि.मी. है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार जनसंख्या 180580 है। नगर में कुल 33 वार्ड है। जिला मुख्यालय होने के कारण नगर की साक्षरता का प्रतिशत 64.9 है। लिंगानुपात भी प्रति 1 हजार पुरूषो पर 933 स्त्रियॉ है जो न्यून है।

सीमा एवं विस्तार – नगर की उत्तरी सीमा पर सरानी, टडेरा, हेमा, सौरा तथा मवाली गॉव स्थित है दक्षिण पूर्व में पलौंदा, नगवारा एवं बगौता ग्राम दक्षिण पश्चिम में दरारी, अमानगंज, लनौटी, पठापुर और नारायणपुर गॉव स्थित है। नगर के चारो ओर पहाड़ियों एवं पथरीली अनुपजाऊ भूमि को छोड़कर लगभग कृषि क्षेत्र है। नगर से झॉसी 128 कि.मी., महोबा 50 कि.मी., सागर 155 कि.मी. एवं पन्ना 67 कि.मी. दूर स्थित है। नगर का इन सभी नगरो से सड़क मार्ग से सीधा सम्पर्क है। नगर एवं तहसील की पूर्वी सीमा केन नदी तथा पश्चिमी सीमा धसान नदी द्वारा निर्धारित है। यत्रतत्र छोटी छोटी पहाड़ियों को छोड़कर शेष क्षेत्र समतल प्राय है यहॉ पर स्थित पहाड़ियों की ऊॅचाई 180 से 360 फिट तक कहीं कहीं ऑकी गई है।

भौगोलिक स्वरूप – अध्ययन क्षेत्र (छतरपुर नगर) बुन्देलखण्ड अपलैण्ड में समुद्र तल से 182 मीटर की ऊॅचाई में स्थित है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के साथ साथ नगर की धरातली स्थलाकृतिक दशा से संबंधित बड़ी विविधतायें है। यहॉ विन्ध्यन युग की चट्टानों वाली अनेक पहाड़ियॉ नगर की सुरक्षा की दृष्टिकोण से विद्यमान है सामान्यत: नगर का धरातल ऊॅचा नीचा है। विषम धरातल के बावजूद अनेक समतल प्राय: क्षेत्र भी विद्यमान है। नगर की प्रमुख नदी सिंगारी है नगर में तीन लघु पहाड़ियॉ (जिनको स्थानीय भाषा में टोरिया कहा जाता है) विद्यमान है, मुख्यत: हनुमान टोरिया, अनगढ़ टोरिया तथा वगराजन टोरिया विशेष उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त इस नगर में प्राचीन काल से ही अनेक तालाब विद्यमान है ये तालाब पहले छोटी प्राकृतिक झील के रूप में अवश्य रहे होंगे जिनमें प्रताप सागर, रानी तलैया, गवाल भारा सागर, राव सागर एवं सॉवरी तलैया मुख्य रूप से उल्लेखनीय है। नगर में उच्चावच धरातल की अधिकता है। नगर की पहाड़िया नगर के बसाव स्थल को प्रभावित किया है इन पहाड़ियों के कारण नगर का आकार प्राय: वृत्ताकार होता गया है कहीं कहीं स्थलाकृति की विषमता के कारण नगर का विकास एक समान रूप से नहीं हो पाया है। इस प्रकार नगर की स्थलाकृति के सांस्कृतिक स्वरूप का नगर अकारिकी पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा है।

विधितन्त्र – प्रस्तुत शोधपत्र प्राथमिक एवं द्वितीयक ऑकड़ो पर आधारित है जिनका संकलन व्यक्तिगत सर्वेक्षण तथा स्थानीय कार्यालय से प्राप्त जानकारी एवं निवासित व्यक्तियों से साक्षात्कार के माध्यम से किया गया है।

विश्लेषण – किसी नगर के विकास के लिये औद्योगीकरण अत्यंत आवश्यक है नगर की मूल अर्थव्यवस्था का आधार उद्योग धन्धे है। यह नगर प्रारम्भिक काल से ही उद्योग धन्धों की दृष्टि से पिछड़ा रहा है जबकि यहॉ औद्योगिक उन्नति के लिये कच्चा माल, शक्ति साधन की सुविधा, बाजार की सुविधा, कुशल एवं सस्ते श्रमिक, परिवहन के साधन, उपयुक्त जलवायु, पर्याप्त पूॅजी की व्यवस्था एवं सरकारी प्रोत्साहन जैसी सुविधायें उपलब्ध हैं फिर भी यह नगर अन्य नगर की तुलना मे अत्यंत पिछड़ा है जबकि नगर को वृहद स्तर विकेन्द्रीकृत ग्रामीण औद्योगीकरण पूर्ण विकसित एवं प्रभावी कार्यक्रम अपनाया जाना आवश्यक है। जिसके अन्तर्गत ग्रामीण एवं नगरीय संसाधनो की उपलब्धता तथा स्थानीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुये मध्यम लघु एवं परम्परागत कुटीर उद्योगो की स्थापना की योजना का निर्माण किया जाना आवश्यक है चूॅकि इस प्रकार की योजनायें ही नगरीय असमानताओं को दूर करने तथा औद्योगिक विकास प्रक्रिया को गति प्रदान करने का एक सफल एवं प्रभावी माध्यम सिद्ध होगा।[1] अत: इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु छतरपुर जिले के ग्रामीण एवं नगरीय औद्योगीकरण को ग्रामीण योजना की एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिये।[2]

उद्योग धन्धों के विकास हेतु आपेक्षित सभी प्राकृतिक एवं भौगोलिक संसाधनों की प्रमुखता होते हुये भी नगर अभी तक औद्योगिक दृष्टि से बहुत पिछडा है या औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े हुये जिलों की श्रेणी में 'उद्योग– ग' के अन्तर्गत आता है।[3] यहॉ पर औद्योगीकरण न होने के कारण नगर की अर्थव्यवस्था पिछड़ी एवं स्थिर सी है। लघु एवं कुटीर उद्योगों की स्थापना द्वारा ही आर्थिक विकास की गति में नई दिशा आ सकती है। नगरीय क्षेत्र में केवल कृषि द्वारा ही उद्योग संभव नहीं है बल्कि विकेन्द्रीकरण द्वारा कृषक

* प्राध्यापक (समाजशास्त्र) शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अमरपाटन, जिला – सतना (म.प्र.) भारत
** सहायक प्राध्यापक (भूगोल) इन्द्रा स्मृति महाविद्यालय, न्यू रामनगर, जिला – सतना (म.प्र.) भारत

एवं मजदूर लघु एवं सीमान्त कृषकों को रोजगार के अधिक अवसर प्राप्त होंगे जिससे ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्र का विकास संभव होगा साथ ही नगरीय क्षेत्र में आय में वृद्धि भी होगी।[4]

नगर के आर्थिक विकास में लघु एवं कुटीर उद्योग का विशेष स्थान है ये उद्योग स्थानीय रूप से उपलब्ध संसाधनों का उपयोग करते हुये नगरीय क्षेत्रों में रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने के महत्वपूर्ण साधन है उद्योगो का विकास करना इसलिये भी महत्वपूर्ण है कि अधिकांश जनता ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है तथा ग्रामीण क्षेत्रों से उत्पादित कच्चे माल एवं खाद्य सामग्री को अपनी उदर पूर्ति हेतु नगरीय क्षेत्रों में भेजते है अर्थात निवासित ग्रामीण लोग वर्तमान समय में रोजगार के अवसर जुंटाने हेतु नगरीय क्षेत्रों मे पलायन करते आ रहे है जिससे जनसंख्या का अत्यधिक दबाव भी संक्रमण की तरह है।

यद्यपि अध्ययन क्षेत्र प्राकृतिक संसाधनो से परिपूर्ण है यहॉ लगभग 50 प्रतिशत लोग विभिन्न कुटीर उद्योगों से जीवन निर्वाह करते है यहॉ पर लोहा, चूने का पत्थन, अभ्रक, तॉबा एवं बालू के पत्थर प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है यहॉ पर खनिज, वन, पशुधन एवं मॉग पर आधारित उद्योगो की प्रबल संभावनायें है जिनका समुचित विदोहन किया जाना आवश्यक है। चूँकि खनन उद्योग की दृष्टि से एक भी बड़ा उद्योग नहीं है मध्यम निम्न श्रेणी के लघु उद्योग जैसे लोहा तथा लोहे की चद्दर, रहट बनाना, आधुनिक ढंग का फर्नीचर, चमड़ा पकाना, जूते बनाना, रंगाई छपाई तथा बुनाई सिलाई, तेलघानी, पीतल के बर्तन, साबुन, सीमेण्ट की जाली एवं खराद का काम, घिसे टायर पर रबड़िग करना एवं क्राकरी आदि उद्योग जिले एवं नगर के परम्परागत उद्योग है। ग्रामीण अॅचल में उपलब्ध संसाधनो, कच्चे माल, तकनीक व शिल्प के दोहन से ही जिले के उन नगरीय एवं ग्रामीण क्षेत्र के गरीबों की प्रगति के सूत्र निहित है जो मुख्यत: गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने के लिये बाध्य है। समस्या का निदान परम्परागत लघु एवं कुटीर उद्योगो को संबंधित ग्रामों एवं नगरीय क्षेत्रों में विकसित करके ही किया जा सकता है।[5] खनन उद्योग के अतिरिक्त वन संपदाओं के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन किया जाये तो यह पाया गया कि जंगली भागों के समीपवर्ती क्षेत्रों का मुख्य धन्धा लकड़ी तथा बॉस काटना, वन की उपज महुआ, चार, आमला आदि इकट्ठा करना एवं कुछ लोग कत्था बनाने एवं पशुधन से संबंधित धन्धों में लगे रहते है।

औद्योगिक विकास की दृष्टि से अध्ययन क्षेत्र (छतरपुर नगर) में मध्यप्रदेश शासन द्वारा 01.06.1987 को जिला उद्योग केन्द्र की स्थापना की गई जिसका प्रमुख उद्देश्य जिले के सभी नगरीय एवं ग्रामीण क्षेत्रों में विद्यमान एवं संबंधित उद्योगों के उद्यमियों को उद्योग स्थापनार्थ एवं विकास हेतु सभी आवश्यक सुविधायें उपलब्ध कराना था ताकि उद्यमियों की सहायता से कम समय में अधिक से अधिक सुविधायें सुलभ होकर औद्योगिक विकास के उपयुक्त बन सके। जिले में औद्योगिक इकाई के विपणन सुंविधा हेतु म.प्र. लघु उद्योग निगम की ओर से 6 प्रमुख विपणन केन्द्र जो एक नगरीय क्षेत्र में स्थित है एवं अन्य अलग अलग स्थानों में स्थित है की सुविधायें उपलब्ध कराई गई है इसके अतिरिक्त औद्योगिक विकास के लिये केन्द्रीय एवं प्रान्तीय स्तर पर अनेक प्रशासकीय एवं वित्तीय संगठनात्मक योजनायें भी प्रारम्भ की गई है।[6] जैसे–

1. **प्रथम संगठनात्मक–** लघु उद्योग विकास संगठन (1964) का मुख्य उद्देश्य इकाईयों को तकनीकी एवं वित्तीय सहायता उपलब्ध कराना।
2. **लघु उद्योग निगम–** (1965) का मुख्य उद्देश्य लघु इकाईयों के सहायतार्थ हेतु विपणन बाजार की व्यवस्था करना।
3. **तृतीय संगठन–** लघु उद्योग प्रशिक्षण संस्थान (1966) का मुख्य उद्देश्य लघु उद्योगो में कार्यरत कर्मचारियों को नवीन तकनीक एवं प्रावधिक प्रशिक्षण प्रदान करना है इसके अतिरिक्त अखिल भारतीय हथकरघा बोर्ड (1968) स्थापना तथा ग्रामीण औद्योगिक योजनाओं की शुरूआत भी इसी परिप्रेक्ष्य में की गई है।

औद्योगिक स्थल– अध्ययन क्षेत्र को मुख्यत: दो औद्योगिक केन्द्रों मे विभक्त कर संक्षिप्त प्रकाश डाला गया है।

(अ) नगर का मध्यवर्ती औद्योगिक क्षेत्र– इस औद्योगिक क्षेत्र के अन्तर्गत महावीर वार्ड, महात्मा गॉधी वार्ड, मैथिलीशरण वार्ड, गुप्त वार्ड, सिद्धेश्वर वार्ड एवं सन्त रविदास वार्ड आते है। इस क्षेत्र में लोहे की चादर, रहट बनाना, आधुनिक ढंग के फर्नीचर, रंगाई छपाई, सिलाई, तेलघानी, बुनाई, पीतल के बर्तन, साबुन, सीमेण्ट की जाली, खराद का काम, क्राकरी, घिसे टायर पर रबर चढ़ाना, चावल, दाल मिल, आरा मशीन एवं छापाखाना आदि के छोटे छोटे कुटीर एवं कल कारखाने स्थापित है।

(ब) नगर का उत्तरी एवं पश्चिमी औद्योगिक क्षेत्र– नगर के उत्तरी एवं पश्चिमी भाग के अन्तर्गत लाल बहादुर शास्त्री वार्ड, संत तुलसीदास वार्ड, सरदार भगत सिंह वार्ड, इन्दिरा वार्ड, मुखर्जी वार्ड एवं संजय वार्ड आते है। जिसमें टीचेस्ट प्लाइवुड, वुड सेजनिंग, स्टील रिकेलिंग मिल, सोयाबीन, साल्वेट, एक्सट्रेक्सन प्लाण्ट, कॉटेदार तार एवं कील कारखाना आदि छोट छोटे लघु एवं कुटीर उद्योगों की इकाईयॉ कार्यरत है। अध्ययन क्षेत्र की वार्डगत स्थिति सारणी क्र. 1 से स्पष्ट है।

वार्ड क्र.	वार्ड का नाम	वार्ड क्र.	वार्ड का नाम
1	सरदार भगत सिंह वार्ड	18	लक्ष्मीबाई वार्ड
2	डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद वार्ड	19	चित्रगुप्त वार्ड
3	वीर सावरकर वार्ड	20	सिद्धेश्वर वार्ड
4	इन्दिरा गॉधी वार्ड	21	रवीन्द्र नाथ वार्ड
5	लोहिया वार्ड	22	मैथलीशरण वार्ड
6	मुखर्जी वार्ड	23	सरस्वती सदन वार्ड
7	संजय गॉधी वार्ड	24	लाल बहादुर शास्त्री वार्ड
8	संत तुलसी दास वार्ड	25	महात्मा गॉधी वार्ड
9	स्वामी विवेकानन्द वार्ड	26	महावीर वार्ड
10	चन्द्रशेखर वार्ड	27	ठक्कर वापा वार्ड
11	छत्रसाल वार्ड	28	संत रविदास वार्ड
12	अम्बेडकर वार्ड	29	शिवाजी वार्ड
13	नेहरू वार्ड	30	बाबूराम चतुर्वेदी वार्ड
14	राजीव गॉधी वार्ड	31	सुभाष वार्ड
15	किदवई वार्ड	32	तिलक वार्ड
16	मालवीय वार्ड	33	विनोबा भावे वार्ड
17	अब्दुल रहमान वार्ड		

1. **कृषि उपज पर आधारित उद्योग–** जिसके अन्तर्गत तेल उद्योग, गुड़ खण्डसारी बनाना, बिस्कुट, डबलरोटी, मुरब्बा, अचार, पापड़, दाल पालिसिंग, सुतली, चावल मिल पोहा व मुरमुरा आदि नगर के शिवाजी वार्ड, किदवई वार्ड, लक्ष्मीबाई वार्ड एवं सिद्धेश्वर वार्ड में स्थापित है।
2. **वनोपज पर आधारित उद्योग –** जिले का कुल क्षेत्र का 9.95 प्रतिशत क्षेत्र वन क्षेत्र है। वन सम्पदा में सागौन, सलैया, तेंदू, महुआ, खैर, चिरौंजी, बैर जामुन, गोंद, बॉस तथा अन्य जड़ी बूटियों का बाहुल्य है। इमारती लकड़ी की सीजनिंग एवं प्लाईवुड बनाने का कार्य किदवई एवं बाबूलाल चतुर्वेदी वार्ड में किया जाता है।

3. पशुधन पर आधारित उद्योग– इसके अन्तर्गत डेयरी प्रोडक्टस, चर्मशोधन मशीनीकृत, जूता चप्पल आदि आते है। डेयरी उद्योग नगर के मध्य में तथा कच्चे चमड़े से मैटेनाइल चर्मशोधन का कार्य नगर के वीर सावरकर वार्ड में स्थापित है।

4. खनिज पर आधारित उद्योग– चूना उद्योग, ईंट उद्योग, पत्थर के घरेलू सामान, स्टोन, ट्रसिंग तथा स्टोन पालिसिंग आदि छोटे छोटे लघु उद्योगों की इकाईयॉ स्थापित है। गोरा पत्थर नगर में बहुंतायत मात्रा में उपलब्ध है जो चिकना एवं सफेद होता है। इस पत्थर की मूर्तियॉ व अन्य कई प्रकार की कलात्मक वस्तुये बनाई जाती है। यह उद्योग नगर के चित्रगुप्त वार्ड में स्थित है।

5. मॉग पर आधारित उद्योग– इस उद्योग के अन्तर्गत इंजीनियरिंग वर्क्स, टायर रिट्रेडिग, आटो रिपेयरिंग, इलेक्ट्रिकल वर्क्स, बैटरी चार्जिंग, कृषि उपकरण, शीट मेटल, साइकल मरम्मत, टेक्सटाइल्स, फिनायल, पोलीथिन बैग, पॉवरलूम आदि छोटी छोटी लघु इकाईयॉ इन्दिरा गॉधी वार्ड, लोहिया वार्ड एवं संजय गॉधी वार्ड में स्थापित है।

6. अन्य उद्योग – अध्ययन क्षेत्र में एल्यूमीनियम के बर्तन बनाने एवं पीतल के बर्तन बनाने का धन्धा वंश परम्परागत है। इसके अतिरिक्त खादी एवं ग्रामोद्योग कुटीर धन्धे की भी छोटी छोटी इकाईयॉ नगर में स्थित है।

निष्कर्ष एवं सुझाव – प्रस्तुत शोध पत्र के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र में औद्योगीकरण की प्रस्तावित योजना के सफलतापूर्वक क्रियान्वयन हेतु यह आवश्यक है कि नगर के सभी वार्ड में विकेन्द्रीकृत सिद्धॉत पर लघु एवं कुटीर उद्योग स्थापित किये जाये तथा इनके सफल संचालन एवं देखरेख की उचित व्यवस्था की जाये जिससे निकट भविष्य में अच्छे उद्योग स्थापित हो सकें। नगर का औद्योगिक भविष्य उज्जवल है यहॉ आसपास के क्षेत्र में विभिन्न उद्योगों के लिये कच्चे माल की उपलब्धता है। कच्चे माल की उपलब्धता के कारण अन्य स्थानो में उत्पादित सामग्री की तुलना में यहॉ पर उत्पादित सामान उपभोक्ताओं को कम कीमत पर प्राप्त हो जाते है फलत: नगर का औद्योगिक भविष्य विकासोन्मुख है।

नगर के विकास एवं मॉग को देखते हुये बर्फ उद्योग, कास्ट आयरन, कृषि औजार, मशीनरी पार्टस, आटो मोबाइल पार्टस, स्टोरेज टैंक, एल्यूमीनियम हार्डवेयर, साइकल पार्टस, कॉटेदार तार, पेण्ट्स वा बार्निश, प्लास्टिक के खिलौने, साइकल के सामान, फल संरक्षण, आर.सी.सी. पाइप, सिमेन्ट जाली, खेलकूद के सामान एवं अनेक प्रकार के ब्रुश बनाने आदि की प्रबल संभावनायें है। जबकि यह नगर सड़क एवं वायु यातायात से देश के सभी बड़े नगरों से संबंद्ध है किन्तु कई छोटी छोटी रियासतों के विलीनीकरण से औद्योगीकीय ढॉचे में सुंधार नही हुआ है। उपरोक्त विश्लेषण के अध्ययन के निष्कर्स से यह स्पष्ट होता है कि यहॉ पर सभी औद्योगिक विकास की सुविधायें उपलब्ध है। साथ ही जिला मुख्यालय होने से यातायात से संबंद्धता कुशल कारीगर, उपलब्ध भूमि एवं पर्याप्त पूॅजी की उपलब्धता एवं बाजार की सुविधा के कारण यहॉ के उद्यमियों का ध्यान उद्योगो के प्रति बढ़ता गया है जिससे रोजगार की प्रबल संभावनायें एवं औद्योगिक विकास की दृष्टि से सर्वांगीण विकास में अग्रसर है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. बघेला. टी.एस. 1982 रूलर इण्डस्ट्रीलाइजेशन अप्रोचिंग एण्ड पोटेन्शियल हिमालय पब्लिशिंग हाउस, मुंबई, पृष्ठ संख्या –1.
2. त्रिपाठी. आर.एन., पी.के. थपालियन ए. नागसे, पन्ना, पी.एल.शर्मा एण्ड एम.प्रधान 1980 ब्लाक प्लान इन दि डिस्ट्रिक फ्रेम का. ग्रा. वि. संस्थान हैदराबाद।
3. Annual Action Plan Distt. Industries Central Chhatarpur M.P. 1993-94 P.7.
4. Rao. R.V. Rural Industrialization in India. Concept pub. Delhi 1978. P-7-8.
5. सिंह के.एन. एण्ड के.के.सिंह 1986 ग्रामीण विकास में कुटीर उद्योगों की भूमिका योजना 16–31 अक्टूबर पृष्ठ 13–15।
6. Mishra. Dinesh: Micro Lable Planing & Devlopment Pattern, A case Study of Panna Distt. M.P. 1993. P-299 Un Publish Ph- D. Thesis A.P.S. University Rewa M.P.
7. विलियम अर्चना निशा – छतरपुर एवं खजुराहो के नगरीय विन्याश का तुलनात्मक अध्ययन 1997 पृ. 220–231 अप्रकाशित शोध प्रबंध अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय रीवा म.प्र.।

****

पारिवारिक हिंसा का समाजशास्त्रीय अध्ययन (इन्दौर जिले के देपालपुर नगर के विशेष संदर्भ में)

डॉ. सादिक मोहम्मद खॉन *

प्रस्तावना – भारतीय संदर्भ में बदले हुये नगरीकरण ने सामाजिक परिदृश्य में पारिवारिक हिंसा को भी बढ़ाया है। नगरीकरण के आर्थिक व सामाजिक तनाव ने पारिवारिक हिंसा को और व्यापक ओर उग्र किया है। परिवार तथा समाज के संबंधों में व्याप्त ईर्श्या, द्वेष, अंहकार, अपमान तथा विद्रोह पारिवारिक हिंसा के मुख्य कारण है। परिवार में हिंसा की शिकार सिर्फ महिलाएँ ही नहीं बल्कि वृद्ध और बच्चे भी बन जाते है। प्रकृति ने महिला और पुरूष की शारीरिक संरचनाएं जिस तरह की है उनमें महिला हमेशा कमजोर रही है, वही हमारे देश में यह माना जाता रहा है कि पति को पत्नि पर हाथ उठाने का अधिकार शादी के बाद ही मिल जाता है। महिला और शोषण दोनों का बहुत ही गहरा संबंध रहा है। मानव सभ्यता का विकास जैसे जैसे रफ्तार पकड़ता गया, उसी के साथ ही महिला का शोषण भी बढ़ता गया। पूर्व वैदिक काल के मातृ संरचनात्क समाज ने करवट ली और सत्ता पुरूष प्रधान होते ही महिला की स्थिति बद से बदतर होती चली गयी। महिला शक्ति से परिचित पुरूष ने उसे दबाना शुरू किया, नारी को शिक्षा, धार्मिक अनुष्ठान, रणकौशल आदि शक्ति प्रदायी विधाओं से बेदखल कर घर की चार दीवारी में कैद करना शुरू किया। पुरूष के बिना उसका अस्तित्व बेमानी समझा जाने लगा। इसके बाद के युग की तस्वीर सती प्रथा, बाल विवाह, पर्दा प्रथा, दहेज प्रथा आदि जैसे रोगो से ग्रस्त हो गयी भारतीय स्वतंत्रता के बाद भी यह क्रम आज भी लगातार जारी है। वर्तमान समय में महिला के प्रति अपराधिक हिंसा ही नहीं बढ़ रही है अपितु पारिवारिक हिंसा में भी अत्यधिक वृद्धि हो रही है। पारिवारिक हिंसा में दहेज हत्याऐं, पत्नी के साथ भावनात्मक एवं लैंगिक दुर्व्यव्हार पत्नी को पीटना, यौन शोषण, विधवाओं तथा बुजुर्ग नारियों पर आत्याचार, भ्रूण हत्या इत्यादि पारिवारिक हिंसा का संबंध घर गृहस्थी में महिला पर किया जाने वाला शारीरिक और मानसिक उत्पीड़न है। पारिवारिक हिंसा की शिकार महिला प्राय: चुप्पी साधी रहती है, क्योंकि पति द्वारा दी गई यातना की घटना का जिक्र करना सामाजिक, पारिवारिक व आवासीय प्रस्थिति में उन्हें अपराधबोध से ग्रस्त कर देता है फलत: वह चुप ही रहती है। यद्यपि सामान्यत: जिन भारतीय परिवार में पारिवारिक जीवन अपनी स्वाभाविक गति को छोडकर एक क्लेश पूर्ण परिस्थितियों में से होकर गुजरता है, इन परिवारों में सामान्य हित के विषय में कोई नहीं सोचता है और व्यक्तिगत स्वार्थो को अधिक महत्व दिया जाता है। वहॉ स्थित परिवारों के तनाव और हिंसा की उचित परिस्थितियॉ पैदा करती है। महिलाओं के संबंध में पारिवारिक हिंसा को परिभाषित करते हुये युनाइटेड नेशन्स कमीशन आन द स्टेट्स ऑफ वीमन के रिपोर्ट में कहा गया है कि 'पारिवारिक हिंसा के अन्तर्गत दुर्व्यवहार और हिंसा की वह सभी घटनाये आती है जो नारी के अस्मिता को हताहत करती है। सामाजिक दृष्टि से इन्हें सामाजिक नियमों का उल्लघंन या विचलन कहा जाता है। नारी को शारीरिक व मानसिक यातनायें देना, उसके साथ मारपीट करना, उसका शोषण करना, नारीत्व को ठेस पहुॅचाना, भुखा प्यासा रखकर या जहर देकर उसको दहेज की बलि चढा देना नारी के प्रति गंभीर अपराध है। नारी के प्रति परिवार के किसी सदस्य अथवा अन्य किसी व्यक्ति द्वारा किया जाने वाला हिंसात्मक व्यवहार एवं उत्पीड़न जो नारी को शारीरिक और मानसिक आघात पहुॅचाता है, पारिवारिक हिंसा है।'

आज महिला प्राय: घर और बाहर दोनों स्थानों पर ही स्वयं को असुरक्षित अनुभव करती है। अनेक परिवारों में छोटी बच्चियॉ भी असुरक्षित है जो उनके ही पारिवारिक सदस्यों की मलिन भावनाओं का शिकार होती रहती है। महिलायें जब परिवार में ही असुरक्षित हो तो बाहर के वातावरण की तो कल्पना ही नहीं की जा सकती हैं। बच्चियों का विद्यालयों, छात्रावासों इत्यादि में शर्मनाक परिस्थितियों का कभी–कभी सामना करना पड़ता है, यह चिंतनीय है। सरकार द्वारा घरेलु हिंसा संरक्षण विधेयक तैयार किया गया है तथा संसद के दोनों सदनों द्वारा 2005 में इस विधेयक को पारित कर दिया गया। यह अधिनियम 26 अक्टूबर 2006 में लागू कर दिया गया है। किन्तु इस विधेयक के बनने के बाद भी आज भी उसका परिपालन पूर्णरूप से नहीं हो पा रहा है। महिला मर्यादा एवं संस्कार में बंधे होने के कारण अपने घर की बात जग जाहिर नहीं करती क्योंकि उसे उसी परिवार में जीवन यापन करना है। इसलिये वह सामंजस्य ही करती रहती है। कुछ को अशिक्षा के चलते सरकारी नियम एवं अधिनियमों की जानकारी नहीं होती इसलिये वह कोई कदम नहीं उठा सकती।

अध्ययन का उद्देश्य –

1. अध्ययन में सम्मिलित परिवार की सामाजिक व आर्थिक स्तर का अध्ययन करना।
2. महिलाओं के साथ होने वाले अन्यायों के संबंध में परिवार द्वारा निर्वाह की जाने वाली महिलाओं का अध्ययन करना।
3. पारिवारिक सदस्यों के आपसी संबंधों का अध्ययन करना।
4. महिलाओं के पारिवारिक दायित्वों में भागीदारी का अध्ययन करना।
5. पारिवारिक हिंसा ने महिलाओं की जिन समस्याओं को जन्म दिया है, उसका अध्ययन करना।
6. पारिवारिक हिंसा में पति–पत्नि की समान संलिप्तता का अध्ययन करना।
7. पारिवारिक हिंसा के अन्य मूल कारण और तलाक की दरों के बढ़ने का अध्ययन करना।

अध्ययन पद्धति – प्रस्तुत अध्ययन इन्दौर जिले के देपालपुर नगर की विभिन्न आवासीय कालोनियों में रहने वाली 20 से 40 वर्ष आयु समूह, इंटर,

* शोधार्थी (समाज शास्त्र) देवी अहिल्या विश्व विद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत

स्नातक व स्नातकोत्तर शिक्षा प्राप्त, एकांकी व संयुक्त परिवार स्वरूप तथा विभिन्न जाति वर्ग के सम्मिलित समूह में से देव निदर्श प्रणाली द्वारा चयनित 150 महिलाओं का साक्षात्कार प्रस्तुत अध्ययन का मूल आधार है। अध्ययन से प्राप्त तथ्यों का संकलन साक्षात्कार शैली से कर, संकलित साम्रगी को गणितीय सांख्यिकी शैली के द्वारा विश्लेषित – विवेचित किया गया।

अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष –

1. शोध अध्ययन में सम्मिलित (28.66 प्रतिशत) उत्तरदाता महिलाओं के साथ पारिवारिक हिंसा, परिवार में किसी न किसी रूप में होती है, जबकि (71.34 प्रतिशत) उत्तरदाता महिलाओं के साथ किसी भी प्रकार की पारिवारिक हिंसा नहीं होती है। अधिकांश पारिवारिक हिंसाग्रस्त महिलाओं के परिवार का शैक्षणिक स्तर निम्न था।
2. शोध अध्ययन में सम्मिलित (23.33 प्रतिशत) उत्तरदाता महिलाओं के अपने परिवार में अन्य सदस्यों से मधुर संबंध है। (10 प्रतिशत) के शांतिपूर्ण, (50 प्रतिशत) महिलाओं में संबंध तनावपूर्ण, जबकि (16.67 प्रतिशत) महिलायें अपने परिवार के अन्य सदस्यों के साथ सहयोगपूर्ण संबंध है। अधिकांश उत्तरदाता महिलाओं का मत है कि परिवार के अन्य सदस्यों में तनावपूर्ण संबंध होते है छोटा सा अपमान बड़ा रूप ले लेता है यह बात सत्य है कि पुरूष महिला के साथ असामाजिक एवं कानून विरोधी व्यवहार करता है क्योंकि वह समाज में अपनी सर्वोच्चता का आभास करवाता है।
3. शोध अध्ययन में सम्मिलित (64.66 प्रतिशत) उत्तरदाता महिलाओं के साथ पुरूषों द्वारा दुर्व्यवहार किया जाता है, जबकि (35.34 प्रतिशत) महिलायें इसके विपरित पक्ष में अपना मत देती है। इसी प्रकार (93.33 प्रतिशत) महिलाओं में पति पत्नि के बीच तनाव की स्थिति रहती है। जबकि (6.67 प्रतिशत) के बीच नहीं। आपसी तालमेल न होने के कारण तनाव की स्थिति पैदा हो जाती है।
4. शोध अध्ययन में सम्मिलित अधिकांश महिलाओं (73.33 प्रतिशत) के अनुसार उनकी आर्थिक गतिविधियों में संलग्नता से उनके प्रति पारिवारिक प्रसन्नता की कोई स्थिति नहीं थी, जबकि (26.67 प्रतिशत) महिलाओं के परिवारों में यह स्थिति विपरित थी। जब महिलाओं पर होने वाले अत्याचार के कारको की विवेचना संबंधी प्रश्न पुछे जाते है, तो इनके मतानुसार (40 प्रतिशत) असहाय, (30 प्रतिशत) पराश्रित, (13.33 प्रतिशत) विधवा तथा (16.67 प्रतिशत) निरक्षर महिलाओं पर अत्याचार किया जाता है।
5. शोध अध्ययन में सम्मिलित (53.33 प्रतिशत) महिलाओं के अनुसार पारिवारिक सदस्यों में एकमतता का अभाव, (13.33 प्रतिशत) में निष्ठा का अभाव तथा शेष (33.33 प्रतिशत) में व्यवहारिक चेतना के अभाव के कारण पारिवारिक विघटन हो रहा है। उत्तरदाता महिलाओं का कहना है कि परिवार के सदस्यों में एकमत का अभाव पारिवारिक विघटन का प्रमुख कारण है, इससे परिवार में क्लेश बढ़ता है क्योंकि हर पक्ष अपनी बात मनवाना चाहता है जिससे परिवार घरेलु हिंसा के कगार पर पहुँच जाता है।
6. (65 प्रतिशत) उत्तरदाता महिलाओं के द्वारा सामाजिक ढांचे में परिवर्तन घरेलू हिंसा का प्रमुख कारण माना गया है। जबकि (15 प्रतिशत) आदर्शवादी मूल्यों में गिरावट की तथा (10 प्रतिशत जीवनदर्शन में अंतर को व शेष) (10 प्रतिशत) पृष्ठभूमि में अंतर को घरेलू हिंसा में प्रमुख कारण के रूप में मानती है। अधिकांश महिलाओं का मत है कि सामाजिक ढांचे में परिवर्तन ने घरेलु हिंसा को जन्म दिया है जब व्यक्ति परिवर्तनों से सामजंस्य नहीं कर पाता और जिम्मेदारियों का बोझ बढ़ जाता है। तो निश्चित ही अशांति की स्थिति उत्पन्न हो जाती है, यही अशांति घरेलू हिंसा का रूप धारण कर लेती है।
7. शोध अध्ययन में सम्मिलित (16.67 प्रतिशत) महिलांऐ दाम्पत्य जीवन की इन परिस्थितियों में पत्नी की आर्थिक स्वतंत्रता को (30 प्रतिशत) रोमांस पर आधारित विवाहों को तथा (53.33 प्रतिशत) पति पत्नि के स्वभाव में विरोधाभास को इसका प्रमुख कारण मानती है।
8. (33 प्रतिशत) उत्तरदाता महिलाओं के अनुसार दहेज प्रथा ने पारिवारिक हिंसा को जन्म दिया है। जबकि (67 प्रतिशत) उत्तरदाता महिलाओं की ऐसी मान्यता नहीं थी। इसी प्रकार (76.67 प्रतिशत) उत्तरदाता महिलाओं के अनुसार आर्थिक स्वावलम्बन घरेलु हिंसा का प्रमुख कारण है, जबकि (23.33 प्रतिशत) महिलाओं की ऐसी मान्यता नहीं थी। अधिकांश महिलाओं के अनुसार दहेज प्रथा का बढ़ता स्वरूप और महिला आर्थिक स्वालम्बन, पारिवारिक हिंसा का एक कारण है।

विषयगत सुझाव – समाज को आगे तक ले जाने का कार्य स्त्रियॉ ही करती है, वही है जो वंश को आगे बढ़ाती है, उसी से समाज का निर्माण होता है, और उसी से समाज चलता है। अगर इस समाज में नारी न होती तो समाज की गति शून्य होती। नारी उत्पीड़न रोकने के लिये असरदार उपायों की उपलब्धता नितान्त: आवश्यक है। महिला विरूद्ध हिंसा को रोकने के लिये हिंसा ग्रस्त महिलाओं को नि:शुल्क सलाह पारिवारिक परामर्श केन्द्र में दी जाती है उनका लाभ उठाया जाना चाहिये। ऐसी महिलाओं के लिए आश्रम व रोजगार के अवसर, नि:शुल्क सलाह, महिला कर्मचारियों से युक्त महिला अदालतों का निर्माण प्राथमिकता से होना चाहिये। यदि सरकार बलात्कार की शिकार लड़कियों को तत्काल रोजगार देकर उन्हें आर्थिक सुरक्षा प्रदान कर दे तो वे समाज में भी प्रतिष्ठित हो जायेगी और मानसिक तौर पर भी सुरक्षित महसूस करेगी। दहेज प्रथा, बालविवाह प्रथा का दमन कर, स्त्रियों को उन्हे प्राप्त कानून अधिकारों की जानकारी उपलब्ध करना आवश्यक है। इस हेतु गैर सरकारी सगठनों की मदद लेनी चाहिये। अंत में कहा जा सकता है कि एक स्वस्थ्य, समृद्ध एवं उन्नत समाज की स्थापना के लिए यह नितान्त: आवश्यक है कि परिवार एवं समाज में महिलाओं को उचित अधिकार और सम्मान का दर्जा प्राप्त हो वे किसी भी तरह से हिंसा से प्रताड़ित न हो। महिला हिंसा के विरूद्ध अनेक कानूनी प्रावधान बनाये गये है, वे निश्चित रूप से महत्वपूर्ण है परन्तु इसके साथ ही महिलाओं के प्रति समाज की सोच भी स्वस्थ और सकारात्मक होना आवश्यक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. श्रीमती मन्जू शर्मा – नारी के प्रति अत्याचार एवं मानवाधिकार, 2009 मार्क प्रकाशन, जयपुर।
2. क्षमा शर्मा, एम.के मिश्रा – महिला विकास, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस।
3. प्रकाश नारायण नाराणी – कन्या भ्रूण हत्या और महिलाओं के प्रति घरेलू हिंसा, बुक एनक्लेव जयपुर।
4. डॉ धर्मवीर महाजन, कमलेश महाजन – युनीफाइड समाजशास्त्र।
5. सुनील गोयल – भारतीय समाज में नारी।
6. अलका आर्य – दहशत में जीती स्त्रियॉ।
7. योजना – इण्डिया टूडे।

जनजातीय धर्म दर्शन

डॉ. बसंत नाग *

प्रस्तावना – भारत वर्ष में अनेक जाति, धर्म व जनजातियां निवास करती है। इन जनजातियों का आस्था व विश्वास अन्य धर्मो के आदर्शो से कही भिन्न है। लेकिन जनजातियों किसी भी क्षेत्र में निवास करती है। इनमें कुछ न कुछ अन्य जनजातियो से आस्था व विश्वास समान होता है, जनजाति धर्मदर्शन उनके भौगोलिक पर्यावरण पर ही निर्भर करती है। उनके धार्मिक में प्राकृतिक तत्व वन्यप्राणी जीव जन्तु, पेड़ पौधा के साथ गहरा संबंध बना रहता है। उन्हीं में ही वे अपनी देवी– देवता का स्वरूप देखता है तथा प्राकृतिक शक्ति के द्वारा अपने समाज व सामुदायिक जीवनको संगठित व व्यवस्थित किए है।

धर्म मनुष्य के जीवन का अनिवार्य तत्व है किसी भी समाज के संगठन व उपलब्धि का आंकलन करते समय उनकी धर्म की पृष्ठ भूमि समाज व समुदाय के सदस्यों को प्रभावित करने वाली धार्मिक तथ्यों का अध्ययन आवश्यक है। धार्मिक विश्वास और श्रद्धा ही समूह में सुरक्षा और सहयोग की भावना को जन्म देता है, समाज की रचनात्मक अभिव्यक्तियों विशेषकर उनके मिथकीय साहित्य,कला समाजिक गतिविधि क्रिया कलापों आदि पर धार्मिक विश्वासों की प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में अमिट छाप रहती है। इस संबंध में इमाइल दुर्खिम का विचार है–धर्म पवित्र वस्तुओं से संबंधित विश्वास कर्मकाण्डो की एक संगठित व्यवस्था है जो उन व्यक्तियों को एक एकल सामाजिक नैतिक समुदाय में बांधता है जो इनका अनुसरण करते है। सामान्यत: धर्म ऐसी व्यवस्था है जो मानवीय जीवन के अज्ञात एवं अज्ञेय पक्षो से जीवन मृत्यु एवं अस्तित्व के रहस्यों को जानने तथा उनके व्यवहार करने का एक तरीका है।

जनजाति धर्म दर्शन उनकी धार्मिक आस्थाएं जीवन के प्रति आत्म विश्वास जगाती है तथा उनकी सुषप्त आत्म विश्वास में प्राकृतिक पूजा आस्था का मूल केन्द्र है। आदिवासी धर्म सरनाइज्म, सरना धर्म, सारि धर्म व गोंडी धर्म आदि नामों से विहित किया जाता है। भारतीय संविधान में आदिवासियों की सांस्कृतिक रूप से एक विशिष्ट समुदाय माना गया है। किन्तु उनकी स्वतंत्र धार्मिक पहचान नही है, जिसके परिणाम स्वरूप जानजातीय अपने को हिन्दू, ईसाई, बौद्ध आदि धर्मो में चिन्हित होने को विवश है अत: जनजातियों को उसके अन्दर जाना अन्तकाल के लिए गुलामी स्वीकार करना है। आदिवासी भ्रांति के इस मिथ्याकर्षण से उनकी वर्षो से मानसिक शोषण ने अपनी गरिमामय विशिष्ट धर्म को भूलने पर विवश कर दिया है।

मानव समुदाय सभ्यता के शैशव काल से ही धर्मिक विश्वासों मान्यताओं और क्रियाओं की प्रक्रिया ही धर्म के विकास के परिचय कराया वह कभी भय के कारण तो कभी विस्मय 'देवी मुटियारी' जनजातियों की क्रिया कलापों पर निगाह रखते है। उन्होंने विश्व की रचना की पर लिंगो और भीमूल की सहायता से पृथ्वी जिसे भूम भी कहा जाता है, जीवन का मूल उद्गम स्थल है और यह वह शक्ति जो अन्य देवताओं में भी प्रगट होती है, इनका प्रतिनिधित्व करती है, 'टाल्लुर मुताई' मनुष्य धरती पुत्र होते है जिन्हें वो खाना खिलाती है और अपना ममत्व लुटाती है, घोटुल में रहकर बच्चों की रक्षा करती है और इनका ध्यान फसल पकने पर भी होता है, जब कोई गांव मटाल, जिम्मेदारिन मटाल, ठाकुराईन मटाल, दंतेश्वरी मटाल, माओली मटाल आदि की पूजा करता तो उनक हृदय में 'टाल्लुर मुताई' या पृथ्वी माता की छबि होती है। अत: प्रकृति से संबंध दैवी शक्तियों को नारी रूप में पूजा जाता है। पृथ्वी माता चाहे किसी भी रूप में पूजित क्यों न हो के सम्मान में एक अलग मंदिर हमेंशा मिलेगा इससे संबंधित प्रतिनिधि चिन्ह भी कई तरह के होते है इनके खास पुजारी को कहते है 'कसेर गायता' जो हर उस मौके पर असर डालता है, इनकी पूजा अर्चना करता है और उन्हें भेंट चढ़ाता है।

मान्यताओं विश्वासों और मिथको में ईश्वर और धर्म की अवधारणा है इन्ही मूल अवधारणाओं के परिष्कृत रूप विकसित समाजों ने ग्रहण किये और मानव समाज में नये देवताओं की स्थापना हुई इनमें दो तरह के देवी–देवताओं के स्वरूप मिलते है एक प्रारंभिक प्रतिष्ठित देवता दूसरे स्थानीय देवता। प्रारंभिक देवी–देवताओं के प्रति व्यापक गहरी आस्था का मिलना स्वाभाविक है क्योंकि उनके मिथकीय स्वरूप मानव मस्तिष्क में पुरातन परम्परा से स्पष्ट होता है। लेकिन स्थानीय देवताओं में आंचलिक मान्यताएं होती है और उनका प्रीव सीमित होता है। डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने दो तरह के देवताओं की व्याख्या की है एक वैदिक देवता दूसरे लोक देवता लोक देवता ही जनजातियों का देवी देवता है। वैदिक देवताओं में उषा, अग्नि, जल, वायु तथा जनजातियों के लोक देवता उनके वंश देवी–देवताओं का वर्णन वाचिक परम्पराओं से होती है तथा इनसे वे अन्न धन सुख समृद्धि कल्याणकारी व शांति सुरक्षा प्रदान तथा पाप नाश बीमारी फैलाने वाले और दूर करने वाले अनिष्टकारी देवता, संकट दूर करने वाली माताएं, अनिष्ट करने वाली देवियां, सुख सम्पदा देनी वाली, स्वास्थ्य रखने वाली गांव के देवता, गांव की सीमा की देवी–देवता नदी पहाड़ पनघट के देवता, कुल देवता, प्रकृति देवता व घर के देवता आदि कोई जगह शेष नही है जहां कोई न कोई देवता बिराजे हो तथा इन देवताओं का निश्चित स्वरूप नही होता किसी न किसी प्रतीक के माध्यम से देवी–देवताओं की अभिव्यक्ति अत्यंत पुरातन आदिम परम्पराओं का अवशेष है। प्रतिमा भी प्रतीक है जो विकसित मानव के देन है। रक्षा सम्मान की भावना देवता के जन्म के कारण रही जहां जरा सी भी असुरक्षा महसूस हुई वहां कोई न कोई

देवता प्रगट हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं। छोटी से छोटी अस्वाभाविक घटना या बात में देवी–देवताओं की उपस्थिति सदैव होती है वे छोटी–छोटी सुखो व दुखों को मानते आ रहे है। उनके शमन और निवारण के उपाय अपनी विश्वासों से करते है। बलि मान–मनौती, पूजा प्रार्थना व अनुष्ठान आदि प्रथाएं इसी बात का संकेत। डॉ. श्यामाचरण दुबे का वक्तव्य सर्वथा उपर्युक्त प्रतीत होता है कि 'अदृश्य व अज्ञान को जानने व समझने की जिज्ञासा मानव में चिरन्तर काल से है, जो शक्तियों सदैव की अदृश्य अज्ञात रहती है उनके प्रति भिन्न–भिन्न प्रकार की कल्पनाएँ करना मान्यताएं विकसित करना मानव के लिए सर्वथा स्वभाविक है।

जनजाति धर्म का केन्द्र उनके देवी–देवता होती है तथा इन देवी–

* सहायक प्रध्यापक (समाजशास्त्र) भानुप्रतापदेव शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कांकेर (छ.ग.) भारत

देवताओं की मान्याताएं मिथक किवदन्तियां विश्वास इन्हें मर्यादित और संचालित करते है देवी–देवता का प्रतिनिधित्व गांव के सिरहा गुनिया पुजारी सेवक होते है, जो देव की तरफ से भय की विशेष व्याख्या और कठिन स्थिति में अज्ञाएं देते है ताकि इनकी बातों पर सहज सामुहिक विश्वास करते है यह सामुहिक चेतना का प्रतीक है, इसे जुड़े धार्मिक क्रियाओं की सृष्टि होती है वह कुछ तंत्र मंत्र, झाड़ फूंक सर्जना हो जाती है और वे इन पर देवी–देवता की उपस्थिति मानते है। इन देवी–देवता को सहज गढ़े जा सकती है। उनके ओटले पर सिन्दूर लगा पत्थर भैरवन को सकता है सत मातृकाएं हो सकती है। किसी काटे वाले वृक्ष पर सफेद, लाल झंडा बांधकर उस पेड़ में किसी देवता का वास बनाया जा सकता है। भूत प्रेत चुडेल आदि भटकती हुई अतृप्त आत्माएं है। वे देवी–देवताओं में गिनती नहीं होती वे अपवित्र शक्तियां मनुष्य को सदैव संकट में डालने वाली है एवं वे इनका वश में करने की क्षमता भी रखती है।

यह देवी देवता जनजाति संस्कृति के पोषक है इनकी पूजा अनुष्ठान मिथक विश्वास संस्कृति से उनका स्वरूप स्पष्ट होता है। विभिन्न पर्व व त्यौहार व्रत उपवास, रीति–नियम ,दान पुण्य आदि देवी–देवताओं के आसपास की संस्कृति बनावट है। अलग–अलग जनजाति देवी देवताओं का पारदर्शी संसार एक दूसरे को जोड़ने का कार्य अपनी जीवन शैली में बखूबी करता है। यह उनकी मानसिक व्यवस्था के दर्पण होते है। इस प्रकार धर्म की व्याख्या सरल नहीं है फिर भी अतिनिन्द्रय अदृश्य जगत की देवी आत्माओं के जो संकेत व आदेश है वही जनजाति धर्म के सीमा में आते है। इस धर्म का स्वरूप मौखिक ही होता है, सुविचारित लिखित धर्मो की तरह आचार व्यवहार सिखाते भी नही जाते वे तो स्वाभाविक रूप से दैनिक व्यवहार में अनुशरण होते है और उनके प्रभाव में आया मनुष्य उसे सिखाता जाता है और जीवन को मर्यादित कर जीने की शैली प्रदानकर्ता है। प्रार्थना और अनुष्ठान के मार्ग प्रशस्त करता है,मनुष्य बनाता है। तथा सामाजिक,धार्मिक,राजनैतिक और आत्मिक बल प्रदान करने में सहयोग प्रदान करता है।

जनजाति धर्म का आदर्श प्रकृति की पूजा है प्रकृति मानव जीवन के विकासक्रम सहचरी का दायित्व निभाती है। मानव आवश्यकता के पूरक तत्वो का संचय करके उन्मुक्त होकर मानव लुटाती है प्रकृतिप्रद उपहारों एवं वरदानों से जीवन में सुख समृद्धि आती है। इन्ही मान्यता और उपहार की पद्धति के आधार पर जनजाति संस्कृति की अलग पहचान है तथा इनकी धार्मिक आस्था एवं विश्वास में आत्मवाद, प्रकृतिवाद, बहुदेवतावाद के तत्व विद्यमान है । इन शक्तियों पर आस्थावान होकर अराधना द्वारा प्रसन्न करने का प्रयास करते है तथा आस्था का केन्द्र देव गुड़िया, पेनरवर व पेनकड़ा होता है । इन्हीं के द्वारा उनका धार्मिक जीवन चक्र चलता है। यह जगत वास्तविक और कल्पनाओं का जनजाति मानस को आदर्श व्यवस्था के रूप में पूर्ण करता है, जिससे वे प्रेरणा लेते है एवं इन आदर्श तक पहुंचने का विधान है, और इन शक्तियों पर आस्था व्यक्त करके मनुष्य अपनी सभी अपूर्ण कामनाएं अतृप्त इच्छा कामनाओं की पूर्ति की आशा करता इन शक्तियों में विश्वास के साथ कर्मकाण्डों व अनुष्ठानों का विधान जुड़ा हुआ है। जिसके माध्यम से मनुष्य इन शक्तियों को आव्हान करके उनका अपनी ओर आकर्षित करने की चेष्ठा करता है। अनुष्ठान का विधान धर्म को व्यवहारिक रूप प्रदान करता है, अत: अदृश्य आध्यात्मिक और परलौकिक विधान व विश्वास धर्म कहलाता है।

प्राचीन काल से जनजातियों की देवी–देवता के प्रमुख धार्मिक तत्व को सामान्य जाति भी अपनाये तथा गांवो की देवी–देवता को संतुष्ट करने के लिए पशु बलि दी जाती रही उन्हें भी वे अपना लिए टोटम के रूप में एवं इनकी टोटम को अनेक जाति समूह ने स्वीकार कर लिया हिन्दु देवी–देवताओं की उत्पत्ति आदिवासी संस्कृति से जुड़ी हुई है, बस्तर के लिंगों देव महादेव के आदिम प्रतिरूप है,लिंगो पाटा में सप्तऋषियों को लिंगों का अगज माना जाता है, छत्तीसगढ़ की व्यवस्था आदिवासियों के रीति–रिवाज परम्पराओं की पृष्टभूमि में विकसित हुई थी तथा यहां के राजवंशो ने ब्राम्हण भूस्वामियों को इन आदिवासियों के बीच में समाहित करने का प्रयास किया। शाक्तों को यहां सेक्तहा कहा जाता था तथा जनजातियों में शैव (लिंगो) परम्परा के कारण स्थिति समूचें छत्तीसगढ़ में व्याप्त हो गई थी जो पूर्व में यहां पुरोहित का कार्य गोड़वंशीय बैगा का वर्चस्व था वह समाप्त होने लगी तथा पुरोहित का कार्य ब्राम्हण करने लगे एवं उनके साथ विभिन्न पंथ का प्रचलन होने लगा और प्राचीन काल से विभिन्न धर्म पंथ और सम्प्रदायों का जनजातियों के बीच प्रचार के लिए अनुकूल माना और यही कारण है कि जनजातियों क्षेत्रों में विभिन्न संम्प्रदायों द्वारा समय–समय पर जनजातियों क्षेत्र में अलग–अलग समय पर जैन, बौद्ध, इस्लाम एवं इसाई धर्म का प्रचार–प्रसार होता रहा यह प्रमाणित माना गया और समय–समय पर जनजातियों क्षेत्रों में अलग–अलग संम्प्रदायों ने अपने साधनों द्वारा अपनी ओर आकृष्ट करने का प्रयास किया। जनजातियों हमेशा से स्वाभिमानी और स्वतंत्र प्रिय रहे तथा इन क्षेत्रो में अलग–अलग समय में जैन, बौद्ध मूर्तियां उपलब्ध है। जनजाति समाज में देवी–देवताओं के धार्मिक आस्था सीधे जल, जंगल जमीन से जुड़े है वे प्रकृति की गोद में उन्मुक्त होकर वे अपने जीवन निर्वाह करते है लेकिन वर्तमान समय में वनो की कटाई पर्वतों से खनिजों को दोहन धार्मिक भावनाओं व आस्थाओं पर कुठराघात किया। अपितु उनके जीवन अस्तित्व भी खतरे में पड़ गया। गोत्रानुसार टोटम व्यवस्था के अंतर्गत पूर्वजों द्वारा पेड़ पौधों जीव–जन्तु की सुरक्षा करने एवं संरक्षण का समाजिक दायित्व की भावना को समाप्त करने का प्रयास किया जा रहा है। उनके पर्यावरण परिस्थितिकीय दशाओं के साथ उनके समायोजन की अभिव्यक्ति भी समाप्त हो रही है, जल, जंगल जमीन से इनका रागात्मक रिश्ता टूट रहा है तथा अपने आराध्य देव बुढ़ादेव वेश देवी देवता व धरती माता की अपेक्षा महादेव ब्रम्हा, विष्णु, राम कृष्ण इत्यादि पर अधिक विश्वास करने लगे है और जनजाति अपने देवी–देवताओं को पर्व विशेष पूजा करते है थे तथा पूजा विधि की परंपरागत से न कार पूजा अनुष्ठान ब्राम्हण पुरोहितों द्वारा किया जाता है और वे बैगा गुनिया एवं सिरहा का महत्व कम हो गई। जनजातियों का धार्मिक भूम, वंश व पेनकड़ा होता था जहां पर वे तीर्थ यात्राएं करते थे तथा इस भूम पर पूर्वजों की यादगार में महापाषण कलपत्थर या मेनिहर स्थापित किया जाता था और इनमें मान्यता थी कि उनके पूर्वज देवलोक में सम्मिलित हो गया और इन भूम से आस्था रहती थी कि अपने परिवार की निरंतरता व सुख, समृद्धि क्षेत्र की शांति सुरक्षा समूह कल्याण की सुख समृद्धि क्षेत्र की शांति सुरक्षा समूह कल्याण की सुख समृद्धि रही लेकिन आज अपनी मनोकामना के लिए वे विभिन्न धार्मिक तीर्थ व हिन्दु धर्म के मान्यताओं के आधार पर कर रहे है एवं मृत आत्मा की पवित्रता के लिए गंगा या अन्य पवित्र नदियों में अस्थि विर्सजन करते है एवं मृत आत्मा की शांति के लिए पुरोहितो के माध्यम से हवन पूजा किया जाता है, जिसे वे पूर्व में अपनी जनजाति समूह के द्वारा सम्पादित किया जाता था और आज अपनी मनोकामना के लिए मंदिरों, गिरजाघरों में पूजा प्रार्थना करते है। इन पूजा अनुष्ठानों के अवसर पर अपने परम्परागत वाद्यों द्वारा देवी–देवताओं का पूजा किया जाता है। गोड़ जनजाति में लिंगो मुदिया के अठारह वाद्यों का प्रयोग होता था, हर देवी–देवताओं के लिए अलग–अलग पाड़ (पटाक्षर) बजाने की परंपरा थी आज वही पर भजन कीर्तन द्वारा पूर्ण किया जाता है तथा अपनी परम्परात्क पूजा गीत रेलापाटा ककसाड़ रेला, पूसकोलांग देवी–देवताओं की स्तुति में होता था ।

परम्परा और विश्वासों से जुडे यह समाज अपने प्राकृतिक धर्म के बल पर कठिन से कठिन परिस्थितियों में अपनी पहचान रखा इनका धर्म जीने का नियम है, इसलिए वह व्यवहारिक भी आज सबसे बड़ी खतरा उनके जीने का नियम प्राकृतिक वादियों से घिरी हुई थी। इन प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध वनो की कटाई, बहुउद्देशीय परियोजनाओं का विकास नये-नये कल-कारखानों की स्थापना के विकास के फलस्वरूप उन जनजातिय क्षेत्रों में प्रवेश होने से अन्य लोगों ने इनके धार्मिक भावनाओं को अंधविश्वास व रूढ़िवादी की संज्ञा देने लगे तथा अपने-अपने धार्मिक आस्थाओं को इनके बीच में प्रसारित करने लगे लेकिन इनकी धार्मिक परम्परा वाचिक है,लिखित न होने के कारण लोगों की आस्था और विश्वासों को बदलने में सफल होते जा रहे है एवं जनजाति जीवन में अस्थिरता उत्पन्न किया जा रहा है। इनके धर्म के प्रमुख तत्व सेवाधर्म, माता-पिता बुर्जुगों की सेवा, गोत्र की प्रतीक की पवित्रता, जीव जन्तु वनस्पति की सेवा एवं सरंक्षण रहा परन्तु अन्य धर्मो की मान्यताओं की अनुशरण से उनकी समाजिक सांस्कृतिक परंपराए धार्मिक मान्यताएं संकट में दिखाई दे रही है।

जनजातियों का गोत्र व्यवस्था समाज के नियामक व्यवस्था का आधार स्तंभ रहा इनकी सभी नैतिक मान्यताएं मूल और आचार संहिता का मर्यादा होता था इस प्रकार सामाजिक व्यवस्था सभी नर-नारियों के चेतना का उद्गम रहा तथा गोत्र बर्हिविवाह की मान्यता थी जिससे रक्त की शुद्धता को बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका होती थी, जिसके कारण जनजातियों में कभी कोढ़ जैसे बीमारियां नहीं होती लेकिन जनजातियां अपने धार्मिक मान्यताओं के बदले परिवेश में इनका विपरीत प्रभाव पड़ रहा है।

आने वाला कल जनजातियों के धार्मिक आस्था का आधार ही समाप्त हो सकता है, यदि समय रहते उन्हें सरंक्षित नहीं किया गया तो यह धर्म ही विलुप्त होगी। यह धर्म रहस्यों के साथ जुड़ा हुआ है, अपनी मिथक किंदवती प्राकृतिक शक्ति से ही उनकी उत्पति विकास की मान्यता जुड़ी हुई है तथा जनजाति समूह अपने वंश व गोत्र की उत्पति भी इन्ही शक्तियों से मानते है, वे उन्हे वाचिका परंपराओं से प्राप्त करता है यह वाचिका परंपरा प्राकृतिक शक्तियों के साथ उनका देवी-देवता की आदर्श व शक्तियां रहती है। अत: इन मिथको का लिपिबद्ध न होने से जनजातियों में प्रचार-प्रसार नही हो सकता आदिकाल से ही जनजाति बच्चों का परंपरागत शिक्षा का केन्द्र 'घोटुल व घुमकुरिया' के द्वारा सामाजिक, सांस्कृतिक गीत संगीत के माध्यम से दिया जाता था। आधुनिक शिक्षा के विकास से वाचिक परंपरा के स्थान पर पुस्तकीय शिक्षा प्रदान की जाती है, जिनमें जनजातियों की भाषा बोली परंपरा व उनके आस्था के देवी-देवता व उनके नायकों के सबंध में कोई पुस्तक या ग्रंथ न होने से अपने पूर्वजों के आदर्श के सबंध में उन्हें कोई जानकारी नहीं दी जाती इनके कई आदर्श पुरूष हुए, इनमें असीम शक्तियां रही इन मिथकों को जनजाति समाज के धर्म ग्रंथ के अभाव में अन्य धर्मो के मान्यताओं को अनुशरण करने बाध्य है।

जनजाति संस्कार सामुहिकता एवं आदर्श की भावनात्मक संबंध इनके आत्म चेतना को विकसित करने धार्मिक भावनाओं को पुन: सृजित व मान्यता और विश्वासों से पुरातन समाज, परिवार संस्कारित रही है, बिना संस्कार के मानव जीवित नहीं रह सकता, इसमें समाज व परिवार की अहम भूमिका होती है। लेकिन जनजाति संस्कारों को अपनी परंपराओं से सिखता है इन परंपराओं का अन्य समुदाय असभ्य, पिछड़ा हुआ व अंध विश्वासी कहते है, जिससे परंपरागत मान्यताओं को परित्याग कर अन्य धर्म की मान्यता को अनुशरण करने लगे है, जिससे जनजाति समाज विखंडित हो रहा है।

आदिकाल से जनजातियों में मातृशक्ति की पूजा अपने मूल मान्यताओं के साथ करता आ रहा है इन मातृ शक्तियों को हिन्दु धर्म में इनकी अलग-अलग स्वरूप प्रदान की तथा इनकी पूजा अराधना के कई सम्प्रदाय विकसित कर जनजातियों के बीच प्रचार-प्रसार करते आ रहे है। बस्तर के जनजातियों की मान्यता मातृशक्ति का स्वरूप बत्तीस बहनों की देवियां है इन मातृशक्तियों को आदिकाल से सभी गांव व परिवारों के अतिरिक्त परगनाओं में इनकी पूजा की जाती है लेकिन इनकी पुराकथ अलिखित होने से बत्तीस देवियों की महत्व आज तक लोगों के सामने स्पष्ट नहीं हो पाया। जनजाति समाज के शिक्षित व नई पीढ़ी प्राचीन आस्था से बिल्कुल अज्ञात है अज्ञानतावश अन्य धर्म के प्रचार-प्रसार व धर्म ग्रंथों से प्रभावित होकर जनजाति समाज अलग-अलग पंथ व सम्प्रदायों की ओर आकर्षित होते है इन्हें आकर्षित करने के लिए देश-विदेश में कई संस्था एवं संगठन इन क्षेत्रों में कार्यरत है इन संस्था व संगठन द्वारा उन्हें उच्च महत्वकांक्षा व मनोकामना के लिए प्रेरणा देते है तथा इनकी मान्यताओं से परिचय करा कर जनजातियों को आकर्षित किया जाता है।

अत: जनजातियों के धार्मिक मान्यता को प्रतिस्थापित कर इनमें आत्मबल व आत्म सम्मान उनकी सामाजिक सांस्कृतिक परम्पराओं के साथ धार्मिक आस्था को उनके मिथक पुरा कथाओं को संकलित करते हुए जनजाति धर्म को स्थापित करना जिससे नई पीढ़ी पुरानी मान्यताओं से समाजीकृत हो सके इन्हें आज समाज व समुदाय के प्रमुखों समाज सुधारकों, राजनीतिज्ञों व बुद्धिजीवियों को जनजातियों के आस्था व विश्वास के मूल देवी-देवताओं के आदर्शो को लिपिबद्ध करते हुए जनजाति धर्म को संरक्षित किया जाय तथा जनजाति विकास में धार्मिक मान्यताओं को अध्ययन कर उनकी मनोवृत्ति को समझकर विकास योजनाएं तैयार किया जाए तथा जनजाति धर्म के आने वाले संकट से उन्हें बचाया जा सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. Grigon, Wilfred 1949 -The Maria Gonds of Bastar, Oxford Univercity press, Delhi
2. एल्विन, वेरियर - मुरिया और उनका घोटूल, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.नई दिल्ली 2008 अनुवादक प्रकाश परिहार कविता वशिष्ठ
3. एल्विन, वेरियर - जनजातिय मिथ्क उड़िया आदिवासियों की कहानियां अनुवाद निरंजन महावर, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली 2008
4. दुबे, श्यामाचरण-मानव समाज और संस्कृति राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली 1993
5. वर्मा, ओमप्रकाश - दुर्खेम एक अध्ययन, विवेक प्रकाशननई दिल्ली 2009
6. रामदयाल,मुडा/रतन सिंह मानकी - आदिधरम भारतीय आदिवासियों की धार्मिक आस्थाएं राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली 2009
7. शुक्ल, हीरालाल - आदिवासी संगीत, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी 1986
8. शुक्ल, हीरालाल - प्राचीन बस्तर अर्थात दण्ड कारण्य का सांस्कृतिक इतिहास, विश्व भारतीय प्रकाशन नागरपुर 1978
9. शुक्ल, हीरालाल- छत्तीसगढ़ का जनजाति इतिहास, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमिक भोपाल 2003
10. शरदचंद गौड़, कविता गौड़ -बस्तर एक खोज, विश्व भारतीय प्रकाशन नागपुर 2008
11. बसंत, निरगुणे-लोक संस्कृति मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल 2005
12. ध्रुव, के.आर.- जनजाति धर्म एवं उनके बदलते प्रतिमान शोध ग्रंथ का स्वरूप

****

विकास के क्रम में सामाजिक समानता के सिद्धांत का विश्लेषण

सुमित्रा वर्मा *

प्रस्तावना – भारतीय परम्परागत समाज अन्य देशों के समाज से अधिक जटिल है। क्योंकि भारत में अनेक धर्म, सम्प्रदायों तथा विशेषकर हिन्दू समाज में परम्परा से वर्ण व्यवस्था का श्रेणीक्रम, रीति रिवाज, धार्मिक संस्कार एवं अंधविश्वास अत्यंत जटिल रहे है। इस परम्परागत जटिलता में परिवर्तन लाने की प्रक्रिया अत्यंत जटिल एवं विस्तृत है। किंतु आधुनिक युग की आवश्यकतानुरूप उसकी नितांत आवश्यकता है। वांछित परिर्वतन के अभाव में समाज एकांगी, पिछड़ा हुआ तथा स्थिर हो जाता है।

सामाजिक असमानता न्यूनाधिक समस्त समाजों में विद्यमान होती है। लेकिन भारतीय समाज में शास्त्रकारों ने धर्मशास्त्रों के माध्यम से ईश्वरीय विधान निरूपित कर इसे स्थायी रूप दे दिया। भारतीय समाज उत्थान, अवनति, सुधार, पुनरूत्थान के विभिन्न दौरो से गुजरा है। प्राचीन सैन्धव सभ्यता में भारतीय समाज अत्यंत विकसित था एवं वैदिक युगीन समाज आज भी हमें गौरान्वित करता है। वैदिक युग में नारी का स्थान अत्यंत पूज्नीय था। इसी प्रकार शूद्र एवं ब्राहम्णों की स्थिति भी अग्रलिखित उद्धरण से स्पष्ट होती है –

शूद्रे तु यद् भवेल्लक्षम द्विजे तच्च न विद्यते
न वै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राम्हणों न च ब्राहम्ण:।
यत्रे तल्लक्ष्यते सर्प व्रतं स ब्राम्हण: स्मृत:
यत्रेतन्न भवेत् सर्प नं शूद्रोमेति निर्दिशत।

महाभारतकार महामुनि व्यास ने वनपर्व में वर्णित युद्धिष्ठिर सर्प सम्वाद में प्रत्यक्ष किया है– 'यदि शूद्र में सत्य आदि उपयुक्त लक्षण है और ब्राम्हण में नहीं तो वह शूद्र शूद्र नहीं है, न वह बाम्हण ब्राम्हण है। इस प्रसंग का अंतिम निष्कर्ष यह है कि यदि आचार से ही ब्राम्हण की परीक्षा की जाए तब तो, जब तक उसके अनुसार कर्म न हो, जाति व्यर्थ ही है।

वैदिक युग के पश्चात् भारतीय समाज में अनेकानेक जटिलताओं का प्रवेश हो गया। कर्म पर आधारित निर्मित वर्ण व्यवस्था कालांतर में निरंतर कठोर होती हुई चरम सीमा पर पहुंच गई एवं कई जातियों, उपजातियों में विभक्त हो गई। अनेक सामाजिक एवं धार्मिक कुरीतियों के निवारण हेतु बौद्ध धर्म एवं जैन धर्म का प्रादुर्भाव हुआ। मौर्य सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म में दीक्षित होने के उपरांत बौद्ध धर्म भारत में राष्ट्र धर्म के रूप में स्थापित हुआ था, जो स्वतंत्रता, समानत, भ्रातृत्व के सिद्धांतो पर आधारित था। कालांतर में बौद्ध धर्म स्वयं अनेक जटिलताओं का शिकार हो गया तथा जैन धर्म भी पुरातन निर्मल स्वरूप को न बनाएं रख सका।

मुसलमानों के प्रवेश एवं राज्य विस्तार के साथ भारतीय समाज के मौलिक स्वरूप में बहुत परिवर्तन आया। भारतीय राष्ट्रीयता एवं मुस्लिम राष्ट्रीयता । मुस्लिम राष्ट्रीयता अपने विदेशीपन को न त्याग सकी, जिससे हिन्दू–मुस्लिम राष्ट्रीयता का सम्मिलन हो सका। जो विलगाव एवं विभिन्नता की खाई को अधिक गहरा करती गई। विभिन्न जातियों, धर्मो तथा भाषाओं के अस्तित्व के कारण राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक विषमता ने राष्ट्रीयता के पोषक तत्वों का पल्लवित नहीं होने दिया।

तेरहवीं शताब्दी में विषमता के अंधकार को कम करने में 'मानभाव आंदोलन' की भूमिका सराहनीय रही। इसके द्धारा अंधविश्वास, जाति पांति, उंच–नीच की भावना तथा अस्पृश्यता का खुलकर विरोध किया गया। इसमें स्त्रियों को भी धर्म प्रचार के लिए सम्मिलित किया गया।

पन्द्रहवीं एवं सोलहवीं सदी में महाराष्ट्र धर्म और उसके संतो ने संकीर्णताओं से मुक्त समाज की रचना में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया। इस धर्म के फलस्वरूप शूद्र वर्ण ने भी आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त कर सामाजिक क्षेत्र में ब्राम्हणों के समान ही महत्व प्राप्त किया। हिन्दू मुस्लिम समन्वय की प्रक्रिया को गति प्राप्त हुई। संत तुकाराम, रामदास, सावतामाली, नरहरि, चोखा मैला, ब्रहमेन्द्र स्वामी, कान्होपत्रा आदि का नाम उल्लेखनीय है। इस धार्मिक आन्दोलन की तुलना यूरोप के प्रोटेस्टैण्ट आंदोलन से की जा सकती है।

सत्रहवी सदी के पूर्वाद्ध में मराठा शासक शिवाजी के प्रशासनिक संगठन ने जनता को भेदभावरहित, सम्मानयुक्त शांति पूर्ण जीवन यापन के अवसर प्रदान किये। सभी जातियों एवं वर्गो को समानता के अधिकार प्रदान करने के साथ पदो पर योग्यता के आधार पर नियुक्ति की परम्परा का पालन किया जाता था। उनके प्रशासनिक संगठन में ब्राम्हण एवं ब्राम्हणेत्तर नौकर भी थे। जो ऊँचे असैनिक कार्यालयों में कार्य कर रहे थे।

इसी क्रम में ज्योति को फूले का ब्राम्हणों के उच्चता संबंधी दावे के विरूद्ध संचालित आंदोलन का प्रमुख कार्य जनता को जागृत करना तथा उन्हें पुरोहित वर्ग के अनुपस्थित दावों के विरूद्ध संगठित प्रतिरोध में खड़ा करना था। सवा सौ साल पूर्व सामाजिक विद्रोह के लिए अत्यंत पूर्व सामाजिक विद्रोह के लिए अत्यंत साहस की आवश्यकता थी, इसी में 'फूले' की महानता निहित है।

अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना के परिणामस्वरूप भारतीय समाज को पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति के सम्पर्क के माध्यम से परम्परागत मूल्यों को परखने का अवसर प्राप्त हुआ। पाश्चात्य सभ्यता के मूल्यों, यथा–आधुनिकीरण, वैज्ञानिक एवं तकनीकी दृष्टिकोण, लोकतंत्र, समानता, भौतिकवाद, मानवतावाद आदि का समाज के वैचारिक स्तर पर गहन प्रभाव पड़ा एवं मध्यम वर्ग की एक नवीन बुद्धिजीवी श्रेणी का जन्म हुआ। नवीन बुद्धिजीवी विचारधारा से प्रभावित हो समाज के निम्न वर्ग के लोगों में गतिशीलता उत्पन्न हुई और वे जाति भेद एवं वर्ण व्यवस्था की संकीर्णता के बावजूद समाज में प्रतिष्ठित हो सके।

* सहायक प्राध्यापक (समाजशास्त्र) शासकीय महाविद्यालय, ढाना, जिला–सागर (म.प्र.) भारत

उन्नीसवीं सदी में अनेक सुधारवादी आंदोलन ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन, प्रार्थना समाज, थियोसोफिकल सोसायटी के प्रयासों से सतीप्रथा, विधवा पुनर्विवाह, पर्दा प्रथा, बहुविवाह आदि अनेक सामाजिक कुप्रथाओं के निवारण हेतु शासकीय अधिनियमों का निर्माण हुआ। महिलाओं की स्थिति में आया परिवर्तन श्रीमती लक्ष्मी एन मेनन के शब्दों से व्यक्त होता है– 'फिर भी ये कहा जा सकता है कि इस काल की प्रगतिशील महिलाओं को ही यह श्रेय प्राप्त होता है कि उन्होंने रूढिवाद के गढ़ को ध्वस्त किया तथा भावी पीढ़ियों के पथको आत्माभिव्यक्ति एवं संप्राप्ति के नवीन अवसर खोलकर आलोकित किया।'

इस विकास क्रम में भारतीय स्वाधीनता संग्राम आंदोलन के अंतर्गत राष्ट्रवादियों के योगदान के संबंध डॉ0 पट्टाभिसीता रमैया का कथन स्थिति को स्पष्ट कर देता है –'प्रारंभिक कांग्रेसियों की भीरूता और भिक्षावृत्ति को उपहास की दृष्टि से देखना बडा सरल है परंतु उस समय जब भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में कोई नहीं था, उन लोगो ने जो रूख ग्रहण किया था उसके लिए हम उन्हें दोष नहीं दे सकते है। किसी भी आधुनिक इमारत की नींव में 6 फीट नीचे ईट चूना और पत्थर गडे हुए है, क्या उन पर कोई दोष लगाया जा सकता है क्योंकि वही तो हैं जिनके ऊपर सारी इमारत खड़ी हो सकी है। पहले उपनिवेशों के ढंग का स्वशासन, साम्राज्य के अंतर्गत होमरूल इसके बाद स्वराज्य और सबके ऊपर जाकर पूर्ण स्वाधीनता की मंजिल एक के बाद एक बन सकी है।

स्वाधीनता संग्राम के दौरान दलित वर्ग उत्थान एवं अस्पृश्यता निवारण के क्षेत्र में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी एवं डा. भीमराव अंबेडकर ने सराहनीय भूमिका निभाई। गांधी जी राष्ट्रीय आंदोलन में सम्पूर्ण व्यस्थता के बावजूद हरिजन उद्धार एवं दलित वर्ग के उद्धार हेतु कार्य करते रहे।

डॉ. भीमराव जी अंबेडकर युग एवं समाज की स्थापित व्यवस्था एवं वैचारिकी की अधीनता स्वीकार न करके परम्परात्मक समाज के अन्याय एवं शोषण कार्यो के विरूद्ध जीवन पर्यन्त संघर्ष करते रहे। 26 जनवरी 1950 को संविधान की मसौदा समिति के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने भारत में अन्याय एवं शोषण से रहित एक बेहतर युग एवं बेहतर समाज की आधारशिला रखी।

भारत छोड़ो आंदोलन के पश्चात् राजनीतिक घटनाएँ क्रमश: तेजी से घटती गई एवं भारत विभाजन की कीमत पर स्वाधीनता की ओर अग्रसर होता गया। 1947 में भारत विभाजन के पश्चात् देश के नवीन संविधान में दलित वर्ग उत्थान एवं अस्पृश्यता निवारण के संबंध में समुचित व्यवस्थाएं की गई। इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु संविधान के अनुच्छेद 341 एवं 342 में राजनीति, अर्थव्यवस्था, शिक्षा तथा संस्कृति के क्षेत्र में अनेक सुविधाएं प्रदान की गई है। संविधान के अनुच्छेद 15(5) में नहीं किया जायेगा। इसी उपबंध को ध्यान में रखकर उच्चतम न्यायालय ने तमिलनाडू सरकार के मेडिकल एवं इंजीनियरिंग कॉलेजों में धर्म एवं जाति के आधार पर सीट आरक्षित करने के लिए किए गए निर्णय को अवैधानिक घोषित करके राज्य सरकार के इस तर्क को मानने से इंकार कर दिया कि ऐसा हर वर्ग को सामाजिक न्याय दिलाने के उद्देश्य से किया गया है। संविधान एवं उच्चतम न्यायालय का सम्मान बनाए रखने के उद्देश्य से सरकार ने 1951 ई. में प्रथम संविधान संशोधन पारित करके यह प्रावधान कर दिया कि सरकार सामाजिक और शैक्षाणिक रूप से पिछड़े वर्गो के उत्थान के लिए भी विशेष कानून बना सकती है।

संविधान के तथाकथित प्रावधान को कार्यान्वित करने के लिए राष्ट्रपति ने 1953 ई. को 'काका साहेब कालेलकर' की अध्यक्षता में 'प्रथम पिछड़ा वर्ग आयोग' का गठन किया। इस आयोग ने 2399 जातियों को पिछड़ा वर्ग की श्रेणी में रखा। लेकिन आयोग की दोषपूर्ण कार्यप्रणाली एवं संस्तुतियों के विरोध में देश में बवन्डर मच गया एवं आरोपों–प्रत्यारोपों को दौर चल पड़ा। परिणामस्वरूप सरकार ने इस आयोग की रिपोर्ट को स्वीकार नहीं किया।

सन् 1977 में केन्द्र में सत्ता परिवर्तन के पश्चात् आरक्षण की समस्या पुन: सामाजिक एवं राजनीतिक वाद–विवाद का बिन्दु बन गई। समस्या समाधान हेतु। जनवरी 1979 को बिहार के पूर्व मुख्यमंत्री 'बिन्देश्वरी प्रसाद मंडल' की अध्यक्षता में 'द्वितीय पिछड़ा वर्ग आयोग' का गठन किया। इसमें 3,743 जातियों को पिछड़े वर्ग की श्रेणी में रखा गया है। जनता सरकार के पतन के पश्चात् कांग्रेस सरकार ने 'मण्डल आयोग' की रिपोर्ट को उपेक्षित कर दिया।

सात अगस्त 1990 को तत्कालीन प्रधानमंत्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने पिछड़े वर्गो के लिए मण्डल आयोग की रिपोर्ट पर सरकारी निर्णय की घोषणा की कि– 'सामाजिक और शैक्षाणिक रूप से पिछड़े वर्ग के लिए केन्द्रीय और सामाजिक उपक्रमों में 27 प्रतिशत पद आरक्षित रहेंगे। इस आरक्षण के विरोध में समस्त उत्तर भारत में विरोध एवं विद्रोह का ज्वालामुखी फूट पड़ा। तोड़–फोड़ की घटनाएँ अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई। आत्मदाह की घटनाएँ भी देश में घटित हुई। कुछ प्रबुद्ध युवाओं ने उच्च न्यायालय एवं सर्वोच्च न्यायालय में अपनी–अपनी याचिकाएँ दायर की। जिसके कारण आरक्षण के क्रियान्वयन पर रोक लगा दी गई।

वर्तमान समय में प्रधानमंत्री एच.डी. देवगौड़ा ने 5 जून लम्बी बहस एवं आम सहमति के बाद अपने संयुक्त कार्यक्रम की घोषणा की एवं कहा– 'सरकार विकेन्द्रीकरण जवाबदेही, समानता, सामाजिक न्याय, आर्थिक और राजनीतिक सुधार, मानवीय स्वतंत्रता के प्रति आदर और पारदर्शिता पर आधारित एक आर्दश सरकार होगी। संविधान में अनुच्छेद 25,26,27, एवं 28 के अंतर्गत प्रदत्त अधिकारों की रक्षा की जाएगी। सरकार द्वारा महिलाओं को नौकरियों, संसद व विधानसभा में एक तिहाई आरक्षण दिया जायेगा। दलित ईसाईयों के आरक्षण के साथ अनुसूचित जाति जनजाति के ऊपर अत्याचार की सुनवाई के लिए 20 विशेष अदालतें गठित की जाएंगी।

केन्द्रीय सरकार की उर्पयुक्त घोषणा के अतिरिक्त म.प्र. के मुख्यमंत्री दिग्विजय सिंह ने नवम्बर 1996 में यह घोषणा की कि महिलाओं को तीस प्रतिशत आरक्षण प्रदान किया जाएगा। समस्त प्रयासों पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि देश की भावी पीढ़ी के उन्नति एवं कल्याण हेतु मार्ग प्रशस्त हुआ है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. 'मराठों का इतिहास' – डॉ. एस.सी. मिश्रा एवं प्रताप सिंह
2. 'मराठों का इतिहास' –एस.आर.वर्मा
3.'संस्कृति के चार अध्याय'– रामधारी सिंह दिनकर
4. प्राचीन भारतीय सामाजिक एवं आर्थिक संस्थाएं – डॉ. कैलाशचंद्र जैन
5. डॉ. भीमराव अम्बेडकर के सामाजिक विचार – डॉ. रामगोपाल सिंह
6. आधुनिक भारत का इतिहास – श्री नेत्र पाण्डेय
7. आधुनिक भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास – प्रताप सिंह
8. प्रतियोगिता दर्पण अगस्त 1996.

****

Growth And Instability In Kharif Pulses Productivity In Southern Rajasthan

Rajesh Sharma *

Abstract - Kharif pulses is the most important crops after cereals in Southern Rajasthan in terms of its area coverage and contribution to total food grains production. It is grown in almost all agro-ecological regions of study region, contribution about 4.18 percent area of the total cropped level and out of the total production, 2.26 percent is contributed be the kharif production. This paper aims examine to growth and instability in kharif productivity in Southern Rajasthan. Kharif productivity between average of 1980-82 and 2010-12 of each tehsil of the Southern Rajasthan has been measured.
Keywords - Productivity, Kharif Pulses, Southern Rajasthan.

Introduction - The measurement of agricultural productivity is quite complicated and possesses many problems of definitions and approaches. In united states and in European countries, productivity of agriculture has been measured on the basis of labour and capital inputs and agricultural practices, while in India yield / unit of land has been taken as a basis of measurement, since labour is found in abundance. Each productivity measure has certain property that renders it suitable to express some phenomena that may be relevant to the knowledge of agricultural process and each has its disabilities also that render it un-suitable to explain certain phenomena.The study region has 7 districts i.e. Bhilwara, Banswara, Dungarpur, Chitorgarh, Pratapgarh, Rajsamand and Udaipur with 27 sub division, 54 tehsil according to 2011 census and covers 36, 94, 239 square km area with a population of 1, 22, 36, 014 person i.e. 14.3 percent of the total population of the state in 2011.

The main objectives of this paper are firstly to measure the growth and instability in kharif pulses productivity between average of 1980-82 and 2010-12 at tehsil level. Secondly to indentify factors which are responsible for regional imbalances in the field of kharif pulses productivity and thirdly to find out ways and means by which the spatial variation in kharif pulses productivity can be reduced and finally to suggest measures for an overall increase in productivity.

Analysis of Pulses Productivity - The productivity is measured by the tonnes per hectare of the land and is computed by using the following formula:

$$Y = \frac{\sum_{i=1}^{n} Qi}{\sum_{i=1}^{n} Ai}$$

Y = Food productivity (tonnes per hectare)
Q = Production of various food crops. (matric tonnes)
A = Area under production of various food crops.(hectare)

The following figures shows that actual changes of Kharif productivity of the state has 0.40 tonnes per hectare whereas this changes are high of 0.41 tonnes per hectare in the study region. This productivity has 0.55 tonnes per hectare in state in 2011, which have less 0.69 tonnes per hectare of the study region (Fig. 1).

Comparative studies in karif, rabi and total pulses between in state and study region

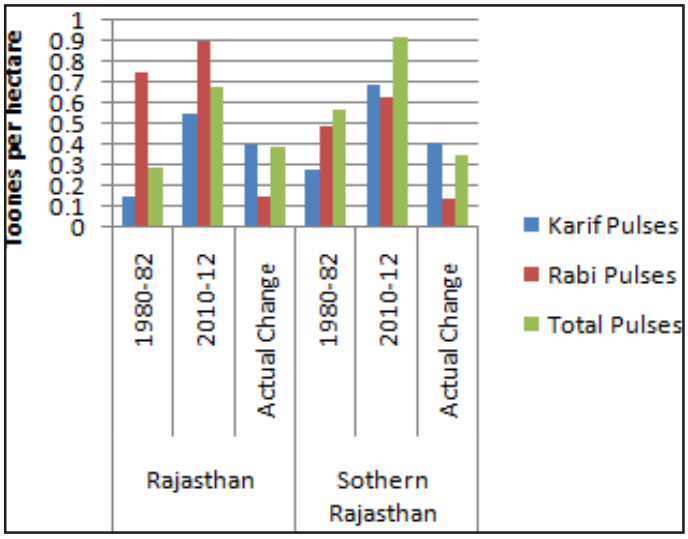

Fig. 1

Rabi pulses productivity of the state has 0.90 tonnes per hectare in 2011, whereas this productivity of study region has 0.63 tonnes per hectare and actual changes are also less of the study region compare to state's average.

The total pulses productivity of the study region are more than (0.92 tonnes per hectare) in 2011, from state's average but the actual changes of the state are high of 0.39 tonnes per hectare comper to 0.35 tonnes per hectare of study region.

Kharif pulses productivity - Kharif pulses are Urd, Moong, Arhar, Chevela etc. Grown in the study region. This pulses have been complectly depend on monsoon Rainfall. In Southern Rajasthan 4.18 percent area of the total cropped land is engaged in kharif pulses cultivation and out of the

* **Research Scholar (Geography) J.R.N. Rajasthan Vidhyapeeth University, Udaipur (Rajasthan) INDIA**

total production, 2.26 percent is contributed by the kharif production. Southern Rajasthan as a whole has kharif pulses productivity 0.28 tonnes/hect. in 1980-82, but this productivity have been increased as 0.69 tonnes/hect. in 2010-12. At tehsil level the following table shows that Kharif pulses productivity reveals more regional variation between various parts of the region.

(Table 1 & map see in next page)

Table 1 exhibits the changes in the number of tehsil in the Southern Rajasthan in 1980-82 to 2010-12. In the first category 11 tehsil have been registered less than 0.30 tonnes/ hect. productivity in 2010-12, while twenty seven tehsil belonged to this category in 1980-82, which means that sixteen tehsil have changed from this category. The next Fourteen tehsil of 0.30 to 0.45 tonnes/hect. productivity in 1980-82, show a drop of 10 tehsil in 2010-12. The increase is substantial in the next category of 0.45 to 0.60 tonnes/ hect. i.e. from 4 to 14 tehsil. The next 2 to 6 tehsil fall from 0.60 to 0.75 tonnes/hect. productivity and more than 0.75 tonnes exhibit increase in its number viz., 0 to 19 tehsil in 1980-82 to 2010-12.

It concluded that mostly tehsil have been sifted higher categories in the low categories and its mean that kharif productivity have been increased. Fig. 2**A** illustrates the tehsilwise spatial distribution of kharif productivity in 1980-82. Out of the total 47 tehsil, twenty seven tehsil recording less than 0.30 tonnes which covered 57.45 percent area to total tehsil. These tehsil are situated north and western-south parts of the region.

The fourteen tehsil belonging to 0.30 to 0.45 tonnes/ hect. are mostly located mid parts of the region. The next four tehsil as chittorgarh, Chotisadri Kapasan and Nadhwara have belonged range of 0.45 to 0.60 tonnes/hect. productivity. Remain only two tehsil as Pratapgarh and Begun have registered in to 0.60 to 0.75 tonnes/hect. but any no tehsil registered in the more than 0.75 tonnes per hect. productivity.

Fig. 2B reveals tehsil wise distribution in 2010-12 tribal dominated tehsil (11 tehsil) registered in the low range categories of less than of 0.30 tonnes/hect. in 2010-12. Jhazpur, Mandelgarh, Bijoliya and Aspur tehsil have been belonged range to 0.30 to 0.45 tonnes/hect. The next 14 tehsil occupying in the range to 0.45 to 0.60 tonnes/hect. and mostly tehsil have located in north and south parts in the study region. Arnod, Salumber, Dungarpur, Railmagra, Shahepura and Asined are covered in the 0.60 to 0.75 tonnes/ hect productivity. Remaining ninteen tehsil have been registered in the higher categories of more than 0.75 tonnes/ hect. and this tehsil are located western and mid parts in the region.

Fig. 2D illustrate by graph that it trend in the comparison with districts from 1981, 1991, 2001 and 2011. Four trend line indicate wide fluctuation in Kharif productivity as well as districts terms. Average Kharif productivity has 0.90 tonnes/ hectare in last thirty years.

Changes in Kharif pulses productivity - The kharif productivity exhibits an overall increase of 0.41 tonnes/hect during the period of 1980-82 to 2010-12. **Fig. 2C** show that thirty nine tehsil register in increased in their productivity. Whereas 8 tehsil indicate decreased during this period. The twenty seven tehsil have been minor positive changes 0.03 to 0.61 tonnes/hect. in their productivity and are scattered throughout in the study region. The next ten tehsil have been positive changed 0.61 to 1.19 tonnes/hect. productivity and are located north-western and mid parts of the region. Hurda and Udaipur tehsil have been major positive changed into 1.19 to 1.77 tonnes/hect.

The five tehsil registered decrease of the 0.03 to 0.17 tonnes/hect. and namely are Pratapgarh, Bhedeser, Banswara, Gatol and Gardhi. Remaining Nimbahera, Badisadri and Ganganagar tehsil have been decrease into 0.17 to 0.30 tonnes/hect. in the kharif productivity.

Its concluded that positive and negative change in the kharif productivity but positive changes have been more than in the tehsil. Kharif production have been increasing in the last three decades but this increase have been shown in the western parts of the region, whereas tribal dominated tehsil have less still productivity.

Suggestion and planning - The findings of the study reveal that there is have been increasing and instability in kharif productivity. It has been found that productivity has increased from 1980-82 to 2010-12. Then are certain measures which may be adopted while making efforts to reduce the regional imbalances in the level of kharif pulses productivity in Southern Rajasthan.

1. The state government will take an ambitious project of hybrid pulses seed production in Banswara-Dungarpur, the twin districts of south Rajasthan. The area so far known for the vulnerable condition of their tribal population will soon come to be recognized as the hybrid corn seed hub within a span of three year
2. Kharif pulses, the queen of cereals & the most versatile crop with wider adaptability in varied agro ecologies will have the highest genetic yield potential among the food grain crops.
3. Banswara and Dungerpur districts have favorable climate for growing pulses during Rabi season since the temperature doesn't dip beyond a certain level.

References : -

1. Ranjit Kumar and Srinivas, K. (2014): Production performance of maize in India : Approaching An inflection point, Int. Journal of Agriculture statistical Science, Vol. pp 241-248,
2. Kattarkandi, B. and Aggrawal P.K (2010) : Simulating Impacts, potential adaptation and vulnerability of maize to climate change in India, Mitigation and Adaptation Strategies for Global change, 15 pp 413-431
3. Raj, A.D. and Rathod, J.H. (2013) : Impact of front time Demonstrations on the field of pulses, Int. Journal of Scientific and Research Publications, Vol.3, pp 1-9
4. Kumar, Anjani and Jain, Rajni (2013) : Growth and Instability in Agriculture Productivity : A District Level Analysis, Journal. Agriculture Economic Research Review, Vol. 26, pp 31-42

Table 1 : Southern Rajasthan Kharif Pulses

Categories (Tonnes/ Hectare)	**1980-82**		**2010-12**		**Changes**	
	No. of Tehsil	**% to total Tehsil**	**No. of Tehsil**	**% to total Tehsil**	**Categories**(Tonnes /Hectare)	**No. of Tehsil**
<0.30	27	57.45	11	12037	0.03-0.61*	27
0.30-0.45	14	29.79	4	7.41	0.61-1.19*	10
0.45-0.60	4	8.51	14	25.92	1.19-1.77*	2
0.60-0.75	2	4.25	6	11.11	0.03-0.17**	5
>0.75	0	0	19	35.19	0.17-0.38**	3
Total	**47**	**100**	**54**	**100**	**Total**	**47**

*Source : Computed by data *positive **negative changes*

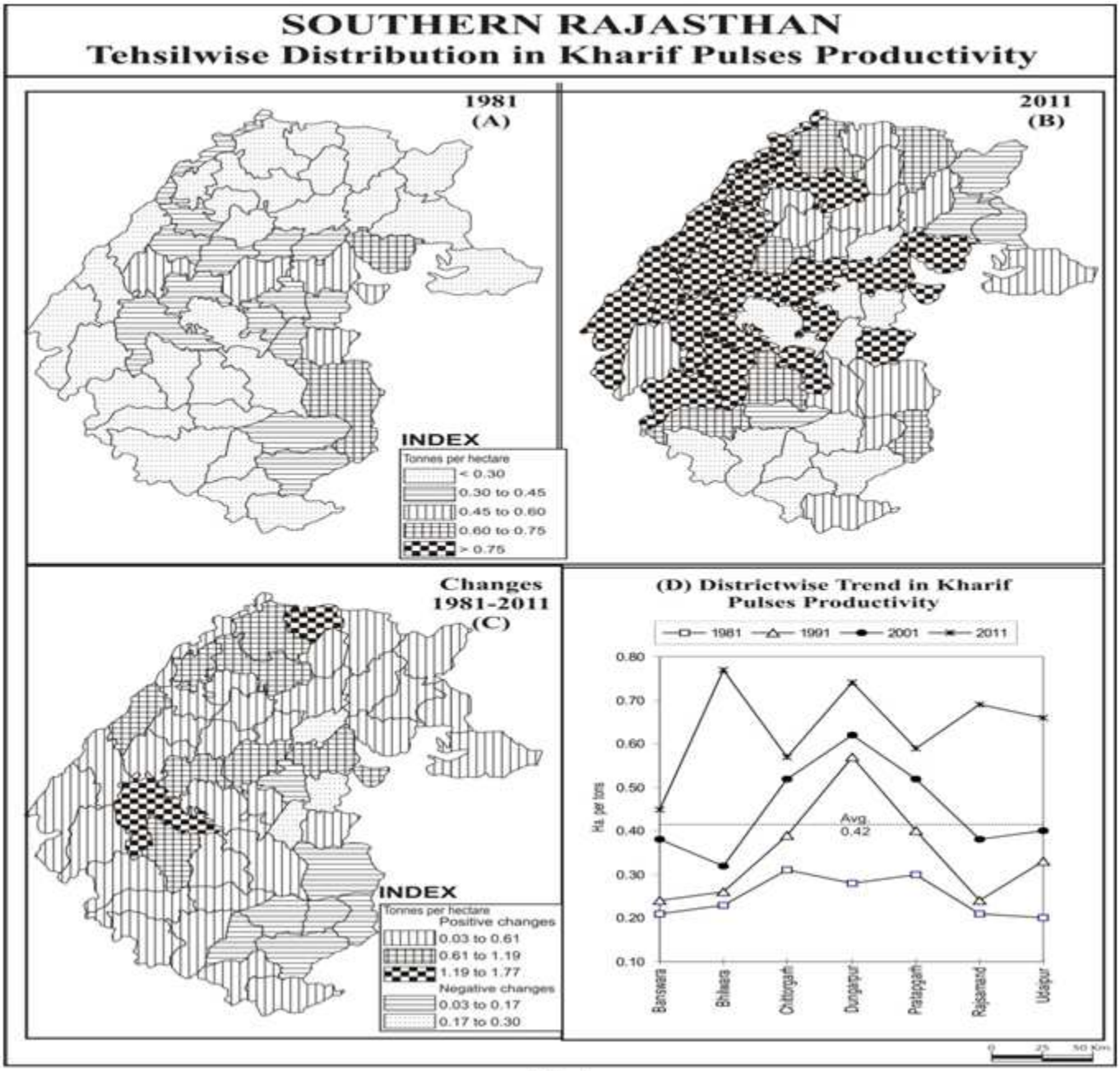

Fig. 1

****

Impact Of Irrigation Project On Agriculture Development In Chittorgarh

Rajesh Sharma *

Introduction - Chittorgarh district is located between 23° 30' and 25°13" latitude and 74°21" and 75°49" longitude covering an area of 10,856 Sq. Km. The districtr is part of Udaipur Division.

Administratively the district is divided into ten tehsils- Barisadri, Begun, Bhadesar, Chittorgarh, Dungla, Gangrar, Kapasan, Nimbahera, Rashmi, Rawatbhata, Bhupal Sagar etc. Total number of villages in the district is 2415 and it also has 8 urban towns. Rural and Urban population of the district is 15.15 lakh and 2.89 lakh respectively.

Importance - Irrigation plays an important role in the development of agriculture. Lack of irrigational facilities retards the adoption of new technology and usage of modern inputs in the agriculture sector for any farmer and in any particular region. It is found that in areas where H.Y.V. have been developed and found suited to agro-climatic conditions, better yield performance has been governed mainly by the adequacy and assurance of water supplies. On the whole development aspects of irrigation are :-

1. To make up for the soil moisture deficit.
2. To ensure a proper and sustained growth of crops.
3. To make harvest safe.
4. To Colonies the cultivable wasteland for horizontal expansion of cultivation.
5. To increase multiplicity in cropping.
6. To improve the level of agricultural productivity by adopting modern farm technology.
7. To lessen the regional in equalities in agricultural productivity.

Farming without irrigation is very limited if the rainfall decreases to less than 30 cm. Agriculture becomes impossible without irrigation. Important irrigation projects of Chittorgarh are Gambri (Nimbahera), Bankiy and Bassi (Chittorgarh), Wagen (Dungla), Dorai and Orari (Begun), Bhopal Sagar (Kapasan) etc.

Irrigation project in Chittorgarh

Data and Methodology - The basic data for this study are taken from statistical abstracts of Rajasthan and district census hand books. Various statistical techniques are applied to highlight the results. The effects on agricultural development of irrigation projects of this study are have been measured by some indicators. Agricultural development depends on the following agriculture indicators.

R_1 – Irrigation extent :

$$= \frac{\text{Gross Irrigated}}{\text{Net Irrigated area}} \times 100$$

Irrigation extent of this district is 22.55 hectare per 100 hectare in 1991, which have been increased 47 hectare per 100 hectare according to 2010. The highest irrigation extended of Bagu and Bedeser Tehsils. These tehsils included in Ruparal and Bugda irrigation project from the year in 2002.

Irrigation extend Rasmi and Kapsan Tehsils have been less then measure, which have been lack of irrigation project.

The another agriculture indicator is irrigation Intensity.

R_2= Irrigation intensity :

$$= \frac{\text{Gross Irrigated}}{\text{Net Irrigated area}} \times 100$$

In 1991 irrigation intensity of this region is 102 percent hectare net irrigated area per 100 hectare gross irrigated area.

In 2010, irrigation intensity of this region is 115 percent hectare compare to 1991. So, this growth is affected by irrigation project.

The next agricultural indicator is number of pums + Oil engines per 1000 hectare of gross irrigated area. In this study region, the numbers of pump + Oil engines is 65 per 1000

* Research Scholar (Geography) J.R.N. Rajasthan Vidhyapeeth University, Udaipur (Rajasthan) INDIA

hectare of gross irrigated area, which is as high as 1991 numbers of pums + oil engines.

The next agricultural indicator is productivity level. Agricultural productivity in 2010. In Chittorgarh district, Agricultural productivity is 1.9 tonnes per hectare, which is as high as 1991 productivity. Table 1 reveals the tehsils wise productivity variation between in 1991 and 2010. The ranking coefficient values of very low, low, medium, High and Very High productivity have been shown in figure also.

Chittorgarh : Agricultural Productivity Index (In Tonnes/ Hect. 1991 and 2010)

Productivity Tonnes / Hectare	1991		2010	
	No. of Tehsils	% of Total	No. of Tehsil	% of Total
Very Low < 10	4	33.33	2	16.66
Low 1.0-1.25	3	25	2	16.66
Medium 1.25-1.5	2	16.66	1	8.33
High 1.50-2.0	3	25.0	3	25
Very High > 2.0	0	0	4	33.30
Total	12	100	12	100

Very Low Productivity - During this period, the table show that out of 12 tehsils, 2 tehsils have recorded in 2010 but compare to 1991 4 tehsils registered in this very low categories. These tehsils have been situated lack of irrigation project.

Medium Productivity - In this category the value of included that 1.25 to 1.50 tonnes per hectare. In 1991, 2 tehsils were recorded at this level. But only one tehsil registered in this.

High and very high Productivity - Remaining seven tehsils are having high and very high productivity range between 1.50 – 2.00 tonnes but Chittorgarh and Rawatbhata has the highest productivity i.e. 2.10 tonnes per hectare.

Mostly, these tehsils are situated in Eastern Parts of district. It reveals that agriculture development in this region is largely dependent on the irrigation project and intensity.

Impact of irrigation project of agriculture development in Chittorgarh measured following indicators.

Agriculture Indicators - Compare 1991 to 2010

S.	Agriculture Development Indicators	1991	2005
1	Irrigation extent (in percent)	22.55	47
2	Irrigation intensity (in Percent)	102	115
3	Productive Level (Per Tonnes)	0.5	1.9

Source : District statistical outline

Conclusion - it is concluded that irrigation project of the study region have been impact on agriculture development compare to last decade. Irrigation facilities and agriculture development have been depend out one to another.

References:-

1. Personal Survey.

****

मुरार विकास खण्ड की खरीफ फसलों का मूल्यांकन

कंचन दुबे * डॉ. डी.पी. सिंह **

प्रस्तावना – मुरार विकासखण्ड ग्वालियर जिले के गिर्द तहसील के अंतर्गत स्थित है। इसका विस्तार 26°04 से 26°21' उत्तरी अक्षांश तथा 78°06' से 78°38' पूर्वी देशान्तर है। ग्रामीण पत्रकों के अनुसार इसका भौगोलिक क्षेत्रफल 857 वर्ग कि.मी. है। इसके अंतर्गत 169 आबाद ग्राम, 78 ग्राम पंचायतें तथा 1 जनपद पंचायत है। यहाँ का न्यूनतम तापमान 0.64°C तथा अधिकतम तापमान 42.6° C है। मुरार विकासखण्ड की कुल जनसंख्या 3,03,994 है।

भारत एक कृषि प्रधान देश है अति प्राचीन काल से ही यहॉ कृषि का विशेष महत्व रहा है। वर्तमान में भी देश की लगभग 68 प्रतिशत जनसंख्या अपनी आजीविका के लिये प्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था का मूल आधार है। कृषिगत तथ्यों यथा भूमि उपयोग, कृषि भूमि, सिंचाई, विविध फसलों के उत्पादन, फसल उत्पादन के इनपुटस, से संबंधित तथ्यों के मूल्यांकन हेतु शोधार्थी ने अपने शोध का विषय **'मुरार विकासखण्ड की खरीफ फसलों का मूल्यांकन '** चुना है।

खरीफ फसले वर्षाकालीन फसले है जो मई–जुलाई तक बोई जाती है तथा अक्टूबर में काटी जाती है। खरीफ फसलो के अंतर्गत चावल, ज्वार, बाजरा, मक्का, अण्डी, तिल, मूंगफली, कपास जूट, सन, तम्बाकू आदि हैं। मुरार विकासखण्ड में खरीफ फसलो के अंतर्गत चावल, ज्वार, बाजरा, तिल एंव मूँगफली का उत्पादन किया जाता है

शोध प्रविधि एवं यंत्र – ग्वालियर जिले के मुरार विकासखण्ड की खरीफ फसलों के मूल्यांकन हेतु शोधार्थी द्वारा मुरार विकासखण्ड की कृषिगत जानकारी, भूमि उपयोग, खरीफ फसलों के अंतर्गत क्षेत्र, खरीफ फसलों के अंतर्गत क्षेत्रफल, खरीफ फसलों की प्रति हैक्टर औसत उपज एवं उत्पादन, सिंचाई के साधन एवं शुद्ध सिंचित क्षेत्र, उन्नत कृषि के अंतर्गत क्षेत्र एवं बीज, खाद्य पौध तथा दवा आदि की मात्रा, कृषि–उपकरण एवं यंत्र आदि से संबंधित जानकारी प्राप्त करने हेतु प्रश्नावली निर्मित करके प्राप्त सूचनाओं, प्राथमिक आंकड़ों तथा द्वैतीयक आंकड़ों का विश्लेषण करके निष्कर्षो को प्राप्त करने का प्रयास किया गया है।

तालिका क्रमांक – 1 (देखे अन्तिम पृष्ठ पर)

उपर्युक्त तालिका का अवलोकन करके पता चलता है कि मुरार विकास खण्ड में सन् 2009 से 2012 तक की अवधि में वन क्षेत्रफल, कृषि के लिए अनुपलब्ध भूमि तथा अन्य अकृष्य भूमि का क्षेत्र अपरिवर्तनीय रहा है। कृषि योग्य बंजर भूमि के क्षेत्र में वर्ष 2011–12 में पूर्व के वर्षो की तुलना में कमी व पड़ती भूमि के क्षेत्र में वृद्धि पाई गई। शुद्ध बोये गये क्षेत्रफल और द्धि फसली के संयुक्त क्षेत्रफल में क्रमश: कमी पाई गई।

ग्राफ क्रमांक – 1 (देखे अन्तिम पृष्ठ पर)

तालिका क्रमांक – 2 खरीफ फसल–क्षेत्र – मुरार विकास खण्ड (ग्वालियर) (30 जून की स्थिति)

कृषि एवं सिंचाई क्षेत्र (हेक्टेर में)

वर्ष	खरीफ फसल क्षेत्र				
	धान	ज्वार	बाजरा	तिल	मूंगफली
2009–10	648	2441	3760	2416	01
2010–11	843	2293	2873	2322	02
2011–12	1370	1888	3626	2236	01

स्त्रोत – आयुक्त, भू–अभिलेख ग्वालियर

उपरोक्त तालिका क्रमांक 2 में मुरार विकास खण्ड की खरीफ फसलों के अंतर्गत 2009 से 2012 तक कृषि एवं सिंचाई का क्षेत्र प्रदर्शित किया गया है। तालिका से स्पष्ट है कि वर्ष 2009 से 2012 तक धान की कृषि एंव सिंचाई के क्षेत्र में उत्तरोत्तर वृद्धि पाई गई जबकि ज्वार एंव तिल की कृषि एंव सिंचाई के क्षेत्र में 2009 से 2012 तक क्रमश: कमी पाई गई। वर्ष 2010–11 में बाजरे की कृषि एवं सिंचाई का क्षेत्र न्यूनतम तथा मूंगफली का क्षेत्र अधिकतम पाया गया। धान की कृषि एवं सिंचित क्षेत्र संतोषजनक हैं।

ग्राफ क्रमांक – 2 (देखे अन्तिम पृष्ठ पर)

तालिका क्रमांक – 3

खाद्य फसलों के अंतर्गत क्षेत्रफल मुरार विकास–खण्ड ग्वालियर (30 जून की स्थिति)

कृषि एवं सिंचाई(हैक्टर में)

वर्ष	खाद्य फसलें	कुल
2009–10	7359	10618
2010–11	6470	9577
2011–12	6011	9017

स्त्रोत – आयुक्त, भू–अभिलेख ग्वालियर

उपरोक्त तालिका क्रमांक 3 में खरीफ फसलों के अंतर्गत खाद्य फसलों की कृषि एवं सिंचाई का क्षेत्रफल प्रदर्शित किया गया है। तालिका दर्शाती है कि वर्ष 2009 से 2012 तक खाद्य फसलों का क्षेत्रफल क्रमश: कम होता गया है जो चिंताजनक है।

ग्राफ क्रमांक – 3 (देखे अन्तिम पृष्ठ पर)

तालिका क्रमांक – 4 (देखे अन्तिम पृष्ठ पर)

तालिका क्रमांक 4 में मुरार विकास खण्ड हेतु सिंचाई के साधन एंव शुद्ध सिंचित क्षेत्र प्रदर्शित किया गया है। तालिका दर्शाती है कि 2009–2012 तक नहरों द्वारा सर्वाधिक सिंचित क्षेत्र 1,298 हैक्टेयर 2010–2011 में पाया गया। नलकूप द्वारा सर्वाधिक सिंचित क्षेत्र 18,272 हैक्टेयर 2011–

* शोधार्थी (भूगोल) शा.क.रा.क. स्नातकोत्तर (स्वशासी) महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.) भारत
** सहायक प्राध्यापक (भूगोल) शा.क.रा.क. स्नातकोत्तर (स्वशासी) महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.) भारत

12 में, कुऐं द्वारा सर्वाधिक सिंचित क्षेत्र 1,531 हैक्टेयर 2011-12 में, तालाब द्वारा सर्वाधिक सिंचित क्षेत्र 180 हैक्टेयर 2010-11 में पाया गया। तालिका दर्शाती है कि वर्ष 2011-12 में गत दो वर्षो की तुलना में सकल सिंचित क्षेत्र एंव शुद्ध सिंचित क्षेत्र का शुद्ध बोये गये क्षेत्र से प्रतिशत दोनों ही अधिक हैं अर्थात् स्थिति संतोषजनक है। (ग्राफ क्रमांक 4)

ग्राफ क्रमांक 4 अ (देखे अन्तिम पृष्ठ पर)

ग्राफ क्रमांक 4 ब (देखे अन्तिम पृष्ठ पर)

तालिका क्रमांक - 5 (देखे अन्तिम पृष्ठ पर)

तालिका क्रमांक 5 में उन्नत कृषि के अंतर्गत उन्नत बीज, रासायनिक खाद, पौधा संरक्षण, कीटनाशक तरल दवाये एवं बीजोपचार का क्षेत्र एंव मात्रा प्रदर्शित की गयी है। तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि उन्नत बीज, रसायनिक खादों के उपयोग, पौध संरक्षण, कीटनाशक दवाओं एवं बीजोपचार के क्षे एवं मात्रा में क्रमश: उत्तरोत्तर वृद्धि परिलक्षित हुई है।

ग्राफ क्रमांक - 5 (देखे अन्तिम पृष्ठ पर)

तालिका क्रमांक - 6 कृषि उपकरण तथा यंत्र - मुरार विकास खण्ड (ग्वालियर) (30 जून की स्थिति)

कृषि एवं सिंचाई संख्या

वर्ष	हल		बेलगाडी	पंप सिंचाई हेतु		ट्रैक्टर्स
	लकडी	लोहा		तेल	विद्युत	
2009-10	329	182	117	726	4153	1305
2010-11	329	182	117	726	4173	1309
2011-12	329	182	117	726	4192	1316

स्त्रोत - आयुक्त, भू-अभिलेख ग्वालियर

उपरोक्त तालिका क्रमांक 6 में मुरार विकास-खण्ड में 2009-10 से 2011-12 तक के कृषि उपकरण एंव यंत्रों की स्थिति प्रदर्शित की गई है। तालिका दर्शाती है कि कृषि उपकरण एवं यंत्रों के अंतर्गत हल, बैलगाड़ी का उपयोग समान रूप से होता है लेकिन ट्रेक्टर्स उपकरण एंव सिंचाई हेतु विद्युत पंपों की संख्या में वृद्धि हुई है।

ग्राफ क्रमांक - 6 (देखे अन्तिम पृष्ठ पर)

तालिका क्रमांक - 7 (देखे अन्तिम पृष्ठ पर)

तालिका क्रमांक 7 में वर्ष 1990 से 2005 तक के आकार कृषि जोतों की संख्या (कृषि संगणना) प्रदर्शित की गई है। तालिका दर्शाती है कि वर्ष 2000 में सीमांत कृषकों एंव अर्द्ध मध्यम कृषकों के कृषि जोतों की संख्या एवं क्षेत्रफल सर्वाधिक है किन्तु लघु कृषकों के कृषि जोतों की संख्या 2005 में सर्वाधिक होते हुये भी क्षेत्रफल कम है। वृहद कृषक की संख्या एंव कृषि सिंचाई का क्षेत्रफल 1990 में सर्वाधिक है उसके पश्चात् दोनों में ही निरन्तर गिरावट आई है। तालिका दर्शाती है कि वर्ष 2000 में कुल कृषकों के कृषि जोतों की संख्या एंव कृषि व सिंचाई का क्षेत्रफल सर्वाधिक पाया गया।

ग्राफ क्रमांक - 7 (देखे अन्तिम पृष्ठ पर)

निष्कर्ष - प्रस्तुत सर्वेक्षण प्रतिवेदन में मुरार विकासखण्ड की खरीफ फसलों का मूल्यांकन किया गया है जिससे निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुये हैं -

- वर्ष 2009-10 से 2011-12 तक मुरार विकासखण्ड के भौगोलिक क्षेत्रफल, वन क्षेत्रफल, कृषि के लिये अनुपलब्ध भूमि एंव अन्य कृषि भूमि के लिये अनुपलब्ध भूमि एक समान रही किंतु कृषि एंव सिंचाई के क्षेत्रफल में निरन्तर कमी आई है। अत: बंजर भूमि का प्रबंधन करके एवं उसमें सुधार करके पड़ती भूमि के क्षेत्र में वृद्धि हुई है जो भविष्य में कृष्य भूमि हेतु उपलब्ध हो सकेगी। शुद्ध बोये गये क्षेत्रफल तथा द्विफसली क्षेत्र के भूमि उपयोग में परिवर्तन से इन भूमियों के क्षेत्र में कमी परिलक्षित हुई है।
- मुरार विकास-खण्ड में खरीफ फसलों के अंतर्गत धान, ज्वार, तिल व मूंगफली फसलों की पैदावर की जाती है। जिसमें वर्ष 2009-10 से 2011-12 तक धान की कृषि एवं सिंचाई के क्षेत्र में उत्तरोत्तर वृद्धि आई है जो फसलों के समर्थन मूल्य में वृद्धि तथा कृषकों को आय अनुसार तात्कालिक बदले फसल प्रतिरूप को प्रदर्शित करता है। तिल एवं ज्वार के क्षेत्र में कमी एवं बाजरे की कृषि एवं सिंचाई की कमी इन फसलों से आय कम होने तथा बदलते वर्षा प्रतिरूप की दशाओं को इंगित करती है।
- मुरार विकास-खण्ड में खाद्य फसलों की कृषि एवं सिंचाई के क्षेत्रफल में कमी चिंताजनक है। अत: जिला प्रशासन, राज्य शासन तथा कृषि विभाग द्वारा विविध योजनाओं द्वारा बंजर एवं अकृश्य भूमि, पड़ती भूमि का सुधार एवं प्रबंधन करके कृष्य भूमि वृद्धि हेतु प्रयास किये जाने आवश्यक है जिससे कि खाद्य फसलों के उत्पादक में वृद्धि हो सकेगी।
- मुरार विकास खण्ड में सिंचाई के साधनों में 1 नहर, 1799 नलकूप, 3573 कुएँ एंव 1 तालाब सम्मिलित हैं। वर्षा के जल के अतिरिक्त इन साधनों का प्रयोग किया जाता है। कृषि एंव सिंचाई का सर्वाधिक सिंचित क्षेत्र नहर व तालाब द्वारा वर्ष 2010-11 तथा नलकूप एंव कुओं द्वारा वर्ष 2011-12 में पाया गया। वर्ष 2011-12 में गत दो वर्षो की तुलना में सकल सिंचित क्षेत्र एंव शुद्ध सिंचित क्षेत्र का शुद्ध बोये गये क्षेत्र से प्रतिशत दोनों ही अधिक हैं। अत: स्थिति संतोषजनक है। मुरार विकासखण्ड में सिंचित क्षेत्र में वृद्धि हेतु वैज्ञानिक विधियों का उपयोग करके सिंचाई साधनों तथा संचित क्षेत्र में वृद्धि के नियोजन हेतु कार्य किये जाने की आवश्यकता है।
- मुरार विकासखण्ड में उन्नत कृषि के अंतर्गत उन्नत बीज, रासायनिक खाद, तरल दवा की मात्रा, बीजोपचार आदि के क्षेत्र एंव मात्रा दोनों में वृद्धि देखी गई है। इस प्रकार साधनों के उपयोग में उन्नत कृषि उपलब्धियाँ सराहनीय हैं। अत: स्पष्ट है कि विकासखण्ड के कृषक वैज्ञानिक एवं उन्नत कृषि विधियों एवं पद्यतियों का उपयोग कर कृषि विकास की कड़ी में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर रहा है।
- विकास खण्ड में स्पष्ट है कि 2009 से 2012 तक कृषि उपकरणों तथा यंत्रों में पारम्परिक यंत्रों का उपयोग समान रहा है जबकि वैज्ञानिक कृषि उपकरणों के उपयोग की वृद्धि विकास खण्ड में वैज्ञानिक खेती के विकास की ओर बढ़ रही है।
- वर्ष 2009 में कृषि जोतों की संख्या कृषि व सिंचाई का क्षेत्रफल सर्वाधिक पाया गया। यद्यपि 1990 की तुलना में आगामी वर्षो में वृहद कृषकों (10 हेक्टर से अधिक) के कृषि जोतों की संख्या एंव कृषि व सिंचाई के क्षेत्रफल में कमी आई है जो विकासखण्ड में जनसंख्या वृद्धि के प्रभाव को स्पष्ट करती है। कुछ कृषकों द्वारा कृषि के अतिरिक्त अन्य व्यवसाय अपनाने की ओर संकेत करती है।

सुझाव - मुरार विकासखण्ड में उत्पादित खरीफ फसलों कें मूल्यांकन के पश्चात् सर्वेक्षण प्रतिवेदन प्रस्तुतकर्ता द्वारा निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत हैं -

- कृषि एंव सिंचाई के क्षेत्रफल में निरन्तर कमी को भूमि का समुचित प्रबधंन एवं नियोजन करके क्षेत्रफल में वृद्धि के प्रयास किये जाने चाहिए। इसमें लघु एवं दीर्घकालिक उपायों द्वारा बंजर पड़ती एवं अन्य

अनुपयोगी भूमियों को उपयोगी भूमियों में परिवर्तन के त्वरित उपाय किये जाने आवश्यक हैं।

- तिल एंव ज्वार की कृषि एवं सिंचाई के क्षेत्र में वर्ष 2009-10 से निरन्तर गिरावट को रोकने तथा अन्य वाणिज्यिक एवं व्यवसायिक फसलों के उगाने हेतु कृषकों को समुचित एवं उपयोगी जानकारी तथा प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।
- कृषि एंव सिंचाई हेतु यंत्र एंव उपकरणों की किस्म एंव मात्रा में बढ़ौत्री की आवश्यकता है। यंत्रों, खादों, उन्नत बीजों तथा अन्य वैज्ञानिक साधनों के क्रय में कृषिकों को सब्सिडी दी जाना चाहिए और आवश्यकतानुसार कम ब्याज पर ऋण उपलब्ध कराना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. जिला सांख्यिकीय पुस्तिका 2009 से 12 तक, सांख्यिकीय कार्यालय मोती महल ग्वालियर।
2. Agricultural geography: Majid Hussain Rawat (2006) Publication Jaipur, Rajasthan.
3. R.B. mandal (1982): Land utilization theory and practices. Cocnept Publishing Company,New Delhi - 15
4. डॉ. बी.एल. शर्मा (1999) : मृदार विज्ञान, वसुंधरा प्रकाशन, गोरखपुर (उ.प्र.)।
5. एस.एन.राम एण्ड सुनील कुमार (2001): ऊसर भूमि में वन चारागाह पद्यति (एन.आर.सी.ए.एफ., झांसी), पेज 136-142।
6. Jain Chandra Kumar (1983): Patterns of agricultural development in Madhya Pradesh. A geopgrahicla analysis publication, Ph.D. Thesis, Dr. H.S. Gaur University, Sagar (M.P.).
7. P.K. Gupta (2007): A handbook of soil, fertilizer and manure agrobios (India), Jodhpur (Rajasthan)
8. कुशवाह रामभुवन सिंह (2007): मध्यप्रदेश आज और कल (2007)।

तालिका क्रमांक - 1
भूमि-उपयोग मुरार विकास खण्ड ग्वालियर(30 जून की स्थिति)

कृषि एवं सिंचाई(हैक्टर में)

वर्ष	भौगोलिक क्षेत्रफल	वन क्षेत्रफल	कृषि के लिये जो भूमि उपलब्ध नहीं	अन्य अकृषि भूमि (पडती शामिल नही)	कृषि योग्य बंजर भूमि	पड़ती भूमि	शुद्ध बोया गया क्षेत्रफल	द्विफसली	कुल क्षेत्रफल (कॉलम 7+8)
2009-10	85794	15527	14632	3581	3866	1730	46458	6142	52600
2010-11	85794	15527	14632	3591	3928	1151	46965	5047	52012
2011-12	85794	15527	14632	3591	3793	2008	46243	4713	50956

स्त्रोत - आयुक्त, भू-अभिलेख ग्वालियर

ग्राफ क्रमांक - 1 भूमि उपयोग (30 जून की स्थिति) (देखे अन्तिम पृष्ठ पर)

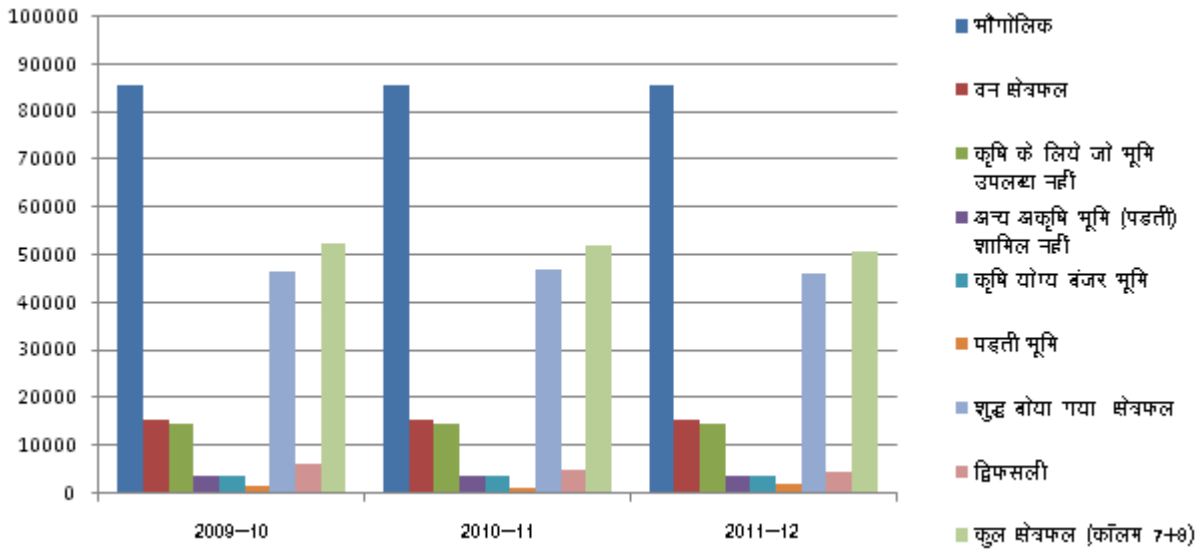

ग्राफ क्रमांक – 2 खरीफ फसल–क्षेत्र – मुरार विकास खण्ड (ग्वालियर) (30 जून की स्थिति)

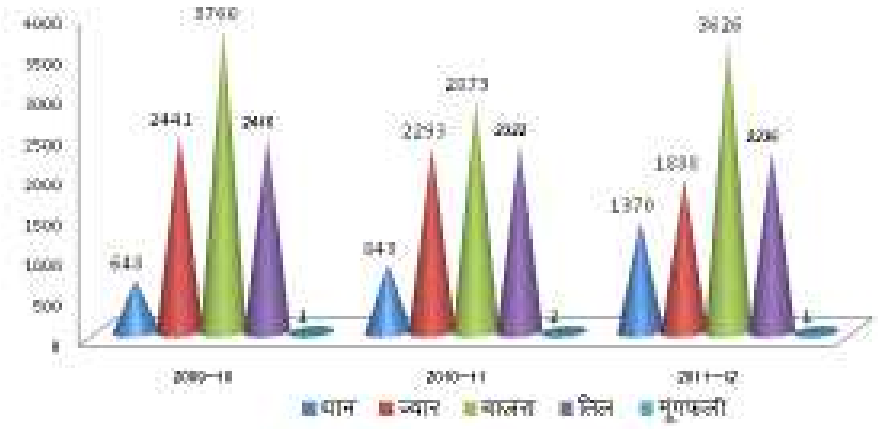

ग्राफ क्रमांक – 3 खाद्य फसलों के अंतर्गत क्षेत्रफल मुरार विकास–खण्ड ग्वालियर

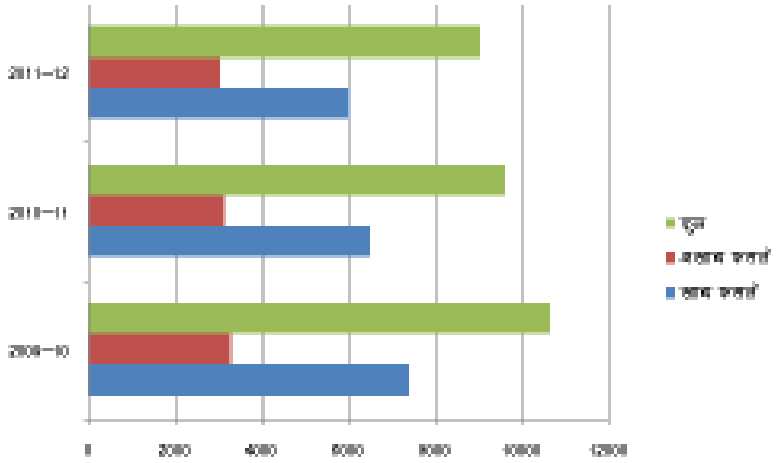

तालिका क्रमांक – 4

सिंचाई साधन एवं शुद्ध सिंचित क्षेत्र – मुरार विकास खण्ड (ग्वालियर) (30 जून की स्थिति)

सिंचाई क्षेत्र (हेक्टेर में)

वर्ष	नहरें शासकीय/निजी		नलकूप		कुएं		तालाब		अन्य स्त्रोतो से सिंचित क्षेत्र	समस्त स्त्रोतो से शुद्ध सिंचित क्षेत्र	एक बार से अधिक सिंचित क्षेत्र	सकल सिंचित क्षेत्र	शुद्ध सिंचित क्षेत्र का शुद्ध बोये क्षेत्र से प्रतिशत
	संख्या	सिंचित क्षेत्र	संख्या	सिंचित क्षेत्र	संख्या	सिंचित क्षेत्र	संख्या	सिंचित क्षेत्र					
2009–10	01	808	1799	18670	3573	857	01	160	69	20584	1051	21641	44.31
2010–11	01	1298	1799	16518	3573	1212	01	180	326	19534	1082	20616	41.59
2011–12	00	1261	1799	18272	3573	1531	01	160	274	21498	2034	23532	46.49

स्त्रोत – आयुक्त, भू–अभिलेख ग्वालियर

ग्राफ क्रमांक 4 अ सिंचाई साधन – मुरार विकास खण्ड (ग्वालियर) (30 जून की स्थिति)

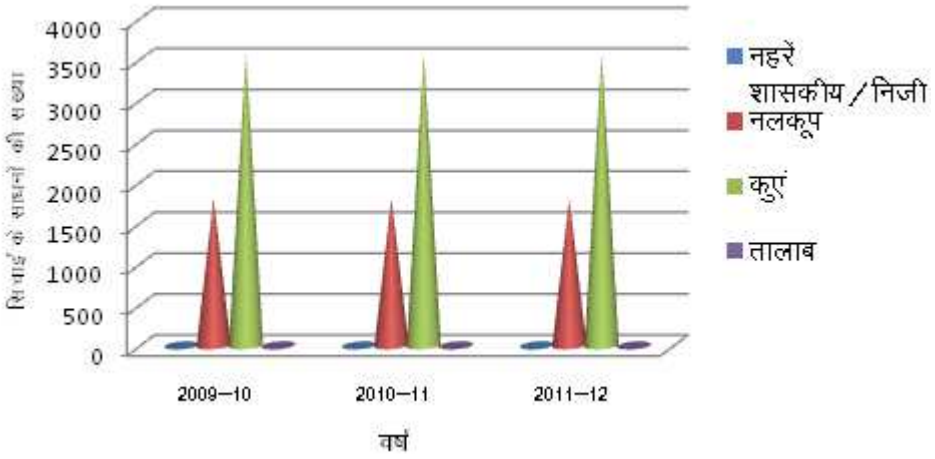

ग्राफ क्रमांक 4 ब शुद्ध सिंचित क्षेत्र – मुरार विकास खण्ड (ग्वालियर) (30 जून की स्थिति)

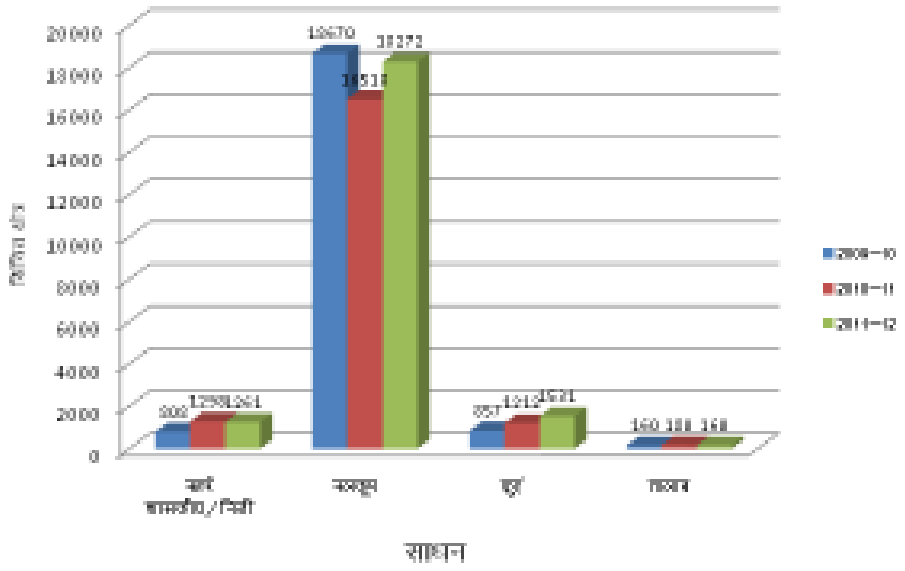

तालिका क्रमांक – 5

उन्नत कृषि के साधन एवं मात्रा – मुरार विकास खण्ड (ग्वालियर) (30 जून की स्थिति)

कृषि एवं सिंचाई(हेक्टर/मी.टन में)

वर्ष	उन्नत बीज		रासायनिक खाद		पौध संरक्षण		तरल दवा	बीजोपचार	
	क्षेत्र	मात्रा	क्षेत्र	मात्रा	क्षेत्र	मात्रा	मात्रा लीटर	क्षेत्र	मात्रा
2009–10	2960	1028.4	56576	9680	3000	2.0	700	12000	1.0
2010–11	8373	439.4	65254	11160	9120	6.2	825	35020	2.5
2011–12	60086	349.3	60086	9267	9120	4.0	00*	18000	4.0

स्त्रोत – आयुक्त, भू–अभिलेख ग्वालियर ; अनुपलब्ध

ग्राफ क्रमांक – 5 उन्नत कृषि के साधन क्षेत्र – मुरार विकास खण्ड (ग्वालियर) (30 जून की स्थिति)

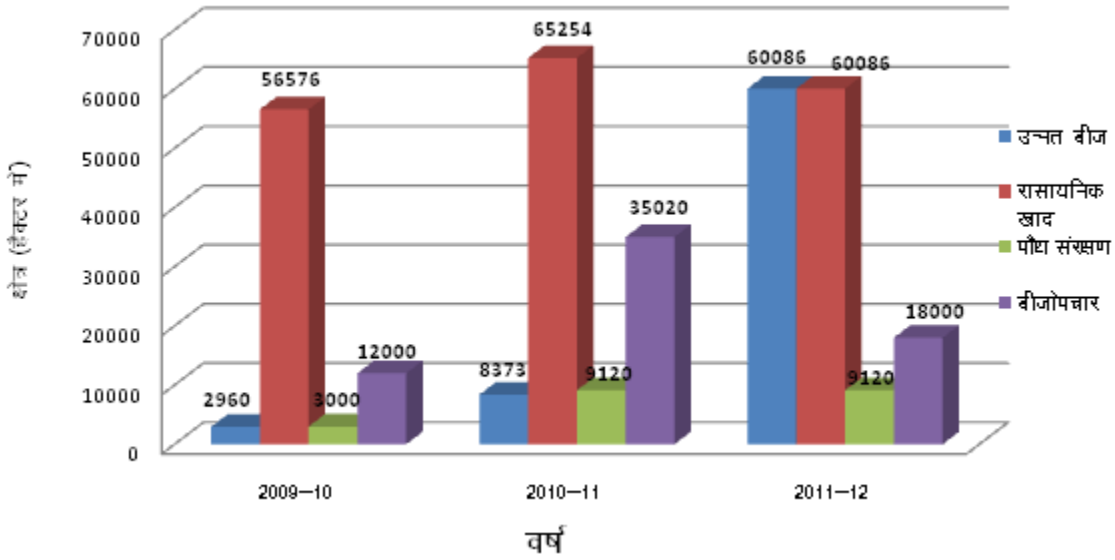

ग्राफ क्रमांक – 6 कृषि उपकरण तथा यंत्र – मुरार विकास खण्ड (ग्वालियर) (30 जून की स्थिति)

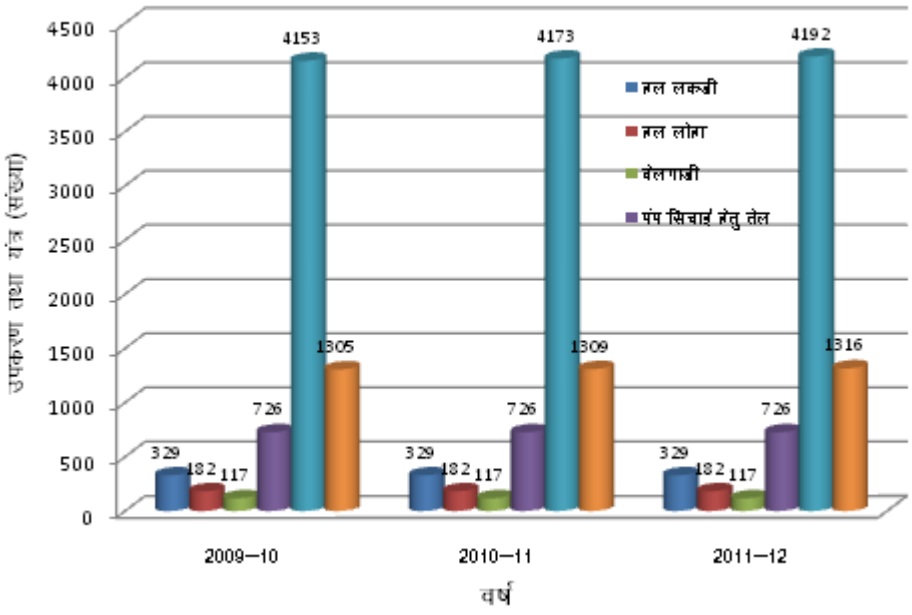

तालिका क्रमांक – 7

कृषि जोतों का आकार (कृषि संगणना) मुरार विकास खण्ड (ग्वालियर) (30 जून की स्थिति)

कृषि क्षेत्र (हैक्टर में)

वर्ष	सीमान्त कृषक (एक हेक्टर से कम)		लघु कुषक (एक हेक्टर से अधिक तथा दो से कम)		अर्द्ध माध्यम (दो हेक्टर से अधिक तथा चार से कम)		मध्यम कृषक (4 से अधिक 10 हेक्टर से कम)		वृहद कृषक (10 हेक्टर से अधिक)		कुल	
	संख्या	क्षेत्रफल	संख्या	क्षेत्रफल	संख्या	क्षेत्रफल	संख्या	क्षेत्रफल	संख्या	क्षेत्रफल	संख्या	क्षेत्रफल
1990	34451	17178	26156	37790	22368	63150	16738	100560	3875	64226	103588	282904
1995	35136	17426	25073	37132	19469	55567	12598	74765	2294	39077	94570	223967
2000	95662	47686	53868	81896	40668	111576	22726	133740	3734	61914	216658	436812
2005	58730	30680	91546	77132	23542	53991	31673	129505	2093	36364	207584	327672

स्त्रोत – आयुक्त, भू–अभिलेख ग्वालियर

ग्राफ क्रमांक – 7 कृषि जोतों का आकार (कृषि संगणना) – मुरार विकास खण्ड (ग्वालियर) (30 जून की स्थिति)

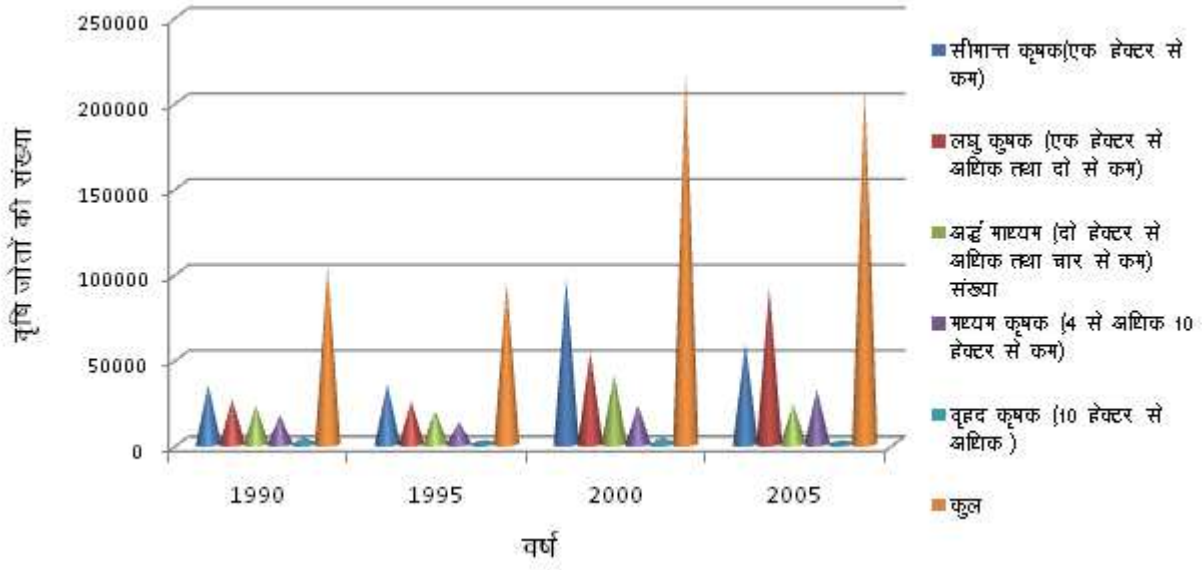

****

कोरबा जिले में भूमि उपयोग प्रतिरूप का विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. काजल मोइत्रा *

शोध सारांश – भूमि किसी क्षेत्र के भौगोलिक क्षेत्र के सर्वांगीण विकास का एक सम्पूर्ण विवरण है। कृषि भूगोल के अध्ययन में यह महत्वपूर्ण तथ्य है।' कृषि प्रधान देशों में भूमि का सबसे अधिक उपयोग कृषि के लिये होता है तथा उद्योग प्रधान देशों में भी समस्त कृषि योग्य कृषि योग्य भूमि का अनुकूलतम उपयोग किया जाता है। यही कारण है कि क्षेत्र विशेष में भूमि उपयोग की क्षमता भूमि के विस्तृत व गहन उपयोग पर निर्भर करती है।

प्रस्तावना – किसी प्रदेश के भूमि उपयोग का प्रतिरूप अनेक भौतिक, सामाजिक सांस्कृतिक व तकनीकी और आर्थिक कारकों से प्रभावित रहता है। इनके निर्धारण में ऐतिहासिक और राजनैतिक कारक भी महत्वपूर्ण होते है।

भूमि उपयोग वर्गीकरण सर्वप्रथम डडले स्टाम्प ने 1930 में किया तथा अनेक प्रकार की भूमि का विभाजन कर उन्हें अलग–अलग रूप में प्रदर्शित किया। कोरबा जिले कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 431047 हेक्टेयर है जो ग्रामीण पत्रकों में शामिल है, संरक्षित एवं आरक्षित वनानतर्गत क्षेत्र इसमें सम्मिलित नहीं है।भूमि उपयोग भौगोलिक अध्ययन का प्रमुख अंग है। भूमि के स्वाभाविक अभिलक्षणो के अनुसार धरातल का यथार्थ तथा विशिष्ट उपयोग ही भूमि उपयोग कहलाता है। मानव भूमि उपयोग विभिन्न रूपो से करता है। भूमि उपयोग प्रतिरूप को वहॉ के भौतिक, आर्थिक एवं सामाजिक कारक प्रभावित करते है।

भारत का वर्तमान भूमि उपयोग प्रतिरूप स्थलाकृति, जलवायु, मिट्टी, मानव क्रियाओं और प्रौद्योगिक आदानो ऐसे अनेकों कारकों का प्रतिफल है। जहाँ अण्डमान एवं निकोबार द्वीपों, मिजोरम और अरूणाचल प्रदेश में अधिक वर्शा के कारण भूमि उपयोग में वनों की प्रधानता पाई जाती हैं वहीं राजस्थान एवं गुजरात का एक बड़ा क्षेत्र वर्षा की कमी के कारण कृषि अयोग्य तथा बंजर के रूप में पाया जाता है। इसी प्रकार सपाट स्थलकृति, उपजाऊ मिट्टी एवं जनसंख्यर दबाव के कारण गंगा मैदान का अधिकांश भाग कृषि क्षेत्र में परिणत कर लिया गया है जबकि विषम धरातल और अनुपजाऊ मिट्टी के कारण नगालैण्ड, मेघालय, मिजोरम और अरूणाचल प्रदेश के क्षेत्रों के कृषि विकास वाधित होता रहा है।

अध्ययन क्षेत्र – कृषि विकास स्तर के अध्ययन हेतु कोरबा जिला का चयन किया है। छत्तीसगढ़ को धान का कटोरा कहा जाता है। कोरबा जिला उसी का एक अंग है। यह छत्तीसगढ़ का आदिवासी बहुल्य क्षेत्रों में एक है। यहाँ पर 167 गांव है। औद्योगिक क्षेत्र के होने के बावजूद एक तिहाई जनसंख्या कृषि कार्य में सलंग्न है। यहाँ पर भौतिक दशाओं और सांस्कृतिक विकास में अंतर के कारण कृषि उत्पादकता और विकास के स्तर में परम्परागत कृषि तकनीक से कृषि की जाती है। जोत के औसत आकार वितरण में भी समस्याएं पायी जाती है। कृषि की समाजिक आर्थिक दशाओं में भी भिन्नता पाई जाती है। कृल मिलाकर यह कृषि की दृष्टि में एक पिछड़ा क्षेत्र है। जिसमें तकनीकी विकास की समस्याएं अधिक है। अत: शोध परख अध्ययन के लिए यह एक उपयुक्त जिला है।

$23^0 15$ से $23^0 30^0$' उत्तरी अक्षांश व 82^0 15' सं $83^0 15$' देशांतरीय विस्तार के मध्य स्थित कोरबा जिले का कुल क्षेत्रफल 4,31,047 वर्ग किलोमीटर है तथा यह समुद्र सतह से 304.8 मीटर की ऊँचाई पर है इसके पूर्व में रायगढ़, पश्चिम में बिलासपुर, उत्तर में सरगुजा, दक्षिण में चाम्पा–जॉजगीर जिला स्थित है।

जिला चार तहसीलों कोरबा, करतला, कटघोरा, पाली एवं 5 विकास खण्डों, कोरबा, करतला, कटघोरा, पोड़ी–उपरोड़ा, पाली तथा 9 राजस्व निरीक्षक मण्डल, 90 पटवारी हल्कों व 341 ग्राम पंचायत एवं द 792 राजस्व ग्रामों में विभक्त है।

अध्ययन का उद्देश्य – प्रस्तुत शोधपत्र का मुख्य कोरबा जिले में भूमि उपयोग प्रतिरूप का विश्लेषाणत्मक अध्ययन करना है। तथा भूमि उपयोग का स्थानिक प्रतिरूप भी स्पष्ट करना है।

विधि तंत्र – प्रस्तुत शोधपत्र में इकाई हेतु विकास खण्ड को आधार माना गया है। इस अध्ययन हेतु अधिकांश आंकड़े राजस्व निरीक्षकों, विकासखंडो मुख्यालय, भू–अभिलेख कार्यालय से प्राप्त किये गये है।

जनसंख्या संबंधी आंकडे 2011 जनगणना के आधार पर किया गया है। इसके आलावे प्रकाशित एवं अप्रकाशित प्रतिवेदन सेन्सस रिपोर्ट, जिला गजेटियर एवं कृषि संगणना प्रतिवेदन से भी आंकड़े प्राप्त किये गये है।

विश्लेषण – कोरबा जिले के भूमि उपयोग को तालिका में प्रदर्शित किया गया है। इस तालिका के आधार पर जिले के भूमि उपयोग की सामान्य विशेषताएं इस प्रकार स्पष्ट है –

ग्राम वनान्तर्गत भूमि – कोरबा जिले में वनान्तर्गत कुल 189920 हेक्टेयर क्षेत्रफल है। जो कुल भौगोलिक क्षेत्र का 26.5% है। वनान्तर्गत सर्वाधिक क्षेत्र पोड़ी–उपरोड़ा विकासखण्ड में पाया जाता है। जहाँ अध्ययन क्षेत्र के कुल वनों के 37.8 प्रतिशत विस्तार है। पाली एवं कोरबा में कुल वनीय क्षेत्र 25 प्रतिशत पाये जाते है। कटघोरा एवं करतला में वनों की प्रतिशतता अल्प क्रमश: 5.3 व 8.3 प्रतिशत मात्र है। गोपालपुर बारूद, फेक्ट्री आई.बी.पी.एल. एवं कोयला खदानों के विस्तार के कारण वनो के अंतर्गत क्षेत्र कम है। सम्पूर्ण जिले में प्रति व्यक्ति वन 18 प्रतिशत है जो अत्याधिक है। पर्यावरण एवं औद्योगिकीकरण से तारतम्य स्थापित करने हेतु वनों 30 प्रतिशत भूमि पर आच्छादित होना अनिवार्य है परंतु अध्ययन क्षेत्र में यह मात्र 26 प्रतिशत है। अत: वनारोपण एवं वन संरक्षण की दिशा में प्रयत्न करना आवश्यक है।

* सहायक प्राध्यपक (भूगोल) डॉ0 सी वी रामन् विश्वविद्यालय, बिलासपुर (छ.ग.) भारत

तालिका (तालिका देखे अन्तिम पृष्ठ पर)

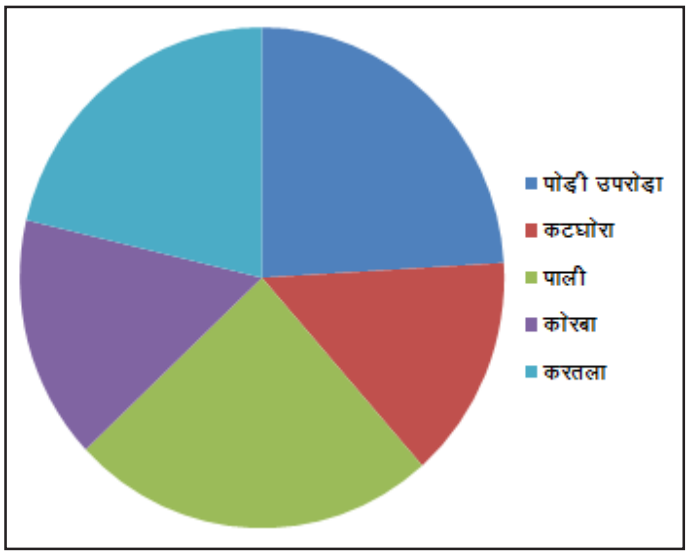

आरेख

कृषि के लिए अनुपलब्ध भूमि – वह समस्त भूमि जो कृषि के लिये भौतिक कारकों से अनुपयुक्त है अथवा वह भूमि जो गैर-कृषि कार्यो में प्रयुक्त होती है। इस वर्ग के अन्तर्गत है। अध्ययन क्षेत्र में इसके अंतर्गत 602000 हेक्टेयर भूमि है जो कुल प्रतिवेदित क्षेत्र 8.4 प्रतिशत है इस वर्ग की भूमि के अंतर्गत भूमि को दो समवर्गो में विभक्त किया जाता है।

(1) गैर कृषि कार्यो के उपयोग में लायी गई भूमि।

(2) ऊसर व गैर-मुमकिन भूमि।

कृषि को छोड़ कर अन्य उपयोग में लायी गयी भूमि– इस अंतर्गत सर्वाजनिक अवस्थापनात्मक सुविधाओं के अंतर्गत क्षेत्र, जलसंसाधनों, उद्योगो के अंतर्गत भूमि वर्गीकृत की जाती है। कोरबा जिले में कुल 29421 हेक्टेयर भूमि इस संवर्ग में है। जो कुल भौगोलिक क्षेत्र का 4.1 प्रतिशत भाग है। कोरबा औद्योगिक समूह का विस्तृत क्षेत्र, कोयला उत्खनन केन्द्र व हसदो-बांगो परियोजना के बड़े-बड़े जलाशयों के निर्माण के कारण इस वर्ग के अंतर्गत भूमि आ गई है। इस प्रकार की भूमि की सर्वाधिक प्रतिशतता कटघोरा विकासखंड में 7.11 प्रतिशत है। पाली, पोड़ी-उपरोड़ा विकासखंडो में सबसे न्यूनतम 2.52 व 1.90 प्रतिशत भूमि है।

ऊसर व गैर-मुमकिन भूमि – इसके अंतर्गत उस भूमि को सम्मिलित किया जाता है, जो कृषि के लिए सर्वथा अनुपयोगी है। जैसे - पर्वतीय, अत्यधिक अपरदित भूमि, रेतीली तलछटी भूमि जहाँ पर वन भी विस्तारित नहीं किये जा सकते। जिले में इस प्रकार की भूमि 30779 हेक्टेयर है जो कुल प्रतिवेदित क्षेत्र का 4.3 प्रतिशत है। इस प्रकार की भूमि का सर्वाधिक विस्तार पाली विकासखंड में है जिसकी प्रतिशतता 9.1 प्रतिशत है। पोड़ी-उपरोड़ा व करतला अन्य प्रमुख क्षेत्र है। जहाँ ऊसर व बंजर भूमि का प्रतिशत क्रमश: 4.0 व 6.3 है।

पड़ती भूमि – जब भूमि में दो-पॉच वर्ष के भीतर फसल उत्पादन नहीं किया जाता है तो इसको संवर्ग के अंतर्गत शामिल किया जा सकता है।

सामान्यत: भूमि की उर्वरा शक्ति को बनाए रखने के लिए इस प्रकार की व्यवस्था की जाती है। ऐसे भूमि में फसल की निरंतरता हेतु कृषि आधुनिकीकरण आवश्यक है जिले में 84893 हेक्टेयर भूमि पड़ती है। जिनमें से चालू पड़ती के अंतर्गत कुल प्रतिवेदित क्षेत्र की 0.8 प्रतिशत भूमि एवं पुरानी पड़ती के अन्तर्गत 1.2 प्रतिशत भूमि है। कटघोरा, करतला विकासखंड में चालू एवं पुरानी पड़ती की प्रतिशतता सर्वाधिक है कृषकों की गरीबी अथवा अनुपस्थिति, अनुपजाऊ अपरदित मिट्टी, आदिवासी कृशकों में तकनीकी ज्ञान की कमी पड़ती भूमि के अधिक विस्तार के लिए करणीभूत है। जिले के कोरगा विकासखण्ड में पड़ती भूमि का प्रतिशत (1.0 प्रतिशत) न्यूनतम है।

फसल का निराबोया गया क्षेत्र – कुल भौगोलिक क्षेत्र के अंतर्गत वह क्षेत्र जिस पर वास्तविक रूप से कृषि की जाती है, निरा फसल क्षेत्र है, कोरबा जिले में निरा फसल क्षेत्र के अंतर्गत 134227 हेक्टेयर भूमि है जो कि भौगोलिक क्षेत्र की 18.78 प्रतिशत है। वनाच्छादित पहाड़ी, पठारी, आदिवासी कृषकों में कृषि आधुनिकीकरण के प्रति कम रूझान, सिंचाई की सुविधाओं का अभाव इत्यादि कारणों से जिले में निरा फसल क्षेत्र कम है।

कोरबा जिले को निरा बोये गये क्षेत्र की प्रतिशतता के आधार पर तीन प्रमुख वर्गो में विभक्त किया जा सकता है-

उच्च निराफसल के क्षेत्र – कोरबा जिले के करतला एवं कटघोरा विकासखंड निराफसल क्षेत्र सर्वाधिक है। हसदो-रामपुर बेसिन कृषि के लिए अनुकूलतम भौगोलिक संरचना ग्रामीण संरचना की सामान्य आर्थिक स्थिति एवं क्षेत्र कृषि सुविधाओं की उपलब्धता के कारण निराफसल क्षेत्र अपेक्षकृत अधिक है। इन विकासखंडो में निराफसल क्षेत्र क्रमश: कटघोरा में 20127 हेक्टेयर व करतला में 28544 हेक्टेयर है जो कुल भौगोलिक क्षेत्र 42.65 व 36.59 प्रतिशत है।

मध्यम निराफसल के क्षेत्र – इस वर्ग के अंतर्गत पाली विकासखंड को षामिल किया गया है। जहाँ 3253 हेक्टेयर भूमि निराफसल क्षेत्र के अंतर्गत है। कुल भौगोलिक क्षेत्र से इसकी प्रतिशतता 21.6 है

निम्न निरा फसल क्षेत्र – जिले के पोड़ी-उपरोड़ा व कोरबा विकासखंण्ड में निरफसल क्षेत्र के अन्तर्गत भूमि की प्रतिशतता अपेक्षाकृत कम है, पोड़ी-उपरोड़ा विकासखंड में 12.9 एवं कोरबा विकासखंड में 11.08 प्रतिशत है। सिंचाई की सुविधाओं का अभाव, निराफसल क्षेत्र की कमतरता प्रमुख कारकों में है। साथ ही कोरबा विकासखंड में औद्योगिक इकाईयों की अधिकता के कारण निरा बोये गये क्षेत्र के अंतर्गत भूमि कम है।

निष्कर्ष –

1. जिले के भूमि उपयोग में वनान्तर्गत भूमि सर्वाधिक है। कुल 189920 हेक्टेयर भूमि पर वनों का विस्तार है। जो कुल भौगोलिक क्षेत्र का 26.5 प्रतिशत है।
2. कोरबा जिले में भूमि उपयोग की दृष्टि से निरा बोया गया क्षेत्र के अन्तर्गत प्रतिशतता 18.78 प्रतिशत है। वनाच्छादित विषम धरातलीय क्षेत्र होने के कारण निरा बोये गये क्षेत्र की प्रतिशतता अपेक्षाकृत न्यून है। क्षेत्र के दक्षिणी भाग में हसदो-रामपुर बेसिन क्षेत्र में निरा बोये गये क्षेत्र की प्रतिशतता अधिक (42.7 प्रतिशत) है, जबकि उत्तरी-पश्चिमी क्षेत्रों में गिरा फसलान्र्गत क्षेत्र मात्र 11 प्रतिशत है। कोरबा क्षेत्र में औद्योगिक इकाईयों की स्थापना एवं कोयला खानों के कारण निरा फसल क्षेत्र के अन्तर्गत भूमि कम है।
3. जिले में पड़ती भूमि के अंतर्गत क्षेत्र कुल प्रतिवेदित क्षेत्रफल का 11.6 प्रतिशत है। सिंचाई सुविधा की अनुपलब्धता उर्वरता का अभाव, उचित देख रेख में कमी के कारण अधिक है। इस तथ्य की ओर संकेत करता है अध्ययन क्षेत्र में कृषि नवीनीकरण के क्षेत्र में निवेश की महती आवश्यकता है।

4. अध्ययन क्षेत्र में तुरंत कृषि योग्य भूमि के अंतर्गत क्षेत्र की प्रतिशतता 7.9 प्रतिशत है।
5. दूफसली क्षेत्र के अंतर्गत भूमि अत्यल्प (12%) है इसका प्रमुख कारण कृषि जोतों का छोटा होना साथ ही सिंचाई की सुविधा का अभाव है।
6. जिले के पश्चिमी पहाड़ी क्षेत्रों में ऊसर व गैर-मुमकिन भूमि के अंतर्गत क्षेत्र की प्रतिशतता 9.1% है छुरी की पहाड़ियों के विस्तार के कारण करतला विकासखंड में भी ऊसर व गैर मुमकिन क्षेत्र के अंतर्गत भूमि (6.3%) अधिक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. Singh, Jasbir (1976): An Agricultural Attas of India: A Greographical Analysis, Vishal Pub Haryana P.101
2. सिंह, बी.बी. (1979) :'कृषि भूगोल तारा प्रकाशन, वाराणसीसिंह,बी.बी. (1974) : 'शस्य सम्मिश्रण विधि अध्ययन : एक एम.जी. सिंह पुनर्विलोकरन, उ.मा. भू.प.अंक-10 संख्या 1-2, पृ.-13
3. चौधरी, सी.एम. (1992) : 'भारत में कृषि विपणन समस्यायें एवं समाधान'' योजना वर्ष 36, अंक - 1 पृ. 5
4. कमलेश, एस.आर. (1995) : 'बिलासपुर संभाग में कृषि विकास का स्तर : एक भौगालिक अध्ययन' पृ. 182
5. Jain, C.K. (1988) : Patterns of Agricultural Development in M.P. Northern Book Centre New Delhi. P. 104.
6. कपूर, सुदर्शन कुमार (1994) : 'भारतीय कृषि अर्थ व्यवस्था राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी पृ. 207
7. कुमार, प्रमिला और शर्मा श्री कमल (1980) - कृषि भूगोल म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ एकेडमी, भोपाल।

तालिका

जिले के विकास खंडो में भूमि उपयोग एवं फसल प्रतिरूप (प्रतिशत में)

विकास खंड	वन	ऊसर व गैर मुमकिन	कृषि के छोड़ अन्य कार्य में	तुरंत कृषि योग्य कृषि	कुल सुधार	कृषि भूमि	कृषि भूमि को छोड़कर	चालू पड़त	पुरानी पड़ती	फसल निरा	छु फसली	संम्पूर्ण
पोड़ी उपरोड़ा	30.5	4.0	0.2	0.48	0.3	0.2	1.90	0.7	0.8	12.9	1.37	34145
कटघोरा	21.3	1.1	7.4	1.68	0.8	0.7	7.11	2.3	2.7	42.65	0.9	20564
पाली	28.3	9.1	1.4	0.3	0.3	0.2	2.52	0.8	1.2	21.6	1.75	34671
कोरबा	23.7	0.96	1.7	0.6	0.2	0.07	2.39	0.3	0.7	11.98	0.39	22413
करतला	21.3	6.3	3.6	1.6	1.7	0.87	6.61	1.6	2.5	36.59	2.2	30218

स्त्रोत : कार्यालय भू-अभिलेख शाखा, जिला कोरबा

****

कृषि फसल प्रतिरूप एवं विकास पर पर्यावरण के प्रभाव का मूल्यांकन (उज्जैन जिले के विशेष संदर्भ में)

डॉ. मोहन निमोले * डॉ. प्रमिला बघेल **

प्रस्तावना – भौतिक एवं मानवीय वातावरण के विभिन्न तत्व स्वच्छन्द तथा सम्बंधित दोनों रूपों में फसल प्रतिरूप व कृषिगत विशेषताओं को निर्धारित करते हैं। किसी भी कृषि प्रधान जिले का उद्‌भव व विकास तथा परिसीमन के आधारभूत तत्व भौतिक पर्यावरण ही है। फसल प्रतिरूपों को प्रभावित करने में पर्यावरण की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। पर्यावरण के द्वारा ही किसी के क्षेत्र विशेष में फसल प्रतिरूपों का निर्माण होता है। फसल प्रतिरूपों का निर्माण करने में प्राकृतिक कारक जिन्हें भौतिक पर्यावरण के रूप में जाना जाता है। ये कृषि कार्य व फसल प्रतिरूप को अधिक प्रभावित करते हैं। कृषि फसलें प्रारंभिक रूप में प्राकृतिक पर्यावरण के अन्तर्गत ही उत्पन्न होती और विकसित होती है। यही कारण है कि कृषि का विकास उन्हीं स्थानों पर अधिक हुआ है जहाँ उपयुक्त प्राकृतिक दशाएं फसलोत्पादन एवं पशुपालन के अनुकूल हैं।

अध्ययन क्षेत्र – यह मालवा पठार के केन्द्रीय भाग में स्थित है। उज्जैन जिला दक्षिण-पश्चिम मध्यप्रदेश में 22°43' से 24°36' उत्तरी अक्षांशों तथा 75°00' से 76°30' पूर्वी-देशान्तरों के मध्य स्थित है। जिले की समुद्र तल से ऊँचाई 527 मीटर है। जिले का कुल क्षेत्रफल 6,091 वर्ग किलोमीटर है, जो कि मध्यप्रदेश के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का 1.976 प्रतिशत है।

उद्देश्य – अध्ययन का उद्देश्य फसल प्रतिरूप एवं विकास पर पर्यावरण के प्रभाव का मूल्यांकन करना है।

विधि तंत्र – प्रस्तुत शोध पत्र द्वितीयक आंकडों पर आधारित है। आंकड़े जिला सांख्यिकी कार्यालय उज्जैन और भू-अभिलेख कार्यालय, उज्जैन (म.प्र.) से लिए गये है।

फसल प्रतिरूपों को प्रभावित करने वाले कारक – जिले में कृषि व फसल प्रतिरूपों को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारकों में उच्चावच, जलवायु, मृदा एवं जल है, जो क्षेत्र की कृषि विशिष्टताओं को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं, जो निम्नानुसार हैं-

1. **उच्चावच का प्रभाव –** उच्चावच में विभिन्नता के परिणामस्वरूप फसल प्रतिरूप व कृषि कार्य में विभिन्नताएँ देखने को मिलती हैं। विभिन्न फसलों की कृषि धरातलीय दशाओं द्वारा निर्धारित होती है। उज्जैन एक कृषि प्रधान जिला है। जिले में उच्चावच की स्थिति तालिका क्रमांक 1 के अनुसार है

तालिका क्रमांक 1उज्जैन जिला – भौतिक भाग

क्र.	भौतिक भाग	क्षेत्रफल (वर्ग कि.मी.)	प्रतिशत
1	पर्वतीय	1108.5	18.2
2	पठारी	4556.1	74.8
3	नदी घाटी व निचले क्षेत्र	426.4	7.0
	कुल क्षेत्र	6091	100

स्रोत : भू-अभिलेख कार्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

जिले के सम्पूर्ण क्षेत्रफल के सर्वाधिक 74.8 प्रतिशत भू-भाग पर पठारी क्षेत्र हैं। अत: अध्ययन क्षेत्र कृषि प्रधान जिला है। जिले में उच्चाचन की दृष्टि से समतल पठारी भाग का महत्वपूर्ण स्थान है। समतल धरातल व सिंचाई सुविधा होने से जिले में अनेक प्रकार की फसलों का उत्पादन किया जाता है।

2. **धरातलीय दशाओं का प्रभाव –** कृषि कार्य में धरातलीय ढ़ाल की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। ढ़ाल कृषि कार्य में सहायक होता है। धरातल का मन्द ढ़ाल जल निकास तथा जुताई के लिए उपयुक्त होता है परन्तु तीव्र ढ़ाल कृषि के लिए बाधक होता है। यही कारण है कि समतल पठारी क्षेत्र कृषि के लिए उपयुक्त होते हैं और अनेक प्रकार के फसल प्रतिरूपों का निर्माण करते हैं। अत: उज्जैन जिले में धरातलीय दशाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। जिला समतल भू-भाग पर स्थित होने के कारण सिंचाई की पर्याप्त सुविधा होने से यहाँ अनेक प्रकार के फसल प्रतिरूप दिखाई देते हैं।

3. **ढ़ाल प्रवणता का प्रभाव –** ढ़ाल प्रवणता फसल प्रतिरूपों एवं कृषि को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। कृषि कार्य समतल भू-भाग पर ही सुचारू ढ़ंग से सम्पन्न होता है। अत: फसल प्रतिरूपों को प्रभावित करने में धरातलीय ढ़ाल की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अध्ययन क्षेत्र उज्जैन जिला समतल पठारी भाग पर स्थित होने के कारण यहाँ अल्प तथा मध्यम ढ़ाल देखने को मिलता है जो कृषि कार्य व फसल प्रतिरूपों के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है,

4. **मृदा का प्रभाव –** किसी भी क्षेत्र में फसलों की विविधता उनका प्रकार एवं उत्पादन मृदा की उर्वरा-शक्ति पर निर्भर करती है। अत: उज्जैन जिले में फसल प्रतिरूपों को मिट्टी प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है। जिले में तीन प्रकार की मिट्टी पाई जाती है जो निम्नानुसार है (1) काली मिट्टी (2) जलोढ़ अथवा काँप मिट्टी (3) लाल तथा लैटेराइट मिट्टी

5. **जलवायु का प्रभाव –** किसी क्षेत्र में कृषि फसलों की सीमा का निर्धारण जलवायु द्वारा अधिक प्रभावित होता है। फसल के विकास की क्षमता को निश्चित करने में जलवायु के इन तत्वों की दैनिक, ऋतुगत या वार्षिक विभिन्नता की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। स्पष्ट है कि फसल प्रतिरूपों पर किसी क्षेत्र की सूक्ष्म जलवायु का भी प्रभाव पड़ता है। उज्जैन जिले में भारतवर्ष की तरह मानसूनी जलवायु पाई जाती है। यहाँ पर वार्षिक वर्षा भी मानसून पर निर्भर करती है। वार्षिक वर्षा के हिसाब से ही कृषि व फसल प्रतिरूप प्रभावित होते हैं।

6. **तापक्रम का प्रभाव –** अत: उज्जैन एक कृषि प्रधान जिला है। जिले में तापमान की महत्वपूर्ण भूमिका है। यहाँ न तो अधिक गर्मी और न ही अधिक ठण्ड रहती है, जिससे यहाँ अनेक प्रकार की फसलों का उत्पादन किया जाता है। जनवरी सबसे अधिक ठण्डा महीना होता है तथा औसत दैनिक अधिकतम

* सहायक प्राध्यापक (भूगोल) शासकीय माधव कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत
** पोस्ट डॉक्टोरल फेलो (भूगोल) शासकीय माधव कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत

तापमान 26° सेंटीग्रेट तथा औसत न्यूनतम दैनिक तापमान लगभग 9° सेंटीग्रेट हो जाता है। मई सबसे अधिक गर्म महीना रहता है, जिसमें औसत अधिकतम दैनिक तापमान लगभग 40° सेंटीग्रेट तथा न्यूनतम दैनिक तापमान 24° सेंटीग्रेट रहता है जो कृषि व फसल प्रतिरूपों के लिए आदर्श होता है।

7. अपवाह का प्रभाव – कृषि कार्य व फसल प्रतिरूपों को प्रभावित करने वाले कारकों में अपवाह की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अपवाह का सामान्य तात्पर्य नदियों के जल-निकास से है। इसके अन्तर्गत उन सभी विशेषताओं का अध्ययन किया जाता है जो नदी के जल निकास से सम्बंधित होती है। उज्जैन जिला गंगा अपवाह तंत्र के अन्तर्गत आता है। जिले की मुख्य नदी चम्बल है तथा सभी उसकी अन्य सहायक नदियों की जलधाराएँ जिले में दक्षिण से उत्तार की ओर बहती है और अनेक फसल प्रतिरूपों का निर्माण करती है।

8. वर्षा का प्रभाव – कृषि क्षेत्रों में भिन्नता भी जल की उपलब्धता द्वारा प्रभावित होती है। वर्षा की मात्रा में भिन्नता के अनुरूप ही फसल प्रतिरूप व पशुपालन के वितरण में भी भिन्नताएँ पाई जाती हैं। जिन क्षेत्रों में पर्याप्त मात्रा में फसलोत्पादन के लिए जल की प्राप्ति नहीं होती है वहाँ पर कृत्रिम विधि द्वारा सिंचाई के माध्यम से कृषि कार्य किया जाता है।

9. सूर्य प्रकाश का प्रभाव – फसल प्रतिरूपों को प्रभावित करने वाले कारकों में सूर्य प्रकाश का महत्वपूर्ण स्थान है। पौधों के वर्द्धन के लिए प्रकाश अनिवार्य है। प्रकाश संश्लेषण तथा क्लोरोफिल के निर्माण में धूप की प्रत्यक्ष भूमिका होती है। उज्जैन एक कृषि प्रधान जिला है। समतल धरातल पर स्थित होने के कारण यहाँ पर सूर्य प्रकाश की प्राप्ति फसलों के लिए पर्याप्त होती है, जिससे जिले में अनेक प्रकार की फसलें पैदा की जाती हैं। अत: जीवित तत्वों के लिए प्रकाश एक महत्वपूर्ण कारक है।

10. सूखे का प्रभाव – अकाल का सम्बंध पर्यावरण से है क्योंकि जब तक जलचक्र सामान्य होगा, ऐसी स्थिति निर्मित नहीं होती है, किन्तु पर्यावरण में गतिरोध के कारण विशेषकर वायुमण्डलीय अवक्रमण से जल चक्र बाधित होता है, जिससे वर्षा कम होती है या लम्बे अन्तराल के बाद वर्षा होती है। ऐसी स्थिति के लिए वन विनाश भी एक कारण बताया जाता है।

तालिका क्रमांक 2

उज्जैन जिला : सूखे की स्थिति (1991-2012)

वर्ष	जिले की औसत वार्षिक वर्षा	द्विफसली क्षेत्र (हेक्टेयर में)
1990-91	1133.4	211052
2000-01	1017.9	183884
2010-11	742.4	377521
2011-12	1148.1	389406

स्रोत - जिला सांख्यिकीय कार्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

सूखा एक प्राकृतिक आपदा है जो पर्यावरण के सभी तत्वों को प्रभावित करता है। सूखा फसल प्रतिरूप व फसल उत्पादन को सीमित करता है। बहुत सी फसलें अपने विकास अवधि में या पकने के साथ सूखा पड़ने के कारण नष्ट हो जाती है। अत: उज्जैन एक कृषि प्रधान जिला है। जिले में भी फसल प्रतिरूप प्रभावित हुए हैं, जो तालिका क्रमांक 2 के अनुसार है।

उज्जैन जिले में वर्ष 1991 में औसत वार्षिक वर्षा 1133.4 मिलीमीटर व द्विफसली क्षेत्र 211052 (हेक्टेयर) था जो वर्ष 2001-02 में सूखा पड़ जाने से यह घटकर औसत वार्षिक वर्षा 406.8 मिलीमीटर व द्विफसली क्षेत्र 68417 (हेक्टेयर) रह गया। अत: प्राप्त आंकड़ों (वर्ष 1991-2012) से ज्ञात होता है कि 21 वर्षों के अन्तराल में जिले में वर्ष 2001-02 में सूखा पड़ जाने से अनेक प्रकार के फसल प्रतिरूप प्रभावित हुए थे।

कृषि विकास का स्तर – कृषि विकास स्तर देश की समृद्धि को इंगित करता है। जितना अधिक कृषि का विकास स्तर होगा, देश उतना ही तकनीकी व आर्थिक रूप से समृद्ध होगा। कृषि विकास की सीमा के मामले में मापदण्ड समय-समय पर बदलते रहते हैं। कभी-कभी एक क्षेत्र का विकास अधिक हो जाता है तो दूसरा क्षेत्र पिछड़ जाता है। इससे क्षेत्रीय असंतुलन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। उज्जैन जिले में फसल प्रतिरूपों पर पर्यावरण का प्रभाव एवं वर्तमान सन्दर्भ में विकास का मूल्यांकन करने के लिए यह अनिवार्य तथ्य है कि सर्वप्रथम जिले में विकास स्तर का मूल्यांकन किया जाए, किन्तु विकास के स्तर का आंकलन असम्भव नहीं तो दुष्कर कार्य अवश्य है। उपर्युक्त बिन्दुओं में से उज्जैन जिले के विकास स्तर में कृषि के योगदान के निम्न पांच बिन्दुओं को आधार मानकर कृषि विकास सूचकांक को दर्शाया गया है।

1. निराबोया गया क्षेत्र। 2.द्विफसली क्षेत्र।
3. सिंचित क्षेत्र।

तालिका क्रमांक-3 उज्जैन जिला : भूमि उपयोग, कृषि एवं सिंचित क्षेत्र 1961-2011 (हेक्ट. में)

क्र.	वर्ष	निराबोया गया क्षेत्र	द्विफसली क्षेत्र	सिंचित क्षेत्र
1	1960-61	384859	15613	7386
2	1961-71	452945	27885	17064
3	1971-81	456683	64007	47751
4	1981-91	470468	158050	151851
5	1991-01	480573	68417	65959
6	2001-11	496071	377199	258379

स्रोत - जिला सांख्यिकी कार्यालय, उज्जैन (म.प्र.)

1. निराबोया गया क्षेत्र – तालिका क्रमांक 3 से स्पष्ट होता है कि जिले में निराबोया गया क्षेत्र वर्ष 1961 में 384859 हेक्टेयर था, जो वर्ष 2011 में बढ़कर 496071 हेक्टेयर हो गया। अत: 1961-2011 के प्राप्त आंकड़ों से पता चलता है कि जिले में 50 वर्षों के बीच 111212 हेक्टेयर निरा बोया गया क्षेत्र में वृद्धि हुई है।

2. द्विफसली क्षेत्र – तालिका क्रमांक 3 से स्पष्ट होता है कि जिले में द्विफसली क्षेत्र वर्ष 1961 में 15613 हेक्टेयर था, वर्ष 2011 में यह बढ़कर 377199 हेक्टेयर हो गया। अत: प्राप्त आंकड़ों (1961-2011) से पता चलता है कि जिले में 50 वर्षों के बीच 361586 हेक्टेयर द्विफसली क्षेत्र में वृद्धि हुई है।

3. सिंचित क्षेत्र – तालिका क्रमांक 3 से स्पष्ट होता है कि जिले में सिंचित क्षेत्र वर्ष 1961 में 7386 हेक्टेयर था जो वर्ष 2011 में सिंचित क्षेत्र बढ़कर 258379 हेक्टेयर हो गया। अत: प्राप्त आंकड़ों (1961-2011) से ज्ञात होता है कि जिले में 50 वर्ष की अवधि में 250993 हेक्टेयर सिंचित क्षेत्र में वृद्धि हुई है।

निष्कर्ष – अध्ययन क्षेत्र कृषि प्रधान जिला है। यहाँ कृषि के सम्पूर्ण अंगों के विकास के लिए इसे विकसित करने हेतु भूमि, श्रम, पूँजी निवेश, संगठन की कुशल व्यवस्था व वैज्ञानिक पद्धति, कुशल श्रम, यन्त्रीकरण आदि से कृषि विकास के स्तर को बढ़ाया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. प्रमीला कुमार एवं श्रीकमल शर्मा (2000), 'कृषि भूगोल', मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल।
2. काशीनाथ सिंह, 'आर्थिक भूगोल के मूल तत्व', तारा पब्लिकेशन्स, वाराणसी।
3. माजिद हुसैन (2004), 'कृषि भूगोल', रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर
4. माजिद हुसैन, 'कृषि भूगोल', रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर एवं नई दिल्ली।

आदिवासी बहुल ग्रामीण क्षेत्र में फसल प्रतिरूप, कृषि की समस्याएँ एवं समाधान के उपाय (रायगढ़ जिले के लैलूंगा विकासखण्ड के ग्राम कुर्रा का प्रतीक अध्ययन)

डॉ. कपूरचंद गुप्ता *

प्रस्तावना – अध्ययन क्षेत्र ग्राम कुर्रा छत्तीसगढ़ राज्य के रायगढ़ जिले के लैलूंगा विकासखण्ड में रायगढ़ जिला मुख्यालय से उत्तर दिशा में 95 किलोमीटर की दुरी पर स्थित है।

यह गांव पहाड़ी भाग में बसा है। इसके दक्षिण एवं पश्चिम दिशा में पहाड़ियां स्थित है। यह गांव आदिवासी बाहुल्य गांव है।

इस गांव की कुल जनसंख्या 2011 की जनगणनानुसार 1267 है, जिसमें 605 पुरूष, 662 महिला जनसंख्या है। इस गांव में लिंगानुपात 1244 जो छत्तीसगढ़ राज्य के 991 से अधिक है। 2011 की जनगणनानुसार साक्षरता 68.13% है जिसमें पुरूष साक्षरता 78.94% तथा महिला साक्षरता 58.05% है। गांव में 0-6 आयुवर्ग की कुल जनसंख्या 13.81% है।

यह गांव आदिवासी बाहुल्य है जहाँ की 68.50% जनसंख्या आदिवासियों की है। गांव का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 754 हेक्टेयर है। यहाँ की मुख्य व्यवसाय कृषि है। यहाँ की 465 हेक्टेयर भूमि में कृषि की जाती है।

अध्ययन विधि तंत्र एवं आंकड़ों के स्रोत – प्रस्तुत अध्ययन में प्राथमिक एवं द्वितीयक आंकड़ो का उपयोग किया गया है। प्रश्नावली एवं अनुसूची बनाकर आंकड़े एवं जानकारियाँ प्राप्त की गई है।

परिकल्पना –

(i) छत्तीसगढ़ एक कृषि प्रधान राज्य है यहां के आदिवासी बहुल ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि विकास नहीं हुआ है, जिससे यहां के लोगों का आर्थिक एवं सामाजिक स्तर ऊपर नहीं उठ रहा है।

(ii) यहाँ कृषि विकास की संभावनाएँ मौजूद हैं, उन्हें खोजा जा सकता है।

(iii) परंपरागत जीवन निर्वाही कृषि पद्धति में आंशिक परिवर्तन हुए हैं।

अध्ययन का उद्देश्य :-

1. फसल प्रतिरूप का अध्ययन कर इसमें परिवर्तन की संभावना तलाश करना।
2. कृषि की समस्याओं का आंकलन कर आवश्यक सुझाव देना।

अध्ययन क्षेत्र में फसल प्रतिरूप – ग्राम कुर्रा की 90% जनसंख्या कृषि पर आश्रित हैं, जिसमें लघु, सीमांत कृषक एवं खेतिहर मजदूर शामिल हैं। यहाँ की धर्म, संस्कृति तथा यहाँ के जीवन का आधार कृषि है।

भिन्न-भिन्न भौतिक, आर्थिक एवं सामाजिक दशाओं के कारण भिन्न-भिन्न प्रकार की फसलें बोयी जाती है जिसमें आर्द्र कृषि, असिंचित कृषि, झूर्मिंग कृषि, बागाती कृषि आदि प्रमुख है। ग्राम कुर्रा में मुख्य रूप से खरीफ एवं रबी की फसलें ली जाती है जो ऋतुओं पर निर्भर करती है।

खरीफ फसलें – यह फसलें जून-जुलाई में बोयी जाती है तथा अक्टूबर-नवंबर में पकती है। इसे वर्षा की फसल भी कहा जाता है क्योंकि ये फसलें वर्षा ऋतु में ही उगती है, बढ़ती हैं और पकती हैं। इसके अंतर्गत अनाज, दलहन-तिलहन एवं शाक-सब्जी की खेती की जाती है।

सारणी क्र. - 1

ग्राम कुर्रा में खरीफ फसलों के अंतर्गत फसलवार क्षेत्रफल

(अ) खाद्यान्न फसलें		
क्र.	फसल का नाम	भूमि (हेक्टेयर में)
1.	धान	329.071
2.	मक्का	2.060
3.	कुटकी	0.202
(इ) दलहन फसलें		
1.	अरहर	12.4065
2.	उड़द	22.809
3.	मूंग	0.405
4.	कुलथी	3.050
(उ) तिलहनें फसलें		
1.	मूंगफली	6.202
2.	तिल	0.101
3.	रामतिल	8.202
(ऊ) मसाले		
1.	अदरक	6.045
2.	हल्दी	0.081
3.	मिर्च	0.809
(ए) सब्जी		
1.	बरबट्टी	0.101
2.	बैंगन	0.607
3.	भिण्डी	0.405
4.	टमाटर	2.810
5.	अरबी	0.202
(ऋ) अन्य		
1.	गन्ना	0.596
2.	शकरकंद	2.023
	योग –	**398.5475**

स्रोत - व्यक्तिगत सर्वेक्षण पर आधारित

* सहायक प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (भूगोल) बटमूल आश्रम महाविद्यालय, साल्हेओना (महापल्ली) (छ.ग.) भारत

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि ग्राम कुर्रा में खरीफ के अंतर्गत धान मुख्य फसल है। यहाँ के 329.07 हेक्टेयर भूमि पर धान की खेती की जाती है। जो कुल कृषि भूमि का 82% है। यहाँ धान की खेती परम्परागत तरीके से की जाती है इसलिए कृषि केवल जीवन निर्वाही है।

दलहल के अंतर्गत कुल 38.6705 हेक्टेयर भूमि अर्थात् 9.70% भाग है। प्रमुख दलहन फसलें उड़द, अरहर और कुलथी है।

यहाँ के 14.505 हेक्टेयर भूमि पर तिलहन की फसलें की जाती है। इन फसलों में रामतिल, मूंगफली प्रमुख है।

शेष कृषि भूमि पर मसालों के अंतर्गत अदरक, हल्दी, मिर्च तथा शाक-सब्जियों की खेती की जाती है। बलुई मिट्टी होने के कारण शकरकंद की भी खेती की जाती है।

रबी फसलें – यह फसलें अक्टूबर-नवंबर में बोई जाती है तथा फरवरी-मार्च में काटी जाती है। इस गांव में रबी में निम्नलिखित फसलें ली जाती है :-

सारणी क्र. 2

ग्राम- कुर्रा में रबी फसलों के अन्तर्गत फसलवार क्षेत्रफल

क्र.	फसल का नाम	भूमि (हेक्टेयर में)
(अ)	खाद्यान्न फसलें	
1.	गेहूँ	7.202
2.	धान	0.405
(इ)	दलहन फसलें	
1.	चना	1.010
2.	मसूर	0.809
3.	मटर	0.405
(उ)	तिलहन फसलें	
1.	अलसी	4.810
2.	राई-सरसों	1.405
3.	सूर्यमुखी	0.809
(ऊ)	शाक-सब्जियां	
1.	बरबट्टी	0.101
2.	आलू	4.048
3.	टमाटर	0.405
4.	बैंगन	0.202
5.	गोभी (पत्ता)	1.214
6.	गोभी (फूल)	1.640
7.	मूली	0.202
(ए)	मसाले	
1.	प्याज	3.101
2.	लहसून	0.202
	योग	27.97

स्रोत : व्यक्तिगत सर्वेक्षण पर आधारित

सिंचाई सुविधाओं के अभाव के कारण यहाँ कुल 27.97 हेक्टेयर भूमि पर जो कुल भूमि का केवल 7.017% है, पर रबी की खेती की जाती है। कृषक केवल अपने जीवन निवर्हन हेतु शाक-सब्जी, तिलहन, दलहन तथा खाद्यान्न फसलों की खेती करते हैं।

अध्ययन क्षेत्र में कृषि की समस्याएँ – यहाँ कृषि की समस्याएँ निम्नलिखित है –

1. मानसूनी वर्षा पर क्षेत्र की कृषि निर्भर है। मानसून की अनियमितता एवं अनिश्चितता से सूखे एवं अतिवृष्टि कृषि के लिए सबसे बड़ी समस्या है।
2. यहाँ सिंचाई सुविधाओं का अभाव है क्योंकि जल स्तर बहुत नीचे है। इसलिए गर्मी महिने में केवल 7.017% भाग पर ही खेती संभव है।
3. क्षेत्र में परंपरागत पद्धति से खेती की जाती है जिससे उत्पादन बहुत कम होता है।
4. गांव के 85% कृषक लघु एवं सीमांत श्रेणी के हैं। कृषि के उन्नत साधनों एवं पूंजी की कमी कृषि विकास में बड़ी बाधक है।
5. क्षेत्र में 68% जनसंख्या आदिवासियों की है यहाँ की सामाजिक तथा पारिवारिक मूल्य कृषि विकास में बाधक है।
6. क्षेत्र में अधिकांश कृषक अशिक्षित हैं इसलिए इन्हें कृषि का तकनीकी ज्ञान नहीं हो पाता।
7. क्षेत्र में जागरूकता के अभाव में कृषक कृषि संबंधी शासकीय सहायता का लाभ नहीं पाते।
8. क्षेत्र के अधिकांश भाग में बलुई लेटराइट मिट्टी पायी जाती है जो कम उपजाऊ हैं।

कृषि संबंधी समस्याओं के समाधान के उपाय –

1. क्षेत्र में सिंचाई सुविधाओं का विस्तार हो। वर्षा ऋतु में जल का संग्रह किया जावे तथा नहरों का निर्माण किया जावे। इससे रबी फसल के अन्तर्गत रकबा बढ़ेगा।
2. खाद्यान्न फसलों के अलावा गन्ना, सब्जी एवं फलों की खेती को प्रोत्साहित किया जावे।
3. चकबंदी एवं सीमाबंदी कानून लागू की जावे।
4. कृषि संबंधी अनुदान, ऋण एवं अन्य सुविधाओं का ठीक से प्रचार-प्रसार हो।
5. कृषि के साथ पशुपालन को भी प्रोत्साहित किया जावे।
6. कृषि उत्पादों के विक्रय हेतु विपणन केन्द्रों की स्थापना हो।
7. कृषकों को कृषि संबंधी ज्ञान देकर उन्हें आधुनिक तकनीकी से खेती करने हेतु गंभीरतापूर्वक प्रयास हो।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. व्यक्तिगत सर्वेक्षण. 2014-15
2. कमलेश, एस. आर. एवं पाण्डेय जे. एन. – कृषि भूगोल, वसुंधरा प्रकाशन, गोरखपुर (उ.प्र.)
3. पटेल, डी. सी., छत्तीसगढ़ भाग-1 प्राकृतिक (2014) मुस्कान पब्लिकेशन बिलासपुर (छ.ग.)

****

महिला साक्षरता - नीमच जिले में स्थानिक तथा कालिक विश्लेषण

डॉ. अख्तर बानो *

शोध सारांश – नीमच जिले की कुल महिला साक्षरता दर (39.49) बहुत कम है। इसी प्रकार सभी तहसीलो की महिला साक्षरता दर भी मध्यप्रदेश (60 प्रतिशत) की महिला साक्षरता दर से बहुत कम है। अत: यह अति आवश्यक है कि अध्ययन क्षेत्र की महिला साक्षरता दर कम से कम 60 प्रतिशत हो। इस हेतु सरकार द्वारा कई योजनाएं जैसे स्कूल चलो अभियान , मध्यान्ह भोजन, लड़कियां को आवागमन भत्ता, प्रतिभा किरण योजना , गांव की बेटी योजना, महिला साक्षरता अभियान आदि चला रही है इसके उपरांत भी महिला साक्षरता दर असंतोषजनक है।अध्ययन क्षेत्र में ग्रामीण क्षेत्रो में लड़के लड़की में जो भेद माना जाता है उसे कम करने की आवश्यकता है तभी लड़कियाँ पढ़ पाएगी और महिला साक्षरता दर में वृद्धि हो सकेगी।

महिलाओं की हायर सेकेण्डरी तक शिक्षा अनिवार्य कर देना चाहिए ताकि माता पिता लड़की को पढाने के प्रति जागरूक हो। ग्रामो में स्कूलो में पर्याप्त शैक्षणिक सुविधा के साथ साथ शोचालयों की भी सुविधा होना चाहिए। स्कूल से कोई लड़की बीच में अध्ययन छोड देती है तो उसका ठोस कारण दर्ज होना चाहिए। शिक्षको को पर्याप्त वेतन के साथ साथ सम्माननीय दर्जा भी मिलना चाहिए तभी अध्ययन क्षेत्र में साक्षरता दर शत प्रतिशत हो सकेगी।

प्रस्तावना – शिक्षा के माध्यम से ही व्यक्ति तथा देश का विकास सम्भव है। निरक्षता समाज को पिछड़ा बनाती है। अत: किसी भी देश के नागरिको के लिए शिक्षा तथा साक्षरता अति आवश्यकता है। जनसंख्या आयोग के अनुसार 'किसी भाषा में एक साधारण संदेश को पढ़ने एवं लिख सकने की क्षमता रखने वाले व्यक्ति को साक्षर कहा जाता है। 'नीमच जिले में पुरूषें की अपेक्षा महिलाओं में साक्षरता दर कम है। यदि महिलाएं अनपढ़ रही तो समाज कभी भी उन्नति नहीं कर सकता। अत: नीमच जिले की तहसीलवार वर्ष 2011 की महिला साक्षरता का अध्ययन प्रस्तुत शोध पत्र में किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र – इस शोध पत्र का अध्ययन क्षेत्र नीमच जिला है जो मध्यप्रदेश राज्य के पश्चिम में स्थित है। इसमें पॉच तहसीले नीमच जावद, जीरन, मनासा एवं सिंगोली है।

शोध प्रविधि – महिला साक्षरता हेतु द्वितीयक आंकड़ों का प्रयोग किया गया है।ये आंकड़े (2011) जिला सांख्यिकी पुस्तिका, नीमच से लिए गए है।

उद्देश्य – अध्ययन क्षेत्र में महिला साक्षरता की वर्तमान स्थिति ज्ञात कर साक्षरता दर में कमी के कारण खोजते हुए साक्षरता दर में वृद्धि करने के सुंझाव देना शोध का उद्देश्य है।

नीमच जिले में महिला साक्षरता दर - तालिका क्रमांक 1

नीमच जिला - तहसीलवार महिला साक्षरता दर 2011(प्रतिशत में)

क्र.	तहसील	साक्षरता दर
1	नीमच	41.58
2	जीरन	39.02
3	जावद	39.08
4	सिंगोली	37.21
5	मनासा	38.46
	नीमच जिला	39.49
	मध्यप्रदेश	60

स्त्रोत : जिला सांख्यिकी पुस्तिका , नीमच

तालिका कमांक 1 से स्पष्ट है कि नीमच जिले की महिला साक्षरता दर नीमच तहसील को छोड़कर सभी चार तहसीलो में 40 प्रतिशत से भी कम है। नीमच जिले की साक्षरता दर केवल 39.49 प्रतिशत है। साक्षरता दर नीमच तहसील में आंशिक रूप से अधिक होने के कारण है नीमच जिला मुख्यालय होने के साथ ही इसके आसपास वाले ग्रामो पर नगरीकरण का प्रभाव है। नीमच जिले में साक्षरता दर कम होने के कारण जीरन और सिंगोली नई तहसीलें है। यहां के नागरिक अधिकांशतया रूढ़िवादी है। अत: ये महिलाओं की शिक्षा के प्रति जागरूक नही है। सिगोली तथा जीरन शहर में भी ग्रामीण परिवेश नजर आता है। इन तहसीलो के ग्रामवासी अपनी लडकियो को स्थानीय स्तर पर प्राप्त शैक्षणिक सुविधा के अनुसार शिक्षा दिलाकर स्कूल छुड़वा लेते है। केवल लड़को को पढ़ाते है। यही कारण है कि महिला साक्षरता दर इन तहसीलो में कम है।

जावद तथा मनासा तहसीले काफी पुरानी है किन्तु इन तहसीलो में औद्योगिकरण नहीं होने से यहां के निवासी परम्परागत तरीके से जीवन यापन करते है तथा ग्रामवासी अपनी लड़कियों के पढ़ाई की तरफ कम ध्यान देते है। यह सोचते है कि लड़की पराया धन है। अत: जल्दी से जल्दी शादी कर उसे विदाकर देते है। यही कारण है कि इन तहसीलो में साक्षरता दर बहुत कम है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि इन तहसीलो में सामाजिक आर्थिक पिछड़ापन महिला साक्षरता दर कम होने के लिए उत्तरदायी है।

महिला साक्षरता दर में वृद्धि हेतु सुझाव –

- अध्ययन क्षेत्र के ग्रामो में पुरूष प्रधान समाज है। लड़कियो के संबंध में यह धारण है कि वे गृह कार्य करेगी। इनका पढने का कोई अर्थ नहीं है। शीघ्र विवाह भी महिला साक्षरता दर कम होने में सहायक है। अत: अधिकांश लड़किया प्राथमिक शिक्षा भी प्राप्त नहीं कर पाती है। अत: अध्ययन क्षेत्र में महिला शिक्षा के प्रति जागरूकता अभियान सतत चलाए जाने चाहिए। प्रत्येक कन्या शिक्षण संस्थओ में महिला शिक्षिका होना चाहिए। प्रत्येक ग्राम में प्राथमिक स्कूल होना चाहिए।
- क्षेत्र के प्रत्येक ग्राम को पक्की सड़को से जोड़ा जाना चाहिए ताकि वर्षा ऋतु में भी यहॉ अध्ययन अध्यापन चले।
- नगरीकरण में वृद्धि होना चाहिए , उद्योग धंधे अधिक स्थापित हो ताकि जनता को रोजगार मिले और महिलाएं भी पढ़ सके और महिला साक्षरता दर में वृद्धि हो।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. चांदना आर.सी. (2002) जनसंख्या भूगोल, कल्याण पब्लिशर्स, न्यू देहली।
2. कुमार, प्रमीला (2006) मध्यप्रदेश एक भोगोलिक अध्ययन, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल।

* सहायक प्राध्यापक (भूगोल) आर. जी. शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.) भारत

Effect Of Locality Areas & Level Of Education On Self Confidence

कमलेश उपाध्याय *

शोध सारांश – अध्ययन का उद्देश्य कक्षा 10वीं तथा 12वीं के ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों के आत्मविश्वास के स्तर का मापन करना था। इसे हेतु 2x2 कारक अभिकल्प का उपयोग किया गया। डॉ. डी.डी. पाण्डे हरिद्धार द्धारा निर्मित आत्मविश्वास अनुसूची का प्रशासन 80 प्रयोज्यों (40 ग्रामीण तथा 40 शहरी) विद्यार्थियों पर यादृच्छिक प्रतिदर्श विधि का उपयोग करते हुए किया गया। अध्ययन के परिणाम दर्शाते हैं कि – **1.** निवास का क्षेत्र (ग्रामीण तथा शहरी) विद्यार्थियों के आत्मविश्वास को .01 विश्वास के स्तर पर प्रभावित करता है। **2.** कक्षा 10वीं के विद्यार्थियों का आत्मविश्वास कक्षा 12वीं के विद्यार्थियों की तुलना में अधिक पाया गया। ($t = 1.92, df = 78, p < .10$) **3.** अध्ययन में सम्मिलित चर निवास का क्षेत्र – ग्रामीण तथा शहरी एवं शिक्षा का स्तर 10 वीं तथा 12 वीं की अन्त: क्रिया प्रयोज्यों के आत्मविश्वास को .01 विश्वास के स्तर पर सार्थक रूप से प्रभावित करती हैं। **4.** आत्म विश्वास का सर्वाधिक स्तर कक्षा 10वीं के ग्रामीण विद्यार्थियों में $M_1 = 40.8$ तथा न्यूनतम स्तर कक्षा 12 वीं के शहरी विद्यार्थियों में $M_4 = 29.6$ पाया गया। **5.** आत्मविश्वास का सर्वाधिक प्रतिशत M_1 52.50% तथा न्युनतम अत्यधिक उच्च आत्मविश्वास 0% पाया गया।

प्रस्तावना – आत्मविश्वास का अर्थ है कि, 'स्वयं की योग्यता में विश्वास' व्यक्ति अपनी योग्यता और क्षमता को जानता है, और समय आने पर उनका उपयोग करता है। आत्मविश्वासी व्यक्ति प्रसन्न, सक्रिय एवं हमेशा निजी कार्य करने एवं अवसर का लाभ उठाने में तत्पर रहता है। युंग ने कहा है कि – 'एक आत्मविश्वासी व्यक्ति बर्हिमुखी होता है। उसे सामाजिक कार्य अच्छे लगते हैं। उसमें नेतृत्व योग्यता होती है। वह उच्च महत्वकांक्षी होता है।[1] आत्मविश्वास को प्रभावित करने में उत्साह का बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान रहता है। उत्साह व्यक्ति के अंदर विश्वास पैदा करने में बहुत मदद करता है। यदि आपको सफलता प्राप्त करनी हो तो अपना समय नहीं गवाना चाहिए। यदि व्यक्ति सफल होगा तो उसका आत्म–विश्वास भी उससे प्रभावित होगा, इसलिए समय का सदुपयोग करना चाहिए।[2] प्रोफेसर राज प्रसाद मानते हैं कि सच्चा आत्मविश्वास आपके स्वयं के आचार–विचार या व्यवहार से प्राप्त होता है। जहाँ आप रहते हो। प्रतिज्ञा करे कि कोई भी कठिनाई, कोई भी दिक्कत आपके सामने कठिन कैसे हो सकती है ? इतने अधिक परिश्रम के साथ प्रयत्न करे कि आप अपने आपकी मदद कर सके। आप स्वीकारे कि कभी–कभी आपको अथक प्रयासों के बाद भी आपको पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं होती है। सकारात्मक आत्मविश्वास कुछ प्रभावों जैसे – मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य अन्य व्यवहार एवं शारीरिक स्वास्थ्यता एवं स्वास्थ्य ये दोनों सभी प्रभावो को कड़ी के रूप में जोड़े रखता हैं।[3] वास्तव में यह हमारा आत्म विश्वास ही है, जिसके बल पर हम अपने – अपने कार्य करते हैं, और उसका फल प्राप्त करते हैं। एक मनोवैज्ञानिक का कथन है कि आत्मविश्वास हमारे मन की उस भावना का नाम है, जिसक बल पर हम किसी कार्य को करते हैं।[4]

Methodology

Objective - अध्ययन का उद्देश्य निम्नांकित समस्याओं का अध्ययन करना था।

1. आत्म–विश्वास पर निवास के क्षेत्र के प्रभाव का अध्ययन करना।
2. आत्म–विश्वास पर शिक्षा के स्तर के प्रभाव का अध्ययन करना।
3. आत्म–विश्वास पर निवास के क्षेत्र तथा शिक्षा के स्तर की अन्त: क्रिया के प्रभाव का अध्ययन करना।

Hypothesis – उपरोक्त समस्याओं के अध्ययन हेतु यह परिकल्पना कि जाती है, कि निम्नांकित समूहों के आत्मविश्वास अनुसूची संबंधी मध्यमान प्राप्ताकों में सांख्यिकीय दृष्टिकोण से कोई सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।

1. निवास के क्षेत्र – ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्र।
2. शिक्षा का स्तर – कक्षा X तथा XII
3. कक्षा X तथा XII के विद्यार्थियों के आत्म–विश्वास संबंधी अंतक्रियाओं के प्राप्ताकों के मध्य।

Sampling - वर्तमान अध्ययन का प्रतिदर्श म.प्र. के नीमच जिले से लिया गया है। ग्रामीण क्षेत्र के लिए ग्राम हर्कियाखाल के शा. हायर सेकण्डरी कोटड़ी ईस्तमुरार से कक्षा 10 वीं तथा 12 वीं में अध्ययनरत् 20–20 विद्यार्थियों को प्रयोज्यों के रूप में लिया गया। इसी प्रकार शहरी क्षेत्र हेतु प्रदत्तों का संग्रहण नीमच जिले के शा. उत्कृष्ट उच्चतर विद्यालय से कक्षा 10 वीं तथा 12 वीं में अध्ययनरत 20–20 विद्यार्थियों को लिया गया। इस प्रकार यादृच्छिक रीति से कुल 80 प्रयोज्यों पर प्रदत्तों का संग्रहण किया गया। जिनकी आयु सीमा 14 से 18 वर्ष के मध्य थी।

Tool used – डॉ. डी.डी. पाण्डे हरिद्धार द्धारा निर्मित आत्म–विश्वास अनुसूची का उपयोग प्रस्तुत शोधकार्य हेतु किया गया है। अनुसूची में कूल 60 पद है। जिनमें प्रयोज्य को सत्य/असत्य की दो श्रेणियों में अपना प्रत्युत्तर देना होता है। अनुसूची में कूल 42 कथन धनात्मक तथा 18 कथन ऋणात्मक है। जिनमें धनात्मक कथनों में असत्य प्रत्युत्तर को तथा ऋणात्मक कथनों में सत्य प्रत्युत्तर को सही के रूप में स्वीकारा गया है। अनुसूची का मानकीकरण

* सहायक प्राध्यापक (मनोविज्ञान) श्री सीताराम जाजू शासकीय कन्या महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.) भारत

1507 विद्यार्थियों पर किया गया है। अनुसूची में T-Score, Z-Score तथा शंताशीय मानक दिए गए हैं। Row-Score की सहायता से भी आत्मविश्वास की श्रेणी के वर्गीकरण हेतु तालिका पृथक से दी गई है। परीक्षण की परीक्षण–पुनर्परीक्षण विश्वसनीयता .88 तथा अर्द्धविच्छेद विधि से .89 पायी गयी है। परीक्षण की वैधता उच्च पायी गयी है।

Design – उपरोक्तानुसार परिकल्पनाओं का परीक्षण करने के लिए 2x2 कारक अभिकल्प का उपयोग किया गया है। अध्ययन के चर निवास के क्षेत्र के दो मूल्य–ग्रामीण तथा शहरी एवं चर शिक्षा के स्तर के दो मूल्य X तथा XII को लिया गया है। इस प्रकार कुल 80 प्रयोज्यों पर यादृच्छिक रीति से प्रदत्तों का संग्रहण किया गया है।

Analysis and Data Interpretation -

तालिका – 1 (देखे अन्तिम पृष्ठ पर)

तालिका क्रमांक 1 जो कि ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों के मध्यमानों, मानक विचलनों तथा t – मुल्य को दर्शाती है। तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि, ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों के मध्यमानों में सार्थक अंतर t = 4.87, df = 78 p < .01 पर पाया गया है। अत: हमारी पूर्व निर्मित शुन्य परिकल्पना **$H0_1$,** विश्वास के स्तर पर .01 अस्वीकृत की जाती है।

तालिका – 2 (देखे अन्तिम पृष्ठ पर) – तालिका क्रमांक 2 जो कि कक्षा 10 वीं तथा 12 वीं के विद्यार्थियों के आत्मविश्वास संबंधी मध्यमानों की सार्थकता के परीक्षण हेतु की गयी t– मुल्य की गणना एवं मानक विचलनों को दर्शाती है। प्राप्त t =1.92, df = 78, p < 0.10 पर सार्थक है। अत: हमारी पूर्वनिर्मित शुन्य परिकल्पना क्रमांक **Ho_2,** विश्वास के स्तर .10 पर अस्वीकृत की जाती है।

तालिका – 3 (देखे अन्तिम पृष्ठ पर) – तालिका क्रमांक 3 जो कि अध्ययन में सम्मिलित दोनों चरों के दोनों आयामों की अन्त: क्रिया के प्रभाव के संबंध में प्रसरण विश्लेषण की गणना को दर्शाती है। तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि कक्षा 10 वीं तथा कक्षा 12 वीं के ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों के आत्मविश्वास के स्तर में सार्थक अन्तर F = 10.625, df = 3,76, P < .01 = 4.04 सार्थक अन्तर पाया गया है। अत: हमारी पूर्वनिर्मित शुन्य परिकल्पना क्रमांक **Ho_3,** विश्वास के स्तर .01 पर अस्वीकृत की जाती है।

तालिका – 4 (देखे अन्तिम पृष्ठ पर) – तालिका क्रमांक 4 जो अध्ययन में सम्मिलित सभी समुहों के मध्यमानों और मानक विचलनों के अन्तरों की और इंगित करती है। तालिका में अंकित धनात्मक संकेत यह तथ्य स्पष्ट करते हैं, कि द्वितीय समुह के मध्यमान/मानक विचलन प्रथम समूह की तुलना में कम पाए गऐ हैं। तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि ग्रामीण क्षेत्र में कक्षा X तथा XII के विद्यार्थियों के आत्मविश्वास में सर्वाधिक अन्तर +5.55 तथा शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों में न्यूनतम अंतर +1.3 पाया गया है। आत्मविश्वास का सर्वाधिक स्तर ग्रामीण क्षेत्र के कक्षा X के विद्यार्थियों में तथा न्यूनतम शहरी क्षेत्र के कक्षा XII के विद्यार्थियों में पाया गया है।

तालिका – 5 व ग्राफ (देखे अन्तिम पृष्ठ पर)

Inferences –

1. ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों का आत्मविश्वास शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की तुलना में अधिक पाया गया। (तालिका क्रमांक 1)
2. कक्षा 10वीं के विद्यार्थियों का आत्मविश्वास कक्षा 12वीं के विद्यार्थियों की तुलना में अधिक पाया गया। (तालिका क्रमांक 2)
3. अध्ययन में सम्मिलित चर निवास का क्षेत्र तथा शिक्षा के स्तर की अन्त: क्रिया आत्मविश्वास के स्तर पर सार्थक प्रभाव डालती है। (तालिका क्रमांक 3)
4. केवल कक्षा 10वीं के विद्यार्थियों की तुलना करने पर ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों के आत्मविश्वास में सर्वाधिक अन्तर +9.9 पाया गया है। जबकि आत्मविश्वास के स्तर में न्यूनतम अन्तर शहरी क्षेत्र के कक्षा 10वीं तथा 12वीं के विद्यार्थियों में +1.3 पाया गया। (तालिका क्रमांक 4)
5. औसत आत्मविश्वास का सर्वाधिक प्रतिशत 52.50% तथा अत्यधिक उच्च आत्मविश्वास का न्यूनतम स्तर 0% पाया गया है। (तालिका क्रमांक 5)

Recommendations –

1. ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों के आत्मविश्वास का स्तर अधिक पाया गया है। यह प्रशंसनीय है, इसे बनाए रखे।
2. कक्षा XII के विद्यार्थियों के आत्मविश्वास कक्षा X के विद्यार्थियों के तुलना में कम पाया गया। इन्हें सुझाव दिया जाता है कि अपने आत्मविश्वास में वृद्धि हेतु परामर्शदाताओं/मनोवैज्ञानिकों, शिक्षकों अथवा वरिष्ठ जनों से सतत् सम्पर्क बनाऐं रखें।
3. अध्ययन में सम्मिलित सभी समुहों के आत्मविश्वास स्तर में वृद्धि हेतु विशेष व्याख्यानों कार्यशालाओं, प्रशिक्षणों पर भी जोर दिए जाने की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. कु. मंजु नागदा, 'आत्मविश्वास मापनी का तुलनात्मक अध्ययन', विक्रम विश्व विद्यालय को प्रस्तुत, स्नातक शोध प्रोजेक्ट सत्र 2012–13
2. कु. अंगुरबाला जाट, 'आत्म विश्वास अनुसूची का तुलनात्मक अध्ययन 'विक्रम विश्व विद्यालय को प्रस्तुत स्नातक शोध प्रोजेक्ट सत्र – 2014

तालिका - 1

ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों के मध्यमानों के अंतरों पर आत्म–विश्वास के प्रभाव को दर्शाती t परीक्षण की तालिका।

निवास का क्षेत्र	N	Means	SD's	Df	t-cal	t-Cri	Decision
ग्रामीण	40	39.03	7.95	78	4.87	2.64	Significant at .01
शहरी	40	30.25	6.03				

तालिका -2

कक्षा X तथा XII के विद्यार्थियों के मध्यमानों के अन्तरों पर आत्म-विश्वास के प्रभाव को दर्शाती tपरीक्षण की तालिका

शिक्षा का स्तर	N	Means	SD's	Df	t-cal	t-Cri	Decision
X	40	35.85	8.25	78	1.92	1.68	Significant at 0.10
XII	40	32.43	7.47				

तालिका -3

प्रसरण विश्लेषण की सारांश तालिका निवास के क्षेत्र तथा शिक्षा के स्तर की अंत: क्रिया के प्रभाव को दर्शाती है।

Source of Variance	Sum of Sqares	Df	Means of Squqre	F – Ratio	F – Cri	Decision
Between	1533.94	3	511.31	10.625	4.04	Significant at .01 Level
Within	3657.55	76	48.31			

तालिका – 4

अध्ययन समुहों के दोनों परिवर्त्यों के दोनों आयामों के मध्यमानों तथा मानक विचलनों के मध्य अंतरों को दर्शाती है –

Locality Area	Rural		Urban		Difference	
Level of Education	Means	SD	Means	SD	Means	SD
X	40.8	6.45	30.9	5.71	+9.9	+0.74
XII	35.25	6.11	29.6	5.49	+5.65	+0.62
Differences	+5.55	+0.34	+1.3	+0.22	+4.25	+0.12

तालिका – 5

आत्म-विश्वास अनुसूची के विभिन्न स्तरों पर अध्ययन समूहों की आवृत्तियों, प्रतिशतों तथा अंशों को अभिव्यक्त करती तालिका

Level of Problems	Category				Total Score	% of Diff. cat.	Degrees
	Rural		Urban				
	X	XII	X	XII			
Very High	0	0	0	0	0	0	0
High	0	2	5	1	8	10	36
Average	4	9	11	18	42	52.5	189
Low	13	8	4	1	26	32.5	117
Very Low	3	1	0	0	4	5	18
Total	20	20	20	20	80	100	360°

आवृत्ति बहुभुज

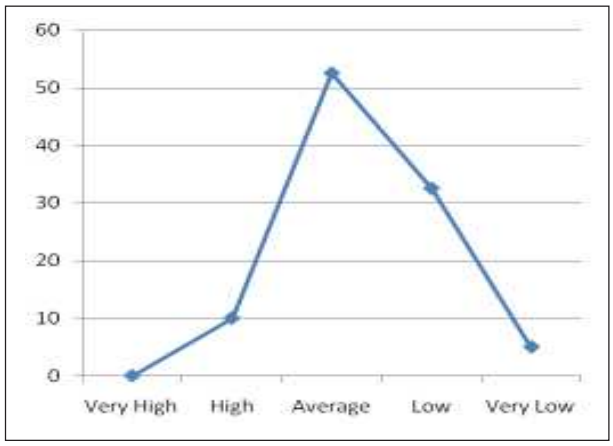

****

महिलाओं के विकास की अभिनव पहल - स्वसहायता समूह

सुधा शाक्य *

शोध सारांश – प्रस्तुत आलेख महिलाओं के विकास में स्वसहायता समूह किस प्रकार सहयोगी है और उसकी क्या भूमिका है उद्देश्य से प्रस्तुत है स्वयं की सहायता मिलजुलकर करने की अवधारणा को लेकर, स्वसहायता समूह की रचना की गई जिसमें सदस्य आपस मे संगठित, संबंद्ध होकर एक दूसरे के प्रति सहयोग, सहायता, सामन्जस्य ऋण लेते हैं, और स्वरोजगार लघु उद्योग प्रारंभ कर कई प्रकार की समस्याओं से मुक्त होकर महिलाएं आर्थिक, सामाजिक रुप से आत्म निर्भर होती हैं साथ ही आत्म विश्वास जागृत कर स्वयं को सशक्त बनाती हैं।

कुंजी शब्द– महिलाओं का विकास, स्वसहायता समूह।

प्रस्तावना – भारत एक कृषि एवं ग्रामीण प्रधान देश है इसी संदर्भ में महात्मा गांधी जी ने कहा था कि भारत का विकास गांवों के विकास पर निर्भर करता है। देश की लगभग 70 प्रतिशत से अधिक आबादी ग्रामीण अंचलों में निवास करती है। 2012–13 के आर्थिक सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ है कि जहां 2004–05 में ग्रामीण क्षेत्र में 42 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहे हैं। अब 2009–10 में 33.8 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहे हैं। इस प्रकार 8 प्रतिशत की गिरावट आई है वहीं शहरों में 5 प्रतिशत की गिरावट आई है। ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की स्थिति सुधारने और विकास हेतु शासन द्वारा कई प्रयास किये जा रहे हैं। महिलाओं चारदीवारी से निकलकर सामाजिक, आर्थिक एवं मानसिक रुप से स्वयं को सशक्त करने हेतु आज महिलाओं को ही प्रयास करने होंगे। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर नई स्वरोजगार योजना, 'स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना' प्रारंभ की गई जिसके तहत 1 अप्रैल 1999 में नये परिवर्तन किये गये, और स्वरोजगार की सभी चल रही योजनाओं को मिलाकर यह नई योजना बनाई गई। गांवों में 65 से 70 प्रतिशत से अधिक महिलाएं आज भी गरीबी रेखा के नीचे जीवन बिता रही हैं। परिवार एवं स्वयं की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति उन्हें गांव में ही या तो साहूकारों से कर्ज लेना होता है या अपना सामान गिरवी रखना पड़ता है। इस तरह उनसे अधिक ब्याज लेकर उनका शोषण किया जा रहा है। संगठन में शक्ति होती है इसी संप्रत्यत को लेकर महिलाओं की विभिन्न समस्याओं के निराकरण हेतु 'स्वसहायता समूह योजना 1 अप्रैल 1999 से प्रारंभ की गई। इसका उद्देश्य आपसे में मिलकर सामाजिक–आर्थिक समस्याओं का समाधान करना है। महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने, अल्प बचत को प्रोत्साहित करने, साहूकारों के चंगुल से मुक्त करवाने आत्म विश्वास बढ़ाने, स्वरोजगार करने, आदि के लिए 'स्वसहायता समूह का गठन किया गया।

स्वसहायता समूह की संरचना – अपने लक्ष्य की प्राप्ति दो या अधिक व्यक्ति मिलकर सामाजिक अंत: क्रिया करते हैं, तो वह समूह बन जाता है। उभयनिष्ठ लक्ष्य के लिए व्यक्तियों में अत: संबद्धता से संगठित होते हैं और मानकों एवं नियमों के अनुसार अपने व्यवहार को संचालित कर समूह की व्यवस्था बनाते हैं, और इस प्रकार एक समूह की संरचना होती है। ठीक इसी अवधारणा के आधार पर स्वसहायता समूह की संरचना निर्धारित की गई है। इसमे 15 से 20 सदस्यों की संख्या होती है। तथा सभी सदस्य गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले होते हैं। सभी सदस्यों की सहभागिता एवं संबंद्धता होना अनिवार्य है। समूह के सदस्यों में आपस में एक दूसरे के प्रति वफादारी, सहानुभूति, सहयोग, सहायता, सामंजस्य तथा ईमानदारी होती है। मेहरा एवं अन्य (2010) ने इंदौर जिले में स्वसहायता समूह के 80 सदस्यों पर अध्ययन कर पाया कि इससे महिलाओं में आर्थिक स्थिति में सुधार, परिवार के कल्याण हेतु निर्णय क्षमता में वृद्धि राजनैतिक गतिविधियों में वृद्धि तथा स्वयं का विकास कर सशक्त बनाया।

स्वसहायता समूह की कार्य पद्धति – आज मंदी के दौर में कोई भी देश ऐसा नहीं है जो इससे दूर रह सका है। परंतु भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था मंदी के दौर से अछूती, जैसी की तैसी चल ही नहीं रही बल्कि मजबूती से उभर रही है। इसका एक बहुत बड़ा कारण ग्रामीण अर्थव्यवस्था का कुटीर उद्योगों एवं कृषि पर निर्भर रहना और इसी ने आज देश की स्थिति को मजबूत बना दिया है। जिसमे स्वसहायता समूह का भी कुछ अंश तक योगदान है। इस समूह के द्वारा महिला सदस्यों को अल्पबचत के लिये प्रोत्साहित किया जाता है। जिससे वे अपनी समस्याओं को समाधान आपसी सामांजस्य एवं सहयोग से कर सकें। महिलाओं को संगठित कर आत्मनिर्भर बनाने हेतु प्रेरित किया जाता है। साथ ही गरीब महिलाओं के जीवन स्तर को सुधारने एवं लघु उद्योग करने के प्रयास किये जाते हैं। साहूकारों के चंगुल से छुड़वाने, आय में वृद्धि, रोजगार करने, आत्मविश्वास, मनोबल एवं स्वाभिमान जागृत करने तथा सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति में सुधार महिलाओं को स्वावलंबी एंव सशक्त बनाया जाता है। चौहान एम.(2014) ने अध्ययन में पाया कि 92 प्रतिशत महिलाओं का कहना है कि स्वसहायता समूह की सदस्यता लेने पर आय में वृद्धि हुई है एवं साहूकारों के चंगुल से मुक्ति मिली है, उपभोग संरचना पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है तथा 75.56 प्रतिशत महिलाओं का कहना है कि अब हम पहले की तुलना में अधिक पौष्टिक भोजन एवं नए वस्त्रों का प्रयोग करने लगे हैं।

सुझाव –

- गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाली महिलाओं को स्वसहायता समूह से अवश्य जुड़ना चाहिए।
- घरेलू खर्च व अन्य खर्च को निकाल कर अल्पबचत पर जरुर ध्यान देना चाहिए।
- महिलाओं में स्वसहायता समूह के द्वारा वित्तीय समावेशन की समझ विकसित करना चाहिए।

* सहायक प्राध्यापक (मनोविज्ञान) शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नरसिंहपुर (म.प्र.) भारत

- स्वसहायता समूह को लघु उद्योग की विस्तृत जानकारी उपलब्ध करवाना चाहिए जिससे वे स्वरोजगार कर सके।
- स्वसहायता समूह से प्राप्त ऋण का उचित कार्यो में खर्च करने के लिए परामर्श देना चाहिए।

निष्कर्ष – महिलाओं की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति सुधारने, साहूकारों के चंगुल से मुक्त करने आदि समस्याओं के समाधान में स्वसहायता समूह की मुख्य भूमिका है साथ ही महिलाओं में इससे जुड़ने के पश्चात् आत्मनिर्भरता, स्वावलंबन, आत्म विश्वास एवं सशक्तिकरण के स्तर में वृद्धि होती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. चौहान, एम. (2014)-स्वसहायता समूह से लाभान्वित ग्रामीण महिलाओं का आर्थिक विकास, एक अध्ययन (धार जिले के विशेष संदर्भ में), नवीन शोध संसार जर्नल, ख(8) पृ. 82
2. हरनैन, एन. (1994), नवीन सामाजिक मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा (उ.प्र.) पृ.. 211
3. खरे एस. (2013), ग्राम विकास का सशक्त माध्यम स्वसहायता समूह- एक अध्ययन, NSS (An International Refreed Research Journal, 1(3),143-144
4. Vidyakala, K. Poornima, S. and Nithyakala, K. (2014) A study on Role of self- Help Group. in women Empowerment, Indian Journal of Applied Research 4(4), 1-3

****

कामायनी में मानस विज्ञान

डॉ. गायत्री वाजपेयी *

प्रस्तावना – हिंदी साहित्येतिहास के आधुनिक काल को अपनी सशक्त लेखनी से समृद्धि के शिखर पर ले जाने वाले बहुआयामी प्रतिभा के धनी शीर्षस्थ रचनाकार जयशंकर प्रसाद कृत 'कामायनी' एक सर्वोत्कृष्ट महाकाव्य है। यह एक ऐसा मानस विज्ञान है जिसमें मन की प्रकृति, उसमें उठने वाली विविध भावनाओं का सूक्ष्म विश्लेषण है। कामायनीकार ने इसमें सम्पूर्ण मनुष्यता का मनोवैज्ञानिक इतिहास सोपानबद्ध प्रस्तुत करते हुये चिन्मय आनन्दवाद का शुभ सन्देश सम्प्रेषित किया है जिसके सम्बन्ध में 'तैत्तिरीयोपनिषद' में कहा गया है –'आनंद ही ब्रह्म है इसी आनंद से समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं इसी में जीते हैं और अंत में इसी में मिल जाते हैं।[1] मन मानव शरीर के अन्दर विद्यमान एक ऐसा तत्व है जो विभिन्न जगहों पर रहते हुये विभिन्न कार्य करता है। मन चंचल है इसलिए उसकी स्थिति सदैव एक–सी नहीं रहती, वह प्रतिपल बदलती रहती है। 'श्रीमद्भगवद्गीता' में भगवान श्रीकृष्ण ने इसका संकेत करते हुये कहा है –

चञ्चलं हि मन: कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोखि सुदुष्करम्।।[2]

यह मन ही मानव जीवन का संचालक है यह बंधन और मोक्ष का कारण भी है इसीलिए भारतीय मनीषियों ने मन को वश में करने का उपदेश दिया है। प्रसाद जी ने मन की तुलना सरोवर से की है उनका मानना है कि जिस प्रकार सरोवर में अनेक तरंगें उठती रहती हैं उसी तरह मन में भी नित्य अनेकानेक मधुर तरंगें उठती रहती हैं। 'कामायनी' में 'चिन्ता' सर्ग से लेकर 'आनन्द' सर्ग तक मन की विविध दशाओं का सुन्दर विश्लेषण किया गया है। कामायनीकार ने सर्वप्रथम चिन्ता नामक मनोवृत्ति का विश्लेषण किया है। चिन्तन या मनन मन का मूल व्यापार है। चिन्ता में मानसिक उथल–पुथल ज्यादा रहती है कर्म की प्रवृत्ति का अभाव रहता है। पाश्चात्य मनोविज्ञानवेत्ता मानते हैं कि जब वास्तविक कर्म सम्भव नहीं होता, तब चिन्ता उस वास्तविक कर्म की स्थानापन्न हो जाती है अर्थात् वास्तविक कर्म के अभाव में चिन्ता का उदय होता है।[3] कामायनी की कथा में प्रलय के कारण सब कुछ नष्ट हो जाने के कारण एकाकी बैठे मनु के सम्मुख जीवन का कोई उद्देश्य नहीं है। इस स्थिति में चिन्ता का उदय स्वाभाविक है लेकिन चिन्ता का अन्त चिन्ता से नहीं होता बल्कि चिन्ता जितनी की जाती है वह उतनी ही बढ़ती है–

चिन्ता करता हूँ जितनी उस अतीत की उस सुखकी।
उतनी ही अनन्त में बनती जाती रेखाएँ दु:ख की।[4]

किन्तु चिन्ता जहाँ अभिशाप है, वहीं वरदान भी है इसी चिन्ता की कुक्षि से आशा की मंगल किरण प्रस्फुटित होती है। जिसकी स्वप्निल मधुरिमा के स्पर्शमात्र से मन मयूर झूम उठता है। आशा मन में नवीन उत्साह व उमंग का संचार कर देती है। मानव मन जीवन पथ पर अग्रसर होता है उसमें सहानुभूति की भावना जाग पड़ती है। आशा के क्षणिक प्रकाश और चिन्ता के अंधकार मध्य जीवन का बोझ ढ़ोता मन अधीर हो जीवन सहचर की आवश्यकता महसूस करने लगता है –

कब तक और अकेले ? कह दो हे मेरे जीवन बोलो ?[5]

चंचल मन में जीवन और जगत की जटिलताओं को समझने और सुलझाने हेतु अनवरत् संघर्ष चलता रहता है कभी हताशा तो कभी आशा के बीच झुलते मन में एक पुनीत भावना जाग्रत होती है और वह है श्रद्धा। इस श्रद्धा भाव के प्रादुर्भाव से जीवन के प्रति मन का एक पक्षीय विचार छिन्न–भिन्न हो जाता है श्रद्धा वस्तुत: विवेक शक्ति है जिसके माध्यम से मानव बुद्धि को जीवन के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान होता है। 'श्रीमद्भगवद् गीता' में श्रद्धावान् को ही ज्ञान का अधिकारी बतलाया गया है –

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्पर: संयतेन्द्रिय:।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधि गच्छति।।[6]

यहाँ स्पष्ट है मन जब आस्तिक्य भाव, रागात्मिका वृत्ति, विश्वास, प्रीति एवं आसक्ति की ओर उन्मुख होता है तो उसका सम्बंध श्रद्धा से जुड़ जाता है क्योंकि ये सभी गुण श्रद्धा के है। श्रद्धा हृदय की संकल्प क्रिया है जिससे विश्वास का आविर्भाव होता है। वह दया, माया, ममता, मधुरिमा आदि भावनाओं के योग से विधाता की इस कल्याणमयी सृष्टि को सफल बनाती है –

दया माया ममता लो आज, मधुरिमा तो अगाध विश्वास,
प्यारा हृदय रत्ननिधि स्वच्छ तुम्हारे लिए खुला है पास।
बनो संसृति के मूल रहस्य, तुम्हीं से फैलेगी वह बेल,
विश्व भर सौरभ से भर जाय, सुमन के खेलो सुंदर खेल।[7]

श्रद्धोन्मुख मन कामाभिभूत हो उठता है। श्रद्धा से संबंध स्थापित होते ही मन में भविष्य निर्माण की अभिलाषा जाग्रत हो उठती है। कण–कण में उसे लोकोत्तर आकर्षण दिखलाई देता है। आनन्द और उल्लास से आप्लावित मन चारों ओर उत्सव की चहल–पहल देखता है। जिसकी ओर इंगित करते हुये कामायनीकार प्रसाद जी लिखते हैं –

यह नीड़ मनोहर कृतियों का यह विश्व कर्म रंग स्थल है।
है परम्परा लग रही यहाँ ठहरा जिसमें जितना बल है।[8]

हठयोग साधना में कामवृत्ति के दमन पर बल दिया गया है लेकिन कामायनीकार उसके उन्नयन के पक्ष में है। काम के पाश में जड़ एवं चेतन सभी आबद्ध हैं उसके प्रभाव से विश्व मनोहर कृतियों का सुन्दर नीड़ व कर्म स्थल बन जाता है। गीता में आसक्ति से काम की उत्पत्ति बतलाई गई है। श्रद्धा के प्रति आसक्त मन में काम का जाग्रत होना स्वाभाविक है। काम एक ऐसी अविच्छिन्न तृष्णा है जिसका उन्नयन मानव मांगल्य का सूचक है लेकिन यदि उस पर समुचित नियंत्रण नहीं किया गया तो वह वासना का रूप धारण कर लेती है। वासना काम का ही व्यक्त रूप है जो मंगलकारी एवं अमंगलकारी

* प्राध्यापक (हिंदी) शासकीय महाराजा स्नातकोत्तर स्वशासी महाविद्यालय, छतरपुर (म.प्र.) भारत

ढोनों है। वासना चाहे जिस रूप में हो मन को अशांत किये रहती है उससे उद्भ्रान्त उत्तेजना की चिनगारियाँ निकलती हैं और मन के अन्दर मधुर ज्वाला धधकती है। मनोवेग वातचक्र बनकर मन का मंथन करता है धैर्य का बांध टूट जाता है। प्रसाद जी लिखते हैं –

छूटती चिनगारियाँ उत्तेजना उद्भ्रान्त ।
धधकती ज्वाला मधुर था वक्ष विकल अशांति।
वातचक्र समान कुछ था बाँधता आवेश,
धैर्य का कुछ भी न मनु के हृदय में था लेश।[9]

वासना के गर्भ से लज्जा का उद्भव होता है लज्जा अपने आप में एक सूक्ष्म मंगलवृत्ति है। जिससे विचार वृत्ति पनपती है। लज्जा का काम चंचल किशोर सुन्दरता की रक्षा करना है। वह उच्छंखल मन को महिमा, गौरव, शालीनता और सावधानी का पाठ पढ़ाती है तथा चपलता के कारण लगने वाली ठोकरों से सतत् रक्षा करती है –

मैं एक पकड़ हूँ जो कहती ठहरो कुछ सोच विचार करो।
चंचल किशोर सुन्दरता की मैं करती रहती रखवाली,
मैं उसी चपल की धात्री हूँ गौरव गरिमा सिखलाती हूँ
ठोकर जो लगने वाली है उसको धीरे से समझाती हूँ।[10]

यहाँ यह ध्यातव्य है कि वासना नामक यह मनोभाव जब तक मन के अन्दर रहता है तो उसका कुछ पता नहीं चलता लेकिन जैसे ही वह अभिव्यक्त होता है तो लज्जा के रूप में प्रकट हो उठता है। अत: वासना यदि मानसिक है तो लज्जा शारीरिक है। साहित्यशास्त्र में इसे ब्रीड़ा नामक संचारी भाव के रूप में स्वीकार किया गया है। चंचल मन लज्जा की वर्जनाएँ स्वीकार नहीं करना चाहता। परिणामस्वरूप इच्छानुकूल सिद्धान्त बनते हैं और तर्क के द्वारा उनका समर्थन किया जाता है। रजोगुण से अभिभूत मन तमोगुण की ओर उन्मुख होता है ऐसी स्थिति में अकरणीय भी करणीय बन जाता है। आचारसंहिता के अनुसार कार्य न करने वाले आसुरी वृत्ति सम्पन्न ऐसे मन के संबंध में 'श्रीमद्भगवद्गीता' में भगवान कृष्ण ने कहा हैं–

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुरा:।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यंते।।[11]

इस भ्रान्तपूर्ण अवस्था में दस्युवृत्ति जागकर भ्रष्ट मन को उच्छंखलता की ओर ले जाती है। निर्बाध आनंद की खोज में काम यज्ञ सम्पन्न होता है। इन्द्रिय तृप्ति मन की साध हो जाती है। मन भावना से अनुप्रेरित हो वर्चस्व स्थापन हेतु कर्मरत होता है। कामायनीकार के शब्दों में –

श्रद्धा के उत्साह वचन फिर काम प्रेरणा मिल के।
भ्रान्त अर्थ वन आगे आये बने ताल थे तिल के।
इन्द्रिय की अभिलाषा जितनी सतत् सफलता पावे।
जहाँ हृदय की तृप्ति विलासिनी मधुर मधुर कुछ गावे।[12]

आसुरी वृत्ति से आक्रान्त मन में ईर्ष्या भाव पनपने लगता है। संयम के बंधन ढ़ीले पड़ने लगते हैं। वह सभी अंकुशों का परित्याग कर मार्ग–अमार्ग का विचार त्याग आगे बढ़ने लगता है। हिंसा उसे अपनी ओर आकर्षित करने लगती है। जो उसके पास है उससे उसे सन्तोष नहीं होता। उसकी महत्त्वाकांक्षा इतनी बढ़ती जाती है कि सदैव उसे कोई न कोई अभाव खटकता ही रहता है वह सुख की बूंद नहीं सागर ही पा लेना चाहता है। स्वार्थ कलुशित मन जब स्वार्थ साधना में व्यवधान उपस्थित देखता है तो उसकी ईर्ष्या बढ़ती ही जाती है अपनी अहमन्यता की रक्षा के लिए वह सम्पूर्ण संसार में एकतत्व बन कर रम जाना चाहता है उसे लेशमात्र भी पराधीनता स्वीकार नहीं होती। ईर्ष्या की अग्नि में जलता हुआ वह पराधीनता को महादु:ख समझने लगता है तथा निर्बाध सुख व अधिकार की खोज में कण्टकाकीर्ण मार्ग पर चल पड़ता है –

यह जलन नहीं सह सकता में चाहिए मुझे मेरा ममत्व।
इस पंचभूत की रचना में मैं रमण करूँ बन एक तत्व।।[13]

ईर्ष्याग्रस्त मन असहिष्णु और अनुदार हो जाता है उसका संतुलन डगमगाने लगता है उसे पग–पग पर मुसीबतों और विफलताओं का सामना करना पड़ता है। उसे प्रतिपल अपनी विफलता और लघुता की अनुभूति होती है। ईर्ष्याजन्य मन के असन्तुलन में बुद्धि आलोक प्रखर होता है तर्क जाल फैलता है। त्रिगुण की कठोर ग्रन्थि में बंधा मन ज्ञान–विज्ञान के अभिमान से भर उठता है निर्मम बुद्धि उसके जीवन की नियामिका बन जाती है –

हां तुम ही हो अपने सहाय
जो बुद्धि कहे उसको न मानकर फिर नर किसकी शरण जाय।[14]

पाश्चात्य विचारकों की दृष्टि में बुद्धि जीवन की नई समस्याओं और स्थितियों से समायोजन करने की सामान्य मानसिक योग्यता है। मन के दो ही क्रीडा स्थल है एक हृदय और दूसरा बुद्धि। जब हृदय के प्रति उसका आकर्षण नहीं रहता तो वह बुद्धि को अपनी लक्ष्य प्राप्ति का साधन मान लेता है। और उसकी शरण में चला जाता है लेकिन जब विकृत बुद्धि मन का नियमन करने लगती है तब मन की भावनाएँ स्वतन्त्र नहीं रह पाती हैं। यही मन एवं बुद्धि के द्वन्द्व का कारण है। इस द्वन्द्वात्मक स्थिति में श्रद्धा का मूल्यांकन संभव नहीं है। बुद्धि मन की मार्गदर्शिका बनकर उसे स्वप्न की रंग–बिरंगी दुनिया में ले जाती है लेकिन ईर्ष्याग्रस्त दिवास्वप्न में डूबा मन दूसरों पर तो नियंत्रण करना चाहता है लेकिन स्वयं पर किसी का भी नियंत्रण स्वीकार नहीं करना चाहता है। उसकी महत्त्वाकांक्षा इतनी बढ़ जाती है कि वह बुद्धि को भी अपने वश में करने की चुनौती दे बैठता है –

यह सारस्वत देश तुम्हारा तुम हो रानी।
मुझको अस्त्र बनाकर करती हो मनमानी।।[15]

मन द्वारा बुद्धि को दी गई इस चुनौती के साथ ही संघर्ष का प्रारंभ होता है यह संघर्ष मन में संचित काम, वासना, कर्म, ईर्ष्या आदि दुर्वृत्तियों के सामूहिक विस्फोट का ही प्रतिफल है। मन और बुद्धि के संघर्ष में मन पराजित हो धराशायी होता है –

और गिरी मनु पर मुमर्शु वे गिरे वहीं पर
रक्त नदी की बाढ़ फैलती थी उस भू पर।[16]

अन्ततोगत्वा संघर्ष जर्जर मन में निर्वेद भाव पैदा होता है। निर्वेद दु:ख, ग्लानि एवं विरक्ति आदि के योग से उत्पन्न एक मिश्रित चितवृत्ति है। भारतीय शास्त्रों में निर्वेद नामक मनोभाव की उत्पत्ति उस समय बतलायी गई है, जिस समय किसी इष्टजन का वियोग हो जाता है, दारिद्र, व्याधि अथवा दु:ख घेर लेते हैं, अपमान होता है, ईर्ष्या उत्पन्न होती है अथवा तत्त्वज्ञान उत्पन्न हो जाता है। कामायनी में कुछ ऐसी ही परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं जिस कारण से मनु अर्थात मन का समस्त ऐश्वर्य नष्ट हो जाता है आघात सहने के कारण उसे व्याधि या दु:ख घेर लेते हैं प्रजा द्वारा उसका तिरस्कार भी होता है उसमें ईर्ष्या भी उत्पन्न होती है और वह तत्वज्ञान की ओर उन्मुख होता हैं तत्वज्ञान द्वारा वैराग्य का उत्कर्ष होने पर शान्त रस की प्रतीति होती है। 'श्रीमद्भगवद्गीता' में कहा गया है –

विहाय कामान्य: सर्वान्पुमांश्चरति नि:स्पृह:।
निर्ममो निरहंकार: स शान्तिमधिगच्छति।।[17]

अर्थात जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओं को त्याग कर ममता–रहित, अहंकार रहित और स्पृहा रहित, व्यवहार करता है वह शान्ति को प्राप्त करता है। 'दर्शन' सर्ग में मनु के मन की यही स्थिति है। वह संसार की समस्त कामनाओं,

अहंकार, ममता, स्पृहा आदि से विमुख एक मात्र तत्वज्ञान के प्रति आस्थावान हो जाने के कारण भक्ति, विनम्रता एवं विराट शक्ति में विश्वास आदि से भर उठते हैं। श्रद्धा से उनका पुनर्मिलन मन एवं चेतना का एक होना है। शास्त्रानुसार मन से बुद्धि, बुद्धि से चित्त और चित्त से अहंकार अधिक सूक्ष्म है। जब तक मन बुद्धि के नियंत्रण में रहता है तब तक वह भटकता रहता है। आनन्द प्राप्ति के लिए उसे बुद्धि की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म तत्व चेतना के निर्देश की आवश्यकता होती है। उसे श्रद्धा के रूप में चेतना पुन: प्राप्त होती है। चेतना की वापिसी ही आत्मस्वरूप की प्राप्ति है। उसे ही आत्मदर्शन कहा गया है। चेतना के योग से मन को शिवत्व के दर्शन अखण्ड आनन्द घन नटराज शिव के रूप में होते हैं। शिव का साक्षात्कार होते ही मन को तत्व का आभास होने लगता है उसे सांसारिक विभीषिकाओं एवं विषमताओं के मूलकारण का ज्ञान हो जाता है वह जान जाता है कि इच्छा, ज्ञान और क्रिया के पृथक-पृथक रहने से ही समस्त परेशानियाँ पैदा होती हैं। श्रद्धा मन को अपनी दुर्बलता पर विजय प्राप्त करने की प्रेरणा देती है। श्रद्धा का अवलम्ब ग्रहण कर मन अपनी मानसिक दुर्बलताओं पर विजय प्राप्त कर उसक स्थान पर पहुँचता है जहाँ दिशा एवं काल का कोई चिह्न नहीं रह जाता है। श्रद्धा ही आनन्द का रहस्योद्घाटन करते हुये यह बतलाती है कि इच्छा पाप पुण्य की जननी है ज्ञान विषमता का प्रसार करता है कर्म भीषणता फैलाता है। अत: जब तक इच्छा, कर्म एवं ज्ञान अलग-अलग हैं तब तक आनंद की प्राप्ति असम्भव है। आनन्द की प्राप्ति इन तीनों के समन्वय में है। मनोविज्ञान में भी मन की तीन प्रवृत्तियाँ ज्ञान, इच्छा और क्रिया मानी गई हैं इन तीनों के परस्पर संलग्न रहने से मन का विकास होता है और इनके अलग-अलग होने पर मन में भी विषमता पैदा हो जाती है। 'कामायनी' के 'रहस्य' सर्ग में यही उद्घाटित किया गया है परन्तु यहाँ इच्छा, क्रिया एवं ज्ञान यह क्रम निर्धारित है कामायनीकार यहाँ मन के क्रमिक विकास को प्रस्तुत करना चाहते हैं इसलिए पहले भाव लोक में इच्छा का दिग्दर्षन कराया है उसके उपरान्त कर्मलोक में क्रिया अर्थात सतत कर्मो की प्रधानता दिखलाई गई है। इसके अनन्तर ज्ञान लोक में ज्ञान की प्रधानता बतलाई गई है जो भाव लोक और कर्म लोक से ऊपर है यहाँ मनुष्य दोनों लोक से विरक्त हो जीवन के परम उद्देश्य आनंद को प्राप्त करने हेतु प्रयत्नरत होता है। 'कामायनी' के अन्तिम 'आनंद' सर्ग में मन को जीवन के चरम लक्ष्य आनन्द को प्राप्त करते हुये दिखलाया गया है। यह मन के क्रमिक विकास की अन्तिम अवस्था है। मन जब श्रद्धायुक्त हो जाता है तो उसमें पवित्रता, निर्मलता, आस्तिकता एवं भक्ति आदि भाव पैदा हो जाते हैं। संसार की वास्तविकता का ज्ञान हो जाने पर मन की विभेदात्मक बुद्धि नष्ट हो जाती है। और अन्त में निर्विकार मन अप्रतिम आनन्द की प्राप्ति करता है। तथा स्व और पर के द्वैध से विरत हो सम्पूर्ण चराचर जगत में एक ही चेतना की अनुगूँज सुनता हुआ जीवन के चरम लक्ष्य अखण्ड आनंद में लीन होता है -

चिर मिलित प्रकृति से पुलकित वह चेतन पुरुष पुरातन।
निज शक्ति तरंगायित या आनंद अम्बुनिधि शोभन।।[18]

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि 'कामायनी' में मन के क्रमिक विकास का बड़ा ही सूक्ष्म विश्लेषण मनोवैज्ञानिक धरातल पर हुआ है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. तैत्तिरीयोपनिषद - 3/6
2. श्रीमद्भगवतद्गीता 6/34
3. ले. सिन्हा- मनोविज्ञान पृ. 78
4. जयशंकर प्रसाद - कामायनी चिन्ता सर्ग पृ. 8
5. वही आशा सर्ग पृ. 19
6. श्रीमद्भगवद्गीता 4/39
7. जयशंकर प्रसाद - कामायनी श्रद्धा सर्ग पृ. 25
8. वही, काम सर्ग पृ. 31
9. वही, वासना सर्ग पृ. 39
10. वही, लज्जा सर्ग 43, 44
11. श्रीमद्भगवद्गीता 16/07
12. जयशंकर प्रसाद - कामायनी कर्म सर्ग पृ. 46, 55
13. वही, ईर्ष्या सर्ग पृ. 63
14. वही, इड़ा सर्ग पृ. 73
15. वही, संघर्ष सर्ग पृ. 92
16. वही, इड़ा सर्ग पृ. 96
17. श्रीमद्भगवद्गीता 2/71
18. जयशंकर प्रसाद - कामायनी आनंद सर्ग पृ. 286

****

वैश्वीकरण का परिवेश और हिन्दी कथा साहित्य

ज्योति कौशिक *

प्रस्तावना – आधुनिक युग का विश्लेषण करने के लिए वैश्वीकरण, जगती –करण, बाजारीकरण, नव–साम्राज्यवाद, नव–उदारवाद, भूमण्डलीकरण आदि विशेषणों का प्रयोग किया जाता है। ये सभी 'वैश्वीकरण' के ही अलग–अलग नाम हैं जो उसके विविध पक्षों में से किसी एक विशिष्ट पक्ष को रेखांकित करते हैं।

अठारहवीं शताब्दी तक दुनिया का इतिहास सामान्यत: अपने–अपने महाद्वीपों में ही बन्द रहा, राज्यों का निर्माण हुआ, पारस्परिक व्यापारिक और सांस्कृतिक सम्बंध भी रहे, युद्ध भी हुए अंन्तर्राष्ट्रीयता के बीच वैश्वीकरण की प्रकिया और इच्छा आदिकाल से ही परिलक्षित होती है। व्यापारिक व सांस्कृतिक आदान–प्रदानों ने एक अन्तर्राष्ट्रीय प्रकिया को जन्म दिया। वैश्वीकरण का अर्थ है विश्व के सभी राष्ट्रों को परस्पर सम्बन्धों के सूत्र में बंध जाना। 'अठाहरवीं शताब्दी के बाद जब वैज्ञानिक विकास तीव्र गति से हुआ तो अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध और भी अधिक घनिष्ठ हो गये। वैज्ञानिक सुविधाओं ने जो संचार साधन उपलब्ध कराये वे इस दिशा में क्रांतिकारी सिद्ध हुए। सभी राष्ट्र अपने–अपने स्वार्थो को केन्द्र में रखकर दूसरे राष्ट्रों के साथ सम्बन्ध स्थापित करते रहे। परन्तु स्वार्थो की टकराहट ने राष्ट्रीयता के बोध को और सघन कर दिया। बीसवीं शताब्दी के राजनैतिक सम्बन्धों में दुनिया के राष्ट्रों को अपेक्षाकृत अधिक निकट कर दिया। सांस्कृतिक व व्यापारिक सम्बन्धों के साथ–साथ राजनैतिक संबन्धों में भी निकटता आई।

आज का वैश्वीकरण, बाजारीकरण, उदारीकरण का प्रभाव हमारे चारों तरफ फैला हुआ इसका परिवेश दिन प्रतिदिन बढता ही जा रहा है। परन्तु वास्तविकता यह है कि सम्पूर्ण बाजारवादी प्रक्रिया अमेरिकी महाशक्ति की और अधिक प्रभावी बनाने की ओर उन्मुख है। सूचना प्रौद्योगिकी ने एक ऐसी क्रांति को जन्म दिया है कि सम्पूर्ण विश्व बहुत छोटा हो गया है। इससे सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में तो परिवर्तन आया ही है किन्तु इस प्रौद्योगिकी का सबसे बड़ा लाभ उद्योग जगत को हुआ हैं। जहाँ तक भारतीय स्थिति की बात है वहाँ बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के कारण भारत के ग्रामों में चलने वाले सभी कुटीर उद्योग धन्धें बन्द हो गए है। प्रत्येक क्षेत्र के लघु उद्योग दम तोडकर बैठ गए हैं। वे बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के उत्पादों का सामना नहीं कर पा रहे रहें है। राजनैतिक स्तर पर चाहे जो भी घोषणा हो रही हो परन्तु भारत सरकार भारतीय उद्योगों को बचाने में असमर्थ है। फिर भी इस प्रकिया का दूसरा पक्ष यह है कि भारत की कम्पनियाँ भी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का अंग बन कर अपने उत्पादों को विदेशों में प्रचारित और प्रसारित कर रही हैं। वैश्वीकरण बाजारवादी दृष्टिकोण से ही प्रत्येक वस्तु का आंकलन करता है वह ईश्वर से प्राप्त प्रतिभा को भी खरीदने की बाजारू चीज बना देता है। लोक संस्कृति और उससे जुडी भावनाओं को प्रदर्शन के लिए बाजार में ले आता है। डाँडियाँ, नृत्य जैसे धार्मिक अनुष्ठानों को व्यापार के लिए आयोजित करता है, सौंदर्य प्रतियोगिताएँ आयोजित करता है और विश्व सुन्दरियों विश्व प्रसिद्ध अभिनेताओं को विज्ञापन के लिए खरीद लेता है। सांस्कृतिक विषयों से जुड़ी भावनाओं का उपयोग अपने विज्ञापन के लिए करता है। हल्दी, चंदन, बबूल, नीम आदि के साथ हमारी भावनाओं का जो लगाव है उसका उपयोग कर वह अपने उत्पादों को बाजार में उतार देता है। वैश्वीकरण और उदारीकरण का एक स्पष्ट प्रभाव यह दिखाई देता है कि आज का व्यक्ति राष्ट्र को छोडकर अन्तर्राष्ट्रीय बनने का प्रयत्न कर रहा है। बीसवीं शताब्दी में प्रचलित 'वैश्वीकरण की अवधारणा को ही नव–संस्करण कहा जा सकता है। सन 1960 के दशक में इसका प्रयोग सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में किया जाता था। 1980 के दशक से यह अंतर्राष्ट्रीय धरातल पर मजबूती के साथ उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात अनेक पाश्चात्य और भारतीय विद्धानों द्वारा इसके स्वरूप निर्धारण के निरन्तर प्रयत्न हो रहे हैं। परन्तु आज तक कोई भी सर्वमान्य मत स्थापित नहीं हो सका। परन्तु वर्तमान समय में ओलम्पिक, टेनिस, फुटबाल, क्रिकेट, सिनेमा, राजनीति आदि ने वैश्वीकरण को और अधिक बढावा दिया है। वैश्वीकरण का सम्बंध सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक क्षेत्र से है। परन्तु आज इसका प्रयोग प्रमुख रूप से आर्थिक क्षेत्र में किया जाता है। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री कमलनयन काबरा इस संदर्भ में अपना मत प्रस्तुत करते हैं – 'वास्तव में भूमण्डलीकरण में मंशा सारी दुनिया को एक मण्डी में तब्दील कर देना है, एक ऐसी दुनिया जो मण्डी मात्र नहीं है, अपितु उसका संचालन भी मण्डी की आन्तरिक ताकतों द्वारा, सामाजिक, वैश्विक जीवन के हर अन्य पक्ष को गौण और मण्डी को पिछलग्मू बनाकर किया जाता है। यह मत न केवल वकालत करता है, वरन अनेक लोग तो विश्वास करने लगे हैं कि सचमुच ऐसा ही हो रहा है और यहीं सर्वोत्तम व्यवस्था है'।

इस दृष्टि से 'वैश्वीकरण' मुक्त बाजार की स्थिति में विश्व की अर्थव्यवस्थाओं के एकीकरण की प्रक्रिया है। मुक्त बाजार में व्यापार और पूंजी का मुक्त प्रवाह होता है। 'वैश्वीकरण' की पहचान नयी विश्व व्यापार व्यवस्था तथा व्यावसायिक बाजारों के खुलने से है। ऐतिहासिक दृष्टि से विश्व में 19वीं शताब्दी के उत्तराद्ध 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में आर्थिक एकीकरण के फलस्वरूप 'वैश्वीकरण' की प्रक्रिया का अनुभव किया गया। परन्तु कुछ विद्धान 16वीं शताब्दी से ही इस अवधारणा का आरंभ मानते हैं। अत: 'वैश्वीकरण' की अवधारणा कोई नयी नहीं है। सन 1870 से 1993 के मध्य का समय ऐसे मुक्त बाजार का समय था जिसमें माल, पूँजी और श्रम का अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं के आर – पार आवागमन होता था। भूमण्डलीकरण के इस प्रथम चरण को 'हॉन्सबाम'' ने 1997 में 'साम्राज्यवाद' का युग की संज्ञा दी थी। इसका मूल कारण था कि ब्रिटेन उस समय लगभग पूरी दुनिया पर

* शोधार्थी (हिन्दी) वनस्थली विश्वविद्यालय (राज.) भारत

किसी न किसी रूप में शासन करता था। सम्पूर्ण दुनिया किसी न किसी रूप में ब्रिटेन के अधीन थी।

सन 1970 के दशक में 'वैश्वीकरण' का दूसरा चरण प्रारंभ होता है। इस राज्य में केन्द्रिय शक्ति ब्रिटेन से स्थानांतरित होकर अमेरिका के हाथों में चली गई। आज अमेरिका एक महाशक्ति के रूप में सम्पूर्ण विश्व पर अपना राजनीतिक और आर्थिक प्रभुत्व स्थापित कर चुका है। यह प्रभुत्व साम्यवाद के पतन और पूँजीवाद की विजय के साथ ही और मजबूत होता जा रहा है। दूसरे चरण के वैश्वीकरण को समकालीन इतिहासकार फुकुयामा ने 1989 ई. 'इतिहास के अंत' के रूप में परिभाषित किया।

विकीपीडिया पर 'वैश्वीकरण' को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि – 'वैश्वीकरण का शाब्दिक अर्थ स्थानीय या क्षेत्रीय वस्तुओं या घटनाओं के विश्व स्तर पर रूपांतरण की प्रक्रिया है। इसे एक ऐसी प्रक्रिया का वर्णन करने के लिए भी प्रयुक्त किया जा सकता है जिसके द्वारा पूरे विश्व के लोग मिलकर एक समाज बनाते हैं तथा एक साथ कार्य करते हैं। यह प्रक्रिया आर्थिक, तकनीकी, सामाजिक और राजनीतिक ताकतों का एक संयोजन है। वैश्वीकरण का उपयोग अक्सर आर्थिक वैश्वीकरण के संदर्भ में किया जाता है, अर्थात व्यापार, विदेशी प्रत्यक्ष निवेश, पूँजी प्रवाह, प्रवास और प्रौद्योगिकी के प्रसार के माध्यम से राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं में एकीकरण'।

वैश्वीकरण का परिवेश चारों तरफ फैला है दुनिया में पूँजीवाद का विकास दिन – प्रतिदिन बढता जा रहा है। 'व्यापारिक पूँजीवाद के दौर में फौज के माध्यम से उपनिवेश बनाये गए। औद्योगिक पूँजीवाद के दौर में 'टेक्नोलॉजी' के जरिए उपनिवेश कायम किए गए'[1] 'भूमण्डलीकरण' एक तरफ तो आम आदमी को अधिक भौतिक सुख – सुविधाओं से लाद रहा है तो दूसरी तरफ उसकी इंसानियत का अपहरण कर रहा है। आज के समय में किसी व्यक्ति के पास दूसरे व्यक्ति से बात करने तक का समय नहीं है। इस 'भूमण्डलीकरण' के दौर में यहाँ हर व्यक्ति या तो ग्राहक है या विक्रेता, भाईचारा, अपनेपन से कोसो दूर हैं। समाज में पहले विकास का मतलब या भौतिक संपन्नता के साथ सेवा, त्याग, प्रेम, करूणा जैसे मानवीय गुणों का विकास। 'भूमण्डलीकरण' के इस दौर में विकास का मतलब सभी मानवीय गुणों से रहित और केवल भौतिक सुख – सुविधाओं से समृद्ध होना ही विकास है। 'भूमण्डलीकरण' की व्यवस्था के अन्दर संपूर्ण विश्व आज इस प्रकार जुड गया है। जिसमें आज के नवीन युग में होने वाले विकास का सीधा संबन्ध प्रत्येक व्यक्ति, घटना एवं हर उस चीज पर पड़ता है। जिसमें मानवीय मानसिकता के साथ – साथ विश्व निर्माण एवं उत्थान के उद्देश्य जुडे हुए हैं। वर्तमान समय में भूमण्डलीकरण का प्रभाव कथा साहित्य पर पड़ा है। साहित्यकार जिस परिवेश को देखता है या जीता है उसका असर उसके साहित्य पर देखा जा सकता है। साहित्य से उत्तम कोई दूसरा माध्यम समाज के नव–निर्वाण के लिए नहीं है इस विषय पर हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत है 'साहित्य सामाजिक मंगल का विद्यालय है। यह सत्य है कि वह व्यक्ति विशेष की प्रतिमा से ही रचित होता है, किन्तु और भी अधिक सत्य यह है कि प्रतिमा सामाजिक प्रगति की ही उपज है'[1] साहित्य से समाज के नवनिर्माण की प्रक्रिया न कभी रूकेगी क्योंकि बाधाओं और अवरोधों को तोडकर आगे बढने की क्षमता साहित्य में होती है। 'वैश्वीकरण' का प्रभाव हमारे साहित्य पर भी दिखाई देता है। 'वैश्वीकरण' के दौर में साहित्य रचना करने वाले प्रमुख साहित्यकार हैं। 'जगदीश चतुर्वेदी', 'श्री कांत वर्मा', 'राजकमल चौधरी', 'प्रबोध कुमार', 'रवीन्द्र कालिया', 'ज्ञानरंजन', 'दूधनाथ सिंह', 'गंगाप्रसाद विमल' जैसे अनेक साहित्यकारों के साहित्य में भूमण्डलीकरण का प्रभाव दिखाई देता है। मनुष्य की पीडा हताशा, निराशा, ऊब, घुटन परेशानी के साथ–साथ मूल्य विघटन की त्रासदी का मार्मिक साक्ष्य प्रस्तुत करती है। 'श्री कांत वर्मा की', 'झाडी', 'शवयात्रा', 'दूधनाथ सिंह' की 'रक्तपात', 'रविन्द्र कालिया' की 'सिर्फ एक दिन', जैसी कहानियाँ भूमण्डलीकरण के प्रभाव का प्रमाणिक दस्तावेज है।

आजादी के बाद देश में नई जीवन स्थितियाँ पैदा हुई। पहले उत्साह, ललक और उसके बाद मोहभंग, निराशा, हताशा, कुण्ठा आदि का वातावरण बना।

'भूमण्डलीकरण के कारण' शहरी मध्यमवर्ग का विकास और उसके जीवन में तमाम विसंगतियाँ और विडम्बनाएँ पैदा हुई। मशीनों का उपयोग बढने से भयानक बेकारी, भूखमरी, और बेरोजगारी पैदा हुई इन समस्याओं का चित्रण समकालीन वैश्वीकरण के परिवेश में लिख रहे साहित्यकारों के साहित्य में मिलता हैं। इस कथा साहित्य का व्यक्ति 'भूमण्डलीकरण के कारण' अकेला ऊब गया, संत्रस्त पीडित अजनबियत से घिरा हुआ, थकाहारा ऐसा व्यक्ति है जिसे कोई भविष्य नहीं दिखाई देता।

राजकमल चौधरी की 'मछली मरी हुई' वैश्वीकरण के प्रभाव को ही उजागर करती हैं इसमें जीवन का वह पद प्रधान है जिसकी एक सभ्य समाज में चर्चा करना भी आसान नहीं है। इसमें यौन विषयों को आधार बनाया गया है। समलैंगिक यौनाचार में डूबी हुई स्त्रियों के बारे में लिखा गया है। जो एक भूमण्डलीकरण का ही कुप्रभाव हैं। 'वैश्वीकरण ने व्यक्तिवाद अर्थवाद और इसके लिए काम–क्रीडा को विशेष रूप से सराहा है। जिसके कारण पति–पत्नि का दाम्पत्य प्रेम भी दूषित और घिनौना होता जा रहा है'। 'महेन्द्र भल्ला' कृत 'एक पति के नोटस' में इसका पूर्ण स्वरूप सामने आता है इसमें पति अपनी पत्नि से विकृत होकर पडोसी की पत्नि के साथ प्रेम वासना करने लगता है। वैश्वीकरण के प्रभाव ने लोगों को इस कदर जकड़ लिया है चाहे कितनी कोशिश करें इसके प्रभाव से बच नही सकता। इस प्रकार के वातावरण में दाम्पत्य जीवन, भी सुरक्षित नहीं है।

उच्चवर्गीय दाम्पत्य जीवन में बढ़ते जा रहे खोखलेपन, बनावटीपन और मूल्यों के विघटन के संकेत मिले हैं।

'सूरजमुखी अंधेरे के' 'सफेद मेमने' और 'मुर्गीखाना' आदि उपन्यासों में असामान्य यौन प्रसंगो को ही उठाया गया है। कहीं विवाह से पहले तो कहीं विवाह के पश्चात। ये सभी भूमण्डलीकरण के कारण हो रहा है। इसका प्रभाव लोगों पर दिन–प्रतिदिन बढता ही जा रहा है। विज्ञान, टेलीविजन, विडियो, आदि का चलन इतना बढ गया हैं समाज में कोई भी व्यक्ति इनके बगैर नहीं रह सकता। भूमण्डलीकरण इन सभी का प्रतिफलन है। भारतीय परिवेश में नारी का नारीत्व पत्नी और माँ बनकर ही सार्थकता प्राप्त करता है।

भूमण्डलीकरण ने नर–नारी के संबन्धों में एक नया मोड बना दिया है। विवाह अब धार्मिक रीति–रिवाज न रहकर स्त्री पुरूष से बराबरी के स्तर पर होने वाले समझौते के रूप में देखा जाने लगा है। सभ्यता ने भी उसकी स्वतंत्रता को स्वीकारा है और कानून ने भी उसे बराबरी का हक दिया।

शिक्षा–दीक्षा ने नारी में स्वाभिमान की भावना को बढ़ावा दिया। आधुनिकता को उसने फैशन के रूप में ओढ़ लिया है। इस भूमण्डलीकरण के दौर में नारी के व्यक्तित्व को खंडित कर दिया है। गृहस्थी पर बढ़ता हुआ आर्थिक बोझ और जीवन की चकाचौंध ने नारी को नौकरी करने पर विवश कर दिया फलस्वरूप पहले उसका शोषण घर में होता था। अब बाहर भी होने लगा। कुछ मजबूरी में शोषित होती है तो कुछ फैशन और अधिक अर्थ के लिए।

'भूमण्डलीकरण' के युग में हम देख रहे हैं कि दुनिया में आर्थिक दीवारें टूट रही है, पर आदमी और आदमी के बीच अनगिनत अदृश्य दीवारें खडी हो रही हैं। बाजार एक हो गया है। समाज विभाजित हो गया। आज के समय में धर्म, राजनीति, समाज, संस्कृति, साहित्य सब शंका के दायरे में आ गए हैं यथार्थ का वर्णन करते हुए 'संदेह' और 'विद्रोह' लेखक के अस्त्र बन गए है। भूमण्डलीकरण ने सभी मानवीय मूल्यों को क्षत-विक्षत कर दिया है।

'वैश्वीकरण' के भयानक चेहरे को समकालीन कथाकारों ने अपनी संवेदना के साथ अपनी रचनाओं में दर्ज किया है इस संदर्भ में 'कैलाश बनवासी' की 'बाजार में रामधन' और जय नन्दन की 'विश्व बाजार में ऊँट'। निम्न मध्यमवर्ग की जिन्दगी को इस बाजावाद ने किस तरह तहस-नहस किया है इसका मार्मिक चित्रण किया है काशीनाथ सिंह, की कहानी 'अपना रास्ता लो बाबा' में उपभोक्ता समाज की संवेदनहीनता और सरोकारहीनता का जो चित्रण है वह अनूठा किया गया है। अखिलेश की कहानी 'जलडमरू मध्य' अपनी विस्तृत संरचना में कई सारे सवालों के साथ बाप-बेटे के रिश्ते में बाजार और उपभोक्तावादी संस्कृति की चालाकी को व्यक्त करती है वैश्वीकरण ने सही मायनों में जहाँ बहुत सारी सम्भावनाओं को सुगम बनाया है वहीं एक ऐसी बाजारू संस्कृति का वर्चस्व बढा है जिसमें आस्थाएँ, मान्यताएँ, विश्वास, अनुराग, लगाव, मूल्य सब खत्म हुए हैं।

वैश्वीकरण का परिवेश एक चुनौती के रूप में सामने आया इसने समाज की परिस्थितियों और मनुष्य के स्वभाव को ही परिवर्तित कर दिया है। भूमण्डलीकरण पूंजी का नया खेल है। इसमें फैशन के नित्य बदलते रूप इलैक्ट्रोनिक मिडिया की शक्ति, विज्ञापन की विविधता, वैश्वीकरण और निजीकरण की चेतना मिलकर ऐतिहासिकता को नकार रही है। वैश्वीकरण के प्रभाव से हिन्दी साहित्य जगत में भी खलबल मची हुई। भूमण्डलीकरण बाजारीकरण और उपभोक्तावाद ने व्यक्ति समाज परिवार धर्म, राजनीति, शिक्षा साहित्य को भी अपनी चपेट में ले लिया है।

हिन्दी साहित्य की यह पीढी मानवीय सम्बन्धों को लेकर चिंतित है। इनकी कहानियों में मानवीय संबन्धों को सामने लाने की पूरी कोशिश लगातार देखने को मिलती ही है। यह पीढी इलैक्ट्रोनिक मीडिया के अलग-अलग रूपों और सूचना तकनीक के प्रति ज्यादा जागरूक हैं। मोबाईल इंटरनेट और फिल्मों का प्रभाव इनकी रचनाओं पर पडा है, चरम उपभोक्तावाद, नये धनिक वर्ग की पार्टियाँ, आत्महत्या कर रहे किसान, अपहरण फिरौती का नया धंधा, राजनीतिक और प्रशासनिक क्षेत्र में व्याप्त चरम भ्रश्टाचार, धार्मिक पाखण्ड, भ्रुण हत्याएँ, तथा मीडिया द्वारा रची जा रही एक लुभावनी दुनिया आज के नये यथार्थ के लक्षण हैं बाजार भूमण्डलीकरण और पूंजीवाद ने साधारण मध्यवर्गीय आदमी को हास्यापद बनाया है। बाजार ने लोगों की कामनाओं को चरम सीमा पर पहुंचा दिया है पूंजीतंत्र की इस भयावहता को नयी पीढी के कथाकारों ने अपनी कहानी में उतारा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. सामाजिक संचेतना और नासिरा शर्मा वैश्वीकरण, स्त्री विवर्श, दलित-चेतना-डॉ मनीशा शर्मा पृ-27 साहित्यकार प्रकाशन जयपुर।
2. भूमण्डलीकरण: विचार, नीतियाँ और विकल्प - कमल नयन पृ-18 संस्थान प्रकाशन दिल्ली।
3. http://hi.wikipedia.org
4. भूमण्डलीकरण साहित्य समाज और संस्कृति डॉ शशि भूषण कुमार पृ-5
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास डॉ नगेन्द्र- पृ-18 प्रकाशन नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
6. भूमण्डलीकरण, साहित्य समाज और संस्कृति- डॉ शशि भूषण कुमार पृ-48

****

बुन्देलखंड के प्रमुख कवियों का साहित्यिक अवदान

डॉ. अमित शुक्ल *

शोध सारांश – बुंदेली भारत की प्रमुख बोलियों में से है, बुंदेलखण्ड के कवियों का यहां के साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान है। यहां प्रचुर मात्रा में साहित्य उपलब्ध है। बुंदेलखण्ड अपने शौर्य और पराक्रम के लिए प्रसिद्ध रहा है। बुंदेलों की शौर्य गाथा वहां के जन जीवन साहित्य, लोक साहित्य में आज भी समाहित है। बुंदेली पश्चिमी हिन्दी की मधुर बोली है। जिसमें मधुकसी मादकता शहद सी मिठास है। यह कहा जा सकता है कि बुंदेली हिन्दी में भारतीय नारी के कोमलतम स्वरूप के सम्पूर्ण गुण इस बोली में समाहित हैं। मधु जैसे अनेकानेक पुष्पों का रस है, उसी प्रकार बुंदेली की मिठास कोमलकान्त पदावली, कोमल भाव व्यंजना ही इसकी विशेषता है। यहां के कवि साहित्यकारों का अवदान अविस्मरणीय है। यहां के अनेक साहित्यकारों ने हिन्दी भाषा व साहित्य को अपने देश में एक अलग ही पहचान दी है। बुन्देलखण्ड का साहित्य वीरगाथा काल, भक्ति और रीतिकालीन कवियों की रचनाओं से परिपूर्ण रहा, जो राजदरबारों से प्रवाहित हुआ। अनेक कवियों ने आदर्शवादी श्रृंगार रस से परिपूर्ण ग्रन्थों की रचना की, जिसमें राजा और उनके दरबारी विलास वैभव सरिता रस में अपना मनोरंजन रूपी मज्जन किया करते थे। राजदरबरों से उत्पन्न साहित्य जनसाधारण की आर्थिक विपन्नता, शोषण, दासता और मानसिक, सामाजिक रूढ़ियों से अच्छादित विघटित सामाजिक स्थिति की यथार्थ अभिव्यक्ति न कर सका और न समाज की पीड़ा को राजदरबारों तक पहुँचा सका। बुन्देली का अधिकांश साहित्य यहाँ के संकलित तथा असंकलित दोनों परम्पराओं में पाया जाता है। लोकगाथाएँ, लोकगीत, लोकोक्तियाँ तथा पहेलियाँ बुन्देलखण्ड की वाचिक परम्परा के असाधारण साहित्यिक भंडार हैं।

प्रस्तावना – बुन्देली न केवल बुंदेलखण्ड की बल्कि पूरे भारत के हृदय देश की बड़ी प्यारी बोली है। इसका काव्य एक ओर बेतवा की वाणी से गुंजायमान है तो दूसरी ओर नर्मदा के कल-कल निनादों से परिपूर्ण। बुंदेली कवियों का हिन्दी साहित्य में अवदान अत्यंत महत्वपूर्ण है, अनेक ऐसे लोकप्रिय कवि हुए हैं जिन्होंने बुन्देलखण्ड के बुन्देली भाषा के साथ-साथ हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है, उनमें एक लोकप्रिय कवि जगनिक हैं – **जगनिक** महोबा के चंदेल नरेश परमर्दिदेव के दरबारी कवि थे। महोबा के पूर्व ये कन्नौज के राजा विजयपाल राठौड़ के आश्रय में भी रहे। जनिक के जन्म और जीवन के विषय में विद्धानों में मतभेद है। पर डॉ. नर्मदाप्रसाद गुप्त ने भी इन्हें बुंदेलखण्ड का मूल निवासी माना है। जगनिक अपने समय के प्रसिद्ध कवि और योद्धा थे।'आल्हाखंड' इनकी प्रसिद्ध वीर रस की रचना है। दूसरी कृति 'विजयपालरासोय की खोज डॉ. श्यामबिहारी श्रीवास्तव ने की है। आल्हखंड एक विशाल ग्रंथ है। इसमें बावन युद्धों का वर्णन है तथा विजयपालरासो 136 छंदो की रचना है।

बुन्देलखंड के दूसरे लोकप्रिय महाकवि ईसुरी हैं, जो बुंदेलखंड के ही नहीं वो वृहद जन-मानस के कवि और जन-नायक हैं। प्रेम और सौंदर्य के अथाह मर्म में डूबी ईसुरी की कविता अपनी अनुभूति, दुख और ऐन्द्रिकता में अद्धितीय लोक नायक महाकवि के समान आदर किया है।

रामायन तुलसी कही, तानसेन ज्यों राग।
सोई या कवि काल में, कही ईसुरी फाग।।

ईसुरी ने चौकड़िया फागें लिखी हैं। इन चौकड़ियों की संख्या सैकड़ों में है। श्री गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर' ने 'ईसुरी प्रकाश' श्री घनश्याम कश्यप ने 'ईसुरी की फागें डॉ. लोकेन्द्र सिंह नागर ने ईसुरी शीर्षक से ईसुरी की फागें संग्रह प्रकाशित कराये। ईसुरी का फाग साहित्य व्यापक है। डॉ. रामनारायण शर्मा का 'महाकवि ईसुरी' बुंदेली काव्य प्रकाशित है। डॉ. अशोक शर्मा ने श्री गुणसागर सत्यार्थी के सहयोग से ईसुरी की लगभग साढ़े सात सौ चौकड़ियों का एक संग्रह 'ईसुरी सतसई' के नाम से प्रकाशित कराया है। जीवन के उत्तरार्द्ध में ईसुरी वृन्दावन चले गये थे और वहाँ भक्ति रस में डूबकर निर्वेद की चौकड़ियाँ लिखीं –

'बखरी रइयत है भारे की, दई पिया प्यारे की'।

ईसुरी बुंदेलखण्ड के एक ऐसे लोक प्रिय कवि हुए जो आम जनता के बीच रहकर जनभावनाओं के सहज चित्र अत्यंत सहजता से चित्रित कर जनभावनाओं को समझा वे कालजयी जनकवि हैं; बुंदेलखंड के हृदयहार, लाड़ले रचनाकार हैं। उन्होंने सामान्य जन की भाषा में सरल, सुबोध, लालित्यपूर्ण जीवन से जुड़ी हुई रचनायें लिखीं, जो आज भी लोकप्रिय हैं।

बुंदेलवाणी के प्रसिद्ध कवि सेठ गुलजारी लाल गुप्त खड़ी बोली एवं बुन्देली दोनों पर ही उनका समान अधिकार रहा है, फिर भी उनकी लोक भाषा में लिखी हुई रचनायें अत्यधिक लोकप्रिय हुई हैं। बुन्देलवाणी में लोक जीवन एवं नैसर्गिक सौन्दर्य के चतुर चितेरे श्री लाल जी की कवितायें सरस, सुबोध एवं भावपूर्ण होने के कारण अत्यन्त मर्मस्पर्शी एवं प्रभावशाली हैं। ग्राम्य -जीवन के सजीव चित्रण के साथ आपने श्रम एवं सृजन के प्रति निष्ठा व्यक्त करते हुए युग का साथ दिया है तथा अपनी अन्य रचनाओं में राष्ट्रीय भावना एवं देश प्रेम का स्वर ऊँचा किया है। लाल जी की हास्य व्यंग्यपूर्ण रचनायें अत्यन्त मार्मिक हैं, जो अत्यंत लोकप्रिय हुई। 'राम जन्म खण्ड एवं गोरी हारै जावैं (बुन्देली रचनाओं का संकलन) अधिकांश रचनायें ग्राम सुधार, नोंक-झोंक, प्रभृति पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित तथा आकाशवाणी के भोपाल-इन्दौर केन्द्र में प्रकाशित हुई। लाल जी ने अपने दीर्घकाल कवि जीवन में कवित्त, सवैया, दोहा, चौपाई, सोरठा एवं कुंडलियों के प्राचीन शैली में तथा खड़ी बोली की अर्वाचीन शैली में लिखा है।

बुन्देलखंड के एक अन्य कवि रामचरण हयारण 'मित्र जिन्हें

* सहायक प्राध्यापक (हिन्दी) शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.) भारत

श्री गणेश शंकर विद्यार्थी तथा श्री भगवानदास माहौर ने अत्यंत प्रभावित किया उन्होंने राष्ट्रकवि मैथलीशरण गुप्त घासीराम व्यास की प्रेरणा से काव्य रचना आरम्भ की। मित्र जी की प्रसिद्ध रचनाओं में 'भेट' (राष्ट्रीय काव्य), 'सरसी' (प्राकृतिक वा ऐतिहासिक काव्य) तथा लौलैंया (बुन्देली काव्य) हैं। इस के साथ आध्यात्मिक रचनाओं का संकलन 'साधना' ऐतिहासिक काव्य 'ओरछा दर्शन', बुन्देली लोक गीतो का संकलन 'लोक गायनी' इनकी काव्य-रचनाएँ हैं। बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य उदय और विकास तथा वीरांगना मानवती का बलिदान इनकी गद्य रचनाओं के श्रेष्ठ नमूने हैं। कवि व साहित्यकार श्री रामचरण हयारण 'मित्र' के साहित्यिक व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते है- 'बुन्देलखण्ड का इतिहास सम्पूर्ण भारत के इतिहास से खण्डित और विच्छिन्न नहीं है परन्तु फिर भी इस भूमि की अपनी विशेषता है। यहाँ के लोग निश्छल वीर और प्रसन्नचेता होते हैं। मित्र जी ने इस प्रदेश का इतिहास और इसकी विशिष्ट संस्कृति की लोकगाथाओं और लोकगीतों के माध्यम से उभारने का प्रयत्न किया है और बुन्देलखण्ड को जीवन्त रूप में उपस्थित करने का प्रयास किया है'। इसी तरह उनकी काव्य प्रतिभा तथा मधुर कण्ठ की प्रशंसा करते हुए राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा है, 'मित्र जी की वाणी और कण्ठ में अपूर्व बल है। हिन्दी जगत् में कदाचित् कोई कवि ऐसा नहीं है जो मित्र जी की बुलन्द आवाज और गले का मुकाबला कर सके।'

बुन्देलखंड के कवि संतोष सिंह बुन्देला, बुन्देली लोक काव्य के प्रख्यात रचनाकार हैं। इनकी रचनाओं में बुन्देली जीवन के हृदय की धड़कनें और सौंदर्य है। बुन्देला जी ने सन् 1950 के आसपास लिखना प्रारंभ कर दिया था। प्रारंभ में कीर्तन लिखे। सन् 1954 से दो वर्षो तक ये फिल्म जगत से जुड़े रहें। इन्होंने फिल्म छोड़कर कवितायें, छंद और गीत लिखना शुरू किया। भवानी प्रसाद मिश्र की प्रेरणा से इन्होंने बुन्देली में गीत रचना प्रारम्भ की। सन् 1967 से कवि सम्मेलन के मंचों से जुड़े और थोड़े ही समय में ख्याति अर्जित कर की। उनके लोकगीत ग्रामीण परिवेश, प्रकृति, रीतिरिवाज एवं दैनिक जीवन प्रसंगों की अभिव्यक्ति हैं। ग्रामीण पात्र हैं। ग्रामीण संस्कार है और ग्रामीणों का सुन्दर संसार है। गीतों में श्रृंगार, करूणा, व्यंग्य और यथार्थ के प्रभावी भाव दृश्य हैं। बुन्देला जी के गरीबी, शोषण, अभाव, फैशन, धर्मकर्म, भाग्य, हर्ष, विषाद, नाचगाना, संगीत वाद्य, रीति-रिवाज सभी को गीतों में समावेशित किया है। ग्रामीण अंचल के साथ शहरी जीवन की विद्रूपताओं का भी चित्रण किया है। गाँव की समस्याएँ, चिंताएँ गीतों में झलकती हैं। भाषा, छंद, अलंकार आदि दृष्टियों से बुन्देला जी की रचनाएँ उत्कृष्ट हैं। वे अक्खड़ प्रकृति के कवि थे। इसी कारण उनकी काव्य-भाषा के अलग तेवर हैं। 'रमटेरा की तान तथा 'मिठउआ कुआ कौ नीर' उनके चर्चित लोक गीत हैं। अपनी विशिष्ट भाषा, शैली एवं खास स्वर लहरी से वे अपनी एक विशिष्ट पहचान बना गए हैं।

बुन्देली काव्य-क्षेत्र में श्री शिवानन्द मिश्र अपने मूल नाम की अपेक्षा 'बुन्देला' उपनाम से ही अधिक प्रसिद्ध हैं। श्री बंशीधर 'पंडा' से प्रेरणा पाकर उन्होंने सन् 1956 में प्रथम बुन्देली 'रचना अपनौ देस बुन्देलन बारौ' लिखी। सन् 1968 में इटावा में आयोजित एक कवि सम्मेलन में कविवर श्रीरामधारी सिंह 'दिनकर' ने उनकी ओजस्वी कण्ठ की प्रशंसा करते हुए इन्हें बुन्देली में वीर रस-पूर्ण सृजन के लिए प्रोत्साहित किया। तभी से वीर रस उनका प्रिय रस बना और उनकी रचनाओं में इस रस का अच्छा परिपाक भी हुआ। आकाशवाणी तथा दूरदर्शन से प्रसारण के साथ ही मिश्र जी की बुन्देली रचनाओं का प्रकाशन सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में होता रहा। उन्होंने सन् 1960 में 'बुन्देला' साप्ताहिक पत्र का सम्पादन प्रारम्भ किया, जो बाईस वर्ष तक चलता रहा। इनकी निम्नांकित छह कृतियाँ प्रकाशन की प्रतीक्षा में हैं- 1. मृत्युजंया 2. प्रानन के दानी 3. हरदौल 4. अभई-ये सभी खण्डकाव्य हैं। 5. भुमियाँ देव बुन्देली गीतों का संग्रह 6. नमस्कार-मानक हिन्दी के साठ गीतों का संकलन है।

बुंदेलखंड के अन्य जुझारू व लोकप्रिय कवियों में **डॉ. सीताकिशोर खरे** हैं जिनकी दुर्लभ पाण्डुलिपियों, फरमानों, कागज पत्रों को व्यवस्थित तरीके से संग्रहीत और संकलित किया गया है।उनकी प्रकाशित कृतियाँ हैं- 1. सर्वनाम, अव्यय और कारक चिन्ह 2. ग्वालियर संभाग में व्यवहृत बोली रूपों का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन3. पानी पानीदार हैं। (बुन्देली दोहावली)।

बुन्देली भाषा का परचम लहराने वालों में **डॉ. दुर्गेश दीक्षित** अग्रणी माने जाते इनकी प्रथम प्रकाशित बुन्देली रचना कुण्डेश्वर के सौन्दर्य तथा महिमा को लक्ष्य करके लिखी गयी थी। यह सन् 1965 में भारती पत्रिका में छपी थी। सन् 1976 से ये आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों से जुड़े हैं। मानक हिन्दी तथा बुन्देली, दोनों में सृजन करके इन्होंने निम्नलिखित कृतियाँ तैयार किया हैं। गमइयन के गाँधी, 2. ब्रजेन्दु विछोह, 3. अध्यापकों जागों। 4.ऋतुसंहारम् का बुन्देली पद्यानुवाद, 5. बलिदान(वीरांगना अवन्तीबाई की शौर्यगाथा पर रचित खण्ड काव्य) 6. सगुन की हरैयाँ, 7. बुन्देलखण्ड के अमर सपूत, 8. प्रेम कौ प्रभाव(कहानी संकलन) 9. अपनौ-अपनौ भाग्य(लोक कथाओं का संकलन) 10. बालकृष्णायन (महाकाव्य) आदि। कुल आठ ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। दुर्गेश जी ने वीर और करण रसों को अपनाकर प्रभावपूर्ण रचनाएँ लिखीं। इसके अतिरिक्त हास्य-व्यंग्य पर भी इनका अच्छा अधिकार हैं। इस संकलन में 'बिटउ खों बाबाजू भर आयँ' इनके हास्य-व्यंग का प्रतिनिधित्व करती हैं। 'वीरांगना अवन्तीबाई' वीर रस का तथा चौकड़ियाँ, 'दलित विमर्श' पर केन्द्रित रचनाएँ हैं।

निष्कर्ष यह है कि बुन्देली कवियों ने जनभाषा में ही काव्य रचना की। इस समय की मुख्य काव्य शैली कथाकाव्य की होने के कारण महाकाव्य का सौन्दर्य देखने को नहीं मिलता है। दोहा, सोरठा और चौपाई छंदों में ही कवियों ने जनरूचि के अनुकूल ऐसे काव्य ग्रन्थ प्रस्तुत किये जिनमें नीति, जनमंगल, मर्यादा आदि को विशेष महत्व दिया गया। भाषा का स्वरूप इतना आकर्षक है कि वह मध्यप्रदेश के किसी भी क्षेत्र के लोगों के द्वारा समझी जा सकती हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. बुन्देली और उसके क्षेत्रीय रूप-कृष्णलाल 'हंस', प्रकाशन-हिन्दी साहित्य सम्मेलन- 1976 पृष्ठ 32
2. बुन्देली समाज और संस्कृति-बलभद्र तिवारी प्रकाशन-प्रमोद, नई दिल्ली संस्करण-प्रथम पृष्ठ 96
3. बुन्देलखण्ड की लोक लोक संस्कृति का इतिहास-नर्मदा प्रसाद गुप्त प्रकाशन-राधाकृष्ण, नई दिल्ली, 2005 पृष्ठ 105
4. बुन्देली लोककाव्य-बलभद्र तिवारी- प्रकाशन-बुन्देली पाठ, सागर वि.वि. सन्- 1979 पृष्ठ,79
5. मध्यकालीन हिन्दी काव्य भाषा-रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन 15-ए महात्मा गाँधी मार्ग इलाहाबाद पृष्ठ 39
6. स्वयं का सर्वेक्षण एवं निष्कर्ष।

****

बुंदेली लोक कवि 'घाघ' के काव्य में कृषक जीवन दर्शन

डॉ. अर्चना देवी अहलावत *

प्रस्तावना – आषाढ़ के प्रथम दिन के बादल का क्या मतलब है? इसका महत्व यदि भारतीय किसानों से पूछें तो, यह किसानो के जीवन के आधार कहे जा सकते हैं। आषाढ़ के बादलों को भारतीय किसानो ने समझा है, और लोक कवि 'घाघ भड्डरी' ने वैज्ञानिक रूप से निरीक्षण कर किसानों को ज्ञान का भण्डार दिया।

भारतीय किसानों को कहते सुना जा सकता है– 'सावनी' बोनी है। इस सावनी फसल में मूँग–उड़द–बाजरा तथा पशुओं के चारे से संबंधित फसले होती हैं। यह फसलें तभी बोयी जाती हैं जब आषाढ़ माह में भरपूर वर्षा से धरती माता शीतल निर्मल होकर बीज धारण के लिये तैयार हो जाती है।

जब किसान केवल वर्षा के द्वारा ही फसलों को सींचता था। फसलों को पालने के लिए आज जैसे आधुनिक सिंचाई के साधन और संयत्र उपलब्ध नही थे। तब लोक कवि 'घाघ' ने ज्योतिष सम्बन्धी ऐसी भविष्यवाणियॉ की जो आज भी ज्यों की त्यों प्रासंगिक हैं। आज के बढ़ते प्रदूषण के कारण थोड़ा बहुत अंतर आया है।

सूर्य जिन–जिन नक्षत्रों पर संचार करता है और सूर्य के नक्षत्र संचार के दिन जैसे ग्रह योग होते हैं, उसको आधार मानकर भी आगामी वर्षा का विचार किया जाता है। सूर्य एक नक्षत्र पर प्राय: चौदह दिनों तक रहता है। सूर्य जब कृतिका नक्षत्र पर संचार करता है तो किसान कहते हैं कि'कृतिका' नक्षत्र चल रहा है। वास्तव में सूर्य का संचार ही कृतिका नक्षत्र पर रहता है। आद्रा नक्षत्र का महत्व इसलिये बढ़ जाता है कि इसी आद्रा नक्षत्र में सूर्य के संचार होने पर कृषि कार्य प्रारम्भ हो जाता है। भारत के कुछ भागों में आद्रा नक्ष में सूर्य आये बिना कृषि कार्य प्रारम्भ नहीं होता। प्राय: हिन्दू किसान तीन दिनों तक आद्रा नक्षत्र पर सूर्य संचार काल को 'अशुद्ध' माने हैं तो यह भी मानते हैं कि तीन दिनों तक पृथ्वी 'रजस्बला' रहती है। सूर्य के नक्षत्र संचार के आधार पर ही लोक कवि 'घाघ' ने लिखा है–

'रोहिन रवे मृग तवे, कछु दिन आर्द्रा जाय।
घाघ कहे घाघिन से, श्वान भात नही खाय ।।'

रोहिणी नक्षत्र में सूर्य के संचार काल में कुछ बूंदा–बांदी हो जाने पर और मृगशिरा नक्षत्र में सूर्य संचार काल में सूर्य तप जाने पर उस साल उत्तम वर्षा होती है और धान की फसल सर्वाधिक होती है। इतना अधिक धान होता है कि कुत्ते भी भात खाकर अधा जाते हैं।

लोक कवि घाघ भड्डरी ने अपने लोक साहित्य में ज्योतिष गणनाओं की ऐसी अभिव्यक्ति दी कि किसान वर्षा होने का अनुमान लगा लेता है–

'कृतिका तो करी गई, आद्रा मेंह न बुंद।
तौ जानो यो भड्डरी काल मचाव दुंद।।'

यदि कृतिका नक्षत्र में वर्षा न हो और आर्द्रा नक्षत्र भी बिना वर्षा के चला जाये तो 'घाघ' कहते हैं अब अकाल का समय आया समझो।

रोहिणी मॉही रोहिणी, एक घड़ी जो दीख।
हाथ में खपरा मेदिनी, घर–घर मॉगे भीख।।

यदि सूर्य के रोहिणी नक्षत्र पर रहते चन्द्रमा एक घड़ी के लिए भी रोहिणी में आ जाय तो अन्नदाता कृषक को भी भीख मॉगकर खाना पड़ सकता है। लोक कवि घाघ भड्डरी ने प्रकृति का ऐसा सूक्ष्म अवलोकन किया था। लोक कवि ने बादलों के रंगों को देखकर वर्षा के होने न होने के लक्षण बतायें हैं– 'करिया बादर जिउ डरवावै, भूरा बादर पानी लावै।।'

अधिकतर हम आज भी काले बादलों को देखकर मन में विचार बनाते हैं कि आज बहुत वर्षा होगी, लेकिन 'घाघ' कहते हैं काला बादल तो केवल जी को डराता है वर्षा तो भूरे बादल करते हैं।

'तीतर बरनी बादरी, काजर रंडा रेख।
ऊ बरसै ई घर करै, कहे भड्डरी देख।
'तीतर बरनी बादरी, रहै गगन पर छाय।
कहैं डंक सुनु भड्डरी, बिनु बरसै नही जाय।।'

यदि तीतर पक्षी के रंग के बादल आकाश पर छाये तो कवि घाघ चुनौती देकर कहते हैं यह बादल बिना बरसे नही जायेंगें।

'लाल पियर जब होय अकास।
तब नाहीं बरखा के आस।।'

यदि लाल और पीले रंग के बादल आकाश पर छाये तो वर्षा की आस छोड़ देनी चाहिए।

कवि घाघ का ज्ञान कितना वैज्ञानिक और अवलोकन दृष्टि कितनी सूक्ष्म थी, इसका परिचय उनके 'माह' (महीने) से संबंधित पूर्व ज्ञान से मिलती है। वे लिखते हैं–

'एक बूँद जौ चैत मँ परै, सहस बूंद साव मॅह तरै'

यदि चैत्र माह में हल्की सी वर्षा भी हो जाये तो यसावन' के महीने में खूब वर्षा होती है।

'चैत मास दस रीछड़ा, जौ कहुं कोरो जाय।
चौमासे भर बदरा, भली–भॉति बरसाय।।'

यदि चैत्र माह के दस रीछ–चैत्र माह के दैनिक आद्रा नक्षत्र से लेकर स्वाति नक्षत्र तक के दस नक्षत्र यदि बिना वर्षा के बीत जाये तो पूरे चौमास (वर्ष ऋतु के चार मास) भरपूर वर्षा होती है।

'माघ के उमस जेठ के जाडय। पहिलै बरखा भरिगा ताल।।'

यदि 'माघ' महीने में उमस और 'जेठ' माह में माघ जैसी ठंड का एहसास हो तो, समझो प्रथम वर्षा भरपूर होगी।

'माहो जेठै जाड़। कहे घाघ हम होब उजाड़।।
माघ मास जो परैन सीत। महॅगा नाज जानियो मीत।।'

यदि माघ मास में गर्मी हो उमस हो ठंड न हो क्योंकि माघ 'शरद ऋतु'

*प्राध्यापक (हिन्दी) दयानंद आर्य कन्या महाविद्यालय, मुरादाबाद (उ.प्र.) भारत

का महीना है और जेठ में ठंड का एहसास हो, क्योंकि 'जेठ' ग्रीष्म ऋतु का महीना है कवि घाघ का अनुभव कहता है यदि ऐसा हो तो अनाज महॅगा होगा और हमारे उजड़ने के लक्षण समझने चाहिए।

'माघ-पूस जब दखिना चलै। तब सावन के लच्छन भलै।।
माघ-पूस बहै पुरवाई। तब सरसों को माहू खाई।।'

जब माघ-पूस के महीने में दखिना हवा चलती है तब सावन में पर्याप्त वर्षा होती है। यदि माघ-पूस के महीनों में पूरब दिशा से हवा चलती है तो सरसों को माहू कीड़ा खा लेता है। जेठ माह का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है-

'जै दिन जेठ बहै पुरवाई। तै दिन सावन धूरि उड़ाई।।
जेठ मास जो तपै निरासा। तौ जानो बरशा कै आसा।।
उतरत जेठ जो बोलैं दादर। कहै भड्डरी बरसै बादर।।'

जेठ महिने में जब पुरवाई हवा चलती है तो समझो सावन की महीने में वर्षा नहीं होगी। जेठ के महीने में खूब गर्मी पड़े और महीने के उत्तरार्द्ध में मेंढक बोलना शुरू कर दे तो कवि घाघ भड्डरी कहते हैं बादल बिना बरसे नही जायेगें।

'सावन पुरवाई चलै भादों मॅह पछियॉव।
कन्त डगरवा बेचि कै लरिका जाय जियाव।।'

कवि घाघ को कृषक जीरवन की विसंगतियों का भली प्रकार ज्ञान था तथा वे नक्षत्रों के वायु के चलने, महीनों के मौसम परिर्वतन के आधार पर ऐसी सूक्ष्म और सटीक गणनायें कर लेते थे। कि किसान अपने जीवन को सुखी और उन्नत बना सकता था और आज भी बना सकता है।

दिन रात के मौसम-वायु के संदर्भो में कवि घाघ का ज्ञान विलक्षण है-

'रात दिना धम छाही, घाघ कहै अब बरखा नाहीं।।'

यदि रात-दिन हल्के-हल्के बादल आकाश पर छायें रहें तो लोक कवि घाघ कहते हैं अब वर्षा नही है।'रात निर्मल दिन के छॉहीं। कहै भड्डरी पानी नाही।।

दिन मॅह गरमी रात मॅह ओस। कहैं घाघ बरषा सौ कोस।।

यदि रात को निर्मल चॉदनी खिले और दिन में धूप-छॉव रहे और यदि दिन में गर्मी पडे और रात को ओस की बूंदें झड़ें तो समझो अभी वर्षा नही होगी।

'दिन कहॅ बादर रात मॅह तारे। चलो कंत जहॅ जीवेम बारे।।
घाघ कहैं कुछ होनी होई। कुआं के पानी धोबी धोई।।'

वर्षा ऋतु के पहचान वायु चलने के आधार पर कवि ने इस प्रकार दी है-

'पहिला पवन पूरब ते आवै। बरसै मेघ अन्नभरि लावै।।
अम्बा झोर चलै पुरवाई। तब जानौ बरखा रितु आई।।'

यदि वर्षा ऋतु में प्रथम पवन का झोंका पूरब दिशा से आये तो समझो वर्षा खूब होती है और धन-धान्य भी खूब होता है।

'पुरबा मॅह पछिवॉ बहै। हॅसिं कै नारि पुरूष सह कहै।।
ऊ बरसै ई करै भतार। घाघ कहै यहि सगुन विचार।।'

कवि घाघ कहते हैं यदि पुरबाई हवा में पश्चिम की हवा चलती है तो वर्षा होती है।

'पुरबा बादर पच्छिम जाय। वासे वृष्टि अधिक बरसाय।
जे पच्छिम ते पूरब जाय। बरखा बहुत न्यून होई जाय।।'

यदि पूरब दिशा से बाद पश्चिम को जाता है तो वर्ष अधिक होती है औ यदि पश्चिम से पूरब की आरे जाते तो वर्षा कम हो जाती है। आगे इन्हीं भाव को बताते हैं-

'पूरब के बादर पच्छिम जाय। पतरी पकावै मोटी पकाव।
पछिवो बाद पुरब कहॅ जाय। मोटी पकावै पतरी पकाव।।'

पूरब दिशा से बादल पश्चिम दिशा को जाय तो वर्षा अच्छी होगी, फसल की पैदावार भी अच्छी होगी। यदि पश्चिम दिशा से बादल पूरब दिशा को जाय तो वर्षा की मी से पैदावार भी घट जायेगी। कुछ और लक्षण भी वर्षा से संबंधित कवि के साहित्य में मिलते हैं-

'कलसहि पानी गरम है, चिड़िया न्हावै धूर।
अंडा लैं चींटी चढ़ैं, तो बरखा भरपूर।।'

घड़े का पानी गरम हो जाय, चिड़िया मिट्टी में खेलें, अंडा लेकर चीटियॉ ऊपर की ओर भागे तो समझो खूब वर्षा होगी।

'बोली गोह फुली बनकास। अब नाहीं बरषा कै आस।
बोलै ढोल जाय अकास। अब नाहीं बरषा कै आस।।'

'गोह बोली सुनायी दे और कांस फूल जायें, ढेका पक्षी आकाश में विचरते नजर आये तो समझा अब वर्षा चली गयी है।'

लोक कवि घाघ भड्डरी की वर्षा-वायु से सम्बन्धित ये भविष्यवाणियॉ कृषकों के जीवन में अमृत वचन के समान हे। किसान इन सभी लक्षणों को ध्यान में रखकर अच्छी फसल उगाकर अच्छा अन्न पैदा कर सकता है। अपना जीवन सुखी बना सकता है।

जहॉ आज अनेक कृषि-मौसम विज्ञानियों के वर्षा और मौसम से संबंधित प्रयोग झूठे हो जाते हैं लेकिन कवि घाघ की मौसम, वर्षा-वायु से जुड़ी भविष्यवाणियॉ, प्रकृति के परिर्वतन का सूक्ष्म ज्ञान आज कुछ विसंगतियों को छोड़कर प्रासंगिक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. सम्पूर्ण - ज्योतिष रहस्य-जगजीवन दास।

****

जयशंकर प्रसाद का जीवन परिवेश एवं रचना दृष्टि

डॉ. रेणु अग्रवाल *

प्रस्तावना – जयशंकर प्रसाद हिन्दी के युग प्रवर्तक कवि और साहित्य सृष्ठा तो थे ही, एक असाधारण समीक्षक और दार्शनिक भी थे । इनका 'समय' या 'काल' मुख्यत: छायावाद का रहा है जिसका आरंभ सन् 1918 में और अन्त 1938 में माना जाता है । प्रसाद जी के साहित्य में छायावाद की वे सारी विशेषताएं हमें मिल जाती हैं, जो छायावाद की मुख्य विशेषताएं रही हैं। यह समय स्वतंत्रता के पूर्व का समय रहा है । इस समय के साहित्यकारों का मुख्य विषय स्वाधीनता का भव जगाना, समाज में व्याप्त कुरीतियों, अन्ध विश्वासों, धार्मिक पाखण्डों आदि से मुक्ति दिलाना भी इस काल के साहित्यकारों का लक्ष्य रहा है । इस काल के आसपास साहित्य में एक नये मोड़ का आरंभ हो गया थ, जो पुरानी काव्य पद्धति को छोड़कर नयी पद्धति के निर्माण का सूचक था । सन् 1935 में जयशंकर प्रसाद जी के छायावादी काव्य चेतना को मूर्तिमान करने वाली कृति 'कामायनी' का प्रकाशन हुआ ।

इस काल के प्रमुख साहित्यकारों में पन्त, निराला, महादेवी वर्मा प्रमुख रही है। कथा साहित्य में यही समय प्रेमचन्द का रहा है । छायावाद युग भारत के लिए अस्मिता की खोज का युग है।

प्रसाद जी का व्यक्तित्व : जीवन परिवेश –कविवर जयशंकर प्रसाद (1890–1936) का जन्म काशी के सम्पन्न घराने में हुआ था । इनके पूर्वज कहा जाता है मूलत: कन्नोज के थे । इनके पितामह शिवरत्न साहू काशी के विख्यात दानशील धनाढ्य सुँघनी साहू कहलाते थे । देवी प्रसाद के पुत्र जयशंकर प्रसाद ने धन के स्थान पर परिवार को साहित्य के वैभव से ख्याति दिलाई ।

प्रसाद जी का व्यक्तित्व का आकर्षण सचमुच दुर्निवार था । उनके माता–पिता व भाई की मृत्युपरान्त कम उम्र में ही घर का भार आ जाने पर भी उन्होंने अपना धैर्य नहीं छोड़ा, हिम्मत नहीं हारी । उन्होंने अपने लेखनी बनाये रखी।

प्रसाद जी की रचना ' आँसू' और 'लहर' की कुछ कविताओं के आधार पर अनेक विद्धानों ने 'प्रसाद' जी को रहस्यवादी कवि भी माना है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस सम्बन्ध में आगे लिखा है – 'रहस्यवादी के चित्त में किसी न किसी रूप में परम प्रेममय, धरम, अनान्दमय, लीला निकेत, चिरन्तन प्रिय का विश्वास अवश्य होना चाहिए। दो प्रकार से यह विश्वास आ सकता है –(1) चिन्तन मनन से, (2) भीतर की पीड़ा और व्याकुलता की अनुभूति के द्वारा। प्रथम श्रेणी के रहस्यवादी प्रसादजी हैं और दूसरी श्रेणी में महादेवी जी प्रमुख है।[2]

प्रसाद जी की प्रतिभा सर्वतान्मुखी थी। गद्य के क्षेत्र में भी उन्हें समान सफलता प्राप्त हुई है। वे नाटकार, कहानीकार,उपन्यासकार तथा निबन्धकार के रूप में अपनी रचना की विशेषता के गुणों के लिए अद्धितीय हैं। प्रसादजी की मुख्य रचनायें इस प्रयकार हैं –

काव्य– चित्राधार (क्रज भाषा), प्रेम राज्य, कानन–कुसुम, प्रेम पथिक, महाराणा का महत्व, प्रतिध्वनि, आँसू झरना, लहर, कामायनी आदि।

नाटक– उर्वशी (चंपू), करूणालय, राज्यश्री, विशाख, अजाशत्रु, जन्मेजय का नागयज्ञ,कामना, स्कन्दगुप्त, एक घूंट, चन्द्रगुप्त, ध्रुव स्वामिनी।
कहानी संग्रह– छाया, आकाशदीप, आँधी, इन्द्रजाल, प्रतिध्वनि, देवस्थ,
निबन्ध– काव्यकला तथा अन्य निबन्ध
उपन्यास– कंकाल, तितली, इरावती
एकांकी– अग्निमित्र,

कामायनी आधुनिक युग का महाकाव्य है जिसे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'मानवता का रसात्मक इतिहास' कहा है।[1]

प्रसादजी छायावादी कविता के प्रवर्तक है। उनकी कविताओं का भी थोड़ा सा परिचय देना चाहूंगी। 'आँसू प्रसादजी की महत्वपूर्ण रचना मानी जाती है और छायावादी कविता के आरंभिक इतिहास में इसका स्थान विषिष्ट है। प्रसादजी ने 'आँसू को मस्तक की 'घनीभूत पीड़ा' कहा है–

जो घनीभूत पीड़ा थी मस्तक में स्मृति सी छाई।
दुर्दिन में आँसू बन कर वह आज बरसने आई ।।

प्रसादजी मनुष्य के शुष्क जीवन को आँसुओं की वर्षा से सिक्त किया है।

'कामायनी' प्रसादजी की अंतिम रचना है। हिन्दी साहित्य में यह महाकाव्य की दृष्टि से 'रामचरित मानस' के बाद का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है।

हिन्दी सहित्य के मौलिक कहानी लेखकों में 'प्रसादजी' अग्रणी हैं। उनकी पहली कहानी 'ग्राम' अगस्त 1910 ई. में इन्दु में प्रकाशित हुई थी। यह कहानी 'रेखा चित्र' अधिक है और कहानी कम।

प्रसादजी का दूसरा कहानी संग्रह 'प्रतिध्वनि' नाम से 1926 ई. में प्रकाशित हुआ।

1929 में प्रसाद जी कहानियाँ का तीसरा संकलन 'आकाशदीप' प्रकाशित हुआ।

'प्रसाद' का चौथा कहानी संग्रह 'आँधी' है जो कि 1929 ई. में प्रकाशित हुआ था। इसमें ग्यारह कहानियां हैं– आँधी, महुआ, दासी, घीसू, बेड़ी, व्रतभंग,ग्राम गीत, विजया, अमिट स्मृति, नीरा, पुरस्कार।

'इन्द्रजाल' प्रसाद जी का पाँचवां और अंतिम कहानी संग्रह है। यह 1936 में प्रकाशित हुआ था।

प्रसाद की समस्त कहानियों को प्रवृत्ति और विधान के आधार पर कई वर्गो में बांटा जा सकता है –
(क) ऐतिहासिक कहानियाँ –
(ख) मनोवैज्ञानिक कहानियाँ –
(ग) यर्थातवादी कहानियां –

* अटल बिहारी वाजपेयी हिंदी विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.) भारत

(घ) रोमांटिक या स्वच्छन्दतावादी कहानियां –
(ड़) भावात्मक कहानियां –
(च) प्रतीकात्मक कहानियाँ –

जयशंकर प्रसाद के कवित्व की छाप उनके कथा साहित्य पर देखी जा सकती है। फिर भी उपन्यासों पर यथार्थ का रंग कुछ अधिक है। प्रेमचंद युग में ही कंकाल (1930), तितली (1934), तथा अपूर्ण उपन्यास इरावती (1936) में लिखकर जो प्रतिष्ठा अर्जित की वह प्रेमचन्द को छोड़कर अन्य किसी उपन्यासकार को नसीब नहीं हुई। समकालीन आलोचकों ने उन्हें उपन्यास के क्षेत्र में एक 'स्कूल' के संस्थापक के रूप में महत्व दिया। आदर्शोन्मुख यथार्थवादी उपन्यास की परम्परा, जिसके प्रवर्तक प्रेमचन्द थे। 'प्रेमचन्द स्कूल के अन्तर्गत रखी गई और यथार्थवादी या प्रकृतिवादी उपन्यासों की परम्परा जिसके जनक प्रसाद माने गये 'प्रसाद स्कूल' के नाम से जानी गई।

कंकाल, तितली, इरावती इन तीनों का हिन्दी उपन्यास साहित्य में अपना स्थान है। कंकाल में मध्यमवर्गीय नागरिक जीवन को खुरचकर देखा गया है। इसमें नागरिक जीवन के सभी प्रतिनिधि आ गये हैं। कंकाल में हिन्दी समाज की विकृतियों और अवैध सन्तानों के यथार्थ को उद्घाटित करने का प्रयास किया गया है।

'तितली' में गांव की कहानी है। इसका कथा सूत्र बिखरा हुआ नहीं है। किसानों–मजदूरों पर होने वाले अत्याचारों, निम्न वर्ग की दयनीय स्थिति, तहसीलदारों, महन्तों के हथकंडों, वेष्याओं की धनलोलुपता, विधवाओं की अतृप्त काम भावना आदि का तितली में यथार्थ अंकन किया गया है।

इन्द्रदेव की छायरी में इस पर सुन्दर टिप्पणी की गई है ' प्रत्येक प्राणी अपनी व्यक्तिगत चेतना के उदय होने से एक कुटुम्ब में रहने के कारण अपने को प्रतिकूल परिस्थिति में देखता है। इसलिए सम्मिलित कुटुम्ब का जीवन दुखदायी है। सब जैसे भीतर–भीतर विद्रोही मुंह पर कृत्रिमता और उस घड़ी की प्रतीक्षा में ठहरे हैं कि विस्फोट होकर चले जाये।

'इरावती' प्रसाद की तीसरी और अधूरी कृति है। कंकाल और तितली का यह स्वरूप इरावती में बदला हुआ दिखाई पड़ता है। वस्तुत: 'इरावती', 'कामायनी' के बाद की कृति है।

'इरावती' में वृहस्पतिमित्र, पुष्यमित्र, अग्निमित्र, खारवेल ऐतिहासिक पात्र है।

छायावादी युगीन जयशंकर प्रसाद नाटक सृष्टा, कथाकार, उपन्यास प्रणेता, गद्य–काव्यकार के साथ–साथ निबंध लेखन में भी उनका बड़ा योगदान रहा है। वे चम्पूकार के रूप में भी हमारे सामने आते हैं। उनके निबंध उनके काव्य–सिद्धान्तों का विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं।

डॉ. रामचन्द्र तिवारी ने 'हिन्दी का गद्य साहित्य में' प्रसादजी के निबन्धों को मुख्यत: तीन कोटियों में रखा है –

क. सामान्य साहित्यिक निबन्ध।
ख. ऐतिहासिक विषयों पर लिखे गये निबन्ध।
ग. साहित्य–समीक्षा संबंधी निबन्ध।

सामान्य साहित्यिक निबन्ध 'इन्दु' (त्रैमासिक पत्रिका) के लिए समय–समय पर लिखे गये हैं। इनकी रचना 1909–1912 ई. के बीच हुई थी।

'प्रसाद'' के ऐतिहासिक विषयों पर लिखे गये निबंध प्राय: उनके ऐतिहासिक नाटकों– 'विशाख', 'राज्यश्री' ,'जन्मेजय का नागयज्ञ', 'अजात शत्रु', 'स्कन्दगुप्त', 'ध्रुव स्वामिनी' की भूमिका के रूप में प्रस्तुत है। स्वतंत्र रूप से केवल दो निबन्ध लिखे गये हैं – 'सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य', 'आर्यावत का प्रथम सम्राट इन्द्र'। इन निबंधों में प्रसाद का अन्वेषक सजग रहा और उनका कवि रूप पीछे रह गया। इनकी शैली इतिवृत्तात्मक गवेषणा प्रधान तथा मौलिक है।

प्रसादजी के साहित्य समीक्षा संबंधी निबंध 'काव्य और कला , 'रहस्यवाद', 'रस', 'नाटकों में रस का प्रयोग', 'नाटकों का आरंभ', 'रग मंच', 'यथार्थवाद', और 'छायावाद पहले हँस पत्रिका में प्रकाशित हुए थे। बाद में पुस्तककार 'काव्य और कला तथा अन्य निबंध' नाम से सुसम्पादित होकर प्रकाशित हुए हैं। इन निबन्धों में प्रसाद जी का साहित्य शास्त्र का अनुशीलन प्रकट हुआ है और उनकी निजी मान्यतायें प्रौढ़तम रूप से इन निबंधों में दिखाई देती है।

उपर्युक्त उद्धरणों के साथ मैंने कहानियों, उपन्यासों एवं निबंधों की सामान्य चर्चा इसलिए की है ताकि प्रसादजी के जीवन परिवेश के साथ उनकी रचना दृष्टि से भी परिचय प्राप्त हो सके। अन्य अध्यायों में उनकी कहानियों उपन्यासों एवं निबंधों पर विस्तार से विचार करूंगी तथा मूल्यवान निष्कर्ष निकालने का प्रयास भी करूंगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. जयशंकर प्रसाद– रमेश चन्द्र शाह साहित्य अकादमी, 36 फिरोजशाह (भारतीय साहित्य के निर्माता) द्वितीय भावृति 1984 पृष्ठ संख्या 23,24
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, श्याम चन्द्र कपूर, ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली, प्रकाशक ग्रंथ अकादमी 1686 पुराना दरियागंज, नई दिल्ली, 110002, संस्करण 2001, पृष्ठ संख्या 230,231
3. छायावाद की वृहत्यी छायावाद संपादक– डॉ0 सत्यनारायण त्रिपाठी, डॉ0 रामदेव शुक्ल विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी प्रथम संस्करण 1983 ई0 पृष्ठ संख्या– 27–28
4. हिन्दी का गद्य साहित्य– डॉ0 रामचन्द्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी संस्करण 1992 पृष्ठ संख्या– 417

****

हिन्दी नाटकों में रंगमंच के सवाल (जयशंकर प्रसाद एवं मोहन राकेश के नाटकों के संदर्भ में)

डॉ. रत्नेश विष्वक्सेन *

शोध सारांश – 'अवस्थानुकृतिर्नाट्यम' से नाटक का प्रारंभ होता है तो 'रूपं दृश्यत्योच्यते' से रंगमंच विधान का। नाटक को पंचम वेद कहा गया है और जिसमें सर्ववार्णिकता की ही मनोवांछित प्रतिज्ञा–प्रतिष्ठा है। अपनी विधागत वैशिष्ट्य में नाटक अन्य सभी विधाओं से इतर है। वह जनतांत्रिक मूल्यों, अपेक्षाओं और आकांक्षाओं का प्राण रूप है। नाटक का मंचीय विधान और उसकी दृश्यता समाजिकीकरण के अभिप्रेत से संवलित होकर जीवन और प्रकृति की अनुकरणात्मक एषणा को पोषित करती है। हिन्दी नाटक और रंगमंच में जयशंकर प्रसाद और मोहन राकेश के योगदान पर चर्चा रोचक और विषयानुकूल है। हम इसी क्रम में उनकी रंगमंचीय प्रविधियों से रूबरू होंगे।

शब्द कुंजी – नाटक, रंगमंच, संस्कृति, पंचम्वेद, रंगशाला, रंगबोध।

प्रस्तावना – चक्षुग्राह्यता, श्रुतिग्राह्यता और जीवंतता नाटक का मूल मनोधर्म है। 'नाटक का अपने आप में जीवंत माध्यम होना ही वह निर्णायक तत्त्व है जो उसे दूसरी सारी विधाओं से एकदम अलग कर देता है।'[1] हिन्दी नाटक का वास्तविक प्रारंभ भारतेन्दु से होता है। आधुनिक काल या गद्यकाल के इसी नाटक से प्रस्तावित होता है जो आचार्य शुक्ल को किंचित आश्चर्य में डालता है और जिसकी सटीक पहचान का ऐतिहासिक श्रेय भारतेन्दु को जाता है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में जिन नाटककारों ने नाटक और रंगमंच के प्रतिमानों को सर्जनशीलता की नूतन छवियाँ दी उनमें जयशंकर प्रसाद और मोहन राकेश प्रमुख हैं। प्रसाद और राकेश के नाटक अपनी चिंतन एवं भारतीय स्त्रोतों की व्याख्यायित प्रतिज्ञा के कारण अनायास एक दूसरे के समीप चले आते हैं। कथ्य, शिल्प, भाषा और सांस्कृतिक बोध के स्तर पर प्राय: यह प्रतीत होता है कि प्रसाद का स्वातंत्र्योतर रूप राकेश है तो राकेश की स्वतंत्रता पूर्व उपस्थिति जयशंकर प्रसाद हैं। बहुत सारी असमानताएँ भी हैं जो होनी भी चाहिए, परंतु स्त्री, आधुनिकता, संस्कृति को लेकर इन दोनों की चिंता प्रेरणीय है। यह अलग तथ्य है कि स्त्री और संस्कृति की जितनी रचनात्मक व्याख्या प्रसाद करते हैं उतनी शायद राकेश नहीं। राकेश प्रसाद से बेहतर जहाँ है, वह है उनकी रंगमंचीय अपेक्षा का निर्वाह, नाटक और रंगमंच को एक दूसरे का पूरक मानते हुए राकेश ने रंगबोध की नई पहचान पैदा की और इसमें भविष्यत् की संभावना रोप दी।

यहाँ पर इसी क्रम में प्रसाद की रंगमंचीय अपेक्षाओं को ठीक से हमारी परंपरा समझती, और स्वस्थ होकर उसकी व्याख्या करती तो सतह पर ये दिखनेवाली यह विषमता स्वयमेव मिट जाती।

संस्कृति शब्द आचरण–अभिप्रेत की बहुआयामी स्थिति और समुच्चय का नाम है। व्यष्टि का संस्कार समष्टि की संस्कृति है। संस्कृति की व्यापकता में राष्ट्र, इतिहास, स्त्री सभी समाये हुए हैं। यही विराट भाव एवं धारणधर्मिता संस्कृति की रचनात्मक पहचान है। प्रसाद के नाटकों में संस्कृति एक आयामी नहीं है, उसकी अनंत छवियाँ हैं, सौंदर्य का उदात्त लोक है जिसमें आर्यावत्त का शुभ एवं वांछित आदर्श अंकित है। स्त्री को व्यक्तित्व देते हुए कोमलता एवं संभावना दोनों को नाटकों का उपजीव्य बनाया है। अतिरिक्त कोमलता या फिर अन्यथा संभावना, इन दोनों स्थितियों से बचाते हुए प्रसाद ने एक अद्भुत संतुलन रखा है, क्योंकि इन अतिरेकों में नारी व्यक्ति नहीं वस्तु होती है। प्रसाद के नाटकों में वस्तु से व्यक्ति होती स्त्री का सप्राण प्रयत्न वरणीय है। मोहन राकेश के नाटकों में समस्या घर की है। घर की समस्या आधुनिकता और नये अर्थों में क्रमश: समकालीनता एवं समसामयिकता की भी समस्या है। आधुनिक समय की सारी विडम्बनाओं को आत्मसात करते हुए राकेश के नाटक अंत में अधूरेपन की अनिवार्य अयाचित टीस में बदल जाते हैं। यह अकारण नहीं कि 'आषाढ़ का एक दिन' में भीगने वाली और जीवन की सुख कणिका को भावना में वरण करने वाली मल्लिका 'आधे अधूरे' में पके बालों को छुपाती, झुर्रियों को तोड़ती एक ऊबाऊ शख्सियत 'सावित्री' बनकर अभिशप्त होने के लिए तैयार है।

रंगबोध एवं रंगमंच संबंधी अवधारणा को लेकर प्रसाद और राकेश के मत भिन्न–भिन्न हैं। पर उसमें समय की अपेक्षा–उपेक्षा का अनिवार्य प्रभाव है। प्रसाद ने नाटक के लिए रंगमंच की अपेक्षा की तो इसे दुर्भावना के रूप में विज्ञापित किया गया। 'रंगमंच के संबंध में यह भारी भ्रम है कि रंगमंच के लिए नाटक लिखे जाएँ। प्रयत्न तो यह होना चाहिए कि नाटक के लिए रंगमंच हो, जो व्यावहारिक हैं।'[2]

ऐसे दो कारण स्पष्ट है जिसने प्रसाद को नाटक के लिए रंगमंच की अपेक्षा को अनिवार्य बनाया और जिसने समकालीन आलोचकों की उपेक्षाओं को भी न्योता।

पहला कि संस्कृत रंगमंच नाटक की अपेक्षाओं को अर्थवान् ढ़ंग से धारण करते थे और दूसरी पारसी रंगमंच की व्यावसायिक आवश्यक और धार्मिक व इश्क संबंधी विषयों से लोक का भला होना संदिग्ध था। ये दोनों कारण प्रसाद को नाटक के लिए रंगमंच की प्रेरणा दी। ऐसे भी नाटक के लिए रंगमंच का होना दुराग्रह नहीं है। वह एक सर्जनात्मक चुनौती है जो विकास के लिए अनिवार्य है। एक और बात, यह सही है कि प्रसाद के नाटक सामान्य मंच पर सामान्य निर्देशक से मंचित नहीं हो पाते। उसके लिए गंभीरता आवश्यक है, यह गंभीरता ही प्रसादत्व है।

राकेश के आने तक रंगमंचीय प्रविधियाँ काफी वयस्क हो गई थी। राकेश ने

* सहायक प्राध्यापक (हिन्दी) राँची कॉलेज, मोहराबादी, राँची (झारखण्ड) भारत

भी कहीं न कहीं नाटक के लिए रंगमंच की आवश्यकता के सच को स्वीकारा। 'आषाढ़ का एक दिन' की भूमिका में इसका संकेत करते हुए कहा कि रंगशालाएँ बनवा देने से ज्यादा महत्वपूर्ण सांस्कृतिक आवश्यकताओं की पहचान है। दर असल तब तक हिन्दी नाटक साहित्यकता (नाटक) और व्यवसायिकता (रंगमंच) के खुराफाती द्वन्द्व से बाहर आ गया था। शिल्प से ज्यादा संवेदना और संस्कृति पर बल महत्वपूर्ण हो गया था। हिन्दी नाटक और रंगमंच का विकास राकेश के आने पर प्रारंभ होता है। क्योंकि अब वह प्रेषित संवेदन का आकांक्षी था न कि शिल्प और बाहरी कलेवर का। यह सच है कि रंगमंच की दृष्टि से तीन अंको वाली राकेश की नाटकीय योजना ज्यादा सफल हुई हैं, पर यह भी उतना ही सच है कि प्रसाद की रंगमंचीय संभावना अपार है और चुनौतीपूर्ण है।

भाषा राकेश के नाटकीय प्रतिनिधित्व को पुष्ट करती है। मंचन की भाषा हरकतों की भाषा है, उद्धेलनों, कौंधो की भाषा है जिसमें राकेश का सानी नहीं है। विशेषकर मौन का भाषिक रूपांतरण और सर्जनात्मक मंचन के लिए उत्कृष्ट बनाना राकेश का नायाब मंचीय अविष्कार है। प्रसाद के नाटकों की भाषा गंभीर और अर्थगर्भी है। दुरूहता जो भी है वह भी तभी दूर होगी जब लगातार मंचन होगा। ब0ब0 कारंत, शांता, गांधी, गिरीश रस्तोगी ने प्रसाद के नाटकों को मंचित किया। मंच सर्वोत्तम की अपेक्षा का नाम है। आपके भीतर पल रहे, रच रहे सर्वोत्तम से जब आपकी मुलाकात हो जाए तो प्रसाद उस दिन सारे आरोपों से बरी हो जायेंगे। प्रसाद के नाटक अपने भीतर की सर्वोत्तम संभावना को बाहर लाते हैं। 'कला की अवधारणा को लेकर पाश्चात्य और भारतीय दृष्टि में मूलत: क्या अंतर है, इसे आधुनिक रंग चिंतन में पहली बार प्रसाद ने ही स्पष्ट किया।'[3]

निष्कर्ष – स्वतंत्रता के पूर्व का आर्यावर्त स्वतंत्रता के बाद का भारत बनकर कितना बढ़ा है यह भी चिंतनीय है। जितनी आत्मीयता आर्यावर्त में है उतनी भारत में नहीं। नक्शे पर गढ़ी गई संधियों और रक्तपाती घातों ने जिस सांप्रदायिकता, प्रादेशिकता और स्त्री–पुरूष असमानता का तनाव गढ़ा है वह राष्ट्रीय–अखंडता के स्वर को भंग करता है। इन नाटकों में प्रसाद के चिंतन दर्शनीय होंगे तो आजादी के बाद बदले हुए मेयारों को राकेश किस तरह जज़्ब करते हैं, उसे जानना भी तब अनिवार्य होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. दर्शन प्रदर्शन–देवेन्द्र राज अंकुर–पृ0–13, राजकमल प्रकाशन, 2009
2. काव्य और कला तथा अन्य निबंध : जयशंकर प्रसाद, पृ0–69, लोकभारती प्रकाशन, 2007
3. दर्शन प्रदर्शन–देवेन्द्र राज अंकुर–पृ0–46, राजकमल प्रकाशन, 2009

****

अनुवाद और अनुवादक

डॉ. शबनम खान *

प्रस्तावना – विज्ञान की बढ़ती हुई प्रगति ने संपूर्ण विश्व के मानवों को आसपास लाकर खड़ा कर दिया है। विमानों के आविष्कार ने तो हजारों किलोमीटर की यात्रा चंद घंटों में सुलभ करा दी है। विश्व के प्रत्येक देश की भाषा और संस्कृति अलग-अलग है, जिनसे न केवल अन्य राष्ट्र अपितु उस राष्ट्र के नागरिक भी अनभिज्ञ रहते है। हमारे संविधान में 14 भाषाएं स्वीकृत है। इसके अतिरिक्त लगभग 1652 बोलियां और भाषाएं अपना अस्तित्व बनाए हुए है। सामान्य भारतीय नागरिक एक भाषा के अतिरिक्त दूसरी भाषा भली-भांति नहीं समझ पाते, अलबत्ता अपने आसपास के क्षेत्र की दो-तीन बोलियां समझ लेते है। यद्यपि विज्ञान प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़ चुका है, फिर भी ऐसी कोई युक्ति बनाने में समर्थ नहीं हो सका, जिससे किसी भी व्यक्ति के सम्मुख भाषा की समस्या खड़ी न हो। विज्ञान के बढ़ते चरणों ने विश्व को दूरी की दृष्टि से निकट कर दिया है। लेकिन वहां की सभ्यता और संस्कृति की अनभिज्ञता के कारण काफी कठिनाई उठानी पड़ती है। इसका मूल कारण है उनकी भाषा न जानना। अनुवाद इसमें महती भूमिका अदा करता है।

अनुवाद ही वह माध्यम है जो व्यक्तियों को पर-राष्ट्रों की सभ्यता, संस्कृति और रहन-सहन से परिचित कराता है। इस माध्यम का उपयोग कर व्यक्ति उनकी अच्छी चीजें ग्रहण करने का प्रयास करता है और आदान-प्रदान की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है, जिससे वसुदैव कुटुम्बकम् की भावना वेगवती हो जाती है। अनुवा हमें आपसी भाईचारे का संदेश देता है और ज्ञानार्जन का प्रमुख और महत्वपूर्ण साधन है। इस प्रकार मानवता के विकास के लिए, आपसी सौहार्द्र एवं प्रेम-पूर्ण व्यवहार के लिए एवं दूसरे राष्ट्रों और प्रदेशों के निवासियों की अच्छाईयां सीखने के लिए अनुवाद बहुत आवश्यक है।

हिन्दी में अनुवाद शब्द अंग्रेजी के translation के पर्याय के रुप में प्रयोग किया जाता है। यह लैटिन शब्द trans और lation से बना है। trans का अर्थ है पार और lation का अर्थ है ले जाने की क्रिया अत: एक पार से दूसरे पार ले जाने की क्रिया "translation" है। 'अनुवाद' शब्द का सम्बन्ध 'वद्' धातु से है, जिसका अर्थ होता है 'बोलना' या 'कहना'। 'वद्' धातु में 'धत्र' प्रत्यय लगने से 'वाद' शब्द बनता है और फिर उसमें 'पीछे' या 'बाद में' में 'अनु' उपसर्ग जोड़ने से अनुवाद शब्द बनता है। इस प्रकार अनुवाद का मूल अर्थ है 'पुन:कथन' या किसी के कहने के बाद कहना। [1]

अनुवाद एक कठिन कार्य है। अनुवाद मात्र भाषान्तरण ही नहीं है। मात्र भाषान्तरण निर्जीव होता है। संवेदनारहित अनुवाद को हम अनुवाद नहीं कह सकते। कपड़े पहने हुए पुतले को मनुष्य की संज्ञा नहीं दी जा सकती है। अनुवाद का क्षेत्र उस अथाह समुद्र की भांति है, जिसमें गोताखोर जितना नीचे जाएगा उतना ही अधिक मूल्यवान रत्न पाएगा। अनुवाद एक महत्वपूर्ण विधा है, दो भाषाओं का सेतु है और 'अनुवादक' इस सेतु की महत्वपूर्ण कड़ी है। अनुवाद करना एक दुष्कर कार्य है। स्वयं अनुवाद शब्द को लीजिए। यह संस्कृत का शब्द है, किन्तु इसका अर्थ हिन्दी में भिन्न हो गया है। 'अनुसत्य उच्यते इति अनुवाद', किसी के कथन को यथावत दुहराना ही अनुवाद है। 'वाद' का अर्थ है-कथन, लेकिन अब यह शब्द अंग्रेजी के translation का पर्यायवाची माना जाता है। [2]

एक कुशल अनुवादक अपनी योग्यता और क्षमता से अनुवाद की कठिनाईयों तथा दोनों भाषाओं के बीच की दूरी को अपने कुशल अनुवाद द्वारा दूर कर लेता है। सर्वेन्टीज के अनुसार एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद कार्य ऐसा ही है जैसे किसी छपे हुए कपड़े को उल्टा करके देखना। [3] अनुवाद एक ऐसी विधा है, जिसके संबंध में इस देश में बहुत सार गलत-फहमियां हैं। कहीं-कहीं तो शब्दकोशीय पर्याय रखने मात्र को अनुवाद मानकर कई लोग स्वयं को 'अनुवादक' समझने की खुशफहमी पाल लेते है। वास्तव में अनुवाद वह शीशा है, जिसमें मूलाकृति का हूबहू प्रतिबिम्ब प्रस्तुत होना जरुरी है। सफल अनुवाद तो वहीं है जो अनुवाद जैसा न मालूम हो। [4] शब्दश: अनुवाद से अनुवाद को सबसे अधिक खतरा होता है, इसमें अक्सर शब्द का प्रतिशब्द तो रख दिया जाता है, लेकिन मतलब कुछ नहीं निकलता। जिस प्रकार हड्डियों का गठन ही मनुष्य नहीं है, उसी प्रकार शब्दों का अनुवाद भी अनुवाद नहीं हो सकता।[5] अनुवाद मात्र यांत्रिक कार्य नहीं है। अगर ऐसा होता तो सारा अनुवाद कार्य कम्प्यूंटरों के माध्यम से संपन्न से ही कराया जा सकता था। अनुवाद प्रतिभा संपन्न और विलक्षण व्यक्ति का कार्य है। "The replacement of textual material in one language (SL) by equivalent textual material in another language (TL)."[6] अर्थात् किसी एक भाषा (स्रोत भाषा) की पाठ्य-सामग्री को किसी दूसरी भाषा (लक्ष्य भाषा) में उसी रुप में रुपांतरित करना अनुवाद है।

अनुवाद से मूल का पूरा भाव व्यक्त होना चाहिए, जिससे अनुवाद मात्र अनुवाद प्रतीत न होकर भाषा विशेष की मूलाकृति सदृश लगे। अनुवाद में अनुवादक की निजी शैली भी सुरक्षित रहनी चाहिए, जिसमें उसका योगदान भी परिलक्षित हो सके। अनुवाद को छोड़कर, संभवत: साहित्य की ऐसी कोई शाखा नहीं है, जिसके प्रति लोगों में इतनी कम श्रद्धा है। वैसे तो सभी इसकी उपयोगिता स्वीकार करते हैं, परन्तु एक महत्वपूर्ण व्यवसाय होते हुए भी इसके प्रति लोगों में उदासीनता है। अनुवाद विश्व के महत्वपूर्ण व्यवसायों में से एक है। वस्तुत: स्पष्टता ही अनुवाद का प्रमुख गुण है। इसके साथ ही भाषा और उसके प्रस्तुतीकरण का भी एक विशेष स्थान है। जो अनुवादक इस कार्य

* प्राध्यापक (हिन्दी) माता जीजाबाई शासकीय स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय, मोती तबेला, इन्दौर (म.प्र.) भारत

को कुशलतापूर्वक संपन्न कर लेता है, वहीं सफल अनुवादक माना जाता है।

अनुवादक बनना बहुत कठिन कार्य है। लेखक बनना जितना आसान है, उसकी अपेक्षा अनुवादक बनना बहुत कठिन है। एक सामर्थ्यवान अनुवादक अपनी दक्षता, योग्यता एवं कुशलता से दो भाषाओं की दूरी तथा अनुवाद की कठिनाईयों की मंजिल सरलता से तय कर लेता है। यही कारण है कि कभी-कभी अनुवाद मूल से ज्यादा प्रभावोत्पादक और कलात्मक हो जाता है। लेकिन सच्चे अनुवादक का लक्ष्य मूल कृतिकार का स्थान लेकर वहां अपने को प्रतिष्ठित कर देना नहीं होता, उसकी भाव राशि को अन्य भाषा शैली के परिधान में प्रस्तुत करके मूल कृति तथा कृतिकार को अन्य भाषा-भाषियों के हृदयासन पर प्रतिष्ठित करना होता है। अनुवादक की यही मूक साधना अनेक दृष्टिकोणों से उसके कार्य को साहित्य सृजन में अद्धितीयता प्रदान कर देती है। [7]

वास्तव में अनुवादक सहलेखक होता है, वह पुन: सृजन करता है। उसके लिए अनिवार्य है कि उसमें मूल रचना की गहराई तक उतर जाने तथा मूल लेखक से तादात्मय स्थापित करने की क्षमता हो। यह एक प्रकार का परकाय प्रवेश है। इसके अंतर्गत अनुवादक को मूल लेखक के भावसंवेगो, अनुभूतियों, संवेदनाओं तथा लेखकीय दृष्टि के साथ एकाकार होना जरुरी होता है। इसके लिए अनुवादक से अपेक्षा की जाती है कि उसे कम से कम दो भाषाओं का अच्छा ज्ञान होना चाहिए (क) जिस भाषा से अनुवाद किया जाना है, अर्थात् स्रोत भाषा और (ख) जिस भाषा में अनुवाद प्रस्तुत किया जाना है अर्थात् लक्ष्य भाषा। परन्तु गहरा ज्ञान होने मात्र से कोई व्यक्ति अच्छा अनुवादक नहीं बन जाता है। इसके लिए सर्वप्रथम जिसका अनुवाद करना है, उसका भाव समझना चाहिए और भाव के बाद भाषा। भाव शरीर है तो भाषा पोषाक। शरीर की अनुपस्थिति में पोषाक की क्या आवश्यकता, लेकिन पोषाक शरीर के अनुरुप होनी चाहिए, छोटी या बड़ी नहीं।

निष्कर्ष रुप में कह सकते है कि किसी भी रचना का अनुवाद करते समय अनुवादक को पाठक के स्तर का ध्यान रखना चाहिए, भले ही वह किसी भी मन:स्थिति में चिन्तन करें, परन्तु उसे अपने पाठक वर्ग का ध्यान रखकर ही भाषा का प्रयोग करना चाहिए। विषय का ठीक और परिपूर्ण ज्ञान अनुवादक के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है और यह ज्ञान अनूद्य सामग्री के स्तर से निचले स्तर का कदापि नहीं होना चाहिए अन्यथा अनुवाद के साथ न्याय नहीं हो सकेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. अनुवाद विज्ञान-भोलानाथ तिवारी, पृ. 9
2. अनुवाद में विलक्षणता-डॉ. न.बी. राजगोपालन, पृ. 17
3. अनुवाद, अगस्त 1966, पृ. 8
4. अनुवादक की योग्यता-डॉ. मोरेश्वर दिनकर पराडकर, पृ. 20
5. मलयालम से हिन्दी अनुवाद की समस्याएँ-डॉ.एन.ई. विश्वनाथ अय्यर, पृ. 11
6. A Linguisite theory of translation-Cateford, p.33.
7 काव्यानुवाद कठिनाईयाँ एवं संभावनाएँ-ले. नवीन चंद सहगल, पृ. 28

****

Women Entrepreneurship in India

V.M. Audichya *

Abstract - Women entrepreneurship has been considered as one of the important source of economic progress. Woman entrepreneur not only creates new works for herself and other people but also provides different solutions of the problems related to management, organization and business to the society still they are very in number among entrepreneurs. Women entrepreneurs often face many gender bias based obstacles for beginning and promoting their business. For example biased property, marriage and recession laws, cultural traditions, no accessibility to formal financial system, limited movement and limited approach to information and network etc.

Introduction - Women entrepreneur can specially cooperate in family and community's economic prosperity, eradication of poverty and women empowerment etc. They can play a very important role in achieving development goals in the 21st century. Therefore all the Governments in the world as well as development organizations are working actively to encourage women entrepreneurs through various plans, incentives and enrichment methods. In all women run small scale units; more than 50% entrepreneurs belong to four southern states and Maharashtra.

Many very small, medium entrepreneur organizations, various state small industries development corporations, nationalized banks as well as N.G.Os are running many programs for fulfilling the requirements of those women who are not well educated and unskilled. Such programs also include entrepreneurship development program. Office of the Development Commissioner has also opened a cell for those women which provide coordination and cooperation to such entrepreneurs who face specific problems. There are many such central and state level government schemes which center to the requirements of women entrepreneurs. They provide training cum aid for money earning activities in order to make them self reliant. Indian Small Industry Development Bank (SIDBI) executes special schemes for women entrepreneurs. Along with special schemes, very small and medium industries run by women entrepreneurs are given special encouragement and facilities by the government through various schemes. E.g. Women beneficiaries are given priority under 'Prime Minister Employment Scheme'.

1. Government provides different kinds of rebate to women under this scheme to simplify their partnership.
2. Similarly under MSE group development program of MSME ministry. The ministry in the matters of hard intervention. Generally contributes 30 to 80 percent of total cost of the project but in the cases of women owned enterprises or women entrepreneurs contributory amount of the total project cost goes up to 90%.
3. Under the micro and small enterprise loan guarantee fund scheme, generally 75% guarantee is available but in women entrepreneur's case this guarantee is available up to 80%.
4. NSIC runs performance and credit rating schemes for small industries, under which they get subsidy for acquiring credit rating. Surveys conducted in India and throughout the world clear by suggest that very soon in near future women are going to dominate both economy and market.

Women's increasing graph of education and income will make them the most increased power of the market in the coming decade. Recently in a survey conducted by Global research firm 'Aspreeto Sento' in thirteen countries including India, this important fact has emerged that in the coming five years women's income will increase by three lac crore rupees at world level which will be just double of total approximate GDP of both China and India. This revolutionary charge will be brought about by the women between age limit from 17 to 30.

It is heartening to find that this survey shows the changing picture of Indian women and their power to moved it towards them. Undoubtedly in our country economy of the house as well as of the nation moves according to the will of male dominated society. According to a writer main reason behind this tradition is that the men are more educated and earn more in comparison to women counterpart. Keeping this fact in mind, the market used to prepare itself according to the requirements of the men as they had money and power in their pocket. Now the circumstances have changed self reliant women have to take bold decisions related to higher education, job and purchasing. They were efficient earlier also but they did not enjoy the freedom of spending money according to their own will. In a completely changed scenario, economically self reliant women are now free to spend their hard earned money as per their liking.

* Asst. Professor (English) Govt. College, Dhana, Distt. Sagar (M.P.) INDIA

Surveys predict that in the coming next five years women will prefer spending money to saving it. As it is not enough in next decade one out of ten women having bank accounts will be credit card holder. Till now, cloth, food, cosmetics industry had focus towards women but women have their say in car industry and share market as well. Main reason behind this is women's increasing interest towards education. Half of the total strength of the students in the colleges throughout the world belongs to women 13% of women students have increased in India itself in the last seven years. They are still behind men in receiving education but they have left behind men in earning handsome salary packages chairperson of PepsiCo Indira Nuyi, Chanda Kochar, Kiran Majumdar Shaw, Chitra Rama Krishnan, Naina Lal Kidwai, etc are a few examples. In America young women of 17 to 25 years earn 17% more than the men. In our country urban women's income used to be 4.492. it has gone up to 9.457 in 2010.

Rapid progress of the women is not only changing the society but also its thinking. In Patriarchal society dominated Asian countries like China and India people's attitude towards their daughter has under gone drastic change. They have begun to pay attention towards their daughters. Interestingly people now do not want their first male child any more. Though in our country it will take some time for such ideal situation, it is encouraging to see that more young girls are learning English in comparison to young boys. There is huge demand of English speaking youth in BPO's. They are working very hard to obtain such job opportunities. Women have started to run business on their own. Undoubtedly economic changes affect our thinking and culture to a large extent. There are many domestic works like, looking after raising children, looking after old aged people, looking food, Home management etc. which women have been doing skillfully since many countries but do not get paid for these works. These works have become professional. These works have come under service sector. Obviously women are being directly benefited due extension of this field. They are best suited for the management of such works. Successful women of other businesses also like women for domestic works. Women are not behind men in earning money as a result their importance is clearly being felt in their families.

Data given below shows how women's income has increased tremendously:-

Year	Monthly Income	Domestic Income
2001	4492	8242
2010	9457	16509

According to market research report published recently young women earn more money than the young men. Records suggest that working and single girls are far ahead that the young boys in purchasing their own house. It means they have not only become self reliant but also are more successful than men. Now they cannot be neglected while making schemes for improving our economy.+

Untiring hard work, determination and focus on the goal are the three factors responsible for women's rich contribution in every field. When a woman works, economy of the country increases. In India women are holding high posts in 10 big financial service sectors. Data given below reveals how our women are playing important role in banking sector.

Post	Village	Town	City
Officer	2.79%	7.01%	14.2%
Clerk	7.04%	16.7%	27.7%
Subordinate	5.19%	9.22%	10.52%

There is no doubt that economic liberalization has provided opportunities to many new women entrepreneurs. Still there is long way to go. Dr Aruna Mubim, associated with FIKKI ladies organization, feels that there should be broad vision for women entrepreneurs. They should be encouraged. Bank loan procedure should be simplified so they could move forward to rub shoulders with their male counterpart in the modern era.

References :-

1. Dainik Bhaskar-Newspaper.
2. Pratiyogitadarpan – Magazine.
3. Women Empowerment and Social Change, Kumar, A. -2007.
4. www.google.com

Own House	Personal Bank A/c	Total Deposit Amount	Personal Loan A/c	Bank Loan A/c	Gold
11%	28%	26%	16%	18%	11%

Working women in big cities:-

Delhi	Ahmedabad	Kolkata and Mumbai	Chennai	Bangalore
10.6%	11.7%	18%	20%	25%

****

Cultural Conflict and the Indian Diaspora in the non-fictional works of V.S.Naipaul

Dr. Ajay Bhargava * **Manju Sharma** **

Abstract - This research paper is an attempt to study cultural conflict in the works of V.S.Naipaul with reference to Indian Diasporas. He is one of the foremost spokesperson in English prose of the post colonial Third World. It aims to explore the reasons behind the cultural fracture in Indian society.He nicely depicts the social, political, religious conditions of India and explains that Indian people suffer from many social dilemmas such as caste system, poverty and colonialism.

Introduction - The Indian Diaspora today constitutes an important and in some respects a unique force in world culture. The term "Diaspora" in Greek means "scattering or "dispersion". The Indian Diaspora is a generic term to describe the people who migrated from territories that are currently within the borders of the Republic of India, composed of "NRIS" (Indian citizens not residing in India) and "PIOS"(persons of Indian origin who has acquired the citizenship of some other country) , the diasporas covers practically every part of the world. The Diasporas is very special to India.

His nonfiction works have not only emerged as an artist's achievement in the new era of fiction but also have demanded worldwide attention for the most frank, free and sometimes even the most controversial observation that he made them. His nonfictional writings also reveal his attempt at changing from one field to another, from purely the fiction writer to a journalistic art of transforming facts into fiction which leads him to emerge as an established artist of new genre. In his nonfiction works like India: An Area of Darkness, India: A Wounded Civilization and India: A Million Mutinies Now. We find that he has freed to himself from the problems of experiment and exploration and deals with his experience and encounter which he records with greater liberty and also with his own observations and views which appears startling, controversial as well as astounding. Above all in hi nonfiction novel that brings him to a close analysis of this parent homeland in which he records his views and visions after his several visits to this country. His experiences & observations are based on his personal study, encounters and feelings. His journalistic eye for significant details, his views and visions regarding Indian's social, cultural and political scenario bring them to the category of this new genre.

Cultural conflict in his nonfictional works - Naipaul's involves with the issues of cultural and literary identity in a multiple ways. His intellectual and personal obsession with India is a country and metaphor that he evokes in a mood of anger and despair. His penetrating, opinionated travel writing makes up a remarkable running commentary on the clash of civilization. His works show a deep concern for the culture of the colonized countries, the socio-political and cultural history of India and the economic condition of a few Eastern countries passing through a period of transition from colonial domination to independence. Central themes in his works are damaging effects of colonialism upon the people of the third world, but he does not believe in the imported ideas of revolutionaries of the ability of the former colonies to avoid mistakes made by the western and consumer society.

His engagement with the social and cultural friction caused by ethnic traditions forced into proximity, and the rituals leads him to conclusions about the cultural and political poverty. In An Area of Darkness, he notes the workings of caste system in India and also observes the various rites and rituals observed by the Indian visits people. From the very beginning it is noticeable that he is enormously disenchanted with the reality that he has to face during his first sojourn in the country of his ancestors. He "attacks the culture and morality of India both collectively and individually."(Delany 50-51) It is his powerful emotional experience, which not only changed his whole life but, above all, it also strongly influenced his further writing.

Colonialism is defined as military, political, economic and cultural oppression and domination of one country over the other. Naipaul's nonfictional works shows that core of that society is destroyed by centuries of colonialism. Due to culture conflict, they suffer from dislocation, placelessness, fragmentation, & loss of identity. They become mimic men who intimate and reflect the colonizer's life style, views and values. In 1947, after a long period of English supremacy, India gained its independence, but had not managed to enjoy its "triumph" as the new obstruction appeared the "internal discord of the country caused by the conflicts between the Hindus and the Muslims led to the division of India and the new country of Pakistan was created."(Keay 509) The independent India proved enormously incompetent in terms of governing its own nation and of economic development. Naipaul comes to India, which is adrift by its social and political crises.

He burdened by colonial prejudiced, poises a harshly critical lens on the land and the people and unearths dirt and filth alone. The Hindu-Muslim conflict is many times evoked in Naipaul's trilogy. The clashes and the mutual misunderstanding between the devotees of the two religious groups are usually shown on the way people are living. He

* Professor and Head (English) Govt. College, Badnagar (M.P.) INDIA
** Guest Faculty, Govt. Girls College, Chachoda, Distt. Guna (M.P.) INDIA

writes about the Muslim ghettos placed out of the rest of the Hindu society. In the encounter of Naipaul, as a representative of Hindu, with Aziz,a representative of Muslim, one can trace a considerable misunderstanding between those two religions. He himself confesses that despite the fact that his relationship to Aziz was more or less warm and on friendly terms, there occurred some moments of misapprehension. He realizes that Muslims "were somewhat more different than others", because "they were not to be trusted; they would always do you down."(Rai 16)

Clash of culture in multiracial societies of West Indies are also seen in his fictional writings. He envisions the West Indies as a rubbish-heap or a sterile, debilitating place. Such environment can only produce rootlessness, futility and disillusionment. His comic vision picturing the clash of culture is done in terms of character made of flesh and blood. The comic novel also expresses it: "The conflict in the story has strong bearing on clash of culture which accounts for the background to and explanation of many events in the novel as well as Mr. Biswas difficulty of adjustment in his relationship with Tulsidom". (Naipaul AHMB 94)

Caste, sanctioned by the Gita with almost propagandist fervor, might be seen as part of the older Indian pragmatism for, the life of classical India. It has decayed and ossified with the society, and its corollary, function has become all. Every man is an island for each man to his function, his private contrast with god. This is caste. (AAOD 82-83)

For him, India means still a cultural shock to him. Caste he finds still dominates life in India, serving to imprison "a man in his function" rendering "millions faceless". Ten thousand years established caste system is one of the deficiencies of the society that makes the Indian people unable to transform their situation. Everyone has his own predi-spositions for living. The position within the society is inborn and any attempt to improve living conditions and to circumvent the long established caste system. It is regarded as the serious disruption of the fundamental principles of the Indian society and often leads to the expulsion from the community, because "every man knows his caste, his place, each group lives in its own immemorially defined area; and the pariahs, the scavengers, live at the end of the village". (AWC 28)

Then there was the affair of a mosque in the town of Ayodhya, 300 miles away which the Hindus had turned into temple. It was the birthplace of Lord Rama, the hero of the Ramayana; and there were Hindus who said that after their invasion the Muslims had built a Mosque on the site of Rama's birthplace. With independence Hindus wished to claim the site again.(AMMN 362). The Indian identity as seen from this comment is not that of knowing each other, but the people's identity, is that of being a social group divided caste, religion and family. This is one of the major reasons for India's cultural decay. Naipaul opines that India is a wounded civilization because its wounds are inflicted by continuous conquest, the slaughter and obliteration of culture and continuity that the conquests entailed. The 'culture fracture' that occurred to India is represented through the image of the destroyed monuments of Vijaynagar empire. It represented a fossilized Hinduism.

It was in Viyaynagar at this time ….. that I began to wonder about invasions and conquests of the last thousands years. What happened in Vijaynagar happened, in varying degrees, in other parts of the country. In the north ruin lies on ruin; Moslem ruin on Hindu ruin, Moslem on Moslem. In the history books, in the accounts of wars and conquests and plunder, the intellectual depletion passes unnoticed. (WC 17)

Conclusion - Finally, I reached to the conclusion that Naipaul is one of those writers who portray in his work alienation, cultural conflict and identity crisis, that a rootless, restless and luckless to person faces in an alien land. He has always possessed a nostalgic yearning for his religious, racial and cultural world. His subsequent visits to India over the years, he has acquired a working knowledge of the Indian socio-cultural ethos. The issue of cultural conflict and the multiple issues have been faithfully portrayed by him in his works. His writing refers to the debate between modernity and traditionalism. However, this conflict, in his work, leads to the conclusion that the Third World cannot preserve its traditional values in the modern world. The colonized individuals and cultures tend to repudiate their traditional past and mimic the lives and cultures of their colonial masters. Due to cultural conflict, the society is still divided on the basis of caste, creed and religion. People do not create bonds of unity in the masses belonging to different sections of society; rather they make all out efforts to create divisions in the society. They hardly make efforts to save and propagate the Indian languages, culture and rich heritage; rather they have become promoters of English education and western culture. Colonialism is negative effects on Indian culture, there was loss of values, traditions, religious beliefs and language domination has its effect on the ruled who think the rulers as superior people. Naipaul describes the colonial affect on the Indians.

They had created in India something not of India. Simplicity, Where the Indian past had been abolished. And after 450 years, all they had left behind this emptiness and simplicity was their religion and their language. (AMMN 142)

It is rather painful that even after the years of independence, the Indians are not having the independent thinking of their own and the political system still runs on the borrowed institutions and instead of making efforts to frame the policies for the betterment of the society, the politicians are indulged in the game of minting money through corrupt practices. The colonizers exploited the country and its masses, the present day rulers follow the legacy of their ex-masters.

References :-

1. Naipaul, V.S. India: A House for Mr. Biswas, 1961 (London: Penguin, 1969) Print.
2. A Million Mutinies Now, 1990 (London: Penguin, 1998) Print.
3. An Area of Darkness: An Experience of India, 1964 (London: Penguin 1968) Print.
4. India: A wounded Civilization, 1977 (London: Penguin, 1979) Print.
5. Delany, Austin. Mother India at Bitch, Transition. (Duke: U.P., 1966) Print.
6. Keay, John. Indian: A History (London: Harper Perennial, 2004) Print.
7. Rai, Sudha .V.S.Naipaul:A Study in Expatriate Sensibility. (New Delhi: Arnold, 1982) Print.

Activity based method : The most comprehensive method to enhance english language skills amongst students of primary level

Dr. Rekha Tiwari * Sonal Kanthaliya **

Abstract - The knowledge of English has become a prime assest in the era where services have emerged as the biggest employer for people of our country. No wonder the rural children English as a language is enormously flourishing in India. It has emerged as a software giant of the world. The various commissions formed for upliftment of education have suggested schemes to empower children with English language and to make them accustomed to the needs of the present world.

Although the recent years have seen an increasing interest in promoting education amongst the rural masses served mostly by the government run schools. The methods and techniques for teaching of English in govt. schools have seen a significant improvement during the last few years due to better infrastructure and increasing quality human resources regarding the availability of teachers in these schools.

Key Words - Traditional method, Innovative and Activity based method, Techniques, Information Technology.

Introduction - Teaching method is a very important part of the teaching process. The designing of the method assumes relevance as it is a reflection of the mind of a teacher to be imbibed in the pupil. A teacher should have clear objectives in his mind which can only assure the successful culmination of a teaching process. Teaching of English is an uphill task in a country like India which has a vicarious diversity of dialects and virtually no back ground of English except as an imposed language, an emblem of slavery.

Various methods have been used for teaching English witnessing gradual transformation of technology and aids in recent years.

Objectives

1. To study the English Teaching Method used in India.
2. To study the outcome of Activity based method used in teaching English in primary classes.
3. To study the effectiveness of different English teaching methods used in schools

Research Hypothesis - Activity based method accelerates the process of learning of primary school children.

Research Method - Survey method was used to accomplish the present research.

Research Tool :

1. A self made Questionnaire for the teachers teaching English at the primary level in the Govt. school of Girva Tehsil.
2. A self made pre-test for the students containing varied types of Questions.
3. A self made post test for the students containing varied types of questions.

A Qualitative analysis was done for the present research.

Description - A questionnaire was given to 15 teachers teaching English to the primary classes. It contained various questions related to method they use while teaching to the students. Out of 15 teachers 10 teachers taught with the prevailing Traditional methods and only 5 taught using different activities along with the use of multimedia. A school was chosen with 40 students in class IV. Two groups were made 20-20 students were taken randomly into both the groups. One was name Control group and other was named Experimental group. When a group is exposed to usual conditions, it is termed as a Control group but when the group is exposed to some novel or special condition, it is termed as Experimental group.

Both the groups were taught four topics -

1. Story - The Thirsty crow.
2. Chapter - About Vegetables.
3. Opposites
4. Numbers (Singular/Plural)

A Pre-test question paper was designed for all the 40 students. There performance was recorded by the teacher. Both the groups were taught all the four topics. Control group was taught with Traditional method whereas Experimental group was taught with Activity based method. Students of Experimental group were shown video clips of the story **The Thirsty Crow.** They were taught about vegetable using artificial basket of vegetable made of plaster of paris. They were also asked to bring vegetable of their choice from home. Colour concept was also taught using different vegetables.

* Lect. & H.O.D (English) Guru Nanak Girls P.G. College, Udaipur (Raj.) INDIA
** Research Scholar, J.R.N. Raj. Vidyapeeth University, Udaipur (Raj.) INDIA

For teaching opposites they were asked to stand in a circle in the play ground. Opposites like in x out. come x go, stand x sit, tall x short, black x white, big x small were taught through different activities. Similarly numbers (singular/ plural) were taught using different teaching learning material like chair, leaves, tree, table, chalk, stones, pencils etc.

Suggestions :

1. Proper infrastructure for english language teaching should be built and facilities like language labs should be provided in schools of rural areas to enhance the english language skills of students.
2. More awareness campaigns for promotion of english language teaching should be launched especially in rural areas.
3. English subject teaching should be given sufficient emphasis by school management along with teaching of mathematics and life sciences.
4. Effective and prominent role of Information and Technology (IT) in imparting english education to children.
5. Regular refresher courses and workshops should be conducted to upgrade the skills of teachers of english language.
6. Activity based teaching should be encouraged in schools to provide quick and effective english language learning amongst students.
7. More co-curricular activities and competitions based on english language should be designed and conducted in schools at regular intervals.
8. Enhanced involvement of students in classroom activity to make learning more effective.

Conclusion - The analysis brings out that there is a marked difference in the performance of the students during transition from pre to post phase. The absence of abrupt enhancement can be reasoned due to poor background of English language and lack of facilities available to them for learning English language.

References:-

1. Personal Survey.

****

DSS Divya Shodh Samiksha (An International Refereed Research Journal) July to September 2015
ISSN 2394-3807, E-ISSN 2394-3513, Imapct Factor - 0.745 (2014)

अग्निपुराण के काव्यशास्त्रीय भाग में शब्दालङ्कार विवेचन

प्रो. के. आर. सूर्यवंशी *

शोध सारांश – भारतीय संस्कृति के स्वरूप की जानकारी के लिये पुराणों के अध्ययन तथा शोध की महत्ती आवश्यकता है। पुराण भारत की पुरातन संस्कृति का मेरूदण्ड है, पुराण वह आधारशिला है, जिस पर आधुनिक भारतीय समाज अपने नियमन को प्रतिष्ठित करता है।

अष्टादश पुराणों में एक 'अग्निपुराण' विविध विद्याओं का विश्वकोष है। इस पुराण के अनुशीलन से समस्त ज्ञान–विज्ञान का परिचय मिलता है। इसलिये स्वयं के विषय में अग्निपुराण का यह कथन सर्वथा सार्थक प्रतीत होता है–

आग्नेय हि पुराणेऽस्मिन् सर्वा: विद्या: प्रदर्शिता: ।

(अग्निपुराण 3.83.52)

इस ग्रंथ की प्रमुख विशिष्ठता यह है कि इसमें अलङ्कारशास्त्र के समस्त अङ्गों का साङ्गोपाङ्ग विवेचन हुआ है। प्रस्तुत शोध पत्र में अग्निपुराण के काव्यशास्त्रीय अंश में से शब्दालङ्कार का सामान्य विवेचन प्रस्तुत है।

मधुरायाश्च वर्गान्तादधो वर्ग्यारुणौ स्वनौ ।
ह्रस्वस्वरेणान्तरितौ संयुक्तत्वं नकारयो: ।।

मधुरावृत्ति में वर्गों के अंतिम वर्णों से पूर्ववर्ती दो कोमल स्वनों (वर्णों) अर्थात् वर्गों के तीसरे और चौथे वर्णों की आवृत्ति होती है। ये वर्ण ह्रस्व 'अ' से पृथग्भूत हों अर्थात् असंयुक्त होने चाहिए, और यदि संयुक्त भी हों तो केवल नकार के साथ हों। यहाँ वर्ग्य वर्णों की आवृत्ति पाँच बार से अधिक नहीं होनी चाहिए। इसमें महाप्राण ऊष्मवर्णों का संयोग न हो और लघु अक्षर उत्तर में हों।

जैसे– गोष्ठी में पढ़ने मात्र से कुतूहल उत्पन्न करने वाला कवि का वाग्बंध (शब्द गुम्फन) चित्र कहलाता है। नाना अर्थों के अनुप्रयोग से इनके सात भेद होते हैं – प्रश्न, प्रहेलिका, गुप्तपद, च्युतपद, दत्तापद, च्युतदत्तापद और समस्या।

जहां समान वर्णों के विन्यास द्वारा उत्तर दिया जाता है, उसे प्रश्न कहते हैं। इसके दो भेद हैं – एकपुष्ट प्रश्नोत्तर तथा द्विपुष्ट प्रश्नोत्तर। एकपुष्ट प्रश्नोत्तर के भी दो भेद हैं – समस्त और व्यस्त।

जहां द्व्यर्थक गुह्य शब्दों का प्रयोग हो उसे प्रहेलिका कहते हैं। इसके दो भेद हैं– शाब्दीन और आर्थी। अर्थ द्वारा जिसका ज्ञान हो उसे आर्थी और शब्द द्वारा जिसका ज्ञान हो वह शाब्दीन कहलाती है। उसके छ: प्रकार होते हैं।

इस प्रकार, शब्दालङ्कार के और भी कई स्थल प्रस्तुत किये जा सकते हैं। उदाहरणार्थ अग्निपुराण का अलंकार–प्रकरण प्रत्येक दृष्टि से नवीन हैं, यथा, शब्दालंकारों के नौ भेद – छाया, मुद्रा, युक्ति, गुम्फन, वाकोवाक्य, अनुप्रास, चित्र और दुष्कर।

'अलंकारशास्त्र–परम्परा के सर्वप्रथम शास्त्र (अग्निपुराण) में शब्दालंकारों की यह महत्ती संख्या आश्चर्य उत्पन्न कर रही है। इनमें कुछ अलंकार यथावत् चल रहे हैं, कुछ अर्थालंकारों में परिगणित कर लिये हैं। शेष लुप्त हो गये हैं।'

शब्द कुंजी– मेरूदण्ड, संस्कृति, आग्नेय, काव्यशास्त्र, यमक, चित्र, बंध, वृत्ति, कर्णाटी, कौन्तली, सहसा, शास्त्र।

प्रस्तावना – भारतीय संस्कृति के स्वरूप की जानकारी के लिये पुराणों के अध्ययन तथा शोध की महत्ती आवश्यकता है। पुराण भारत की पुरातन संस्कृति का मेरूदण्ड है, पुराण वह आधारशिला है, जिस पर आधुनिक भारतीय समाज अपने नियमन को प्रतिष्ठित करता है।

अष्टादश पुराणों में एक 'अग्निपुराण' विविध विद्याओं का विश्वकोश है। इस पुराण के अनुशीलन से समस्त ज्ञान–विज्ञान का परिचय मिलता है। इसलिये स्वयं के विषय में अग्निपुराण का यह कथन सर्वथा सार्थक प्रतीत होता है–

आग्नेय हि पुराणेऽस्मिन् सर्वा: विद्या: प्रदर्शिता: ।

(अग्निपुराण 3.83.52)

इस ग्रंथ की प्रमुख विशिष्ठता यह है कि इसमें अलङ्कारशास्त्र के समस्त अङ्गों का साङ्गोपाङ्ग विवेचन हुआ है। प्रस्तुत शोध पत्र में अग्निपुराण के काव्यशास्त्रीय अंश में से शब्दालङ्कार का सामान्य विवेचन प्रस्तुत है।

'शब्दार्थयोरिति' शब्द और अर्थ इनमें से पहले शब्द ही बुद्धि में उपस्थित होता है, अत: काव्यशास्त्र में शब्दालङ्कार का ही पहले ही विवेचन करना चाहिए। शब्दालङ्कार वही होता हैं जो उस शब्द को बदलने पर न रहे।

शब्दालङ्कार के अंतर्गत अग्निपुराणकार ने काव्यशास्त्रीय भाग में अनुप्रास, यमक, चित्र और बंध अलङ्कारों का भेदोपभेद सहित विस्तृत वर्णन किया है –

स्यादावृत्तिरनुप्रासो वर्णानां पदवाक्यो: ।
एकवर्णोऽनेकवर्णो वृत्तोर्वर्णगणो द्विधा।।
एकवर्णगतावृत्तोर्जायंते पंच वृत्तय: ।
मधुरा ललिता प्रौढ़ा भद्रा परुषया सह ।।

(अग्निपुराण, अध्याय 343)

अग्निदेव ने कहा है कि पद और वाक्य में वर्णों की आवृत्ति का नाम अनुप्रास है। इसके दो भेद हैं – एकवर्णगतावृत्ति तथ अनेकवर्णगतावृत्ति।

* विभागाध्यक्ष (संस्कृत) शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मन्दसौर (म.प्र.) भारत

एकवर्णगतावृत्ति की पाँच वृत्तियाँ हैं– मधुरा, ललिता, प्रौढ़ा, भद्रा और परुषा।

मधुरायाश्च वर्गान्तादधो वर्ग्यारुणौ स्वनौ ।
ह्रस्वस्वरेणान्तरितौ संयुक्तत्वं नकारयो: ।।

मधुरावृत्ति में वर्गों के अंतिम वर्णों से पूर्ववर्ती दो कोमल स्वनों (वर्णों) अर्थात् वर्गों के तीसरे और चौथे वर्णों की आवृत्ति होती है। ये वर्ण ह्रस्व 'अ' से पृथग्भूत हों अर्थात् असंयुक्त होने चाहिए, और यदि संयुक्त भी हों तो केवल नकार के साथ हों। यहाँ वर्ग्य वर्णों की आवृत्ति पाँच बार से अधिक नहीं होनी चाहिए। इसमें महाप्राण ऊष्मवर्णों का संयोग न हो और लघु अक्षर उत्तार में हों।

ललिता बलभूयिष्ठा प्रौढ़ा या पणवर्गजा ।
ऊर्ध्व रेफेणयुज्यन्ते नटवर्गौ न पंचमा: ।।

ललिता वृत्ति में अधिक बल वाले कठोर शब्दों का प्रयोग होता है। प्रौढ़ों में 'पय तथा 'ण' वर्ग के शब्दों का प्रयोग होता है। यहां 'ट' वर्ग और वर्गों के पंचमाक्षर ऊर्ध्व रेफ से संयुक्त नहीं होते हैं।

उपर्युक्त वर्णों से अवशिष्ट वर्ण भद्रावृत्ति में प्रयुक्त होते हैं।

पुरुषा वृत्ति उसे कहते हैं जिसमें स्वसंबंधी अक्षरों के साथ ऊष्म वर्णों का संयोग रहता है। इसमें आकार को छोड़कर शेष स्वरों की आवृत्ति प्रचुर मात्रा में होती है, अनुस्वार तथा विसर्ग के द्वारा निरंतर पारुष्य लाया जाता है। इसमें रेफ तथा आकार से संयुक्त श, ष, स, का प्रयोग होता है। अन्तस्थवर्णों से संयुक्त रकार और हकार परुषता लाने में समर्थ होता है। इनके अतिरिक्त गुरुवर्ण तथा संयुक्त अक्षर परिपंथि अर्थात् परुषता के उपयुक्त है। वर्गों के आदिम वर्ण तो परुषता लाने में समर्थ हैं पर पंचम वर्ण नहीं। निन्दा में तथा शब्दानुवृत्ति में परुषा वृत्ति का प्रयोग होता है।

कर्णाटी, कौन्तली, कौन्ती, कौङ्कणी, वामनासिका, द्रावणी और माधवी नामक (परुष) वृत्तियों में क्रमश: कवर्ग आदि पंच वर्गों, अन्तस्थवर्णों तथा ऊष्म वर्णों की आवृत्ति (अधिकतया) होती है।

जैसे यमक अलङ्कार का उदाहरण –

अनेकवर्णा वृत्तियाँ भिन्नार्थप्रतिपादिका ।।
यमकं साऽव्यपेतं च व्यपेतं चेति तद्द्विधा ।
आनन्तर्यादव्यपेतं व्यपेतं व्यवधानत: ।।

(अग्निपुराण, अध्याय 343)

अनेकावर्णावृत्ति में आवृत्ता वर्णों के अर्थ भिन्न–भिन्न होते हैं और ऐसी आवृत्ति यमक होती है। इसके दो भेद हैं – अव्यपेत और व्यपेत। अव्यपेत यमक वह कहाता है जहां वर्णों की आवृत्ति लगातार होती है। व्यपेत यमक में आवृत्ति व्यवधान के साथ होती है। इन दो भेदों के पुन: स्थान और पाद के क्रम से चार भेद होते हैं। स्थान यमक के तीन भेद हैं – आदि, पादमध्य तथा पदान्त। ये यमक के सात भेद हुए। इसी प्रकार पाद यमक के भी एकपाद, द्विपाद तथा त्रिपाद के क्रम से उत्तारोत्तार सोलह प्रकार बन जाते हैं।

तृतीयं त्रिविधं पादस्याऽऽदिमध्यान्तगोचरम्।
पादान्तयमकं चैव कान्चीयमकमेव च ।।

तीन प्रकार का तीसरा यमक पादादि, पादमध्य, पादान्त कान्ची यमक, सन्सर्ग यमक, विक्रान्त यमक, पादादि यमक, आभ्रेडित, चतुर्व्यवसति तथा माला यमक, यह दस प्रकार का यमक श्रेष्ठ माना गया है।

इस यमक के अन्य भी बहुत से भेद हैं। भिन्ना प्रयोजन से आवृत्ता पद के दो भेद जानने चाहिए – स्वतंत्र पदावृत्ति, अस्वतंत्र पदावृत्ति। इसके भी पुन: दो भेद हैं – समस्त पदावृत्ति तथा असमस्त पदावृत्ति।

वाक्यस्यावृत्तिरप्येवं यथासंभवमिष्यते ।
अलंकाराद्यनुप्रासो लघुमप्येवमर्हणात् ।।

'या कयाचिद् वृत्त्या यत्समानमनुभूयते ।
तद्रू पादिपदासत्ति: सानुप्रासा रसावहा ।।

यमक में यथासंभव वाक्य की आवृत्ति भी होती है। जिस किसी भी वृत्ति से जो समानता अनुभव की जाती है यह रूप विन्यास की हो या पदाविन्यास की वह रसावह वृत्ति अनुप्रास के अंतर्गत आती है।

जैसे– गोष्ठी में पढ़ने मात्र से कुतूहल उत्पन्न करने वाला कवि का वाग्बंध (शब्द गुम्फन) चित्र कहलाता है। नाना अर्थों के अनुप्रयोग से इनके सात भेद होते हैं – प्रश्न, प्रहेलिका, गुप्तपद, च्युतपद, दत्तापद, च्युतदत्तापद और समस्या।

जहां समान वर्णों के विन्यास द्वारा उत्तार दिया जाता है, उसे प्रश्न कहते हैं। इसके दो भेद हैं – एकपुष्ट प्रश्नोत्तर तथा द्विपुष्ट प्रश्नोत्तर। एकपुष्ट प्रश्नोत्तर के भी दो भेद हैं – समस्त और व्यस्त।

जहां द्व्यर्थक गुह्य शब्दों का प्रयोग हो उसे प्रहेलिका कहते हैं। इसके दो भेद हैं – शाब्दीन और आर्थी। अर्थ द्वारा जिसका ज्ञान हो उसे आर्थी और शब्द द्वारा जिसका ज्ञान हो वह शाब्दीन कहलाती है। उसके छ: प्रकार होते हैं।

जिस किसी वाक्य में वाक्याङ्ग गुप्त होते हुए भी भावी अर्थ (संभावित अर्थ) को सिद्ध करने वाला हो, उस अङ्ग की आकांक्षा से जब इसका समावेश, गूढ़ होते हुए भी किया जाता है, उसे गुप्त कहते हैं।

जहां वाक्याङ्ग के स्खलन से अन्य अर्थ की प्रतीति हो, उस स्खलित अंग की आकांक्षा से संबंध निर्वाह हो जाये उसे 'च्युत' कहते हैं। यह चार प्रकार का है– स्वर च्युत, व्यंजन च्युत, अनुस्वार तथा विसर्ग च्युत।

दत्तोऽपि यत्र वाक्याङ्गे द्वितीयोर्थ: प्रतीयते ।
दत्तां तदाहुस्तद्भेदा: स्वराद्यै: पूर्ववन्मता: ।।

जहां किसी वाक्याङ्ग में किसी वाक्यांश के देने मात्र से द्वितीय अर्थ की प्रतीति होती है उसे –'दत्ता' कहते हैं। इसके भी पूर्ववत् स्वर, व्यंजन, अनुस्वार और विसर्ग चार भेद माने गये हैं।

अपनीताक्षरस्थाने न्यस्ते वर्णान्तरेऽपि च ।
भासतेऽर्थान्तरं यत्र च्युतदत्तां तद्च्यते ।।

जहां हटाये हुए अक्षर के स्थान पर किसी अन्य वर्ण के रखने से अर्थान्तर की प्रतीति होती है उसे च्युतदत्ता कहते हैं।

सुश्लिष्टपद्यमेकं यन्नानाश्लोकांशनिर्मित्ताम् ।
सा समस्या परस्याऽऽत्मपरयो: कृतिसंकरात् ।।

विभिन्न श्लोकांशों से सुनियोजित पद्य समस्या कहाता है। इसके दो भेद हैं – आत्म–संकर अर्थात् पद्य के अंशों का संकर, तथा पर–संकर अर्थात् अन्य पदों का मिश्रण या संकर।

जैसे– शब्दालंकार के दुष्कर अलङ्कार का यह पद्य –

दु:खेन कृतमत्यर्थ कविसामर्थ्यसूचकम् ।
दुष्करं नीरसत्वेऽपि विदग्धानां महोत्सव: ।।
नियमाच्च विदर्भाच्च बंधाच्च भवति त्रिधा ।।

(अग्निपुराण, अध्याय 343

'दुष्कर' अलंकार में अर्थज्ञान क्लिष्टतासाध्य होता है और इससे कवि की शब्दादिगुम्फन में सामर्थ्य का ही परिचय मिलता है। यद्यपि यह अलंकार नीरस होता है तो भी विदग्धो (पंडितों) को रूचिकर लगता है। इसके तीन भेद हैं : नियम, विदर्भ और बंध।

कवे: प्रतिज्ञा निर्माणरम्यस्य नियम: स्मृत: ।
स्थानेनापि स्वरेणापि व्यंजनेनापि स त्रिधा ।

कवि प्रतिज्ञानुसार शब्दों द्वारा रमणीयता की कल्पना नियम कहाती है। यह रमणीयता तीन प्रकार से होती है – (1) यथास्थान शब्द–विन्यास द्वारा (2) स्वर द्वारा (3) व्यंजन द्वारा।

विदर्भ : प्रातिलोम्यानुलोम्यादेवाभिधीयते।
प्रातिलोम्यानुलोम्यं च शब्देनार्थेन जायते ॥

प्रातिलोम्य अर्थात् प्रतिकूल शब्दों अथवा अर्थों की रचना आनुलोम्य अर्थात् अनुकूल शब्दों अथवा अर्थों की रचना विदर्भ कहलाती है। यह प्रतिकूलता अथवा अनुकूलता शब्द और दोनों के द्वारा होती है।

अनेक प्रकार से आवृत्त होने वाले वर्णों के विन्यास से प्रसिद्ध वस्तुओं (कमल, सूरज, खड्ग आदि) की शिल्प–कल्पना अर्थात् शब्द चित्र को बंध कहा गया है। यह बंध आठ प्रकार का होता है गोमूत्रिका, अर्धभ्रमण, सर्वतोभद्र, अंबुज, चक्राब्ज, दण्ड और मुरज।

इस प्रकार, शब्दालङ्कार के और भी कई स्थल प्रस्तुत किये जा सकते हैं। उदाहरणार्थ अग्निपुराण का अलंकार–प्रकरण प्रत्येक दृष्टि से नवीन हैं, यथा, शब्दालंकारों के नौ भेद – छाया, मुद्रा, युक्ति, गुम्फन, वाकोवाक्य, अनुप्रास, चित्र और दुष्कर।

1. छाया के चार उपभेद हैं – लोकोक्ति, छेकोक्ति, अर्थकोक्ति और मत्तोक्ति।
2. उक्ति अलंकार के छ: भेद हैं – विधि, निषेध, नियम, अनियम, विकल्प और परिसंख्या।
3. युक्ति अलंकार के भी छ: भेद हैं – पदगत, पदार्थगत, वाच्यगत, वाच्यार्थगत, विषयगत और प्रकरणगत युक्ति।
4. गुम्फन अलंकार के भी तीन भेद होते हैं – शब्दगत, अर्थगत और शब्दार्थगत।
5. वाकोवाक्य अलंकार के दो भेद हैं – ऋजु वाकोवाक्य और वक्र वाकोवाक्य।
6. अनुप्रास के प्रमुख तीन भेद हैं – वर्णगत (छेकानुप्रास और वृत्तयनुप्रास), पदगत (यमक) और वाक्यगत (लाटानुप्रास)।
7. वृत्यनुप्रास का विभाजन भी उपभेदों के अंतर्गत है, मधुरावृत्ति और ललितावृत्ति, प्रौढ़ावृत्ति, भद्रावृत्ति और परुषावृत्ति। इस परुषा के भी फिर स्थान–भेद से भेदोपभेद प्रस्तुत किये गये हैं।
8. पदगत (यमक) अंलकार के भी व्यपदेशी और अव्यपदेशी और तद्वन्तर स्थान और पाद के भेदोपभेदों के बाद पादादि मध्यान्त के विभेद से इसके सद और भेद प्रदर्शित किये गये हैं।
9. चित्र अलंकार के भेदोपभेद इस प्रकार हैं : प्रश्न, प्रहेलिका (शाब्दी और आर्थी), गुप्तपद, च्युतपद (स्वर च्युत, व्यंजन च्युत, बिंदु च्युत, विसर्ग च्युत), दत्तापद और समस्या तथा बंध।
10. दुष्कर के अंतर्गत विदर्भ और नियम तथा बंध का भी उल्लेख है। आगे बंधों की आठ संख्या इस प्रकार है – गोमूत्रिका बंध, अर्ध–भ्रमण बंध, सर्वतोभद्र, अम्बुज, चक्र, चक्राब्ज दण्ड और मुरज।
11. मुद्रा के भेदोपभेद नहीं हैं।

इस प्रकार शब्दालंकारों के प्रधान भेद नौ हैं, उपभेद 34 और गौण भेद 38 हैं।

इस प्रसंग में श्री चंद्रकान्त बाली का निम्न उद्धरण प्रस्तुत करना असंगत न होगा–

'अलंकारशास्त्र–परम्परा के सर्वप्रथम शास्त्र (अग्निपुराण) में शब्दालंकारों की यह महत्ताी संख्या आश्चर्य उत्पन्न कर रही है। इनमें कुछ अलंकार यथावत् चल रहे हैं, कुछ अर्थालंकारों में परिगणित कर लिये हैं। शेष लुप्त हो गये हैं।'

उपर्युक्त मान्यताओं को देखकर सहसा इस ग्रंथ की उपेक्षा नहीं की जा सकती। यह और बात है कि विद्वान् इस ग्रंथ की सामग्री के वास्तविक स्रोत के बारे में एकमत न हों।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. अग्निपुराण : प्रधान संपादक – रामलाल वर्मा।
2. काव्यादर्श : दण्डी।
3. काव्यालङ्कार : भामह।
4. सरस्वती कण्ठाभरण।
5. साहित्यदर्पण : व्या. शालिग्रामशास्त्रीय विरचितया।
6. अलंकार शास्त्र का आदिस्रोत, माधुरी, अगस्त 1941, पृ. 94
7. अग्निपुराण अध्याय 343, शब्दालङ्कार।

****

मुनिश्री प्रणम्यसागर जी की प्राकृत-कृति 'तित्थयर भावणा'

शुभम् जैन *

शोध सारांश – जैन धर्म में तीर्थंकर शब्द को विभिन्न रूपों में निरूपित किया गया है तीर्थ का शाब्दिक अर्थ है कि जिसके द्वारा इस संसाररूपी समुद्र को पार किया जाये वह तीर्थ है। अत: तीर्थ को घाट भी कहा गया है। जो महापुरुष संसार सागर को पार कराने वाले ऐसे तीर्थ या घाट का निर्माण करते है अथवा प्रवर्तन करते है वे तीर्थंकर कहलाते है। जैनधर्म में स्वीकृत तीर्थंकर का पद भव्य जीवों को उनकी अपनी विशुद्ध भावनाओं के द्वारा अर्जित तीर्थंकर नामकर्म के बन्ध और यथासमय उनके उदय पर आने पर ही प्राप्त होता है। अत: जैनधर्म को परम्परा में तीर्थंकरों से धर्म प्रारम्भ नहीं होता, अपितु धर्म के आचरण से तीर्थंकर पद की प्राप्ति होती है। इस प्रकार जैनधर्म व्यक्ति का धर्म नहीं, बल्कि निर्मल भावनाओं पर विकसित धर्म है। ऐसी तीर्थंकर नामकर्म को जन्म देने वाली सोलह भावनाओं पर विवेचन मुनिश्री प्रणम्यसागर जी ने अपनी प्राकृत-कृति तित्थयर भावणा में किया है।

शब्द कुंजी –

1. ति. भा. – तित्थयर भावणा
2. पं. का. – पंचास्तिकाय
3. जै. सि. को. – जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष भाग 3
4. सं. हि. को. – संस्कृत-हिन्दी कोष

प्रस्तावना – 'तित्थयर भावणा' परमपूज्य मुनिश्री जी की 'तित्थयर भावणा' कृति कई दृष्टियों में महत्त्वपूर्ण है। तीर्थंकर पद प्राप्ति में महत्त्वपूर्ण इन सोलह भावनाओं का उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों ने जैनाचार्यों ने किया है, किन्तु इसकी विषद व्याख्या उपलब्ध नहीं है। मुनिश्री जी ने यह प्रथम नवीन कार्य किया एवं इन सोलह भावनाओं पर प्राकृत गाथाओं की रचना की, प्रमाणिक अनुवाद किया और प्रत्येक भावना के विशेष अर्थ को स्पष्ट किया। भावना शब्द का अर्थ व्यापकता की दृष्टि से भी स्वतंत्र महत्ता है। वासना, गुणाधान, संस्कार, करण, अनुप्रेक्षा, चिन्तन, पर्यालोचन आदि इनके प्राकृत-कोषीय हिन्दी पर्याय है। भावना ही पुण्य-पाप, राग-वैराग्य, संसार व मोक्ष आदि का कारण है। अत: जीव को सदा कुत्सित भावनाओं का त्याग करके उत्तम भावनाएँ भावी चाहिए। सम्यक् प्रकार से भावी सोलह प्रसिद्ध भावनाएँ व्यक्ति को सर्वोत्कृष्ट तीर्थंकर पद में भी स्थापित करने में समर्थ है।1

'ज्ञातेऽर्थे पुन: पुनस्चिन्तनं भावना।'[2] अर्थात् जाने हुए अर्थ को पुन: पुन: चिन्तन करना भावना है। प्रस्तुत प्राकृत-कृति में तीर्थंकरों की सोलह भावनाओं की विवेचना की गई है। ये सोलह भावनायें क्रमश: इस प्रकार है- दर्शन विशुद्धि भावना, विनय भावना, निरतिचार शील भावना, ज्ञान भावना, संवेग भावना, तपोभावना, प्रासुक परित्याग भावना, साधु समाधि भावना, वैयावृत्य भावना, अर्हन्त भक्ति भावना, आचार्य भक्ति भावना, बहुश्रुत भक्ति भावना, प्रवचन भक्ति भावना, आवश्यकापरिहीन भावना, मार्ग प्रभावना भावना और प्रवचन वत्सलत्व भावना।

प्रथम **सम्मत्त विसोही (दर्शन विशुद्धि) भावना** में प्राकृत की नौ गाथाओं में मुनिश्री जी ने दर्शन विशुद्धि की चर्चा की है। प्रथम गाथा में तीर्थंकर केवली को प्रणाम किया गया एवं तीर्थंकर के स्वरूप को आत्मा की विशुद्धि के लिए भावना भायी गई है।

'तित्थयरं केवलियं पणमिय सिरसा विसुद्धभावेण।
तित्थयरं भावेमि हु अप्पविसोहि कारणट्ठ य।।'[3]

अर्थात् केवली बनना दर्शन विशुद्धि आदि सोलह भावनाओं को भाने का फल है। सोलह कारण भावना से तीर्थंकर कर्म प्रकृति का बन्ध होता है।

चौतीस अतिशय, अष्टमहाप्रातिहार्य और अनन्त चतुष्टय से रहित तीर्थंकरों का ध्यान आत्म विशुद्धि का कारण है। जिनबिम्ब नेत्र, मुख विकार से रहित, कपड़ा, वस्त्र, आभूषण आदि से रहित होते है। ऐसे जिनबिम्बों का ध्यान, उनकी पूजा, अर्चना करना सम्यक्त्व की विशुद्धि का कारण है। तीर्थंकर प्रकृति के बन्ध की दूसरी भावना विनय सम्पन्नता है। इसकी सात गाथाओं में व्याख्या की गई है। सम्यग्दृष्टि जीव का प्रथम लक्षण विनय कहा गया है। मूलाचार में भी कहा गया है कि-**'विनय मोक्ष का द्वार है।'** जो अपनी भावना को जानते हुए उसका सम्मान करता है वह सबकी आत्मा को जानते हुए उसका भी सम्मान करता है। विनय आत्मा का एक विशिष्ट धर्म है। रत्नत्रय भी आत्मा का ही धर्म है। आत्मा का यह धर्म जिसके पास है वह धार्मिक है। उन धार्मिकों की भक्ति में लगना ही उनकी विनय करना है।

'रयणत्तयं य धम्मो अप्पणो णेव अण्णदव्वस्स।
तम्हा स धम्मिगाणं भत्तीए णिच्चमुवजुत्तो।।'[4]

निरतिचार शील भावना प्राकृत के आठ गाथाओं में रचित तृतीय भावना है। तीर्थंकर महावीर ने पाँच महाव्रतों और पाँच अणुव्रतों को कहा है। अणुव्रत श्रावकों के लिए और महाव्रत श्रमणों के लिए कहे हैं। अणुव्रत और महाव्रत अतिचार और भावन सहित कहे हे। व्रतों के पाँच-पाँच अतिचार और भावनाएँ है। भावनाओं से व्रतों में दृढ़ता आती है और अतिचारों का चिन्तन करने से व्रत निर्दोष बने रहते है।

'पंच य अणुत्वयाइं महव्वदाइं वि भावणसहिदा।
अइचाराणि य वहा वीरजिणिंदेहिं उत्ताणि।।'[5]

मुनिश्री जी ने चौथीं **ज्ञानभावना** की व्याख्या आठ गाथाओं में की है। हमें ऐसे व्रत आदि का आचरण करना चाहिए जिससे निरन्तर हमारे कर्मो का संवर हो और निर्जरा होती रहें। जो ज्ञानीपुरुष अपनी आत्मा की शुद्ध अवस्था

* शोधार्थी (संस्कृत) विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) भारत

के लिए निरन्तर ज्ञान उपयोग में लीन रहना है, तभी उसमें कर्मो का संवर होता है और वह आत्मा को चाहने वाला अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग को जानता है।

'णाणत्पगमत्पाणं मुणिऊण अण्णणेयविसएसु।
साहू विरज्जहियओ णाणमभिक्खं विजाणादि।।'[6]

पंचवी **संवेग भावना** प्राकृत की आठ गाथाओं में विरचित भावना है। जिन धर्म विशुद्ध एवं कर्म अन्य भाव का होना ही संवेग कहलाता है। जो आत्मा इस हर्ष भाव को अनुभूति करता है तो उसे तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है। गर्भवास में जन्म होना, संयोग, वियोग के दु:ख से दु:खी होता हुआ जो रोग, बुढ़ापे का चिन्तन करता है उसकी संवेग भावना नयी होती है। जिस साधु को आवेग, उद्वेग और उत्सेक नहीं है, जो आत्मा निर्वेग में तत्पर है उस श्रमण का संवेग नया होता है।

'आवेगो अव्वेगो अस्सेको णत्थि जस्स साहुस्स।
णिव्वेग-परो आदा संवेगो तस्स होदि णवो।।'[7]

परमपूज्य मुनिश्री जी ने **तपभावना** की चर्चा आठ गाथाओं के द्वारा की है। जैन धर्म में बारह प्रकार के तप का वर्णन है जो छ: प्रकार के बाह्य तप एवं छ: प्रकार के अन्तरङ्ग तप के भेद से सहित है। यह ख्याति, पूजा और लाभ को त्याग करके सम्यक्त्व की विशुद्धि के साथ जो थोड़ा भी तप कर्म करता है वह निश्चित ही महान् फल देता है।

सोलह भावनाओं में **प्रासुक परित्याग भावना** का क्रम सातवाँ है। इसे शक्ति के अनुसार त्याग भावना भी कहते है। श्रावक के द्वारा श्रमणों को शक्ति के अनुसार चार प्रकार का दान (आहार, औषध, उपकरण और आवास) दिया जाता है।

'चाएसु महाचाओं दाणं रयणत्तयस्स धम्मस्स।
साहूणं तं कज्जं पासुगपरिच्चागदा णाम।।'[8]

सभी त्यागों में महात्याग रत्नत्रय धर्म का दान होता है। ये दान साधु ही दे सकते है। रत्नत्रय क उपदेश देना ही सबसे बड़ा दान होता है। इस दान को करने वाला साधु को प्रासुक परित्यागी कहा जाता है। इस प्रकार का दान करने से साधु भी तीर्थंकर प्रकृति का बंध करते है।

साधु समाधि भावना इस कृति की आठवीं भावना नौ गाथाओं में निबद्ध हैं। इसकी प्रथम गाथा में कहा गया है कि धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान को जो तपस्वी साधु ध्याता है उनकी साधु समाधि भावना है। जैन परम्परा में निर्गन्थ साधुओं की ध्यान और समाधि की विस्तृत से चर्चा आचार्यो ने की है।

'जा खलु चित्तविसोही किले सरहिदप्पणो दु परिणामो।
झायदि धम्मं सुक्कं साहुसमाहिभावणा होदि।।'[9]

नवीं भावना **वैयावृत्यकरण भावना** है। साधु परमेष्ठी का शरीर रत्नत्रय सहित पवित्र होता है। साधु के शरीर की सेवा से रत्नत्रय की सेवा का लाभ प्राप्त होता है।

'तम्हा तवोधणाणं रयणत्तयेण णिच्च-पवित्ताणं।
वेज्जावच्चं कज्जं रयणत्तय-दिव्वलाहत्थं।।'[10]

मुनिश्री प्रणम्यसागर जी ने दसवीं **अरिहन्त भक्ति भावना** में अरिहन्त पद को परिभाषित किया है। वे व्याख्या करते है कि आठों कर्मो का नाश करने वाले अथवा घाति कर्मो का नाश करने वाले अरिहन्त परमेष्ठी है।

'अरिहंताणं भत्ती मोहविस-विणासणी य सोक्खकरी।
मुच्छाकाम मदालस-दूरगा पुण्णं समासवदि।।'[11]

आठ गाथाओं में रचित **आचार्य भक्ति भावना** में आचार्य की भक्ति करने का फल मुनिश्री जी ने बतलाया है। आचार्य परमेष्ठ जगत् का उद्धार करने वाले होते है। आचार्य प्रयत्नपूर्वक अपनी आत्मा की भावना करते है। पांच आचार (ज्ञान, दर्शन, वीर्य, तप और चारित्र) का स्वयं पालन करते है और भव्य आत्माओं से कराते है।

'जो णट्ठमग्गजीवे संबोहिय देदि सम्मचारित्तं।
रक्खदि पुणो वि सिस्से सो आयरिओ सया जयउ।।'[12]

'तित्थयर भावना' कृति की बारहवीं भावना **बहुश्रुतभक्ति भावना** है। सात प्राकृत गाथाओं में मुनिश्री ने बहुत श्रुत को धारण करने वाले साधु परमेष्ठी की भक्ति की है। श्रुत शब्द का अर्थ जिनवाणी है। विनय से सहित जिन श्रमणों ने अपने गुरु के निकट रहकर श्रुत अर्थात् जिनवाणी का अध्ययन किया है ऐसे रत्नत्रय से युक्त मुनियों की यहाँ प्रशंसा की गई है।

तेरहवीं भावना **प्रवचन भक्ति भावना** आठ गाथाओं में रचित है। प्रकृष्ट वचन तीर्थंकरों के होते है। जो छ: द्रव्य, नौ पदार्थ, पंचास्तिकाय, सात तत्त्व और लोक-आलोक का ज्ञान देते है। यह प्रवचन श्रमण और श्रावक दोनों के लिए बहु-उपयोगी है।

चौदहवीं भावना **'आवश्यक परिहार'** नामक भावना है। यह भी आठ गाथाओं में विरचित है। इस भावना में मुनिश्री जी ने श्रमणों और श्रावकों के द्वारा प्रतिदिन किये गये आवश्यक कार्यो पर प्रकाश डाला है। आवष्यकों में हानि अपने धर्म में हानि कही गई है। आवश्यकों में अपरिहीनता से ही तीर्थंकर नाम कर्म बन्धता है। समता स्तवन, वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और व्युत्सर्ग के भेद से छ: आवष्यक कहे गये हैं। ये छ: आवश्यक ही श्रमणों को करणीय हैं।

पंद्रहवीं भावना **'मार्ग प्रवाहना भावना'** है। प्राकृत की आठ गाथाओं में मुनिश्री जी ने मार्ग प्रवाहना विषय के बारे में समझाया है कि रत्नत्रय को ही मोक्ष का मार्ग कहते है। जो श्रमण रत्नत्रय को स्वयं ध्याता है अथवा अन्य को प्रदान करता है वह ही मार्ग की प्रभावना में तत्पर है।

'रइऊण णवं सत्थं जिण्णं रक्खेदि पुण पयासेदि।
सुत्तत्थमणुसंरतो मग्गपहावणापरो सो हि।।'[13]

इस कृति की अन्तिम सोलहवीं भावना **प्रवचन वत्सलत्व** नामक भावना प्राकृत की नौ गाथाओं में निबद्ध है। प्रवचन, शब्द शास्त्र के लिए आता है और सहधर्मी भव्य आत्माओं को भी कहा जाता है। मोक्षमार्ग पर चलने वाले सभी प्राणी प्रवचन नाम से कहे जाते है। पूजा, ख्याति लाभ की भावना के बिना निष्चल वात्सल्य रखना प्रवचन वत्सलत्व है। उससे तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध बन्धता है।

'जो कुणदि वच्छलत्तं दंसणवरणाणचरणलग्गेसु।
पूयालाहविमुक्को पवयणवच्छलत्त तस्सेव।।'[14]

मोक्षमार्गी जीव ही इन षोड़ष कारण भावनाओं से तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध करता है। मोक्षमार्ग की प्रथम सीढ़ी सम्यग्दर्शन कही है। सम्यग्दृष्टि जीव अविरत अवस्था में भी भावों की विशुद्धि से तीर्थंकर नाम कर्म का बन्ध करता है। सम्यक्त्व की विशुद्धि से इस कर्म प्रकृति का आस्रव होता है। प्रवचन वात्सल्य के शुभ राग से वह शुभोपयोगी भी यदि होता है, तो इस भावना के प्रभाव से इस महान् पुण्य प्रकृति का बन्ध करता है। ऐसे सर्वातिशय पुण्य बन्ध का कारणभूत कर्म का आस्रव समस्त भव्य जीवों के लिए सुख का भण्डार है। तीर्थंकर नामकर्म को बान्धने वाली सोलह भावनाएँ जैन परम्परा में प्राचीन समय से प्रचलित है किन्तु उन पर प्राकृत गाथाओं में काव्यमय रचना मुनिश्री के द्वारा हुई है। यह कृति विद्वानों के लिए भी आदर्श प्रस्तुत करती है। मुनिश्री प्रणम्यसागर जी ने इस कृति की रचना मूल प्राकृत गाथा, उनका हिन्दी में पद्यानुवाद, अन्वयार्थ और भावार्थ के साथ यह ग्रन्थ श्रुतपंचमी 26/05/2012 को बरेला (म.प्र.) में परिसमाप्त किया। मुनिश्री जी ने शास्त्र

(जिनवाणी) की भक्ति से इस शास्त्र की अपूर्व रचना की है जो कोई पाठक त्रिकाल में इस शास्त्र को पढ़ता है वह अक्षय सुख को प्राप्त करता है।

'एवं पणमिय मुणिणा सुदभत्तीए रचिद मिदं सत्थं।
जे वि पठइ तियालं सो सोक्खं अक्खयं लहदि।।'[15]

मुनिश्री प्रणम्यसागर जी ने इस ग्रन्थ की रचना 1 अप्रैल 2010 सें प्रारम्भ कर श्रुतपंचमी 26 मई 2012 को बरेला जबलपुर में परिसमाप्त की।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :–

1. जै. सि .को. भाग 3 पृ. सं. 224
2. पं., 46/86/1
3. ति. भा. गाथा, सं. 1
4. ति. भा. गाथा, सं. 12
5. ति. भा. गाथा, सं. 18
6. ति. भा. गाथा, सं. 27
7. ति. भा. गाथा, सं. 39
8. ति. भा. गाथा, सं. 57
9. ति. भा. गाथा, सं. 57
10. ति. भा. गाथा, सं. 67
11. ति. भा. गाथा, सं. 75
12. ति. भा. गाथा, सं 88
13. ति. भा. गाथा, सं. 118
14. ति. भा. गाथा, सं. 123
15. ति. भा. गाथा, सं. 131

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :–

1. **तित्थयर भावना –** मुनिश्री प्रणम्यसागर जी, प्राकृत जैनशास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली, बासोकुण्ड, मुजफ्फरपुर (बिहार) 844128 प्रकाशन वर्ष 2013।
2. **पंचास्तिकाय –** कुन्दकुन्दाचार्य, परमश्रुत प्रभावक मण्डल बम्बई, प्र.स., वि. 1972।
3. **जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष भाग 3 –** जिनेन्द्र वर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ, 18, इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड़, नयी दिल्ली– 110003
4. **संस्कृत–हिन्दी कोष –** वामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड दिल्ली।

****

मुग़ल काल (1550 से 1857 ई. तक) भारतीय चित्रकला को नई दिशा

डॉ. यतीन्द्र महोबे *

प्रस्तावना – भारतीय चित्रकला को विकास के उच्च स्तर तक पहुँचाने में मुगल चित्रकला का महत्वपूर्ण योगदान रहा। मुगल चित्रकला के माध्यम से भारतीय कला ने निर्माण, विकास और बाहरी कला शैलियों से समन्वय स्थापित किया और भारतीय चित्रकला को नई दिशा प्रदान की।

भारत में मुग़ल शैली के निर्माण का श्रेय मुख्य रूप से ईरानी शैली को जाता है। यह ईरानी शैली मुगल शासकों द्वारा भारतवर्ष में आई और हिन्दू शैली के साथ समन्वय स्थापित कर मुगल शैली को जन्म दिया। मुस्लिम धर्म की शुरूआत के साथ ही ईरान में जिस कलाशैली ने जन्म लिया वह भारतीय चित्रकला का आधार बनीं।

इस्लाम में मानवाकृतियों का चित्रण करना धर्म विरूद्ध था जिससे इस्लामी चित्रकार मानवाकृति चित्रण में नाकाम रहे। लेकिन धीरे–धीरे ये पाबंदी दूर होती चली गई और चित्रकारों का मानवाकृति चित्रण के प्रति रूझान बढ़ा। इस शैली का प्रसिद्ध चित्रकार बिहजाद था। ईरानी चित्रों में मानवाकृतियाँ बड़ी कोमलता पूर्वक बनाई गई हैं। इन मानवाकृतियों के चेहरे पौने दो चश्म तथा आकार में छोटे बनाये गये हैं। फूले–फूले गाल, पतली लंबी नाक और आँखे छोटी बनाई गई हैं, स्त्री एवं पुरूष की शारीरिक रचना में कोई अंतर दिखाई नहीं देता। पुरूष आकृति में गढनशीलता का अभाव दिखाई देता है। रंगों का प्रयोग सपाटदार है एवं रेखायें कोणयुक्त दिखाई देती हैं।

मुग़ल शैली में ईरानी शैली का प्रभाव होते हुए भी यह पूर्णत: अलग है, मुगल शैली में मानवाकृतियों के चेहरे एक चश्म व डेढ़ चश्म बनाये गये हैं, इस शैली की मानवाकृतियों में छाया–प्रकाश एवं त्रि–आयामी प्रभाव दिखाई देता है। कलाकार ने विभिन्न रंगों की रंगतों का प्रयोग कर आकृतियों में गोलाई एवं उभार देने की कोशिश की गई है। सौंदर्यीकरण का पूर्ण समावेश हमें मुग़ल शैली में देखने मिलता है।

शबीह चित्रण (व्यक्ति चित्र) की पराकाष्ठा : 'मुग़लकाल' – शबीह अथवा व्यक्ति चित्रण की परम्परा प्राचीन काल से ही चली आ रही थी। प्राचीन काल के ग्रंथ, मूर्ति–आदर्श इस परम्परा के जीवंत उदाहरण हैं। परन्तु अकबर के काल में शबीह चित्रण एक नई परम्परा का द्योतक बन गया। अकबर ने कलाकारों से जहाँ अपनी शबीहें बनवाईं वहीं अपने दरबारियों की तथा तत्कालीन प्रमुख व्यक्तियों की शबीहें भी बनवाईं। सम्राट अकबर के समय में चित्रकार का व्यक्तित्व पराकाष्ठा पर था। इस काल के कलाकारों के चित्रण पद्धति पर ईरानी प्रभाव के अतिरिक्त अन्य प्रभाव भी दिखाई देता है, मुग़लकाल में कलाकारों को बड़ी प्रतिष्ठा से रखा जाता था। यहाँ चित्रकार ने एक, सवा, डेढ और पोने दो चश्म के चेहरे चित्रित किये हैं। अधिकतर व्यक्ति चित्रों में सम्राट व उनके परिवारों के चित्र ही चित्रित किये जाते थे। एक चश्म, सवा चश्म तथा डेढ़ चश्म बनाने का एक कारण यह भी था कि इन महान विभूतियों का व्यक्तित्व प्रभावशाली और असाधारण होता था और जन साधारण को उनका मुख देखने का साहस नहीं हो पाता था। चित्रकार सम्राट के समक्ष बैठकर तथा उनसे आँख मिलाकर उन्हें चित्रित करें, यह साधारण कार्य नहीं था। अत: साधारणतया एक तरफ बैठकर ही व्यक्ति चित्र अर्थात शबीह चित्रण बनाया जाता था, परन्तु इन व्यक्ति चित्रों में मौलिक रचना की झलक स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है (देखिए चित्र फलक–07)। मुगलकालीन व्यक्ति चित्रों को हम मुख्यत: तीन भागों में बांट सकते हैं –

1. **लघुमाप के व्यक्ति चित्र –** लघु आकार के ये व्यक्ति चित्र अकबर काल के आरम्भ में शुरू हुये। इस प्रकार के व्यक्ति चित्रों में रेखांकन को उभारा जाता था। ये रेखायें भावपूर्ण, कोमल तथा गतियुक्त होती थी। सामान्यत: इनमें एक ही रंगों का प्रयोग किया जाता था, परन्तु यत्र–तत्र कभी–कभी होंठ, आंख, हथेलियों पर वांछित रंग लगा दिया जाता था। इसमें इस बात का ध्यान रखा जाता था कि रंग चित्र में खटकने न पाये और संतुलन बिगड़ न जाये। इनमें अबुल–फजल, बीरबल और मान सिंह आदि के रेखांकित व्यक्ति चित्र हैं।
2. **झरोखा दर्शन के व्यक्ति चित्र–** झरोखा दर्शन के समय बादशाह जिस समय किले की खिड़की पर खड़े होते थे, उस समय सभी प्रमुख पदाधिकारी बादशाह का अभिवादन करने के लिए जमा हो जाते थे। बादशाह थोड़ी देर के लिए झरोखे पर आते और उपस्थित जन समुदाय को दर्शन देकर चले जाते थे। यह परम्परा भारत में प्राचीन काल से प्रचलित थी। इसी परम्परा के निर्वाह के लिय सम्भवतया अर्द्ध व्यक्ति चित्र हुए। यह व्यक्ति चित्र आकार, रेखा, सादृश्य अंकन, भावाभिव्यक्ति, रंग योजना की दृष्टि से उत्कृष्ट कोटि के है।
3. **पूर्ण कद व्यक्ति चित्र –** तीसरे प्रकार के पूर्ण कद के अकेले खड़े व्यक्ति चित्र हैं। ये व्यक्ति चित्र सभी गुण, आकार, रेखांकन, भावाभिव्यक्ति, सादृश्य अंकन, वस्त्राभूषण, रंग योजना तथा शैली निर्धारण की दृष्टि से उच्च कोटि के हैं।[1]

जहाँगीर के समय व्यक्ति चित्रों की भरमार थी। जहाँगीर ने रानियों, राजकुमारियों तथा गायिकाओं, कवियों, कलाकारों, नौकरों, ज्योतिषियों, शिकारियों, शिल्पियों, संगीतज्ञों आदि की शबीह बनवाई। इनके काल में मुखाकृति के पीछे दिव्य प्रकाश देने की परम्परा भी शुरू हुई और साथ ही साथ बहुत छोटे आकार के व्यक्ति चित्र भी बनाये गये। कला के जानकारों का मत है कि इन व्यक्ति चित्रों का चर्मोत्कृष्ट रूप जहाँगीर कालीन चित्रों में ही देखने मिलता हैं। इन व्यक्ति चित्रों में परिमार्जित तकनीकि तथा सूक्ष्म अंतर्दृष्टि के द्वारा चित्रित व्यक्ति का स्वभाव प्रस्तुत किया गया है।[2]

संतों की मुखाकृति भी मुग़ल बादशाहों ने काफी संख्या में बनवाये। साधु, धार्मिक पुरूषों, तुलसीदास, मीरा, सूरदास, बल्लभाचार्य, कबीर, शेख सलीम, शेखफूल आदि महानहस्ती इन शबीह चित्रण में शामिल हैं। पाश्चात्य विद्धानों की दृष्टि से ये शबीह चित्रांकन यूरोपीय प्रभाव से प्रेरित हैं। संभवत: 1575ई. में पाश्चात्य शैलियों का प्रभाव मुग़ल दरबार में प्रवेश पा चुका था, परन्तु इन शबीह चित्रांकन की अपनी कुछ विशेषतायें हैं, जो ईरानी तथा यूरोपीय प्रभाव से सर्वथा मुक्त हैं। इन चित्रांकनों में सम्राट का राजसी औदार्य और

* सहायक प्राध्यापक (चित्रकला) शासकीय महिला महाविद्यालय नरसिंहपुर (म.प्र.) भारत

गर्व, दरबारियों का शौर्य, गंभीर कूट-नीति, दूरदर्शिता और दार्शनिकता आदि सभी रूपायित हो गया है। जो भारतीय परम्परा के अधिक निकट हैं। इन व्यक्ति चित्रों को बनाने का उद्देश्य होता था कि जिनका देहान्त हो गया है, वे इन चित्रों के माध्यम से पुनर्जीवित हो गये हैं, और जो जीवित हैं वे अमर हो गये हैं। इन व्यक्ति चित्रों में अत्यंत सौंदर्य की अनुभूति है। इन चित्रों में भारतीय शैली को अपनाया गया है, और बाह्य सौंदर्य का अभिव्यंजन ईरानी शैली के माध्यम से हुआ है। इस प्रकार हिन्दू शैली द्वारा भावनाओं को प्रधानता एवं ईरानी शैली के माध्यम से रेखांकन का समावेश इन शबीह चित्रण एवं संपूर्ण मुगल शैली में दिखाई देता है। अब तक ग्रंथ चित्रों में कला सीमित रह गई थी, लेकिन इस काल में इसका अभूतपूर्व विकास व्यक्ति चित्रों के माधयम से प्रारम्भ हुआ।

मुग़लकालीन पुरूष व नारी आकृतियाँ- मुग़ल शैली में चित्रित सभी मानवाकृतियाँ मार्मिक एवं स्वाभाविक हैं। यद्यपि इस शैली के अधिकांश चित्रों एवं शबीहों में एक चश्म चित्रों की प्रमुखता है, तथापि उनका स्वरूप यथार्थ के निकट है। इन मानवाकृतियों में रंग स्वाभाविक रूप से लगाये गये हैं, तथा छाया प्रकाश का अंकन भी सुंदरतापूर्वक किया गया है। मुग़ल चित्रों के पुरूषों को प्राय: जामा, चुस्त पायजामा, कमर में पटका, पगड़ी पहने चित्रित किया है। पैरों में नोकदार जूतियाँ है। योद्धाओं, बादशाहों एवं सामान्य व्यक्तियों आदि के जूते एवं पोषाक भी अलग-अलग चित्रित है। युवा राजकुमार के चित्रण में कानों में कुण्डल, गले में मोतियों की मालायें आदि विशेष रूप से चित्रित हैं। स्त्रियों के पहनावे में साधारणत: कुर्ता या आस्तीनदार चोली, पतला आंचल, पायजामा या लहँगा पहने चित्रित किया है। आभूषणों में इन नारी आकृतियों को मोतियों की मालायें, बाजूबंद, कडे, झुमके, झूमड़ आदि पहने चित्रित किया गया है। वस्त्रों में बूटियाँ सोने के रंग से बनाई गई हैं, इन मानवाकृतियों का चित्रण भारतीय परम्परा के अनुसार किया गया है।

मुग़ल शैली में इन मानवाकृतियों को बनाने में रेखाओं का प्रयोग भी बड़ी बारीकी से किया गया है, जो बेजोड़ है। इस काल के व्यक्ति चित्रों को देखने से पता चल जाता है कि चित्रकार ने कितनी मेहनत से इन रेखाओं का प्रयोग कर भाव प्रदर्शित किया है। चेहरे की दाड़ी का एक-एक बाल बनाने का प्रयत्न चित्रकार ने बड़े जतन से किया है, चेहरे पर जो हल्के रेशे होते हैं, गालों पर उसको भी बड़ी मेहनत से उकेरा है। उस समय ऐसा कोई यंत्र भी नहीं था जिससे छोटे स्थानों पर चित्रण किया जा सके, फिर भी इतनी महीनता का जो कार्य हुआ है। वह वास्तव में प्रशंसनीय है।

अंग-प्रत्यंगों की भाव-भंगिमायें- मुग़ल शैली में मानवाकृतियों का चित्रण यथार्थता को ध्यान में रखते हुए किया गया है, जिससे इन मानवाकृतियों के प्रत्येक अंगों के चित्रण में स्वाभाविकता की झलक दिखाई पड़े। इनमें सजीवता एवं भावाभिव्यक्ति की क्षमता दर्शित है। 'एक चित्र के दृश्य में एक कथा अंकित है। एक शहंशाह अपनी एक रानी पर अधिक मोहित हो गया था, जिससे राजकाज में बाधा पड़ने लगी थी, उसे जब इसका ज्ञान हुआ तो उसे पानी में फिकवा दिया। इस चित्र में बड़े सुंदर भाव प्रदर्शित हैं, जिसमें शहंशाह, आज्ञापालन में संलग्न सेवक, छटपटाती हुई रानी, घबराये हुए माँझी द्रष्टव्य हैं।'[3]

इस प्रकार मुग़ल शैली की मानवाकृतियों को खड़े, बैठे, झुके, सलाम या मुजरा करते दर्शाया है। जिसमें हाथ की अंगुलियों तथा पैरों की बनावट सजीव, सुंदर व भावप्रद है।

मानवाकृति चित्रण में सिद्धस्थ हिन्दू चित्रकार - मुग़ल बादशाहों का कला के प्रति प्रेम एवं उनके गुणग्राही स्वभाव के अनुरूप मुग़लशैली में कई हिन्दू चित्रकारों को अपनी कला को प्रदर्शित करने का मौका मिला। इस शैली में कई हिन्दू कलाकार मानवाकृति चित्रण एवं भाव अभिव्यंजना करने में निपुण थे। मुग़लकालीन मुख्य हिन्दू कलाकारों में बसावन, दसवंत, बिशनदास, मनोहर आदि ऐसे चित्रकार थे जो मानवाकृति चित्रण में निपुर्ण थे।

बसावन- अकबर के दरबारी चित्रकारों में बसावन बहुत प्रतिभाशाली चित्रकार था। रज़्मनामा, बहारिस्ताने जामी, दराबनामा, अकबरनामा आदि ग्रंथों में बसावन द्वारा बनाई गई मानवाकृतियाँ चित्रित हैं। इन आकृतियों की गठनशीलता, स्वाभाविकता की अभिव्यक्ति, छाया प्रकाश तथा वस्त्रों के धरातलों की विविधता पर यूरोपीय कला का प्रभाव है। बसावन ने आगे की ओर झुकी हुई मानवाकृतियों का जिस तरीके से चित्रण किया है वह दर्शनीय एवं दुर्लभ है। मानवाकृतियों में भावाभिव्यंजना जितनी वास्तविकता से इन्होंने प्रदर्शित की है इतनी किसी कलाकार ने इस शैली में नहीं की। व्यक्ति चित्र बनाने तथा रंग-योजना बनाने में वह दक्ष था।

दसवंत - अकबर के समय दसवंत हिन्दू चित्रकारों में सबसे बड़े कलाकार माने जाते थे। इन्होंने चित्रकला के लिए अपना जीवन अर्पण कर दिया। मानवाकृतियों के अंतर्गत देवी, देवताओं आदि के चित्र जिस सुंदरता से इन्होंने बनाये किसी अन्य की मानवाकृतियों में नहीं दिखाई पड़ता। दसवंत की पकड़ एवं कार्य कुशलता देवी-देवताओं की आकृतियों में ही नहीं, अपितु भयंकर राक्षसी आकृतियों में देखी जा सकती है। पौराणिक कथानकों के चित्रण के प्रति दसवंत अधिक समर्पित था। मानवाकृति चित्रण करते समय दसवंत परिपेक्ष्य एवं दूरी का विशेष ध्यान रखता था। दसवंत द्वारा चित्रित मानवाकृतियों में भी यूरोपीय प्रभाव की झलक दिखाई देती है। दसवंत ने ईसाई चित्रों में अंकित मानवाकृतियों की अनुकृति करने का भी विशेष कार्य किया।

बिशनदास - बिशनदास जहाँगीर के समय का चित्रकार था, जो शबीह-चित्रण में प्रवीण था। जहाँगीर ने ईरान के शाह अब्बास के यहाँ बिशनदास को शबीह-चित्रण बनाने हेतु भेजा था। जहाँगीर ने बिशनदास की तारीफ में लिखा है - 'उसने मेरे भाई शाह अब्बास की ऐसी सच्ची शबीह बनाई है कि जब मैंने ये तस्वीर शाह के नौकरों को दिखाई तो वे मान गये'। इस चित्र की अनुकृति 'बोस्टन संग्रहालय' में है। बिशनदास द्वारा बनाया गया नूरजहाँ का व्यक्ति चित्र भी श्रेष्ठ कलाकृतियों में एक है। जहाँगीर साधू संतों के प्रति श्रद्धा का भाव रखता था, और इन्हें ध्यान रखते हुए उसने 'शेख सूफी संत' का चित्र बनवाया। बिशनदास द्वारा बनाया गया यह चित्र आज विश्व में प्रसिद्धि हासिल कर चुका है। इस चित्र में संत अपनी कुटिया में विचार मग्न स्थिति में हैं और भक्तगण उनके दर्शन के लिए खड़े हैं। भावनात्मक एवं सौंदर्यात्मक दृष्टि से चित्र उच्च कोटि का बना है।

पतन - मुग़लकाल के पतन होने का एक कारण मुगल शैली में नारी आकृतियों का अभाव था। प्राचीन भारतीय चित्रकला में कलाकारों का विशेष ध्यान नारी सौंदर्य अर्थात नारी आकृति चित्रण में अधिक था, लेकिन मुग़लकालीन चित्रों में नारी चित्रण बहुत कम हुआ है, जिसका कारण मुगलों में पर्दा प्रथा का कट्टरता से पालन था। कहीं-कहीं व्यक्ति चित्रों के रूप में नारी आकृतियाँ अंकित हैं। मुग़लकाल के चित्रकार दरबार में बंद थे, उन्होंने जिन मानवाकृतियों का चित्रण किया वह रूढ़िगत दरबार के शान-शौकत से संबंधित थी। वहाँ के चित्रकारों को मानवाकृति चित्रण में मौलिक विचार करने का समय ही नहीं था। मुगल शैली के चित्रों में जन-साधारण के जीवन की झांकी के दर्शन नहीं होते। मुग़ल सम्राटों का ध्यान आम जनता की ओर कभी नहीं गया और यही कारण था कि मुगल कला दरबार में उत्पन्न होकर वहीं समाप्त हो गई।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. डॉ. प्रेमशंकर द्विवेदी/राधाकृष्ण भारद्वाज - भारतीय चित्रकला में व्यक्ति चित्रण, पृ. 54, कला प्रकाशन, वाराणसी, वर्ष 1996
2. डॉ. रीता प्रताप - भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, पृ. 151 , राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर।
3. लोकेश चन्द्र शर्मा - भारत की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 111, गोयल पब्लिकेशन हाउस, मेरठ, उत्तरप्रदेश, वर्ष 2005

****

Good Governance In Higher Education : Challenges Ahead

Dr. Neena Aneja *

Abstract - Good governance has been defined as a high level of organizational effectiveness in relation to policy – formulation and the policies actually pursued. The agenda of higher education institutes in this scenario may include opening new vistas of learning, new frontiers of researching, academics restructuring, sharing of expertise, innovation ,technology transfer, knowledge management, training, employability, entrepreneurship. Media convergence and meeting social, cultural and economic challenges thrown by the forces of globalizations etc. Actually good governance in higher education is to make quality the defining element of higher education through a combination of self and external quality evaluation, promotion and sustenance initiatives.

Key Words - Good-Governance, Management, Education System.

Introduction - Recently the terms "governance" and "good governance" are being increasingly used in development literature. Bad governance is being increasingly regarded as one of the root causes of all evil within our societies. Major donors and international financial Institutions are increasingly basing their aid and loans on the condition that reforms that ensure "good governance" are undertaken.

Good governance is associated with efficient and effective administration in a democratic frame work. Open, Democratic and accountable systems of governance based on respect for human rights and the rule of law are preconditions for sustainable development and robust growth .Good governance has been defined as a high level of organizational effectiveness in relation to policy –formulation and the policies actually pursued .

Good governance has 8 major characteristics. It is participatory, consensus oriented, accountable, transparent, responsive, effective and efficient, equitable and inclusive and follows the rule of law. It assures that corruption is minimized, the views of minorities are taken into account and that the voices of the most vulnerable in society are heard in decision-making. It is also responsive to the present and future needs of society.

Good governance is supposed to exist if three objectives are achieved. The first is there should be quality of law a, secondly, there should be opportunity for every individually to realize his full human potential and thirdly, there should be effective productivity and no waste in every sector. Kautilya says in his Arthashastra:"In the happiness of his subject lies king's happiness, in their welfare .he shall not consider as good only that which pleases him but treat as beneficial to him whatever pleases his subject."

Good Governance and higher Education - The role of higher education institutions in this emerging scenario of 'knowledge economy' is very crucial and multifaceted .They have to keep learning about creation of knowledge, its dissemination ,its application and providing access to knowledge technology. The agenda of the universities in this scenario may include opening new ,vistas of learning ,new frontiers of researching, academics restructuring ,sharing of expertise, innovation, technology transfer ,knowledge management, training, employability, entrepreneurship, Media convergence and meeting social, cultural and economic challenges thrown by the forces of globalizations etc.

Actually good governance in higher education is to make quality the defining element of higher education through a combination of self and external quality evaluation, promotion and sustenance initiatives. Good governance lays focus on the institutional developments with reference to three aspects: Qualities initiatives, quality sustenance and quality enhancement .Basically good governance in higher education may be equated with QUALITY, Which consist of seven letters and each letter has its own potentialities to lead the higher education institutions towards good governance.Thus Quality may be abbreviated as:

Q: Quest of Innovation
U: Up gradation of Curriculum
A: Active student support
L: Leadership and Governance
I: Infrastructure
T: Teaching_ Learning and evaluation
Y: Yield for research consultancy and extension

As Governance involves handling of numerous forces towards a definite goal or goals .It is an intellectual activity requiring sharp cognition, divergent thinking ability, ability to concentrate convergent ,a penetrating insights in to niceties of an issue ,ability to analyze things closely, drawing inferences from a given set of data, and arriving at a tentative decision and conveying it to others for information as well as action. To ensure these multiples operations simultaneously, both individually and collectively through team

* Principal, A.S.College of Education, Khanna (Punjab) INDIA

work ,It is necessary to ensure the following three types of parameters, Namely:

i. The environment
ii. The building blocks
iii. The code of professional ethics

The Environment - It is necessary that the overall environment of an institution of higher education should be receptive, conducive to and supportive of the operation of effective governance.

The building blocks - The institutions or any other agency to be subjected to the process of objective and goal orientated governance should provide and assiduously preserve and develop a large array of the building blocks that go to form the institutional edifices, both physical and conceptual .

The code of professional ethics - Governance inevitably has a moral context in order to be cutting edge in its aims of facilitating, promoting, monitoring, mentoring and guiding it on its march on an incrementally rising curve of value addition to the enterprise of a creative and man making enterprise of social entrepreneurship like education .governance should therefore be based on :

1. Autonomy
2. Accountability
3. Transparency
4. Relevance
5. Reliability
6. Sustainability
7. Legal legitimacy
8. Accessibility
9. Practicability

It is therefore in light of these three parameters that dynamic and creative process of governance of higher education in india will have to be carried out proactively in the days to come .It need not however ,be assumed that the path will be smooth and free from hurdles.

The hurdles in implementing creative governance - Governance is an organization activity involving the interplay between human agents on one hand and rules and regulation on the other .It is a complex and involved process having far reaching implication for human behavior, human relations and the productivity and profitability of investment of all sorts. Above all, it impacts on overall functioning of the system, say of higher education, administratively ,Morally ,socially and teleological. Its political fallout should not be ignored here are the chief hurdles:

Psychological - A reactive, Ego-centered and somnolescent mind is incompatible with the demands of objective governance. Attitudes of secrecy ,unwillingness to share and obstinacy to impose one's beliefs on others also inhabits free governance. Irrational fear of displeasing others, antagonizing sensitive persons by an adverse opinion, and inviting displeasure of near ones also frustrate the cause of genuine governance.

Social - A society characterized by factionalism, Superstitions, obscurantism, feudalism and patriarchic attitudes, autocracy of hierarchy and inequalities of umpteen types does not welcome any objective, Law –based and merit driven governance mechanism which subscribes to democratic norms .Minds of the operators as well as the of the subjects of governance need to be thoroughly exorcised before the process of impartial governance are activated through them. Besides ,a social milieu vitiated by manipulated politics ,distortion of the rule of law ,a corrupt bureaucracy ,a weak and wobbling judiciary and overall climate of violence, lawlessness and crime cannot encourage honest ,bold and detached governance ,as such a dispensation works solely in the interest of the quality and health and sustainability of normative system like higher education .

Cultural - A culture of tolerance ,regard for truth ,respect for the rule of law and readiness to sacrifice even one's life ,like some of the whistle blowers in india have done after he enforcement of the RTI act, is absolutely essential to implement governance, be it in the government ,in corporations, in NGO's, and even in private enterprises. Unfortunately, such culture is being eroded in india for personal or sectarian or party gains, making it very difficult for scientific governance to strike roots, let alone succeed.

Systemic - All organizations, in order to function according to their goals and road map ,must have systemic discipline ,mores of conducting affairs dispassionately and evaluating their performance regularly to spot failings and identify gains .However ,in a very large no. of organizations, both of the government domain and of non government sectors ,there is a pathological failures of the systemic integrity due to disregard for law for petty considerations. The operators of corrupt practices non-chalantly resort to corrupt practices and political patronage in blatant violation of rules and regulation which are must for an orderly governance .This has severely damaged the cause of rule based governance.

Moreover, it is due to sheer systemic degeneration that, out of desperation ,many prefer to shun governance all together .This is why only 25% of universities and colleges have offered themselves so far for assessment by NAAC .A large no. has ,simply chosen to ignore the call for volunteering for assessment .and there is no punishment for doing so!!

Procedural - True governance should be based on minimum hassles and rituals, and should be more substantial and sinewy in matters of truth and objectivity .Unfortunately ritualism, showman ship; window dressing and smoke screening are ruling the roost! Take the example of the assessment ritual prescribed by the NAAC, and followed by the visiting teams for their assessment assignment. Also take the prevailing prescribed ritual of submitting's reports and proposals to the bodies like the AICTE, NCTE, UGC, NCERT and so on. Substance is at a great discount in all these submissions .paperwork is stunningly astounding .This has given rise to malpractices, cronyism, corruption and subversion of not only law but also decency of behavior.

Economic - Governance is an expensive administrative pursuit, if carried out in the right spirit .It requires training of people involved, both those doing it and those who face it.

Its recommendations require Funds for implementation; otherwise they prove sterile and irrelevant. The government of the day at the centre and in the states has mostly withdrawn from their usual financial commitments to higher education. And the reality is that proactive, creative and vigorous governance requires finances on a large scale. The painful situation is that the governments of the day have started starving even the normal activities of institutions .Hence, governance of a nonconventional nature is considered a luxury, to be avoided and discouraged.

Occupational - Governance of education is an occupational pursuit. Professional ethics must permeate its operations .We are woefully lacking in this respect .There is reluctance to displease the erring faculty member, the head of the department ,the principal ,the managing trustee ,the student leader ,the officer of the government department ,the accountant ,the auditor, and even the humble clerk or the peon ,who are all the nuts and bolts of the system. Governments requires disclosure of weakness ,failures, inadequacies ,loopholes ,acts of corruption and mal administration .But this vital part of the exercise of governance is given a short shrift unceremoniously .Governance ,thus, is made to fail in its essential goal of improving the system . Instead, when it is allowed to degenerate in to a dirty game of mutual back scratching, honest, sincere and well-meaning people are dissuaded from participating in the process.

In the light of, above discussion it is hoped that systematizing the various procedures of governance will ultimately result in restoring creative, purposeful governance and overall management of higher education in country.

Conclusion - Of course, it is not claimed that such transformation of governance through re -structuring and re-engineering will transpire in a day looking to the present state of disrepair, obsolescence and stagnation inherited from years of negligence. It, there for, will require a sustained movement on a mission mode to implement proactively and boldly. And, as the US poet Robert Frost advised in his famous lines, not to rest on oars with the attitude of being somnolescent and give up, but to strive harder and move ahead. He said:

The woods are lovely, dark and deep
But I have promises to keep,
And miles to go before I sleep.

And certainly the fruits of such label are not trivial. In any social organization whose mandate is to conduct a productive activity like education, purposeful governance proves to be a positive contributor to its development in keeping with its perception of its vision and goals.

References :-

1. GOI (1986).National Policy on Education (1986), New Delhi: MHRD
2. GOI (2009).National Knowledge Commission Report to the nation, New Delhi: GOI
3. Ghanchi D.A. (2010).Proactive Implementation of Creative Governance: The Alchemy to Rejuvenate India's Higher Education. UniversityNews vol.48 no.45.
4. www.NAAC.ac.in

****

ग्रामीण क्षेत्र के प्राथमिक विद्यालयों में मिड डे मिल सम्बन्धित योजना का अध्ययन (मन्दसौर जिले के संदर्भ में)

जयदीप महार * संजय डागर **

शोध सारांश – प्रस्तुत शोध से प्राप्त परिणामों से यह ज्ञात होता है कि मिड डे मिल सम्बन्धित योजना के अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्र के प्राथमिक विद्यालयों में विद्यार्थियों को मध्याह: भोजन समय पर एवं साफ सुथरे बर्तनों में मिलता है, क्या भोजन पौष्टिक एवं ताजा होने के साथ साथ स्वादयुक्त होता है,साथ ही विद्यार्थियों के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य का विशेष ध्यान रखा जाता है। इस योजना के अंतर्गत क्या शिक्षक भी इसी भोजन को करते तथा अपनी थाली स्वंय धोते हैं। क्या विद्यार्थियों के लिये साफ सुथरें पानी की भी उचित व्यवस्था रहती है। उक्त सभी कथनों को ध्यान में रखकर शोधार्थी द्वारा स्वनिर्मित प्रश्नावली के माध्यम से 300 विद्याार्थियों की राय ज्ञात की गई।जिससे ज्ञात हुआ कि सामान्यत: प्राथमिक विद्यालयो में मिड डे मिल सम्बन्धित योजना का लाभ उठाया जाता है

प्रस्तावना – शिक्षा राष्ट्रीय प्रगति के कल्याण का आधार है। देश एवं जनता का जितना हित शिक्षा से हो सकता है, उतना किसी अन्य वस्तु से नहीं हो सकता। जनसाधारण की शिक्षा की व्यवस्था करने से ही भारत का उत्थान संभव है। स्वामी विवेकानन्द ने प्राथमिक शिक्षा के महत्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है–

"Why do se not nation move? First duty is to edycate the people."

उद्देश्य

1. ग्रामीण शासकीय प्राथमिक शालाओं के विद्यार्थियों का नामांकन बढाने का प्रयास करना।
2. 1 – 14 वर्ष की आयु तक सार्वजनिक ठहराव।
3. शिक्षा की गुणात्मक में आधार भूत सुधार।
4. शाला त्याग दर में कमी करना।
5. विद्यालय के प्रति आकर्षण बढाना।

शोध प्रविधि – प्रस्तुत शोध अध्ययन में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया जिसके अंतर्गत मन्दसौर जिले के दो विकासखण्डों की 30 ग्रामीण शालाओं का सर्वेक्षण किया गया।

न्यादर्श –

क्र.		प्रत्येक विद्यालय से न्यादर्श	कुल विद्यालयों से न्यादर्श	कुल संख्या
1	विद्यार्थी	10	10×30	300

उपकरण – प्रस्तुत शोध अध्ययन में समस्या से संबंधित तथ्यों व सूचनाओं को एकत्रित करने हेतु स्व निर्मित प्रश्नावली का निर्माण शोधार्थी द्वारा किया गया।

प्रदत्तों का संकलन – प्रदत्तों का संकलन शोध कार्य को सफल बनाने हेतु ऑकडों व जानकारी का संकलन आवश्यक है। प्रस्तुत शोध अध्ययन में प्रदत्तों के संकलन हेतु सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। शोधकर्ता ने शोध उपकरण का निर्माण कर प्रदत्तों का संकलन किया हैं, प्रदत्तों के संकलन की प्रक्रिया को नीचे वर्णित किया गया है।

मिड डे मिल सम्बंधित विवरण

क्रं	न्यादर्श (300)	प्राप्त प्रदत्त	
	विषय वस्तु	आवृत्ति हॉ	आवृत्ति नही
1	आपकी शाला में भोजन समय पर मिलता है।	98.3%	01.7%
2	आपकी शाला में मिलने वाला भोजन ताजा होता है।	98.3%	01.7%
3	शाला में मिलने वाला भोजन आपको अच्छा लगता है।	94%	06%
4	रोज भोजन एक जैसा बनता है।	4.6%	95.4%
5	आपकी शाला में भोजन पौष्टिक होता है।	89%	11%
6	आपको भोजन साफ–सुथरे बर्तन में करवाते है।	89.3%	10.7%
7	आपके शिक्षक भी आपके साथ भोजन करते है।	22.3%	77.7%
8	भोजन के बाद आपकी थाली आप स्वयं धोते है।	66.3%	33.7%
9	आपको भोजन केवल एक बार ही परोसा जाता है।	13.3%	86.7%
10	भोजन के दौरान पानी की व्यवस्था रहती है।	98.3%	01.7%

सारणी के विश्लेषण से प्राप्त निष्कर्ष –

1. (98.3%) विद्यार्थियों के अनुसार उनकी शालाओं में भोजन समय पर मिलता है, जबकि (01.7%) विद्यार्थियों के अनुसार उनकी शालाओं में भोजन समय पर नहीं मिल पाता है।
2. (98.3%) विद्यार्थियों के अनुसार उनकी शालाओं में मिलने वाला भोजन ताजा होता है, जबकि (01.7%) विद्यार्थियों के अनुसार

* सहायक प्राध्यापक, सरस्वती शिक्षा महाविद्यालय, मन्दसौर (म.प्र.) भारत
** सहायक प्राध्यापक, सरस्वती शिक्षा महाविद्यालय, मन्दसौर (म.प्र) भारत

उनकी शालाओं में भोजन कभी-कभी ताजा नहीं मिलता है।

3. (94%) विद्यार्थियों के अनुसार उनकी शालाओं मे मिलने वाला भोजन उन्हें अच्छा लगता है, जबकि (06%)छात्रों के अनुसार उनकी शालाओं में मिलने वाला भोजन उन्हें अच्छा नहीं लगता है।
4. (04.6%) विद्यार्थियों के अनुसार उनकी शालाओं में मिलने वाला भोजन रोज एक जैसा बनता है, जबकि (95.4%) विद्यार्थियों के अनुसार उनकी शालाओं में भोजन एक जैसा नहीं बनता है।
5. (89%) विद्यार्थियों के अनुसार उनकी शालाओं में मिलने वाला भोजन पौष्टिक होता है, जबकि केवल (11%) विद्यार्थियों के अनुसार उनकी शालाओं में भोजन पौष्टिक नहीं होता है।
6. (89.3%) विद्यार्थियों के अनुसार उनकी शालाओं में मध्यान्ह भोजन साफ-सुथरे बर्तन में करवाते हैं। जबकि (10.7%) विद्यार्थियों के अनुसार उनकी शालाओं में मध्यान्ह भोजन स्वयं को एक बार और बर्तन धोकर करना पड़ता हैं।
7. (22.3%) विद्यार्थियों के अनुसार उनकी शालाओं के शिक्षक कभी-कभी उनके साथ भोजन करते हैं। जबकि (77.7%) विद्यार्थियों के अनुसार उनकी शालाओं के शिक्षक उनके साथ भोजन नहीं करतेहैं।
8. (66.3%) विद्यार्थियों के अनुसार उनकी शालाओं में भोजन के बाद उनकी थाली वे स्वयं धोते हैं। जबकि (33.7%) विद्यार्थियों के अनुसार उनकी शालाओं में भोजन के बाद उनकी थाली वे स्वयं नहीं धोते हैं।
9. (13.3%) विद्यार्थियों के अनुसार उनकी शालाओं में मध्यान्ह भोजन केवल एक बार परोसा जाता है, जबकि (86.7%) विद्यार्थियों के अनुसार उनकी शालाओं में मध्यान्ह भोजन एक से अधिक बार परोसा जाता है।
10. (98.3%) विद्यार्थियों के अनुसार उनकी शालाओं में पानी की उचित व्यवस्था है, जबकि (1.7%) विद्यार्थियों के अनुसार उनकी शालाओं में पानी की उचित व्यवस्था नहीं है।

शैक्षिक निहितार्थ – प्रस्तुत शोध के अध्ययन से अभिभावकों की रूचि मध्याह: भोजन की गतिविधियों संबंधि जानकारी में शतप्रतिशत नामांकित हो सकेगी जिससे कि छात्रों के मध्याह:भोजन एवं इससे जुडी सभी गतिविधियों का मूल्याकन समय पर किया जा सकेगा साथ ही शाला में विद्यार्थियों की उपस्थिति को बढाया जा सकेगा है, एवं विद्यालय को आकर्षण का केन्द्र बनाया जा सकेगा।

प्रस्तुत शोध के अध्ययन से विद्यालय प्रशासन भी मध्याह:भोजन एवं इससे जुडी सभी गतिविधियों के बारे में शासन को अवगत करा कर योजना का क्रियानव्यन समय पर कर सकेगा। जिससे कि शालाओं में निर्धन एवं पिछडी जातियों के बच्चें दर्ज हो सके तथा उनके अभिभावक बच्चों के प्रति पढाई लिखाई के प्रति जागरूक हो सकेगें, एवं बालिका शिक्षा को प्रोत्साहन मिल सकेगा। साथ ही शिक्षा के क्षेत्र से जुडे उन सभी क्षेत्रों के लिए भी दिशा निर्दिष्ट करेगा जो राष्ट्रीय प्रगति में प्राथमिक शिक्षा के योगदान का सर्वोच्च वरीयता देते है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. अवस्थी, राकेश (2006): स्कूल चलें हम अभियान 2005 का प्राथमिक स्तर पर प्रभाव का अध्ययन (टीकमगढ़ जिले के संदर्भ में)- एम.एड लघु शोध प्रबन्ध सर हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर
2. कुलश्रेष्ठ, एम.पी. शिक्षा मनोविज्ञान आर.लाल बुक डिपो मेरठ 2005
3. जोशी अल्पना (2004): प्रारंभिक शिक्षा के लोकव्यापीकरण में पालक- शिक्षक संघ की भूमिका का अध्ययन करना (खण्डवा विकासखंड के संदर्भ में) - एम.एड-लघु शोध प्रबंध, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय इन्दौर
4. नेगी, अशोक कुमार (2005) प्राथमिक विद्यालयों में मध्याह्न भोजन कार्यक्रम की परिवर्तित व्यवस्था के तहत विभिन्न कवभाग समन्वयात्मक कार्यवाही एवं कठिनाई का अध्ययन (खण्डवा विकासखंड के संदर्भ में) - एम.एड-लघु शोध प्रबंध, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय इन्दौर
5. पलाश मार्च-अप्रैल- मई 1994 राज्य शिक्षक प्रशिक्षण मंडल म0प्र0 द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका
6. पाठक पी.डी. एवं त्यागी एस.डी.: भारतीय शिक्षा आयोग,विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा
7. पाठक पी.डी. (1995): भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याये ,विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा

****

अकादमिक ग्रंथालय में स्वचालन(आटोमेशन)

नंदकिशोर अहिरवार *

प्रस्तावना – ग्रंथालय किसी भी सभ्य समाज के आवश्यक अंग हैं। या ग्रंथालय शिक्षा के मंदिर के समान हैं जहां लोग अपने ज्ञान की प्यास बुझाने के लिये जाते हैं। जहां पर संग्रहित पाठ्य सामग्री एवं प्रदान की जाने वाली सेवाओं से संतुष्टि प्राप्त करते हैं, लेकिन वर्तमान युग में ग्रंथालय एक ऐसे संगठन या संस्था के रूप में जाने जाते हैं जहां चयनित सेवा (Selection Services) संगठनात्मक प्रबंध (Collection Management) सही समय पर सही व्यक्ति को सूचना व जानकारी प्रदाय करने की प्रक्रिया को अपनाया जाता है। ग्रंथालयों को ऐसे स्थान के रूप में पहचाना जाता है, जहां पर सूचनाओं को बदलते समय के अनुरूप कई माध्यमों जैसे Electronic Cataloguing listing, Full Text periodical और Internet के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है।

यद्यपि ग्रंथालयों में समय के साथ कई महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं, और वे इन परिवर्तनों के साथ अपनी जिम्मेदारी को बखूबी निभा रहे हैं। वे समाज के प्रत्येक विषय पर आधारति जानकारियां, पुस्तकें, पत्रिकाऐं, सभी विषयों ऐतिहासिक, धार्मिक, विधिक नियमों एवं संस्कृति से जुड़े विषयों पर पुस्तकें उपलब्ध कराते हैं। प्राचीन समय में ग्रंथालयों को उनके संग्रह के आधार पर उनकी प्रतिष्ठा मानी जाती थी, किंतु वर्तमान समय में ग्रंथालयों द्वारा प्रदाय की जाने वाली प्रभावशाली एवं त्वरित गति से प्रदान की जाने वाली सेवाओं के आधार पर ग्रंथालयों का महत्व गुणवत्ता का पता चलता है, न कि संग्रह के आधार पर।

ज्ञान के अबाध रूप से प्रकाशित होने से उसके नियंत्रण करने में समस्या पैदा होने लगी जिसके फलस्वरूप ज्ञान को नियंत्रण एवं उसके प्रबंधन के नये–नये तरीके खोजे जाने लगे। कम्प्यूटर के आगमन से ग्रंथालयों में आने वाली पाठ्य सामग्री, ज्ञान की सभी शाखाओं के हर क्षेत्र को व्यवस्थित करने एवं उनके उपयोगकर्ता तक पहुंचाने में सहायक हुई। यह कहना गलत नहीं होगा कि कम्प्यूटर हार्डवेयर एवं साफ्टवेयर की मदद से लायब्रेरियन एवं लायब्रेरी सेवा के स्वचालन का प्रारंभ हुआ। इसकी असाधरण कार्यक्षमता, तीव्रता एवं स्टोरेज केपेसिटी की वजह से ग्रंथालय सेवा में इसको काफी लोकप्रियता प्राप्त हुई। कम्प्यूटर की मदद से ग्रंथालय में दैनिक कार्यों जैसे acquoisition, Catalouging, classification,circulation,Serial control and information storage and retrieval activities में मदद मिलती है। इसके अलावा कुछ नयी सेवाऐं जैसे SDI एवं Current Content Services भी प्रारंभ हुई है।

इस समय बाजार में सैकड़ों साफ्टवेयर उपलब्ध हैं, लेकिन अपनी लायब्रेरी की उपयोगिता के आधार पर साफ्टवेयर का चयन सावधानीपूर्वक विशेषज्ञों से विचार विमर्श के उपरांत करना चाहिए।

कुछ प्रमुख साफ्टवेयर अकादमिक ग्रंथालय हेतु निम्नानुसार है–

1. CDS/ISIS Dos and windows version
2. SOUL(software of University Library)
3. AFW
4. MIDAS LMS
5. Lib.Info
6. LMS(Library Management System)
7. Library Manager

Type of Software– यद्यपि आज कल कई प्रकार के साफ्टवेयर उपलब्ध हैं किंतु मुख्य रूप से दो प्रकार के साफ्टवेयर हाते हैं–

1. System Software
2. Application Software

1. System Software - System Software एक या एक से अधिक प्रोग्राम का सेट होता है मुख्य रूप से एक साफ्टवेयर सिस्टम निम्नलिखित एक या एक से अधिक कार्य करता है–

(a) Support the development of other application software
(b) Support the execution of other application software
(c) Moniter the effective use of various hardware resources such as CPU memory, peripheral etc.
(d) Communicates with and controls the operation of peripheral devices such as printer, disk etc.

सिस्टम साफ्टवेयर में जो प्रोग्राम होते हैं उन्हें सिस्टम प्रोग्राम कहते हैं , और प्रोग्राम को तैयार करने वाले को सिस्टम प्रोग्रामर कहते हैं सामान्य तौर पर सिस्टम साफ्टवेयर निम्न प्रकार के हैं

1- Operating system (ऑपरेटिंग सिस्टेम)
2- Programmeing language Translators
3- Communication Software
4- Utility Programmers

2. एप्लीकेशन सॉफ्टवेयर– एप्लीकेशन सॉफ्टवेयर में एक या एक से अधिक प्रोग्राम होते हैं, जिसको किसी विशेष प्रकार की समस्या के समाधान के लिये या किसी विशेष कार्य को करने के लिये तैयार किया जाता है।

1. Word Processing software
2. Spread sheet software
3. Data base software
4. Graphic software
5. Personal Assistant software
6. Education software
7. Entertainment software
8. Desktop publishing package
9. Library Management software
10. Expert System

ग्रंथालय स्वचालन (Library Automation) – आमतौर पर लायब्रेरी आटोमेशन का अर्थ लायब्रेरी के कम्प्यूटरीकरण से लगाया जाता है, जिसमें Acqisisition, cataloguing, circulation, Ed§ Serial Control कार्य

* ग्रंथपाल, शासकीय महाविद्यालय, ढाना,जिला–सागर (म.प्र.) भारत

किया जाता है, किंतु वर्तमान परिदृश्य में इसका आशय वृहद स्तर पर डाटा कंट्रोल करना, सही व्यक्ति को सही समय पर सूचना त्वरित गति से प्रदान करना है। कम्प्यूटर एवं अन्य आधुनिक आई.टी. साधनों के माध्यमों से भारद्धाज एवं शुक्ला (2000) के अनुसार लायब्रेरी आटोमेशन शब्द ग्रंथालय एवं सूचना केंद्रो पर सम्पन्न की जाने वाली विभिन्न गतिविधियों को उत्कृष्ट बनाने एवं गुणवत्तापूर्ण सेवा प्रदान से है। इसका उद्देश्य ग्रंथालयी व्यवसासियों को तीव्रता, सही सूचना प्रदान करना, प्रभावी तरीके सेवा प्रदान करना एवं मानव श्रम के दोहराव में बचत करना, कार्य की पुनरावृत्ति को रोकना है।

ग्रंथालय स्वचालन की आवश्यकता – ग्रंथालय स्वचालन का प्रथम एवं महत्वपूर्ण आवश्यकता है Bibliography control करना और दूसरी आवश्यकता है ग्रंथालय कार्य को अविलंब, सही एवं प्रभावी तरीके से करना। सूचना क्रांति की वजह से ग्रंथालयों में साहित्य अबाध गति से आ रहा है, जिसको व्यवस्थित तरीके पाठकों की आवश्यकतानुसार सेल्फ पर पहुंचाना डिजिटाइजेशन करना एवं ग्रंथालय के सदस्यों को उनके मेल पर एवं पंहुच तक प्रदाय करना । कम्प्यूटर एवं मोबाइल फोन की मदद से डाटा को गुणवत्तापूर्ण तरीके से एवं संख्यात्मक रूप से विशेष कर ऑन लाईन तकनीक से सेवा प्रदाय कर आटोमेशन की उपयोगिता सिद्ध करता है।

सारांश–ग्रंथालय के स्वचालन में सबसे बड़ी समस्या बजट की आती हैं। बजट के अभाव में स्वचालन का कार्य प्रभावित होता है। दूसरी समस्या आती है प्रशिक्षित स्टॉफ की प्रशिक्षित स्टॉफ के अभाव में कार्य में विलंब होता है और ग्रंथालय के उपयोगकर्ता ग्रंथालय के साहित्य का उपयोग नहीं पाते।तीसरी समस्या साधनों की कमी आती है। उपरोक्त समस्याओं का निराकरण कर ग्रंथालय सेवा के स्वचालन पद्धति को सफलता पूर्वक सेवायें प्रदान की जा सकती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. ई–सूचना:स्रोत एवं सेवाऐं, शर्मा, अरविंद कुमार
2. ग्रंथालय एवं सूचना विज्ञान:यूजीसी/नेट, सी.लाल
3. आधुनिक पुस्तकालय: राधिका गोस्वामी
4. Anals of library and information studies,vl.54;sept.

****

शाला के विकास में शाला प्रबंधन समिति की भूमिका

बालेन्द्र श्रीवास्तव * डॉ. एम.के. तिवारी **

प्रस्तावना – 'स्कूल विजन के अंतर्गत शाला विकास योजना निर्माण में शाला प्रबंधन समिति की भूमिका का अध्ययन करना'

1. **सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि –** शाला एक महत्वपूर्ण स्थान है जहा देश के भावी नागरिक ढाले जाते हैं। प्रजातंत्र में जो कुछ किया जाता है समुदाय के निर्णय से किया जाता है लेकिन परम्परा यह रही है कि विद्यालय में संसाधन नहीं संचालन के निर्देश भी ऊपर से प्राप्त होते हैं। इसमें समुदाय की भागीदारी कम होती है। विद्यालय हमारा एक लघुकृत समाज है इस सोच से एक नवाचार बना – शिक्षक, समुदाय और बच्चों की साझेदारी वाला स्कूल।

यह नवाचारी योजना सर्वप्रथम प्रयोग के रूप में होशंगाबाद एवं बैतूल जिले के चयनीत विद्यालयों में प्रारम्भ की गई इसके बाद मध्यप्रदेश के शेष 50 जिलों के एक विकासखण्ड के एक जनशिक्षा केन्द्र के सभी प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालयों में प्रारम्भ की गई इसे **'हमारी शाला कैसी हो '** नाम दिया गया इसमें खास बात यह है कि शिक्षक बच्चों व समुदाय की इच्छा और आकांक्षाओं के अनुरूप शाला के विकास का मार्ग प्रसस्त होता है।

विकास की यह योजना उन सभी विद्यालयों में बनाई गई जहॉ इस योजना को लागू किया गया। योजना को बनाने में विभिन्न घटकों – शिक्षक समुदाय व बच्चों से विस्तृत चर्चा की गई तथा उनकी संकल्पनाओं को महत्व दिया गया। स्कूल विज़न की यह योजना सार्थक स्वरूप में शाला विकास योजना में देखी गई। यह आवश्यक था कि इनमें शाला प्रबंधन समिति की भूमिका महत्वपूर्ण हो। उनकी भूमिका को जानना ही शोध की सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि है।

'वर्तमान में शालाओं की जो स्थिति दिखाई देती है उसमें विद्यालय के प्रति स्थानीय समुदाय में अपनत्व की कमी परिलक्षित होती है। शिक्षक पालक एवं बच्चों का विद्यालय के प्रति लगाव , समर्पण एवं अपनत्व की कमी को दूर करने हेतु यह अवधारणा हमारे समक्ष आई है। इसमें छात्र, पालक,शिक्षक एवं समुदाय आपस में बैठकर अपनी शाला के वर्तमान उपलब्ध संसाधनो की उपलब्धता, रखरखाव एवं उसकी कमियों तथा वे अपनी शाला का स्वरूप कैसा बनाना चाहते है।'

1. **अध्ययन के उद्देश्य –**

1. शाला विकास योजना निर्माण में शाला प्रबंधन समिति की भूमिका का अध्ययनकरना।
2. शाला विकास योजना निर्माण के संज्ञानात्मक आयाम में शाला प्रबंधन समिति के सदस्यों की भूमिका का अध्ययन करना।
3. शाला विकास योजना निर्माण के सामाजिक आयाम में शाला प्रबंधन समिति के सदस्यों की भूमिका का अध्ययन करना।
4. शाला विकास योजना निर्माण के संस्थागत आयाम में शाला प्रबंधन समिति के सदस्यों की भूमिका का अध्ययन करना।
5. शाला विकास योजना निर्माण के भौतिक आयाम में शाला प्रबंधन समिति के सदस्यों की भूमिका का अध्ययन करना।
6. शाला विकास योजना निर्माण में डाइट,डीपीसी,बीआरसी एवं जनशिक्षा केन्द्र की सहभागिता का अध्ययन।
7. शाला विकास योजना निर्माण के माप दण्डों से वास्तविक निर्मित योजना की तुलना करना।

2. शोध प्रविधि– सर्वेक्षणात्मक

न्यादर्श एवं उसके चयन का आधार – स्कूल विज़न अंतर्गत शाला विकास योजना निर्माण में शाला प्रबंधन समिति की भूमिका के अध्ययन हेतु शाजापुर जिले के नलखेडा विकासखण्ड के धरोला जनशिक्षा केन्द्र की समस्त प्राथमिक एवं माध्यमिक शालाओं में यह योजना लागू की थी। प्रस्तुत शोध इन समस्त 10 प्राथमिक एवं 02 माध्यमिक इस प्रकार कुल 12 शालाओं का चयन किया गया।

3. प्रदत्तों का प्रकार – दो प्रकार की प्रश्नावली 1. शाला के शिक्षकों हेतु एवं 2. शाला प्रबंधन समिति के सदस्यों हेतु।

4. उद्देश्यवार विश्लेषण –

उद्देश्य क्रमांक –1 – शाला विकास योजना निर्माण में शाला प्रबंधन समिति की भूमिका का अध्ययनकरना।

विद्यालय के शिक्षकों का 75 प्रतिशत अभिमत इस बात के लिये है कि शाला विकास योजना निर्माण में शाला प्रबंधन समिति की भूमिका सकारात्मक होती है। विद्यालय के शाला प्रबंधन समिति के सदस्यों का 75 प्रतिशत अभिमत इस बात से है कि शाला विकास योजना निर्माण में शाला प्रबंधन समिति की भूमिका सकारात्मक होती है।

उद्देश्य क्रमांक–2 – शाला विकास योजना निर्माण में संज्ञानात्मक आयाम में शाला प्रबंधन समिति के सदस्यों की भूमिका का अध्ययनकरना। विद्यालय के शिक्षकों का 69 प्रतिशत अभिमत इस बात के लिये है कि शाला प्रबंधन समिति संज्ञानात्मक आयाम को प्रभावित नहीं करती है।

शाला प्रबंधन समिति के सदस्यों का 89 प्रतिशत अभिमत इस बात से है कि शाला विकास योजना निर्माण में शाला प्रबंधन समिति की भूमिका संज्ञानात्मक आयाम को बढ़ाने में मददगार रहता है।

उद्देश्य क्रमांक – 3 – शाला विकास योजना निर्माण में सामाजिक आयाम में शाला प्रबंधन समिति के सदस्यों की भूमिका का अध्ययन करना। विद्यालय के शिक्षकों का 69 प्रतिशत अभिमत इस बात के लिये है कि शाला प्रबंधन समिति सामाजिक आयाम को प्रभावित नहीं करती है।

शाला प्रबंधन समिति के सदस्यों का 83 प्रतिशत अभिमत इस बात से है कि शाला विकास योजना निर्माण में शाला प्रबंधन समिति की भूमिका

* प्राध्यापक, डाईट शाजापुर पहेर विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.) भारत
** प्राचार्य, मेवाड़ कन्या शिक्षा महाविद्यालय, चित्तौडगढ़ (राज.) भारत

सामाजिक आयाम को बढाने में मदद्गार रहता है।

उद्देश्य क्रमांक–4 – शाला विकास योजना निर्माण में संस्थागत आयाम में शाला प्रबंधन समिति के सदस्यों की भूमिका का अध्ययन करना। विद्यालय के शिक्षकों का 69 प्रतिशत अभिमत इस बात के लिये है कि शाला प्रबंधन समिति संस्थागत आयाम को प्रभावित नहीं करती है।

शाला प्रबंधन समिति के सदस्यों का 74 प्रतिशत अभिमत इस बात से है कि शाला विकास योजना निर्माण में शाला प्रबंधन समिति की भूमिका संस्थागत आयाम को बढाने में मदद्गार रहता है।

उद्देश्य क्रमांक–5 – शाला विकास योजना निर्माण में भौतिक आयाम में शाला प्रबंधन समिति के सदस्यों की भूमिका का अध्ययन करना। विद्यालय के शिक्षकों का 69 प्रतिशत अभिमत इस बात के लिये है कि शाला प्रबंधन समिति भौतिक आयाम को प्रभावित नहीं करती है।

शाला प्रबंधन समिति के सदस्यों का 74 प्रतिशत अभिमत इस बात से है कि शाला विकास योजना निर्माण में शाला प्रबंधन समिति की भूमिका भौतिक आयाम को बढ़ाने में मदद्गार रहता है।

उद्देश्य क्रमांक–6 –शाला विकास योजना निर्माण में डाइट, डीपीसी, बीआरसी एवं जनशिक्षा केन्द्र की सहभागिता का अध्ययनकरना।शिक्षकों के अभिमत में शाला विकास योजना निर्माण में डाइट, डीपीसी,बीआरसी एवं जनशिक्षा केन्द्र की सहभागिता 69 प्रतिशत है ।

अत: योजना निर्माण में इन सब की सहभागिता अच्छी रही।

शाला प्रबंधन समिति के सदस्य के अभिमत में शाला विकास योजना निर्माण में डाइट, डीपीसी,बीआरसी एवं जनशिक्षा केन्द्र की सहभागिता 45 प्रतिशत है । अत: योजना निर्माण में इन सब की सहभागिता अच्छी रही।

उद्देश्य क्रमांक–7 – शाला विकास योजना निर्माण के मापदण्डों से वास्तविक निर्मित योजना की तुलना करना । शिक्षकों के अभिमत में शाला विकास योजना निर्माण के मापदण्डों से वास्तविक निर्मित योजना 45 प्रतिशत का समावेश है । अत: मानदण्डों एवं वास्तविक निर्मित योजना में भारी अंतर नहीं रहा ।

शाला प्रबंधन समिति के सदस्य के अभिमत में शाला विकास योजना निर्माण के मापदडों से वास्तविक निर्मित योजना में 69 प्रतिशत बातों का समावेश है । इस प्रकार वास्तविक निर्मित योजना निर्धारित मापदण्डों के अनुसार ही बनी मानी जानी चाहिये।

निष्कर्ष– हमारी शाला कैसी हो ? के अंतर्गत जो शाला विकास योजना बनाई गई थी उसके निर्माण प्रावधान एवं प्रभावों का व्यापक दृष्टि से अवलोकन किया जाये तो एक ही बिन्दु पर, शिक्षक एवं प्रबंधन समिति के सदस्यों को दो समूह के अभिमत हमारे सामने–सामने आते है जो अभिमत लगभग एक जैसे है। अभिमतो में प्रतिशत का अंतर है लेकिन दोनों के अभिमत लगभग एक ही तरफ है जो सकारात्मक है।

'हमारी शाला कैसी होय' ? के अंतर्गत जो शाला विकास की जो योजना बनाई गई थी उसमें संज्ञानात्मक सामाजिक संस्थागत एवं भैतिक इन चार आयामों का समावेश किया गया था। शिक्षकों एवं शाला प्रबंधन समिति के सदस्यों के अनुसार इन चारों आयामों में प्रबंधन समिति अच्छा काम करती है तथा प्रबंधन समिति की भूमिका नकारात्मक नहीं है।

हमारी शाला कैसी हो ? के अंतर्गत जो शाला विकास योजना बनाई गई उसमें डाइट,डीपीसी,बीआरसी.एवं जनशिक्षा केन्द्र की जिस तरह की भूमिका रहना थी , रही है। इन संस्थाओं ने इसमें अच्छी सहभागिता की खास तौर पर डाइट एवं जनशिक्षा केन्द्रों ने की।

शाला विकास योजना निर्माण में पहले से निर्धारित मापदण्डों एवं वास्तविक निर्मित योजना में ज्यादा अंतर नहीं है। अत: निर्मित योजनाओं को निर्धारित मापदण्डों के अनुसार ही माना जा सकता है।

प्रस्तुत शोध के क्षेत्र के सुझाव – शाला प्रबंधन समिति के सदस्य बैठक में आते है तो उस दिन उनके व्यवसाय या कार्य का हर्जा होता है। अत: बैठक में भाग लेने के दिन उन्हें दो सो रूपये की राशि दी जाय ताकि वो उत्साह से समिति की बैठक में उपस्थित हों।

शाला प्रबंधन समिति के सदस्यों के कार्यो और विचारों को समाचार पत्रों के माध्यम से प्रकाशित भी किया जाये ताकि सदस्यों को इस बात का एहसास हो कि वे महत्वपूर्ण है।

मॉनिटरिंग के दौरान शाला विकास समिति की बैठक विवरण को अनिवार्य रूप से देखा जाये और उस पर टीप अंकित की जाये ताकि बैठकों में निरन्तरता आये।

शाला प्रबंधन समिति के सदस्यों को विद्यालय के प्रत्येक कार्य में आमंत्रित किया जाये और उन्हें नियमित रूप से सूचित भी किया जाये।

प्रस्तुत शोध क्षेत्र भावी संभावनाएँ–

'हमारी शाला कैसी हो ?' की शाला विकास योजना छात्र शिक्षक एवं समुदाय से सम्पर्क कर उनकी भावनाओं के अनुरूप बनाई गई यह कार्य प्रधानाध्यापक और अध्यापकों के धैर्य एवं पूर्व समझ पर आधारित था । शाला प्रबंधन समिति की सक्रियता पर भी संदेह रहा है कि इसकी बैठके वास्तव में नही होकर औपचारिक भर हो जाती हैं।

शाला प्रबंधन समिति का कार्य क्षेत्र या अधिकार क्षेत्र किस प्रकार बढ़ाया जिससे कि विद्यालय की शाला प्रबंधन समिति सक्रियता बढ़ सके इस क्षेत्र मे भी भावी शोध सम्भव है।

संदर्भ ग्रंथ की सूची :–

1. शिक्षक मार्गदर्शिका 'हमारी शाला कैसी हो ?'

****

शिक्षक शिक्षा में गिजुभाई बधेका के शैक्षिक चिन्तन की प्रासंगिकता

प्रमोद कुमार सेठिया * डॉ. महेश कुमार तिवारी **

शोध सारांश – गुणवत्तापूर्ण प्रारंभिक शिक्षा हेतु वर्तमान में विभिन्न प्रयास किये जा रहे हैं। प्रारंभिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण को साकार करने हेतु शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 एवं राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 में अनुशंसा की गई है। प्रारंभिक स्तर पर बच्चों की शिक्षा हेतु विभिन्न भारतीय एवं विदेषी शिक्षाविदों ने अपने विचार, शैक्षिक दर्शन दिया है, इनमें गिजुभाई बधेका का बाल केन्द्रित शिक्षा का चिंतन महत्वपूर्ण है। शिक्षक शिक्षा पाठ्यक्रमों में गिजुभाई बधेका के शैक्षिक चिंतन व 'दिवास्वप्न' के प्रयोगों को इन्टर्नशिप के दौरान शालाओं में छात्राध्यापकों द्वारा क्रियान्वित किया गया एवं उत्साहजनक निष्कर्ष प्राप्त हुए। गिजुभाई का शैक्षिक चिंतन शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र में बाल केन्द्रित शिक्षा को आत्मसात करने एवं RTE-2009 व NCF-2005 की अनुशंसाओं को साकार करने हेतु प्रासंगिक है।

'अपने शिक्षक भाई-बहनों से इस वक्त तो मैं इतना ही कहूँगा कि जब से दुनिया बनी है, तब से लेकर अब तक इसका उत्थान-पतन मात्र शिक्षकों पर ही निर्भर रहा है।' 'जब-जब शिक्षक अपने पवित्र काम के प्रति वफादार रहे हैं, तब-तब दुनिया आगे बढ़ी है और जब-जब बेवफा बने हैं, तब-तब दुनिया पीछे हटी है।' **– गिजुभाई बधेका**

प्रस्तावना – बच्चों की नि:शुल्क शिक्षा एवं अनिवार्य शिक्षा अधिनियम RTE-2009 की धारा-24 व 29 में शिक्षकों के कर्त्तव्य एवं उत्तरदायित्व उल्लेखित हैं। इन कर्त्तव्यों व उत्तरदायित्वों के अन्तर्गत (1) सम्पूर्ण पाठ्यक्रम को विनिर्दिष्ट समय में पूरा करना (2) बालक के शिक्षा ग्रहण करने की सामर्थ्य के अनुरूप शिक्षण व्यवस्था (3) माता-पिता को बच्चों की प्रगति से अवगत कराना (4) बच्चे का सर्वांगीण विकास, ज्ञान, अन्त:शक्ति, योग्यता का पूर्ण विकास (5) बाल केन्द्रित क्रियाकलापों एवं खेल विधि द्वारा शिक्षण (6) बालकों को भयमुक्त वातावरण में शिक्षा देना, निर्धारित किया गया है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 में बच्चे के बस्ते के बोझ को कम करना, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुनिश्चित करना, ज्ञान निर्माण में रचनात्मकता व सहभागिता को बढ़ावा देना, प्रयोगात्मक सहयोग द्वारा सक्रिय शिक्षण, बच्चों की सोच व जिज्ञासा को बढ़ावा देना, रटने की प्रवृत्ति को कम करना, परीक्षा प्रणाली में बदलाव व लचीला बनाने जैसी अनुशंसा की गई है। RTE-2009 व NCF-2005 की अनुशंसाओं को विद्यालय तक साकार करने एवं क्रियान्वित करने में गिजुभाई बधेका का बालकेन्द्रित शिक्षण का चिन्तन वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिक है।

प्रत्यात्मक आधार – मॉन्टेसरी बाल शिक्षण समिति, राजलदेसर चुरू द्वारा प्रकाशित साहित्य अन्तर्गत गुजरात के महान् बाल शिक्षाविद्, सृजनशील एवं प्रयोगनिष्ठ शिक्षक गिजुभाई के जब ये उद्‌गार पढ़ता हूँ तो वर्तमान शिक्षा व्यवस्था मेरी आँखों के सामने छुप जाती है। वास्तव में आज से लगभग 85 वर्ष पूर्व अपनी महत्वपूर्ण कृति दिवास्वप्न में गिजुभाई ने बाल शिक्षण के संबंध में जो प्रयोग प्रस्तुत किये वे आज भी प्रासंगिक दिखते हैं। एक सामान्य से सरकारी स्कूल में गिजुभाई ने जो नवाचार प्रारंभ किया था, वही तो आज की बाल केन्द्रित शिक्षा है, वही आनन्ददायी व गतिविधि आधारित शिक्षा है और उसी के अन्दर से प्रकट होते हैं सीखने एवं सिखाने के वे तत्व जिन्हें जिज्ञासा, प्रश्न या तर्क, विश्लेषण, विवेचन, वर्गीकरण, तुलना और निष्कर्ष आदि कहा जाता है। शिक्षा ज्ञान का मात्र अक्षरीकरण नहीं है अपितु शिक्षा परिवर्तन की सबसे प्रभावशाली प्रक्रिया है।

गिजुभाई ने स्कूल के तत्कालीन रूपक को उसकी जड़ता और गतिहीनता से मुक्त किया। प्राथमिक शिक्षा में आनन्द की नई वर्णमाला रची, बाल-गौरव की नई प्रणाली रची, शिक्षा का नया इतिहास रचा, नया बाल मनोविज्ञान रचा और शैक्षिक नवाचारों की वह दिशा व दृष्टि रची जो आज भी प्रासंगिक व सार्थक है।

दिवास्वप्न गिजुभाई की गीता है। प्राथमिक शालाओं में बाल-केन्द्रित, सामूहिक भागीदारी अन्त:क्रिया व स्वशिक्षण की प्रथम नवाचार पुस्तक है। गिजुभाई बधेका ने शिक्षा के क्षेत्र में जो प्रयोग करने चाहे, उन्हें बड़ी ही रोचकता के साथ दिवास्वप्न नामक कहानी में उतार दिया है। इस पुस्तक को पढ़ने के दौरान ऐसा लगता है मानो हम मास्टर लक्ष्मीशंकर के पात्र को जी रहे हैं। इस कहानी से भविष्य में बनने वाले शिक्षकों एवं वर्तमान में कार्यरत शिक्षकों को पढ़ाने के नये आयाम प्राप्त होते हैं। उन्होंने प्रयोग स्वरूप चौथी कक्षा एक वर्ष के लिये पढ़ाने की जिम्मेदारी ली। इस एक वर्ष के दौरान उन्होंने ऐसे-ऐसे अद्‌भूत प्रयोग किये जो आज के इस विकसित दौर में भी हैरत में डाल देते हैं। ऐसा कभी न सोचा था कि भूगोल, इतिहास, व्याकरण इत्यादि नीरस लगने वाले विषय भी इतने आकर्षक व रोचक ढंग से प्रस्तुत किये जा सकते हैं। इस कहानी के अध्ययन के दौरान दो प्रमुख तथ्य परिलक्षित हुए –

- उन्होंने अपने प्रत्येक प्रयोग में बच्चों की भरपूर भागीदारी ली अर्थात् बाल केन्द्रियता।
- बच्चों को स्वयं सीखने, क्रियाएँ करने, संवाद करने, खेलने में स्वाधीनता व शिक्षकीय हस्तक्षेपों से स्वतंत्रता।

'दिवास्वप्न' पर आधारित गतिविधियों का क्रियान्वयन (शोध व्याख्या) – लगभग चार वर्ष पूर्व राज्य शिक्षा केन्द्र के प्रतिनिधि डाइट मन्दसौर पधारे। चर्चा के दौरान उन्होंने डाइट स्तर पर किये जा रहे नवाचारों के बारे में जिज्ञासा रखी। मेरे द्वारा दिवास्वप्न पुस्तक को डी.एड. कक्षा में पढ़ाये जाने एवं इन्टर्नशिप की शालाओं में छोटे-छोटे प्रयोग करने के बारे में बताया गया। कुछ ही दिनों बाद राज्य शिक्षा केन्द्र द्वारा प्रदेश के सभी शिक्षकों को **शिक्षक दिवस** पर दिवास्वप्न की प्रति उपलब्ध करवाई गई। विगत चार वर्षों से डी.एड. प्रशिक्षण हेतु आने वाले सभी शिक्षकों द्वारा दिवास्वप्न पुस्तक का कक्षा में वाचन किया जाता है एवं प्रयोगों पर चर्चा कर वर्तमान में प्रचलित नवाचारी गतिविधियों से सम्बन्ध जोड़ा जाता है। जब ये प्रशिक्षु शिक्षक इन्टर्नशिप के दौरान शालाओं में जाते हैं तो इन्हें दिवास्वप्न आधारित

* वरिष्ठ व्याख्याता, डाइट, मन्दसौर (म.प्र.) भारत
** प्राचार्य, मेवाड़ गर्ल्स कॉलेज ऑफ टीचर्स ट्रेनिंग, चित्तौड़गढ़ (राजस्थान) भारत

असाइनमेंट भी दिया जाता है। असाइनमेंट कुछ इस तरह से होता है –

1. दिवास्वप्न में मास्टर लक्ष्मीशंकर द्वारा कक्षा में कौन–कौन से प्रयोग किये गये? इन प्रयोगों में से आपने अपनी इन्टर्नशिप शाला में कौन से प्रयोग किये ? इनका अपने शब्दों में वर्णन कीजिये।
2. दिवास्वप्न के प्रयोगों का तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था, शाला संरचना और वातावरण पर क्या प्रभाव पड़ा? इस पुस्तक का शैक्षिक दृष्टि से महत्व बताइये?
3. दिवास्वप्न पुस्तक के माध्यम से प्राथमिक शिक्षा शिक्षण की कौन–कौन सी शिक्षण–पद्धतियाँ स्पष्ट होती हैं ? नाम लिखिये।
4. इन्टर्नशिप के दौरान शाला में आपके द्वारा किये प्रयोगों का सप्रमाण प्रतिवेदन।

छात्राध्यापकों द्वारा इन्टर्नशिप की शालाओं में जो नवाचार/शैक्षिक गतिविधियाँ की गई वे इस प्रकार हैं–

(A) **शाला के वातावरण व व्यवस्था सुधार सम्बन्धी :**

- बच्चों का मित्र बनना, उनके साथ मित्रतापूर्ण व्यवहार करना, तत्पश्चात् उनकी आवश्यकताओं को जानना। बच्चों की सीखने के प्रति जिज्ञासा पैदा करना।
- कुछ छात्राध्यापकों द्वारा बच्चों की व्यक्तिगत सफाई, नाखुन काटना, हाथ धुलाई जैसे कार्य किये गये।
- छात्राध्यापकों द्वारा विद्यालय में बच्चों के सतत् मूल्यांकन कार्य में सहयोग किया। बच्चों के सीखने के अभिलेख, पोर्टफोलियो, एनाक्डॉटेल रेकार्ड अद्यतन किया गया।
- कुछ छात्राध्यापकों ने बच्चों को प्रार्थना, राष्ट्रगान, राष्ट्रगीत का सस्वर गायन का अभ्यास करवाया।
- शाला के परिसर को स्वच्छ बनाना व बागवानी करना।
- दो शिक्षकीय शाला में खेल व बालकेन्द्रित तरीके से शिक्षण।
- समुदाय के व्यक्तियों से सम्पर्क एवं बच्चों की अधिगम उपलब्धि में सुधार।

(B) **बालकेन्द्रित शिक्षण सम्बन्धी :**

- बच्चों को हावभाव के साथ कहानी सुनाना/इसके माध्यम से कक्षा अनुशासन स्थापित करना।
- बच्चों को समझ के साथ पढ़ाना एवं रटने से मुक्ति।
- बच्चों की सृजनशीलता बढ़ाने हेतु सृजनात्मक कार्यों में सहयोग।
- बालगीत सुनाना। सभी छात्राध्यापकों ने मिलकर एक बालगीतों का संकलन बनाया जिसे वे अपने विद्यालय तक ले गये।
- छात्राध्यापकों द्वारा विद्यालय में खेल गतिविधियाँ की गई। ए.बी.एल. अन्तर्गत कक्षा के बाहर खेल में भी बच्चों के साथ सहभागिता की। परम्परागत व स्थानीय खेलों को खिलवाया गया।
- छात्राध्यापकों द्वारा विद्यालय में कम लागत सहायक सामग्री का निर्माण कर बच्चों की अधिगम उपलब्धि में वृद्धि का प्रयास किया।
- छात्राध्यापकों द्वारा विभिन्न गतिविधियों के माध्यम से भाषा व गणित की मूलभूत दक्षताओं का बच्चों में विकास किया गया।
- कुछ छात्राध्यापकों द्वारा मिट्टी के खिलौने बनाकर आसपास के पर्यावरण का भ्रमण करवाकर प्रकृति से जोड़ने का प्रयास किया गया।
- छात्राध्यापकों द्वारा हिन्दी में बच्चों को सुलेख, श्रुतलेख की गतिविधियाँ करवाई गई।

निष्कर्ष – प्रशिक्षु शिक्षकों की इन गतिविधियों द्वारा गिजुभाई की पुस्तक दिवास्वप्न के प्रयोगों को कक्षा व विद्यालय में व्यवहार में लाने एवं आत्मसात करने का प्रयास किया गया। डाइट, मन्दसौर में दिवास्वप्न का वाचन एवं चर्चा करना तथा इन्टर्नशिप की शालाओं में प्रयोग करना निरन्तर जारी है।

गिजुभाई के शब्दों में –

यूँ बैठे–बैठे बातें करने से तो हम आगे नहीं बढ़ सकेंगे।
यूँ बैठे–बैठे निंदा करने से तो हम आगे नहीं बढ़ सकेंगे।
यूँ पड़े–पड़े सपने देखने से तो हम आगे नहीं बढ़ सकेंगे।
यूँ रोते–रोते ईश्वर से याचना करने से तो हम आगे नहीं बढ़ सकेंगे।
आगे बढ़ना है तो उठो, मेहनत करो और जब तक वांछित लक्ष्य तक न पहुँच जाओ, तब तक काम करते रहो।
साधना का पहला अंग कर्म है, पहले उसी को साधो !

दिवास्वप्न का भविष्य –

प्राथमिक शिक्षा को डरमुक्त, रूचिपूर्ण, आनन्ददायी, क्षमता आधारित व परीक्षा मुक्त बनाने का पहला समग्र प्रयास एकमात्र किसी भारतीय शिक्षाविद् ने किया तो वे गिजुभाई ही थे।

''दिवास्वप्न का हिन्दी अनुवाद हर एक प्राथमिक शिक्षक के हाथ में पहुँचे तो शायद कल सुबह कुछ शिक्षक यह सोचना शुरू करेंगे कि वे मास्टर लक्ष्मीशंकर की तरह अपने शिक्षण में एक नई शुरूआत क्यों नहीं कर सकते।''

– कृष्ण कुमार

गिजुभाई के प्रयोग दिवास्वप्न से अवश्य प्रारंभ हुए, किन्तु दिवास्वप्न में उनका अन्त नहीं हुआ। गिजुभाई की अन्य 15 पुस्तकों में प्राथमिक शिक्षा में शिक्षण का एक समग्र शिक्षा शास्त्र प्रकट होता है। ये पुस्तकें मात्र पुस्तकें न होकर प्रयोगों की पथप्रदर्शक हैं। इनमें शिक्षण प्रशिक्षण व बालकेन्द्रित शिक्षण की विपुल सम्भावनाएँ हैं एवं ये शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के क्रियान्वयन व राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 की अनुशंसाओं को पूर्ण करने हेतु प्रासंगिक हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. 'बधेका गिजुभाई' 2006, 'दिवास्वप्न', मान्टेसरी बाल शिक्षण समिति, राजलदेसर (चुरू)
2. 'बधेका गिजुभाई' 2006, 'प्राथमिक शाला में शिक्षा पद्धतियाँ', , मान्टेसरी बाल शिक्षण समिति, राजलदेसर (चुरू)
3. 'बधेका गिजुभाई' 2006, 'प्राथमिक शाला में शिक्षक' , मान्टेसरी बाल शिक्षण समिति, राजलदेसर (चुरू)
4. 'बधेका गिजुभाई' 2006, 'कथा कहानी का शास्त्र', मान्टेसरी बाल शिक्षण समिति, राजलदेसर (चुरू)
5. 'बधेका गिजुभाइ' 2009, 'शिक्षक हो तो', मान्टेसरी बाल शिक्षण समिति, राजलदेसर (चुरू)
6. 'बधेका गिजुभाई' 2009, 'प्राथमिक शाला में चिट्ठी वाचन' , मान्टेसरी बाल शिक्षण समिति, राजलदेसर (चुरू)
7. 'बधेका गिजुभाई' 2009, 'मांटेसरी पद्धति भाग–1 व 2', मान्टेसरी बाल शिक्षण समिति, राजलदेसर (चुरू)
8. 'बधेका गिजुभाई', 2009, 'प्राथमिक शिक्षा में कला–कारीगरी की शिक्षा भाग–1 व 2', मान्टेसरी बाल शिक्षण समिति, राजलदेसर (चुरू)
9. 'बधेका गिजुभाई 2012, 'प्राथमिक शाला में भाषा शिक्षा' , मान्टेसरी बाल शिक्षण समिति, राजलदेसर (चुरू)
10. 'बधेका गिजुभाई' 2012,'बाल शिक्षण जैसे मैं समझ पाया' , मान्टेसरी बाल शिक्षण समिति, राजलदेसर (चुरू)
11. 'दवे रमेश' 1999, 'गजुभाई बधेका के शैक्षिक विचार और प्रयोग' , राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद्, नईदिल्ली।
12. 'पलाश' दिसम्बर, 1994–जनवरी, 1995 अंक।
13. 'कुमार कृष्ण' , 2011,'दीवार का इस्तेमाल और अन्य लेख', एकलव्य, भोपाल

A comparative study of anxiety between district level urban and rural cricketers of Rajasthan

Dr. Seema Grujar * Dilip Kumar Sharma **

Abstract - In order to understand the level of anxiety among district level urban and rural cricketers of Rajasthan a comparative study between urban cricketers and rural cricketers was conducted at Jaipur, Ajmer and Udaipur. 90 male cricketers between age group of 16-18 years were selected. Their anxiety level was judged through Hamilton Anxiety Test. Z test was used to judge the level of significance at 5 % level. Significant difference was found between anxiety level of district level urban and rural cricketers. Level of anxiety was significantly higher in district level urban cricketers.
Key Words - district level cricketers, Urban cricketers, Rural cricketers and Anxiety.

Introduction - Anxiety is a normal human emotion that everyone experiences at times. Many people feel anxious, or nervous, when faced with a problem at work, before taking a test, or making an important decision. Anxiety disorders, however, are different. They can cause such a high distress that a person can't lead a normal life.

An anxiety disorder is a serious mental illness. For people with anxiety disorders, worry and fear are constant and overwhelming, and can be crippling.

Experiencing occasional anxiety is a normal but people with anxiety disorders frequently have intense, excessive and persistent worry and fear about everyday situations.

Anxiety & cricketers - Cricket is becoming more and more competitive sport day by day. Cricketers practice hard to perform well even at the district level. There is always a pressure on them to score more runs, taking more wickets or fielding well. This pressure creates anxiety among cricketers. In rural and urban areas the anxiety level is same or different; where it is lower or higher the research study was made.

Sample - 15 cricketers belonging to urban area of Ajmer, Jaipur & Udaipur and 15 cricketers belonging to rural area of Ajmer, Jaipur & Udaipur were selected from the schools randomly for the study of anxiety level.

Table - 1

Place	Urban Cricketers	Rural Cricketers	Total
Ajmer	15	15	30
Jaipur	15	15	30
Udaipur	15	15	30
Total	**45**	**45**	**90**

Hypothesis -

H1 Level of anxiety in urban and rural cricketers is very low.

H2 There is no significant difference in level of anxiety between district level urban and rural cricketers.

Research Findings -

1. Anxiety exists in both urban and rural cricketers. As revealed by the table-2; 35.56% rural cricketers were normal at anxiety level while just 13.33% urban cricketers were normal at anxiety level.

In all 53.33% cricketers were having mild to moderate anxiety. 22.22% cricketers were having severe anxiety. The facts clearly show that level of anxiety in urban and rural cricketers is quite high so the first hypothesis is rejected. Chart 1 also reflects that anxiety level exists in all cricketers though it is lower in cricketers belonging to rural areas.

Table - 2 : Anxiety level among urban & rural cricketers of district level

Hamilton Anxiety score & level of depression	Anxiety	
	Urban Cricketers	Rural Cricketers
0-17: Normal	6	16
18-24: Mild Anxiety	8	10
25-29: Moderate anxiety	18	12
30 +: Severe anxiety	13	7

Chart – 1 : Comparative Anxiety level among urban & rural cricketers of district level

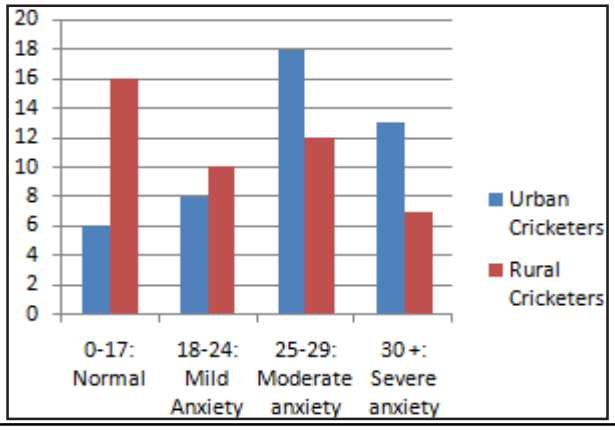

* Assistant Professor (Physical Education) Pacific University, Udaipur (Raj.) INDIA
** Research Scholar (Physical Education) Pacific University, Udaipur (Raj.) INDIA

2. To understand the significance of difference in level of anxiety between district level urban and rural cricketers in a more scientific & specific manner Z test was made on the collected data.

Since the calculated value of |Z| = 4.2317 is greater than table value of |Z| = 1.96, at 5% level the difference is significant.

There is significant difference in level of anxiety between district level urban and rural cricketers. Hence second hypothesis, there is no significant difference in level of anxiety between district level urban and rural cricketers; is absolutely rejected.

Table – 3 : Z test of Anxiety level among district level urban and rural cricketers

	Urban Cricketers	Rural Cricketers
Sample Size	45	45
Mean	28	19.82
Standard Deviation	10.2186	7.97705
P Value (Z test)	4.2317	

Conclusion -

1. Among 68.89% district level urban cricketers anxiety level is between moderate to severe.
2. Among 42.22% district level rural cricketers anxiety level is between moderate to severe.
3. Though there is a significant difference in level of anxiety between urban and rural cricketers, sincere efforts are required to maintain it at normal level.

References :-

1. Beaudoin D, Swartz TB. The best batsmen and bowlers in one-day cricket. South African Statistical Journal 2003; 37: 203–22.
2. Bijay Krishna Ray, "Comparision of physical fitness of tribal and urban students in Tripura", Master thesis, Jiwaji University, Gwalior.
3. Clarke SR. Dynamic programming in one-day cricket—optimal scoring rates. Journal of the Operational Research Society 1988; 39(4):331–7.
4. Preston I, Thomas J. Batting strategy in limited overs cricket. The Statistician 2000; 49(1):95–106.
5. Kimber AC, Hansford AR. A statistical analysis of batting in cricket. Journal of the Royal Statistical Society, Series A 1993; 156:443–55.

****

Medical Negligence : The Role of Indian Judiciary

Dr. Binayak Patnaik *

Abstract - The Paper, at the outset, gives a brief idea about medical negligence – Primarily focuses on role of judiciary in medical negligence cases including the Supreme Court decisions- highlights on "Bolam Test" – briefly concludes that there is a mark of influence of foreign judgments on Supreme Court of India.

Introduction - Public awareness of medical negligence in India is growing. Hospital managements are increasingly facing complaints regarding the facilities, standards of professional competence, and the appropriateness of their therapeutic and diagnostic methods. After the Consumer Protection Act, 1986, has come into force some patients have filed legal cases against doctors, have established that the doctors were negligent in their medical service, and have claimed and received compensation. As a result, a number of legal decisions have been made on what constitutes negligence and what is required to prove it.

Indian Civil law and Doctors' negligence in India - Negligence is the breach of a legal duty to care. It means carelessness in a matter in which the law mandates carefulness. A breach of this duty gives a patient the right to initiate action against negligence.

Persons who offer medical advice and treatment implicitly state that they have the skill and knowledge to do so, that they have the skill to decide whether to take a case, to decide the treatment, and to administer that treatment. This is known as an "implied undertaking" on the part of a medical professional. In the case of the State of Haryana vs Smt Santra,[1] the Supreme Court held that every doctor "has a duty to act with a reasonable degree of care and skill".

Doctors in India may be held liable for their services individually or vicariously unless they come within the exceptions specified in the case of Indian Medical Association vs V P Santha[2]. Doctors are not liable for their services individually or vicariously if they do not charge fees. Thus free treatment at a non-government hospital, governmental hospital, health centre, dispensary or nursing home would not be considered a "service" as defined in Section 2 (1) (0) of the Consumer Protection Act, 1986.

However, no human being is perfect and even the most renowned specialist could make a mistake in detecting or diagnosing the true nature of a disease. A doctor can be held liable for negligence only if one can prove that she/ he is guilty of a failure that no doctor with ordinary skills would be guilty of if acting with reasonable care (3). An error of judgment constitutes negligence only if a reasonably competent professional with the standard skills that the defendant professes to have, and acting with ordinary care, would not have made the same error.

In a key decision on this matter in the case of Dr Laxman Balkrishna Joshi vs Dr Trimbak Bapu Godbole[3], the Supreme Court held that if a doctor has adopted a practice that is considered "proper" by a reasonable body of medical professionals who are skilled in that particular field, he or she will not be held negligent only because something went wrong.

Doctors must exercise an ordinary degree of skill. However, they cannot give a warranty of the perfection of their skill or a guarantee of cure. If the doctor has adopted the right course of treatment, if she/ he is skilled and has worked with a method and manner best suited to the patient, she/ he cannot be blamed for negligence if the patient is not totally cured.

Certain conditions must be satisfied before liability can be considered. The person who is accused must have committed an act of omission or commission; this act must have been in breach of the person's duty; and this must have caused harm to the injured person. The complainant must prove the allegation against the doctor by citing the best evidence available in medical science and by presenting expert opinion.

In some situations the complainant can invoke the principle of res ispa loquitur or "the thing speaks for itself". In certain circumstances no proof of negligence is required beyond the accident itself. The National Consumer Disputes Redressal Commission applied this principle in Dr Janak Kantimathi Nathan vs Murlidhar Eknath Masane .

The principle of res ipsa loquitur comes into operation only when there is proof that the occurrence was unexpected, that the accident could not have happened without negligence and lapses on the part of the doctor, and that the circumstances conclusively show that the doctor and not any other person was negligent.

Doctors' Criminal negligence in Indian context - Section 304A of the Indian Penal Code of 1860 states that whoever causes the death of a person by a rash or negligent act not

* Director, Shri Vaishnav Institute of Law, Indore (M.P.) INDIA

amounting to culpable homicide shall be punished with imprisonment for a term of two years, or with a fine, or with both.

In the Santra case, the Supreme Court has pointed out that liability in civil law is based upon the amount of damages incurred; in criminal law, the amount and degree of negligence is a factor in determining liability. However, certain elements must be established to determine criminal liability in any particular case, the motive of the offence, the magnitude of the offence, and the character of the offender.

In Poonam Verma vs Ashwin Patel,[4] the Supreme Court distinguished between negligence, rashness, and recklessness. A negligent person is one who inadvertently commits an act of omission and violates a positive duty. A person who is rash knows the consequences but foolishly thinks that they will not occur as a result of her/ his act. A reckless person knows the consequences but does not care whether or not they result from her/ his act. Any conduct falling short of recklessness and deliberate wrongdoing should not be the subject of criminal liability.

Thus a doctor cannot be held criminally responsible for a patient's death unless it is shown that she/ he was negligent or incompetent, with such disregard for the life and safety of his patient that it amounted to a crime against the State (10). Sections 80 and 88 of the Indian Penal Code contain defenses for doctors accused of criminal liability. Under Section 80 (accident in doing a lawful act) nothing is an offence that is done by accident or misfortune and without any criminal intention or knowledge in the doing of a lawful act in a lawful manner by lawful means and with proper care and caution. According to Section 88, a person cannot be accused of an offence if she/ he performs an act in good faith for the other's benefit, does not intend to cause harm even if there is a risk, and the patient has explicitly or implicitly given consent.

Burden of proof and chances of error in decision making in the court arena:

The burden of proof of negligence, carelessness, or insufficiency generally lies with the complainant. The law requires a higher standard of evidence than otherwise, to support an allegation of negligence against a doctor. In cases of medical negligence the patient must establish her/ his claim against the doctor.

In Calcutta Medical Research Institute vs Bimalesh Chatterjee,[5] it was held that the onus of proving negligence and the resultant deficiency in service was clearly on the complainant.. In Kanhaiya Kumar Singh vs Park Medicare & Research Centre,[6] it was held that negligence has to be established and cannot be presumed.

Even after adopting all medical procedures as prescribed, a qualified doctor may commit an error. The National Consumer Disputes Redressal Commission and the Supreme Court have held, in several decisions, that a doctor is not liable for negligence or medical deficiency if some wrong is caused in her/ his treatment or in her/ his diagnosis if she/ he has acted in accordance with the practice accepted as proper by a reasonable body of medical professionals skilled in that particular art, though the result may be wrong. In various kinds of medical and surgical treatment, the likelihood of an accident leading to death cannot be ruled out. It is implied that a patient willingly takes such a risk as part of the doctor-patient relationship and the attendant mutual trust.

Bolam Test - Bolam v Friern Hospital Management Committee[7] is an English tort law case that lays down the typical rule for assessing the appropriate standard of reasonable care in negligence: the "Bolam test", where the defendant has represented him or herself as having more than average skills and abilities. In essence this test expects standards which must be in accordance with a responsible body of opinion, even if others differ in opinion.

Highlights of the Supreme Court of India judgment:

In Indian Medical Association Vs V.P. Shantha and Others[8] - As a result of this judgment, medical profession has been brought under the Section 2(1) (o) of CPA, 1986 and also, it has included the following categories of doctors/ hospitals under this Section:

1. All medical / dental practitioners doing independent medical / dental practice unless rendering only free service.
2. Private hospitals charging all patients.
3. All hospitals having free as well as paying patients and all the paying and free category patients receiving treatment in such hospitals.
4. Medical / dental practitioners and hospitals paid by an insurance firm for the treatment of a client or an employment for that of an employee.

It exempts only those hospitals and the medical / dental practitioners of such hospitals which offer free service to all patients.

Further, this judgment concedes that the summary procedure prescribed by the CPA would suit only glaring cases of negligence and in complaints involving complicated issues requiring recording of the evidence of experts, the complainant can be asked to approach the civil courts.

Also, this judgment says that the deficiency in service means only negligence in a medical negligence case and it would be determined under CPA by applying the same test as is applied in an action for damages for negligence in a civil court.

As a result of this judgment, virtually all private and government hospitals and the doctors employed by them and the independent medical/ dental practitioners except primary health centers, birth control measures, anti malaria drive and other such welfare activities can be sued under the CPA.

Summary - he Apex court in India, has in several cases discussed and analyzed various facets of medical negligence. In the cases of Indian Medical Association Vs V.P. Shantha and Others, medical negligence cases were brought under the purview of Consumer Protection.

● The decisions of the Supreme Court of India bears the mark and influence of several foreign Judgments In 'Bolam v Friern Hospital Management Committee [1957], the skill of a doctor has been evaluated. Likewise the subsequent legal developments on foreign land in the cases of Barnett v. Chelsea & Kensington Hospital[9], Whitehouse v. Jordan[10], Sidaway v. Bethlem Royal Hospital Governors[11], Maynard v. West Midlands Regional Health Authority[12], Hotson v. East Berkshire Area Health Authority[13], Wilsher v. Essex Area Health Authority[14], Bolitho v. City and Hackney Health Authority[15], Albrighton v. RPA Hospital[16], F v. R[17] , Palmer v. Tees Health Authority[18], Akenzua v. Secretary of State for the Home Department[19], along with the role of the Bolam test in medical negligence claims in India made considerable strides in the Supreme Court rulings about medical negligence claims in India.

References :-

1. (2000) 5 SCC 182: AIR 2000 SC 1888: 2000(1) CPJ 53 (SC).
2. JT 1995 (8) SC 119; AIR 1996 SC 550; 1995 (6) SCC 651; 1995 (3) CPJ 1 (SC); 1995 (3) CPR 412 (SC).
3. 1968 ACJ 183 (SC);AIR 1969 SC 128; 1969 (1) SCR 206.
4. JT 1996 (3) CPR 205 (SC): AIR 1996 SC 2111 : 1996 (4) SCC 332: 1996 (2) CPJ 1 (SC).
5. 1999 (1) CPR3 (NCDRC) .
6. 1999 (3) CPJ 9(NCDRC) .
7. (1957). 1 WLR 583.
8. JT 1995 (8) SC 119; AIR 1996 SC 550; 1995 (6) SCC 651; 1995 (3) CPJ 1 (SC); 1995 (3) CPR 412 (SC).
9. [1968] 1 All ER 1068.
10. [1981] 1 All ER 267.
11. [1985] AC 871.
12. [1985] 1 All ER 635.
13. [1987] 2 All ER 909.
14. [1988] AC 1074.
15. [1997] 4 All ER 771.
16. (1980) 2 NSWLR 542.
17. (1983) 33 SASR 189.
18. [1998] All ER 180; (1999).
19. [2002] EWCA Civ. 1470, (2003) 1 WLR 741.

****

Temporary Occupation Of Land

Poorava Jadhav*

Introduction - It is well recognized that the sovereign power of the state has the adequate authority to command and appropriate for itself lands situated within its jurisdiction provided it is for purpose of some public utility. The famous maxim 'Salus populi est suprema lex' i.e. the welfare of the people is paramount law is the corner-stone of the law of the land acquisition. The Land Acquisition literally means acquiring of land for some public purpose by government or government agency, as authorized by the law, from the individual landowners after paying government fixed compensation in lieu of losses incurred by land owners due to surrendering of their land to the concerned government agency. The state has a right through its regular organisation, to reassert either temporarily or permanently, its dominion over any portion of the soil of the state on account of public exigency and for public good. This is also called right of eminent domain. Land is a finite factor of production and the state has the responsibility and the right to make optimal use of this factor. Land can be acquired by the state either for public purposes, or for urgency purposes, or for temporary purposes, or for companies. In this project I will be dealing with (iii), i.e, land acquired temporarily by the state which has been discussed in Chapter VI of the Land Acquisition Act, 1894 (old) and has been discussed in chapter XI of the new act i.e. The right to fair compensation and transparency in land acquisition, rehabilitation and resettlement Act, 2013 from section 81 to section 83.

Compensation For Temporary Occupation - The Land Acquisition Officer should ascertain what arrangement the parties interested desire to make as regards the payment of rent and he should be careful to record this arrangement in the written agreement with a view to protection of both the parties and to frame his proposals for compensation accordingly. Ordinarily, the minimum disturbance will be caused if the tenant continues to pay rent to the landlord, and in the absence of any valid objection, such an arrangement should be encouraged. When the conditions of temporary occupation make it necessary to remove trees from the land, compensation for trees should be assessed and offered as in cases of permanent acquisition and in the case of trees which produce income but will not be removed, compensation should be offered for the loss of income. Compensation should always be offered for standing crops which were grown before notice of intending occupation was delivered unless it is possible for the tenants to cut them in a ripe condition. When compensation has been assessed for standing crops it should be considered the loss of net profit for the first year of occupation whether the harvest of another crop in addition to the standing crop will fall within the first year of occupation, and if it will not, no further compensation for loss of profits should be offered for the first year.

Power To Enter, Take Possession And Compensation On Restoration - The Collector can enter into possession as soon as he executes an agreement as stipulated under Section 81 or in case of dispute on making the reference under section 81. The term settled may be periodical payment or by way of lease. Once the terms that are settled get written out in arrangement, the collector can forthwith enter into possession. But if the term is payment in gross, the whole amount of compensation should be paid before the collector enters into possession. In case of dispute and a reference thereon, even then the collector can get into possession. The land can be used only for the purpose mentioned in the notice.

Sub-section 2 of section 82 stipulates that on the expiry of the term of the agreement, the collector has to restore possession of the land to the owner. He has also to pay compensation for the damage, if any, done to the land during the temporary occupation, i.e. any special damage not provided for in the agreement. If the compensation is not acceptable, then the collector has to make a reference under 83. Where the land has been made thoroughly unfit to the owner, then the collector can acquire the land permanently provided the persons interested so require it. If the government refuses to purchase, a suit can be filed. Under section 18 of the limitation Act, such suit has to be filed within one year from the date of refusal to complete purchase. In Secretary of State v. Abdul Salam Khan, the cultivable land was temporarily acquired for a period of two years for the purpose of quarrying kankar. The zamindar was paid a certain sum References by Collector Subsection (3) of section 81 makes it obligatory on the collector to refer the matter to court provided there is a difference between the parties as regards

* Batch 11, Roll.No. 95, H.N.L.U., Raipur (C.G.) INDIA

the sufficiency of the compensation awarded or handed over by the collector under sub-section 2 of section 81. Section 83 of the Land Acquisition Act, only casts duty upon the Collector to refer if there is difference as to the conditions of the land at the expiration of the term or as to the matters connected with the agreement. No dispute is raised by the present applications as regards the condition of the land at the time of the expiration of the term. It was never asserted by the petitioners that the land has become unfit for the use for which it was put prior to the acquisition and consequently the land should be permanently acquired. It is only in those classes of cases where actually a difference may arise as to the condition of the land reference can be claimed as a matter of right under Sec. 83. There has been no allegation also that there was any dispute connected with the agreement which could be referred to Court. There is therefore no mandatory duty under any of the provisions of the Act under which the petitioners could have claimed a right to get the matter referred to Court. In case the Collector takes temporary occupation without the requisite notice under sub-sec. (2), even then the persons interested on coming to know about the acquisition can invoke S. 81(3) or 82(2) or S.83 of the act and cause a reference to be made. Only in two contingencies a reference under s. 37 can be made, namely, (where there was any difference as to conditions of the land on the expiry of the term, and (2) where the difference related to a matter connected with the said agreement. Section 81 and to 83 are interlinked with each other and a plain reading of the sections would result in the conclusion that under the first part of s. 37 all questions relating to damage caused to the land from the date of its initial possession up to the time of redelivery of its possession must be ascertained and tendered to the landowner, subject however, to such deduction there from as may be necessary under the terms of the written agreement, if any, between the parties as contemplated under S. 81(2). The help of the terms of the agreement can be taken by the state only to the extent that any part thereof which was covered under the agreement may not be paid over twice to the claimant. The absence of the written agreement, however, cannot be used as a shield to thwart the claim of the landowner for compensation.

Conclusion - The state has a right through its regular organisation, to reassert either temporarily or permanently, its dominion over any portion of the soil of the state on account of public exigency and for public good. Part XI of the right to fair compensation and transparency in land acquisition, rehabilitation and resettlement Act, 2013 pertains to the temporary occupation of land by the Government for temporary purposes as opposed to permanent acquisition by the Government. This provision has been provided for the case of an acquisition of land needed for the construction of any road, canal or railway and authority was given for the temporary occupation of adjacent lands. He is also required to pay such compensation either in gross sum of money or by monthly or other periodical payment for occupying and using the land, for the term, for which the government needs it, and for taking material, if any from such land. The terms which may be agreed between the collector and the owner of the land in respect of the amount and mode of payment of compensation and about the material which is to be taken out from the owner s land, in this regard are required to be reduced into writing in the form of an agreement. The maximum period for invoking this section to make the person concerned to occupy the land cannot exceed a period of three years. This part of the Act is a beneficial legislation keeping in mind regarding the public interest at large. But the new act which has clearly widened the scope of the term public purpose, thus paving the way for private sector involvement which can be very dangerous for the farmers of this country.

References :-

1. H. Bevarley, The Land Acquisition Act 1894, Delhi Law House (9th Ed., 2010).
2. M.P. Jain, Indian Constitutional Law, Lexis Nexis Butterworths Wadhwa (6th Ed., 2011).
3. P.K. Sarkar, Law Of Land Acquisition In India, Eastern Law House (2nd Ed., 2007).
4. R. Chakraborty, Law Of Land Acquisition And Compensation, Orient Law Publications (2nd Ed., 2013).
5. V.G. Ramchandran, The Law Of Land Acquisition And Compensation, Eastern Book Company (8th Ed., 1995).

****

पत्रकारिता में अनुवाद का महत्व एवं स्वरूप

डॉ. गुरविन्दर सिंह गिल *

प्रस्तावना – अनुवाद एक लिखित विधा है जिसे करने के लिए कई साधनों की जरूरत पड़ती है।[1] अनुवाद शब्द का प्रयोग अंग्रेजी शब्द 'ट्रांसलेशन' के पर्याय के रूप में किया जाता है। भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्य में इस शब्द की व्युत्पत्ति और अर्थ इस प्रकार है – भारतीय साहित्य में अनुवाद शब्द की व्युत्पत्ति 'वद्' धातु से मानी जाती है। 'वद्' का अर्थ है बोलना या कहना 'वद्' से ही 'वाद' शब्द बना है जिसका अर्थ है कहने की क्रिया। 'वाद' शब्द में अनु उपसर्ग जोड़ने से अनुवाद शब्द बना है। 'अनु' का अर्थ है 'बाद में' या 'पीछे'। इस प्रकार अनुवाद का शाब्दिक अर्थ है किसी कथन को पुन: कहना या बोलना।

अंग्रेजी साहित्य में अनुवाद के लिए प्रयुक्त शब्द ट्रांसलेशन (Translation) है। ट्रांसलेशन शब्द Trans और lation दो शब्दों के योग से बना है। Trans का अर्थ है 'पार' और lation का अर्थ है 'ले जाना'। इस प्रकार ट्रांसलेशन का अर्थ है 'पारवहन' अर्थात् एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु की ओर ले जाना। पश्चिम के विद्धान मानते हैं कि एक भाषा पाठ से दूसरी भाषा पाठ में ले जाने की प्रक्रिया अनुवाद है।

अनुवाद वस्तुत: एक भाषा के अर्थ को दूसरी भाषा में प्रस्तुत करने की प्रक्रिया का नाम है। डॉ. भोलानाथ तिवारी मानते हैं कि 'अनुवाद मूलत: 'पुन: कथन' या किसी के कहे जाने के बाद का कथन है और आज के प्रयोग में भी वह किसी कथन का पुन: कथन ही है। एक भाषा में किसी के द्धारा कही गई बात का किसी दूसरी भाषा में पुन: कथन। 'इस संदर्भ में डॉ. भोलानाथ तिवारी का एक अन्य कथन महत्त्वपूर्ण है वे लिखते हैं कि 'भाषा ध्वन्यात्मक प्रतीकों की व्यवस्था है और अनुवाद इन्हीं प्रतीकों का प्रतिस्थापन अर्थात् एक भाषा के प्रतीकों के स्थान पर दूसरी भाषा के निकटतम (कथनत: और कथ्यत:) समतुल्य और सहज प्रतीकों का प्रयोग।'

इस संदर्भ में पाश्चात्य विद्धानों की परिभाषाएँ भी विचारणीय है। नाइडा के अनुसार, 'अनुवाद का तात्पर्य है स्रोत भाषा में व्यक्त संदेश के लिए लक्ष्य भाषा के निकटतम समतुल्य संदेश को प्रस्तुत करना। यह समतुल्यता पहले तो अर्थ के स्तर पर होती है फिर शैली के स्तर पर। 'केटफोर्ड के अनुसार, 'अनुवाद एक भाषा की मूलपाठ सामग्री में स्थानापन्न है।'

इस तरह यह कहा जा सकता है कि अनुवाद दो भाषाओं के बीच होने वाला व्यापार है और यह प्रक्रिया एक भाषा की विषयवस्तु और संरचना के निकटतम दूसरी भाषा की विषयवस्तु और संरचना के समतुल्यता के आधार पर होती है। वस्तुत: कोई भी भाषा एक प्रतीक व्यवस्था होती है और अनुवाद में एक भाषा की प्रतीक व्यवस्था का दूसरी भाषा की प्रतीक व्यवस्था में इस तरह स्थानांतरण किया जाता है कि अनुवादकर्त्ता को उसमें कुछ जोड़ने या घटाने की गुंजाइश नहीं होती है।

वैश्वीकरण के कारण, ज्ञान–विज्ञान और तकनीकी के विकास के कारण आज अनुवाद की आवश्यकता पहले से अधिक है। सूचना और संचार का माध्यम भाषा है। इसलिए भी अनुवाद का महत्त्व निरंतर बढ़ रहा है। अनुवाद अनेकता में एकता स्थापित करने का महत्त्वपूर्ण साधन है। इसके द्धारा भाषायी विविधता को भी एक सूत्र में बाँधा जा सकता है। प्रत्येक भाषा अपने सामाजिक, सांस्कृतिक संदर्भो से जुड़ी होती है। अनुवाद के द्धारा इन संदर्भो को जाना जा सकता है। अनुवाद के द्धारा विभिन्न भाषा–भाषी समुदायों में संवाद और संपर्क किया जा सकता है। भारतीय संस्कृति के सामाजिक स्वरूप के संरक्षण में अनुवाद की भूमिका महत्त्वपूर्ण हो सकती है। विभिन्न भाषाओं के मध्य होने वाले विवादों को अनुवाद के माध्यम से समाप्त किया जा सकता है। विभिन्न भाषाओं में रचे गए साहित्य को अनुवाद के माध्यम से जाना जा सकता है।

इस तरह अनुवाद एक ऐसा माध्यम है जो परस्पर अपरिचित भाषाओं के संसार को एक–दूसरे के समीप लाता है और एक नई पहचान की सृष्टि करता है।[2] इससे अपरिचित ज्ञान के विविध द्धारा खुलते हैं। मनुष्य, नई सम्भावनाओं, नई अभिव्यक्तियों और नई दक्षताओं से सम्पन्न होता है। शायद ही कोई ऐसा देश और काल हो जहाँ अनुवाद का महत्त्व न रहा हो।

मीडिया की विभिन्न विधाओं ने अनुवाद का भरपूर उपयोग किया है और इसे जनोपयोगी बनाया है। भारत की आधुनिक पत्रकारिता को ही लें। हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में पत्रकारिता का बड़ा भाग अनुवाद पर आधारित रहा है। ब्रिटिश काल में शासकीय घटनाचक्र के सम्प्रेषण का मुख्य माध्यम अंग्रेजी भाषा थी। अंग्रेजी समाचार एजेंसियों और पत्र–पत्रिकाओं का वर्चस्व था। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भी लम्बे समय तक यह स्थिति बनी रही। भारतीय भाषायी अखबारों में अंग्रेजी न्यूज एजेंसी से खबरों को हिन्दी या अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद करना पड़ता था। छठे दशक के अन्त तक न्यूज एजेंसी के टेलीप्रिंटर अंग्रेजी में हुआ करते थे। अत: उपसम्पादकों को अंग्रेजी में प्रसारित खबरों से हिन्दी में खबरें बनानी पड़ती थी। ज्यादातर प्रेस विज्ञप्तियाँ अंग्रेजी में ही हुआ करती थी। लेकिन सातवें दशक के प्रारम्भ में इस स्थिति में थोड़ा परिवर्तन अवश्य आया, 'हिन्दुस्तान समाचार' और 'समाचार भारती' ने हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं में भी समाचारों को भेजना शुरू किया, हिन्दी के टेलीप्रिंटर अखबारों के दफ्तरों में लगाए गए। आज भी देश की दो प्रमुख एजेंसियाँ–यूनीवार्ता और भाषा–हिन्दी में ही अपने ग्राहक अखबारों को खबरे और लेख प्रेषित करती हैं।

पर इसका अर्थ यह नहीं है कि अनुवाद का महत्त्व पत्रकारिता में घट गया है, बल्कि किन्हीं मामलों में इसके महत्त्व का विस्तार हुआ है। राष्ट्र की राजधानी और प्रदेशो की राजधानी स्थित पत्रकारों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे मूलत: द्विभाषी हो। दूसरे शब्दों में, भारतीय भाषायी पत्रकारों की अंग्रेजी पर भी अच्छी पकड़ होनी चाहिए। उन्हें अंग्रेजी से अपनी भाषाओं में खबर या लेख का अनुवाद करना आना चाहिए।

गत एक दशक में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने एक–एक पग आगे बढ़ाते हुए एक विशेष स्थान बनाने में सफलता प्राप्त की है।[3] इलेक्ट्रॉनिक मीडिया या न्यूज चैनलों के विस्फोट से भी अनुवाद की भूमिका में एक नया आयाम जुड़ा है।[4] आज प्रत्येक चैनल का प्रयास रहता है कि वह अंग्रेजी और हिन्दी में समान रूप से खबरों का प्रसारण करे। जहाँ अंग्रेजी के चैनल टीवी पर अंग्रेजी की खबरों के प्रसारण के साथ–साथ हिन्दी में भी संक्षेप में खबरों को लिखित में प्रस्तुत करते हैं, वहीं हिन्दी

* सहायक प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (भाषा विभाग) एम.बी. खालसा महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.) भारत

के चैनल भी अंग्रेजी में खबरों को लिखित में प्रसारित करते हैं। इसका सीधा अर्थ यह हुआ कि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया भी अनुवाद का कम-अधिक सहारा लेता है। समाचार चैनलों को विदेश से प्राप्त होनेवाली खबरे अंग्रेजी में ही होती है। अत: उनके तुरन्त अनुवाद की व्यवस्था भी करनी होती है। इंटरनेट पर प्राप्त होनेवाली खबरें अंग्रेजी में होती हैं। इनका समुचित उपयोग तभी सम्भव है जब अनुवाद के माध्यम से इन्हें हिन्दी या अन्य भारतीय भाषाओं में प्रस्तुत किया जाए।

आजकल विभिन्न चैनलों पर विदेशों में निर्मित फिल्में, वृत्तचित्रों तथा अन्य मनोरंजन के कार्यक्रमों को भारतीय भाषाओं में प्रस्तुत करने का व्यापार बड़े स्तर पर चल रहा है। विश्व प्रसिद्ध डिस्कवरी चैनल अपने सभी कार्यक्रमों को हिन्दी में प्रसारित करता है। इसी तरह 'स्मॉलवंडर्स', 'हनी आई शंक दी किड्स' जैसे धारावाहिकों के हिन्दी संस्करण प्रसारित किए जाते हैं। कई अंग्रेजी फिल्मों को 'हिन्दी सब टाइटलिंग' के साथ टीवी पर प्रदर्शित किया जाता है। नि:सन्देह भूमण्डलीकरण युग के उदय से अनुवाद के संसार का विस्तार ही हुआ है।

मीडिया समाज तथा शासन का वास्तविक दर्पण बन गया है। दरअसल अनुवाद की ही मार्फत बनी वह भाषा है जिसे लोग हिंग्रेजी या हिंगलिश बोलते हैं।[5] यानी ऐसी हिन्दी जो अपने चरित्र में अंग्रेजी हो। कभी जी टीवी को इसकी शुरूआत का श्रेय दिया जाता था। धीरे-धीरे अखबारों ने भी इसे अपना लिया है। अब हिन्दी के सर्वाधिक प्रसारित-प्रकाशित अखबरों में यह भाषा बहुतायत में दिखाई पड़ती है। अंग्रेजी के अखबारों में भी हिन्दी के शब्द उसी रफ्तार में बढ़ते दिखाई पड़ रहे हैं। 13 अक्टूबर, 2002 को 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के एक फीचर का शीर्षक है, 'ए सत्या अबाउट मनोज वाजपेयी'। जाहिर है, मनोज वाजपेयी नाम के नायक की फिल्म 'सत्या' से यह शब्द लेकर एक सम्पादकीय युक्ति का सुन्दर निर्वाह किया गया है। लेकिन सच के अर्थ में सत्य शब्द का इस्तेमाल पहले अंग्रेजी अखबारों में नहीं दिखाई पड़ता था। यहाँ से अनुवाद का वह खतरा दिखता है जिसने भाषा की प्रकृति को बदल कर रख दिया। एक भाषा के रूप में हिन्दी की मौलिक-मेधा कमजोर पड़ी है तो इसकी एक वजह यह अनुवाद की नई संस्कृति भी है।

लेकिन यह आज के अनुवाद का एक पक्ष है। ज्यादा बड़ा पक्ष यह है कि अनुवादों के सरल, स्वाभाविक और बोलचाल के करीब होने की सम्भावना इस दौर में बढ़ी है। वे सुन्दर हों न हों- क्योंकि सौन्दर्य की, भाषा के सौन्दर्य की भी परिभाषाएँ बदलती रह सकती हैं, लेकिन स्वाभाविक और सरल जरूर है। अखबारी अनुवाद में तो सरलता एक अपरिहार्य तत्त्व है। वैसे सच यह भी है कि अखबार की मौलिक भाषा भी सरल हुई है जिससे अनुवाद करना आसान हुआ है। इसी सरलता को रेखांकित करते हुए अक्सर कई लोग यह कहते पाए जाते हैं कि अखबार कुल मिलाकर 500 शब्दों से निकलते हैं। यह सच भी हो या कम से कम इससे यह सच ध्वनित होता हो कि अखबार में सीमित संख्या में शब्दों का इस्तेमाल होता है तो भी यह तथ्य भुलाया नहीं जा सकता कि इन्हीं सीमित शब्दों से अभिव्यक्ति की असंख्य और अनन्त सम्भावनाएँ निकाली जा सकती हैं, निकाली जा रही हैं। दो पत्रकारों या अखबारों की भाषिक भिन्नता की एक वजह यह सम्भावना भी है। यह जितना मौलिक लेखन के साथ सच है, उतना ही अनुवाद के साथ भी। बल्कि अखबारी अनुवाद में तो प्रयोगशीलता और छूट लेना भी लगभग अपरिहार्य हुआ करता है।

इसलिए अनुवाद के लिए भी सरल भाषा लिखते हुए यह ध्यान रखना जरूरी है कि उसमें विषय के साथ न्याय हो रहा हो। खेल या अर्थशास्त्र की खबर का अनुवाद करते हुए भाषा को सरल बनाने की कोशिश में उसके विशेषज्ञता से जुड़े पक्षों को आघात पहुँचाना कहीं से वांछित नहीं हो सकता है।

हाल के वर्षो में ऐसे सॉफ्टवेयर आए हैं जो अनुवाद के लिए जाने जाते हैं। यानी वे एक भाषा की सामग्री को दूसरी भाषा की सामग्री में बदल सकते हैं। भारत के अखबारों में फिलहाल ऐसे किसी सॉफ्टवेयर के इस्तेमाल की जानकारी नहीं है। यानी अभी तक ये सॉफ्टवेयर प्रायोगिक अवस्था में है। सम्भव है कल को इस तरह के सॉफ्टवेयर ज्यादा लोकप्रिय हों और अखबारों में दफ्तरों में लगे कम्प्यूटरों में संस्थापित कर दिए जाएँ। निश्चय ही उससे अनुवाद की दुनिया बहुत आसान हो जाएगी। लेकिन क्या वह कुछ सन्दिग्ध भी नहीं हो जाएगी ? यानी क्या कोई सॉफ्टवेयर किसी टिप्पणी में निहित लेखक के मन्तव्य को समझा सकता है ? भाषा के कई रूप होते हैं। अभिधा के अलावा लक्षणा और व्यंजना भाषा की वे शक्तियाँ हैं जिनसे भाषा समृद्ध होती है। क्या कोई सॉफ्टवेयर भाषा के इन रूपों को अनूदित कर पाएगा ?

यहाँ आकर यह समझना जरूरी है कि दरअसल किसी भी यन्त्र या उपकरण की सीमाएँ होती है। वे मददगार हो सकते हैं निर्णायक नहीं। निर्णायक तो मनुष्य को ही होना होगा। यानी अनुवाद में लेखक के मन्तव्य समझना और उचित शब्दों या वाक्यों का चयन करना अब तक मनुष्य के ही बूते हैं। अलबत्ता कोई सॉफ्टवेयर उसका काम आसान जरूर कर सकता है।

अब तक अनुवाद के सन्दर्भ में ये सारी बातें मूलत: खबरों के अनुवाद से जुड़ी रही है। लेकिन अखबार खबरों का बहुवचन भले हो, उसमें खबरों के अलावा भी बहुत कुछ होता है। लेख, टिप्पणियाँ, रिपोर्ट, कविताएँ और कहानियाँ भी। यानी एक सम्पूर्ण अखबारों में भाषा और लेखन की कई परतें होती है। अच्छे अनुवाद को इन सारी परतों पर खरा उतरना होगा। इस बिन्दु पर अनुवाद के कुछ अन्य संकटों पर हम विचार कर सकते हैं।

शब्द निर्माण की प्रक्रिया में अभिव्यक्ति की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है।[6] कहने का मतलब यह कि भाषाओं के सामाजिक-सांस्कृतिक प्रचलन अनुवाद में ऐसे अवरोधों का काम करते हैं जिनसे पार पाना बड़े लेखकों के लिए भी सम्भव नहीं हो पाता। हिन्दुस्तानी रीति-रिवाजों की दुनिया में कई शब्द ऐसे हैं जिनके लिए अंग्रेजी में शब्द सुलभ नहीं हैं। इस तरह व्यंजनों या पहनावों के लिहाज से अनुवाद आसान काम नहीं है।[7]

आज पत्रकारिता में यह कोशिश जरूर होनी चाहिए कि अनुवाद मूल जैसा लगे, लेकिन यह काम भाषिक प्रतिज्ञाओं के आगे जाकर नहीं किया जा सकता। लेकिन ऐसा नहीं है कि शब्दानुशासन का कोई महत्त्व ही नहीं है। वस्तुत: कोशिश तो यह होनी चाहिए कि अनुवाद में मूल को ज्यों का त्यों लिया जा सके। यदि वह सम्भव नहीं हो पा रहा हो तो अपनी ओर से चीजों को बदलना चाहिए। इस किस्म के परिवर्तन की सर्वाधिक गुंजाइश और जरूरत मुहावरों के अनुवाद में होती है। मुहावरों का शब्दानुवाद खतरनाक नतीजे पैदा कर सकता है।

इसलिए अखबारों में काम करते हुए किसी भी पत्रकार के सक्षम अनुवादक बनने की एक शर्त यह है कि वह स्रोत भाषा और अनुवाद की भाषा-दोनों के मर्म से परिचित हो, उनके मुहावरों को जाने-समझे, उनके वातावरण और सांस्कृतिक परिवेश से अवगत हो। अनुवाद को सरल, स्वाभाविक, मूल के करीब होना चाहिए। भाषा के संदर्भ में अनुवादक की समझ भाषा की सहजता बनाये रखने एवं प्रामाणिकता को सुरक्षित रखने के उद्देश्य को पूरा करने में काफी हद तक सहायक हो सकती है।[8]

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. http/: Wikipedia.org/anuvad
2. जितेन्द्र गुप्त, पत्रकारिता में अनुवाद-संपादकीय, पृ. XIII
3. ओमप्रकाश चौधरी, टेलीविजन पत्रकारिता, पृ. 7
4. जितेन्द्र गुप्त, पत्रकारिता में अनुवाद-संपादकीय, पृ. 90
5. http/: hindi.indiawaterportal.org
6. हिन्दी पत्रकारिता की शब्दावली-नये स्रोत, नई संभावनाएं-एक विश्लेषण, ममता रानी, पृ. 199
7. जितेन्द्र गुप्त, पत्रकारिता में अनुवाद-संपादकीय, पृ. 95
8. सृजन भाषा, अनुवादक के उत्तरदायित्व, यारिन्द्र कुमार वर्मा 16.09.2013

बाल - कला की उपादेयता

प्रगति तिवारी *

प्रस्तावना - बाल-कला की उपादेयता - शिक्षाविदों, मनोवैज्ञानिकों व चिंतकों ने बच्चों की कला के महत्व और शिक्षण में कला की भूमिका को स्वीकार किया है। वर्षों के अनुसंधान और विमर्श इस तथ्य को पूरे मन से स्वीकार करते हैं कि कला और उससे जुड़ी गतिविधियाँ बच्चों को अपने परिवेश के प्रति संवेदनशील बनाने में मदद करती हैं। ये गतिविधियाँ कल्पना करने, अनुमान लगाने, तर्क करने, स्वयं को अन्य परिस्थितियों से जोड़कर देखने और आस-पास के प्रति अपने नजरिये को व्यक्त करने में सहायक सिद्ध होती हैं। साथ ही आकार, अनुपात को समझना, वर्गीकरण जैसी संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं को बढ़ावा देती हैं स्वयं निर्णय लेने, नि:शब्द सम्प्रेषण और समस्या समाधान जैसे अनेक भावनात्मक पहलू मजबूती पाते हैं। एक ओर अपनी व दूसरों की कृतियों का सम्मान करना, उनकी सराहना करना जैसी संवेदनशीलता विकसित होती हैं तो दूसरी ओर खुद कुछ पा लेने का आत्मतोश।[1]

श्रीराधाकमल मुखर्जी के शब्दों में, 'कला समाज के हाथों में ऐसा महत्वपूर्ण, आकर्षक और शक्तिशाली उपकरण है जिसके द्वारा जीवन के लक्ष्यों व मानव संबंधों को यथोचित रूप प्रदान किया जा सकता है तथा नियमित किया जा सकता है।'

कला का महत्व मनुष्य की प्रारंभिक अवस्था से ही प्रारंभ हो जाता है।

प्रत्येक मनुष्य अपने विचारों को दूसरों के सामने प्रकट करना चाहता है, परस्पर संप्रेषण, भावनाओं का आदान-प्रदान स्वस्थ्य मन के निर्माण की प्रमुख आवश्यकता है। सुख या दुख कोई भी भाव जो हम महसूस करते हैं उसे हम दूसरे से बांटना चाहते हैं। मानव की इन्हीं इच्छाओं के चलते अनगिनत बोली और भाषाएँ बनीं तथा सम्प्रेषण के नवीनतम साधन विकसित हुए। बच्चे भी इसी प्रकार अपनी भावनाओं का आदान-प्रदान करना चाहते हैं, चित्र उनके द्वारा किए गए संवाद ही हैं। अत: ये चित्र बच्चों के व्यक्तित्व के अध्ययन व संपूर्ण विकास के महत्वपूर्ण स्त्रोत हैं। बाल-कला के अध्ययन से बच्चे के व्यक्तित्व की सही-सही जानकारी हम ले सकते हैं। क्योंकि चित्र द्वारा वे भावनाएँ भी सहज रूप से प्रकट हो जाती हैं जिन्हें वह बोलकर नहीं बता सकता। यह केवल उसके बाहरी परिवेश तथा संस्कृति को प्रकट नहीं करते बल्कि आतंरिक भावनाओं व इच्छाओं का भी सफल प्रकटीकरण करते हैं।

बाल-कला के महत्व को हम निम्न बिन्दुओं के माध्यम से समझ सकते हैं-

1. **संज्ञानात्मक दृष्टिकोण के विकास में सहायक -** शिक्षक **फ्रायबेल** ने 'एजूकेशन फॉर मैन' नामक पुस्तक में लिखा है-**'मनुष्य भाषा द्वारा केवल विचार को ही प्रकट कर पाता है। उससे उसके पूरे व्यक्तित्व का प्रकटन नहीं होता वह अपने अंतर्मन को बाहर प्रकट नहीं कर पाता। कला-प्रवृत्तियाँ और भाषा दोनों मिलकर ही मनुष्य को पूरी प्रकृति का दर्शन कराती हैं।'**

चित्रकला के माध्यम से प्राप्त अनुभवों द्वारा बच्चे के संज्ञानात्मक दृष्टिकोण का विकास सरलता से हो जाता है। परन्तु यह अनुभव तभी प्राप्त होंगे जब बच्चों में स्वयं करके सीखने की आदत का विकास होगा। चित्रकला 'स्वयं' करके सीखने के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान करती है और क्रियात्मक विषय होने के कारण अनुभवों में वृद्धि करती है जिससे बच्चे का संज्ञानात्मक दृष्टिकोण विकसित होता है।

विशेष रूप से चित्रकला के बारे में वे कहते हैं - 'चित्रकला का लाभ केवल यह नहीं है कि बालक बाहरी जगत का ठीक तरह से प्रतिबोधन कर सके। यह कला बालक को ऐसे जगत में प्रवेश करने में मदद करती है, जो ऊपरी तौर पर अदृश्य है, किन्तु जिसमें ज्ञान-संचार करने की शक्ति है।'[2]

2. **देखने, समझने व कल्पना-शक्ति के विकास में सहायक -** बच्चे का सृजन केवल उसके 'अवलोकन' का परिणाम नहीं है बल्कि उसकी कल्पनाशक्ति व वस्तुओं का दृश्यीयकरण (Visualisation) करने की क्षमता का परिणाम है। बच्चे के लिए चित्र वास्तविक होता है और वस्तु एक प्रतीक। सृजन प्रक्रिया में वह इन प्रतीकों को वास्तविक चित्र के साथ मिलाकर प्रयोग करता है।

बच्चा जिन वस्तुओं का अवलोकन करता है उन्हें अपने ज्ञान और कल्पना के आधार पर ही चित्र में प्रदर्शित करता है। किसी भी विषय पर अपने भाव व्यक्त करने में कुछ न कुछ कल्पना का समावेश अवश्य रहता है। यदि वह सामने के दृश्य को यथार्थ रूप में अंकित करता है तब भी उसे दृश्य को कागज पर उतारने के लिए कल्पना करनी पड़ती है, जो उसकी स्मृति में पहले से उपस्थित आकारों के चयन के साथ चित्र में साकार रूप लेती है। अत: हम कह सकते हैं कि कला द्वारा बच्चे की स्मृतिशक्ति, स्वतंत्र चिंतन शक्ति, अवलोकन शक्ति, आत्मनिर्णय की शक्ति के साथ-साथ कल्पना-शक्ति का विकास होता है। इस कल्पना शक्ति के आधार पर ही भविष्य में बच्चे महत्वपूर्ण निर्णय लेने व योजनाएँ बनाने में सफल होते हैं।[3]

3. **सृजनात्मक विकास में सहायक -** कला बच्चे में कुछ निर्मित करने की भावना को विकसित करती है। **सिजेक** के अनुसार, **'बच्चों की कला का मुख्य उद्देश्य यह है कि वह बालक की सृजनात्मक शक्ति का विकास करें और बालक के पूरे जीवन-काल तक असर करती रहे।'** इसलिए बच्चों की कला-शिक्षा अगर ठीक तरीके से हुई तो जैसा कि सिजेक ने कहा है-उसका प्रभाव पूरे जीवन भर रहेगा।

4. **नैतिक व मौलिक गुणों का विकास -** कला बच्चों के नैतिक व मौलिक गुणों के विकास में सहायक है। बच्चा चित्र बनाते समय यही सब बातें सीख रहा होता है, उसके चित्र के विषय व शैली इसी से प्रभावित होते हैं। आस-पास के वातावरण का चित्रण करने से संवेदनशीलता, सहयोग तथा चित्र में वस्तुओं का स्थान निर्धारण करने से सामंजस्य आदि महत्वपूर्ण बातें

* शोधार्थी, वनस्थली विद्यापीठ वनस्थली (राज.) भारत

वह सीखता है। असल में चित्र बच्चे के लिए किसी समस्या के समाधान की तरह होता है। किसी घटना के प्रस्तुतीकरण के लिए किन-किन प्रतीकों का प्रयोग आवश्यक है, कौन सी वस्तु, स्थान, रंग आदि चित्र को प्रभावशाली बनाएंगे। इन प्रश्नों के हल बच्चा स्वयं ढूंढ कर अपनी सरल व सहज अभिव्यक्ति प्रस्तुत करता है।

5. आत्मिक व चारित्रिक विकास में सहायक – कला का उद्देश्य हमारी भावनाओं को शुद्ध करना है। यह आत्मा की परिष्कृति का प्रमुख साधन है। प्रसिद्ध अस्तित्ववादी **नीत्शे** (Nietzshe) के शब्दों में **'कला एक अभूतपूर्व शक्ति और आत्मप्रेरणा है। कला के माध्यम से आत्मज्ञान होता है तथा अपनी पूर्णता और योग्यता का परिचय मिल जाता है। वास्तव में यह आत्मानुभूति (**Self-Realisation**) ही चरित्रबल का आधार है।'**[4]

स्वतंत्र भाव प्रकाश के माध्यम से बच्चे को जो अनुभव प्राप्त होते हैं, उससे बच्चे को अपने अंतस्तल में झांकने का अवसर मिलता है।

6. बच्चे के सामाजिक विकास में सहायक – प्रत्येक व्यक्ति के चेतन मन के पार्श्व में अप्रत्यक्ष रूप से प्रकट होने वाली कुछ प्रवृत्तियाँ कार्य करती रहती हैं। ये प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं-

1. यौन प्रवृत्ति
2. समूह बनाने की प्रवृत्ति
3. आत्मप्रदर्शन की प्रवृत्ति
4. स्वामित्व की प्रवृत्ति

ये प्रवृत्तियाँ अप्रत्यक्ष रूप से अचेतन मन को असामाजिक कार्यों को करने के लिए प्रेरित करती रहती हैं। जब इनकी असंशोधित व्यवहारपूर्ण क्रियाओं को समाज मान्यता नहीं देता तो वे प्रवृत्तियाँ मानसिक ग्रंथियों के बनने में सहायता करती हैं। कला इन प्रवृत्तियों के शोधन (Sublimation) की दिशा प्रदान करती है।[5]

7. कला-प्रशंसा का गुण विकसित होता है – बच्चों में कला द्वारा न केवल अच्छे चित्र बनाने की योग्यता आती है बल्कि अच्छे चित्रों व अच्छी कृतियों की प्रशंसा करने का गुण विकसित होता है। इस संदर्भ में प्रारंभ से ही कला की शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया जाना अपेक्षित है।

8. बच्चे के सर्वांगीण विकास में सहायक – 'कला' बच्चे के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करती है। अपने विचारों व भावनाओं की अभिव्यक्ति से बच्चे में आत्मसंतोष, आत्मविश्वास तथा आत्मानुभूति की क्षमता का विकास होता है। 'कला' बच्चे की मानसिक कुण्ठाओं आदि का शोधन करके व्यक्तित्व के सभी पक्षों को सबल आधार प्रदान करती है।

450 ई. में चीनी विद्धान **कुन फू** ने कहा था-**'मैं सुनता हूँ और भूल जाता हूँ, देखता हूँ और याद रखता हूँ। कुछ करता हूँ और समझता हूँ।'** विभिन्न शिक्षाशास्त्रियों, समाजशास्त्रियों और मनोवैज्ञानिकों ने अपने-अपने अध्ययन में यह पाया है कि शिक्षण के दौरान सहगामी गतिविधियाँ विभिन्न रूचियों को विकसित करती हैं तथा पाठ्यविषयों में अधिक जिज्ञासा एवं रूचि पैदा करती हैं। इसके अलावा शारीरिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक पक्षों को सक्रिय बनाकर मानसिक पक्ष को गहराई, व्यापकता एवं तीव्रता प्रदान करती हैं जिससे विद्यार्थियों के संपूर्ण व्यक्ति का विकास होता है।[6]

9. जीवन-दिशा को निर्धारित करने में सहायक – 'कला' के माध्यम से बच्चा अपनी स्वतंत्र अभिव्यक्ति देकर स्वयं से जुड़ जाता है। वह अपने आप को अधिक बेहतर ढंग से समझ सकता है तथा भविष्य में उसे क्या करना है, क्या उसकी पसंद, नापसंद है, वह क्या पाना चाहता है आदि प्रश्नों के उत्तर पा लेता है।

'कला' कैसे आपकी जीवन दिशा को निर्धारित करती है इसका सबसे अच्छा उदाहरण महात्मा गांधी की बचपन की एक घटना है। लगभग सात वर्ष की उम्र में उन्होंने हरिश्चन्द्र नाटक देखा और उससे इतने प्रभावित हुए कि मन ही मन हरिश्चन्द्र की भूमिका में स्वयं को सैकड़ों बार देखा और आगे चलकर सारी दुनिया ने देखा कि महात्मा गांधी का सारा जीवन ही 'सत्य के प्रयोग' बन गया। उनकी सत्य व अहिंसा की विचारधारा ने सारी दुनिया को प्रभावित किया।[7]

अत: हम देख सकते हैं कि कला कैसे बच्चे के भविष्य निर्माण की दिशा को निर्धारित करती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. कुमार, डॉ. माधवी, *बाल मन की समझ : एक प्रयोग,* रमेश थानवी (संपा.), *अनौपचारिका*, राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति : जयपुर, दिसम्बर, 2008, पृ.-38
2. आर्य, जयदेव, *कला का अध्यापन*, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन : आगरा, 1968, पृ.-13
3. Srivastava, Kamal S. and Samgeeta Srivastava, Encyclopadia of World Biography, APH Publishing Corporation : New Delhi, 2012, p.-403
4. आर्य, जयदेव, पूर्वोद्धृत, पृ.-15
5. पूर्वोद्धृत, पृ.-15
6. सिंह, वागीश कुमार, *मुझे कोमल नहीं बनना*, रमेश थानवी (संपा.), पूर्वोद्धृत, पृ.-31
7. प्रसाद, देवी, *शिक्षा का वाहन : कला*, नेशनल बुक ट्रस्ट : दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1999, पृ.-62

****

Diversity of Zooplankton in Pashupatinath pond Mandsour, Madhya Pradesh

Dr. Deepali Amb * Dr. Sanjay Prasad **

Abstract - Mandsaur is a part of Malwa region which was earlier known as Dashpur. This town has historical and religious heritage lying in it. The Shivalaya on the shore of the Shivna River has a very beautiful octahedral sculpture of lord Pashupathinath which is a very popular pilgrim in India.The main river of Mandsaur is Shivna that has Somli and Tumbar as its auxiliary rivers. The Pashupatinath pond lies in Mandsour distict. Present investigation were carried out to physico chemical characterstics and limnological study of Pashupatinath pond, Mandsour (M.P.). Water sample were collected seasonal basis for a period of December 2008 to September 2010 using plastic container. Standard procedure were followed during collection, preservation and analysis of water sample for various physicochemical and biological parameter. The water quality is remained moderately alkaline pH (8.11) while electrical conductivity (0.2176 ms/cm), TDS (187ppm) chloride (22.123ppm), Hardness(139.166ppm) and alkalinity (75.33ppm) show low mean value .Average dissolve oxygen levels were at (7.771 ppm) ,while average nitrate and phosphate The water remained modertly alkaline pH (7.95) while electrical conductance (0.2165ms/cm),TDS (153.66ppm)chloride (22.83ppm) hardness (138.66ppm)and alkalinity (62.166 ppm) showed low mean values. Average dissolved oxygen level were at (7.58 ppm) while average nitrate and phosphate level were (0.2126ppm) and (0.5868 ppm) respectely . A low density of Zooplankton were also observed during the study period.
Key Words - Zooplanktonic diversity, oligotrophic lake, primary production, Shanon Weaver's index & Menhinick's index.

Introduction - Water is a vital and precious resource. Water is the primary need for plant, animal and human survival as well as for agriculture and industrial development. It is a body fluid which regulates life processes such as digestion, respiration, secretion etc. Waterbodies have always been important to man since early civilizations as support to not only their economic development but also to cultural values. Freshwater habitats are important to man as compared to marine habitats covering 97% of the globe.

Zooplankton are microscopic small animals that float freely in water surface feeding on phytoplankton, algae, bacteria etc. Zooplankton are taken as food by fish and their juvenilis thus playing an important role in food chain which leads to fish production. The present study an attempt has been made to assess certain physico-chemical feature of Pashuptinath pond in relation to its primary productivity and zooplanktonic diversity.

Materials And Methods Pashupatinath pond was constructed in 1995. The river Shivna is the main source of water for the pond. Morphometric features of Pashupatinath pond is given in table 1. During the study water sample were collected at seasonal basis from December 2008 to September 2010 using bucket from three pre selected station of the pond. The water quality parameter such as air and water temprature , pH , depth of visibility, alkalinity, dissolve oxygen and primary productivity were measured in the field itself. However for the electrical conductivity, chloride , nitrate and phosphate sample were brought to laboratory in plastic bottels of 500ml capacity and analysed with in 24 hours. Prior to this sample were secured in refrigerator primary productivity was estimated using light and dark bottles method. Method stated by APHA (1989) and Pandey and Sharma(2003) were followed for water.

Results And Discussion - During the study period there was a marked variation in different water quality characterstics.Hutchinson (1957) stated that temperature is important in controling both the quality and quantity of plankton. In the present study the recorded surface water temperature is 22°c to 31°c.The statistical computation indicated that water temperature had positive significant relationship with depth of visibility ,alkalinity ,total hardness and total dissolve solid .Whereas the relationship was negative with dissolve oxygen ,nitrate ,NPP ,GPP and respiration .The variation in depth of visibilityu ranged from a minimum of 22 c.m to maximum 34 c.m. the statistical computation indicated positive significant correlationship of water clarity with, phosphate, chloride, dissolve oxygen, total hardness, total dissolve solid, conductivity, alkalinity and pH, The pH of water was always on moderanately alkaline side and varied from 7.9 to 8.4 during present study. GPP, NPP, respiration ,phosphate ,conductivity ,total hardness and depth of visibility show positive significant relation however a significant negative relationship with alkalinity ,total dissolve solid ,chloride and nitrate as indicated. The value of total alkalinity varied between 64 to 88 ppm the statistical computation indicated a positive significant correlationship of total alkalinity with depth of visibility ,PH,total hardness, total dissolve solid ,chloride and nitrate. An increase in total alkalinity may be related with increase in pH of pashupatinath pond as suggested by Wetzel. Dissolve oxygen it is an important limnological parameter indicating level of water quality and organic production in the lake Wetzel (1983). As regards correlationship, dissolve oxygen showed a negative correlationship with total hardness, total dissolve solid,

* Assistant Professor (Zoology) S. V. Govt. P. G. College, Neemuch (M.P.) INDIA
** Assistant Professor (Commerce) Govt. College, Sanwer, Indore (M.P.) INDIA

chloride, nitrate and phosphate. The Electrical conductivity which represents total ionic load of water had the average value 0.2176 ms.cm.

The electrical conductance depicted positive significant relationship with dissolve oxygen, total hardness, phosphat, primary conductivity ,GPP and respiration. The total hardness of water is the sum of cations present in it. This parameter ranged between the lowest value of 128 ppm and the highest value of 150 ppm. The average value of hardness is 139.166 ppm during the study , total hardness showed positive relationship with depth of visibility, pH, alkalinity, tds, conductivity ,chloride and phosphate however the negative relationship with nitrate, NPP, GPP and respiration. Chloride content in water may indicate the level of pollution (Goel et.al ,1980); Domestic and industrial pollutants end to increase chloride content of receiving water bodies (Palariya and Rana 1985) Chloride may occour in fresh water as a result of dissolution of salts deposited in the soil (Michael 1986) . As depicted chloride concentration varied between 18.81-25.32 ppm with average value of 22.123 ppm. Water with high dissolved solids is of inferior potability and may induce an unfavourable physiological response in the body of consumer (Bhanja and Patra 2000) in the present study this parameter ranged between 178-200 ppm with an average value of 194 ppm. TDS shows a positive relationship with chloride, nitrate, total hardness and alkalinity. Phosphate are essential nutrients which are known to contribute in the process of eutrophication when present in excessive concentration .whereas moderate presens of these nutrient makes the water bodies suitable for growth of plankton and other fresh water communities. Ambient nutrient concentration particularly phosphorus is used as criteria in lake eutrophication models (Vollenwider ,1968). During the present study Phosphate ranged between 0.48-0.8432 ppm with average value of 0.6327 ppm. value of orthophosphate above 0.5 mg/l is a sign of organic pollution. Phosphate showed a positive correlation with respiration, chloride ,conductivity ,tds, total hardness and a negative relationship with NPP, GPP, nitrate and dissolved oxygen. Nitrate is the highest oxidized form of nitrogen (Goldman and Horne 1983) in present study the value of nitrate varied between 0.18 to 0.482 ppm with average value 0.2736 ppm the statistical computation indicated a positive correlation of nitrates with phosphate ,temperature, depth of visibility, PH,alkalinity ,total hardness, total dissolve solid . During the present study GPP and NPP along with rate of respiration have been estimated by light and dark bottles method. GPP of Pashupatinath pond is 170-205 ppm with an average 197.83 ppm and NPP range 80.2-127 ppm with an average of 98.7 ppm. The overall mean value of respiration for Pashuptinath pond comes to 99.3 (mgc/m2/hr). In Pashupatinath pond the fresh water Zooplankton consist mainly of 4 major group i.e. Protozoa,.Rotifers, Cladocerans and Ostracods . In the Pashupatinath pond 9 forms of protozoans belonging to 9 families were reported. Rotifers were represented by 27 forms belonging to 8 families. Along with these, 26 forms belonging to 7 families of Cladocerans and 11 forms of Copepoda belonging to 3 families and 5 ostracods were also recorded. The diversity index of 0.1466 was noticed during the study.

In the group Protozoa Volvox sps., Phacus sps., Diffugia sps. and Arcella sps. were dominant.Brachionus calciflorus ,Keratella tropica Hetrospina,Polyarthra vulgaris were dominant in the group Rotifera.In the group Cladocera Diphnosoma brchyurum,Ceridophenia rigaudi,Daphnia ambigua ,Bosminidae sps.,Alonella nana were dominant.In the group Copepoda was dominated by Heliodiaptomus viddus,Cyclops levckarti Mesocylops hyalinus .In the group Ostracoda Heterocypris ,Cyclocypris.

References :-

1. APHA, (1989). Standard methods for the examination of water and waste water. American Public Health Association, Washington, D.C. (17th Ed.), 1452 pp.
2. Hutchinson, G.E.(1957). A treatise on limnology. Vol. 1 Geography, Physics and Chemistry. John Wiley and Sons Inc. New York. 10-15pp.
3. Karki, S.B. (1988). Studies on some immunological aspects of selected closed water ecosystems of Udaipur, India. Ph.D. Thesis, M.L. Sukhadia University, Udaipur (Raj).
4. Pathak ,S.K.(2004) limnological status of Virla reservoir District West nimar (Khargone) M.P. India Ph_d thesis D.A.V.V. Indore (M.P.)
5. Pandey, J. and Sharma, M.S. (2003). Env. Sci. Practical and field manual, Yash Pub. House, Bikaner.
6. Ranu (2001). Studies on toxicity of textile effluents to freshwater zooplankton. Ph_D. Thesis, M.L. Sukhadia University, Udaipur (Raj.).
7. Rao, P.S. (1984). A study of primary productivity plankton and some Physico-chemical features of the lake Jaisamand in relation to fisheries. Ph_D. thesis, M.L. Sukhadia University, Udaipur.
8. Reid, O.K. (1961). Ecology of Inland waters and Esturaries. Reinhold Corp., New York, p. 375.
9. Russel-Hunter, W.D. (1970). Aquatic Productivity, Mcmillin, London. 306 p.
10. Ruttner, F. (1953). Fundamental of Limnology. Univ. of Toronto Press, Toronto, 242 p.
11. Sharma, L.L. (1980). Some Limnological aspects of Udaipur waters in comparison to selected waters of Rajasthan. Ph_D. Thesis, University of Udaipur.
12. Sharma, L.L. and Gupta, M.C. (1994). Some aspects of limnology of Amarchand Reservoir, District, Rajsamand, Rajasthan, Physical Parameters, Poll. Res. 13(2) : pp. 169-177.
13. Sharma, Vipul (2007), Biodiversity of Planktonic and littoral Cladocerans in water bodies of South Rajasthan. Ph_D.Thesis M. L. Sukhadia University Udaipur (Raj).
14. Sharma ,R(1993) Limnological studies on yashwant sagar reservoir with special refrence to plankton dynamics Ph_d thesis D.A.V.V Indore (M.P.)
15. Trivedy, R.K., Goel, P.K. and Trisal, C.L. (1987). Practical methods in ecology and environment science. Environmental Publ. Karad.
16. Ujjain, N.C., Sharma, L.L., Kohli, M.P.S. and Jain, A.K. (2007) Physico- chemical properties and productivity of different water bodies from Southern Rajasthan (India). Proceeding National Symposium on Limnology. pp.:193 -197.
17. Verma, D. (2006) Studies of water pollution of the River Narmada in western Zone .Ph_D thesis D.A.V.V. Indore (M.P.)
18. Wetzel, R.G. (1983). Limnology, second edition Saunders College Publishing House, U.S.A., pp.767.

Table 1 - Morphometric features of Pashupatinath pond

1	Latitude	24°3 - 20.54' N
2	Longitude	75°4 - 21.91'E
3	Water spread area	1.2 Sq.km
4	Catchment area	11.8Sq.km
5	Length	1000 m.
6	Width	152.4 m.
7	Depth	3.04 m.
8	Maximum capacity of Reservoir	10 Mcft.
9	Average rain fall	657.3 mm.
10	Year of construction	1995
11	Type of Dam	Masonry

Table 2 - Seasonal Variation in density of Zooplanktonic groups (no./l) in Pashupatinath Pond during 2008-10

Year	Season	Protozoans	Rotifers	Cladoceras	Copepods	Ostracods	Insects	Misc.	Total
2008-09	Winter	4	14	30	10	2	1	4	65
	Summer	5	21	22	8	7	2	2	67
	Monsoon	5	10	25	4	2	-	-	46
2009-10	Winter	7	20	63	7	7	4	2	110
	Summer	7	37	28	19	1	2	1	95
	Monsoon	5	34	32	16	1	1	1	90

Table 3 - Biodiversity of zooplankton in Pashupatinath pond during year 2008-10 on basis of Menhinick's index and Shannon Weaver's index

S.No.	Location	Menhinick's index	Shannon weaver's
1	Pashupatinath Pond	5.5301	0.1466

Figure 1 - Group-wise composition of zooplankton in Pashupatinath pond during 2008-10.

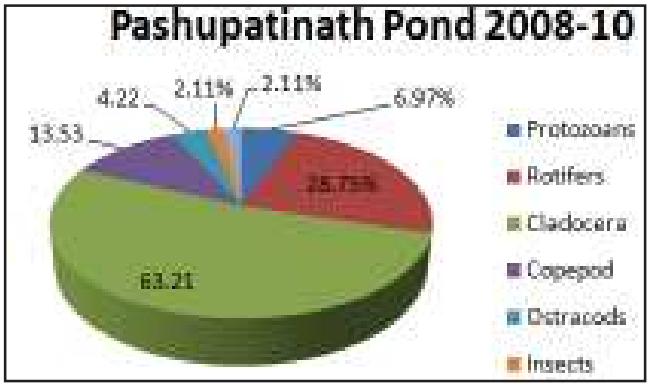

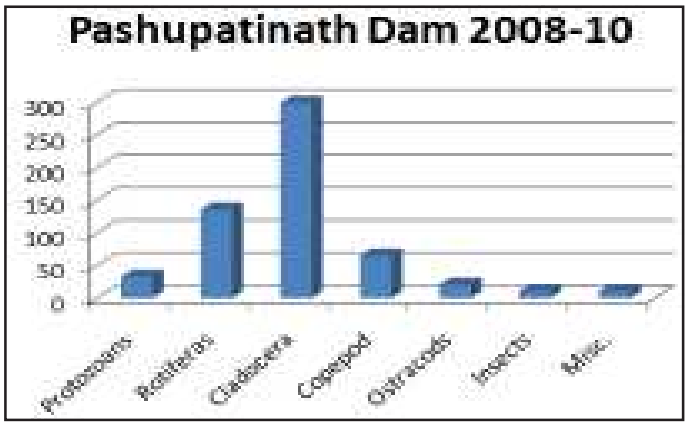

****

Biodiversity & Its Conservation

Dr. Sushila Shrivastava *

Introduction - Biodiversity - Biodiversity is the abbreviation of biological diversity, term for variety or diversity within the biological world.

Biodiversity In India - India is one of the 19 mega biodiversity countries & a rich biodiversity is attributed to the presence of a variety of ecosystems & climates. So far, about 70% of the total area has been surveyed for biodiversity assessment. More than 45,000 wild species and 81000 wild species of animals have been identified. Together they represent 6.5% of the world's biodiversity.

About 18 % of all plants found in India are unique to the country. At least 166 crop species & 320 species of wild relatives of crops originated in India. We also have a large variety of domesticated species. For example, the number of rice varieties alone ranges from 50,000 to 60,000.

Threats To The Biodiversity Of India - At least 10% of India's plant species & a larger percentage of its animal species are threatened. The Cheetah & the pink headed duck are amongst the well known species that have become extinct. More than 150 Medicinal plants have disappeared in recent decades. About 10% of flowering plants, 20% of mammals & 5% of birds are threatened.

Hundreds of crop varieties have disappeared & even their genes have not been preserved. The green Revolution encouraged farmers to plant the new high yielding varieties replacing the indigenous ones. In place of thousands of varieties of rice, Indian farmers now plant just a small number of HYVs.

Conservation Of India's Biodiversity - The first protected area in the country was Corbett National Park established in 1936. Currently there are more than 500 national parks, sanctuaries & biospheres reserves covering about 5% of the land. There are 35 botanical gardens & 275 zoos, deer parks, safari parks & aquaria. In May 1994, India became a party to CBD. In Jan 2000, the government released the National Policy & Action strategy on Biodiversity.

The Indian Parliament passed The Biodiversity Bill in Dec. 2002. The main intent of this legislation is to protect India's rich biodiversity & associated knowledge.

Loss Of World's Species - Before humankind became very active, the world was losing annually one out of every million species. In early 20th century, we are perhaps losing one species a year. Now we are losing one to hundred species a day. More than 20 % of the current species could be gone by 2030 & 50% by the end of the century.

Causes Of Biodiversity Loss - The major causes for the decline of Biodiversity are :

1. Habitat loss & degradation
2. Habitat fragmentation.
3. Commercial hunting & poaching.
4. Introduction of non-native species. It can reduce or wipe out many local species.

Geographical Spread Of Biodiversity - The vast majority of all species are in the developing countries. Biodiversity is less in the colder northern regions. The density of species is very high in the southern hemisphere. About 70% of the world's species is found in just 12 countries: Australia, Brazil, China, Columbia, Costa Rica, Ecuador, India, Indonesia, Madagascar, Mexico, Peru & Democratic Republic of Congo.

Extinction Of Species - By extinction, we mean the complete disappearance of a species, i.e. not a single member of the extinct species is found on the earth. It is an irreversible loss & is called biological extinction.

There are mainly two ways in which species become biologically extinct.

a. **Background Extinction** – It refers to the gradual disappearance of the species due to changes in local environmental conditions.
b. **Mass Extinction** – On occasions, it has occurred on earth. It is characterized by a rate of disappearance significantly higher than the background extinction. Scientists believe that there have been five mass extinctions over the past 500 million years. In each case, the character of ecological communities changed dramatically.

The most severe extinction occurred about 225 million years ago, when 95% of marine species vanished. The most famous (and the last) mass extinction, however, took place about 65 million years ago, when the giant dinosaurs, which had ruled the world for 140 million years, were wiped out.

Both biological & environmental factors could have led to mass extinctions. The suggested causes include global cooling, falling sea levels, predation, competition & a hit by a giant comet or asteroid.

* Asst. Professor (Zoology) Govt. N.S.P. Sc. College, Indore (M.P.) INDIA

Impact Of Biodiversity Loss - The poor people in the developing countries, who are dependent on biodiversity for their daily survival, will feel the impact first. Soon however, the industrialized countries will also start experiencing the effects. Most of their food crops, medicines, textiles, spices, dyes & paper originate from plants in the developing countries.

Biodiversity Conservation - In biodiversity conservation we study how human activities affected the diversity of plants & animals and develop ways of protecting that diversity. Conservation ranges from protecting the populations of a specific species to preserving entire ecosystems.

There are two main types of conservation. In situ (on-site) conservation tries to protect species where they are, i. e. in their natural habitat. Ex situ (off-site) conservation attempts to protect species in a place away from their natural habitat (storage of seeds in banks, breeding of captive animal species in zoos, setting up botanical gardens, aquariums). In general in-situ conservation is more cost-effective.

Convention Of Biological Diversity - The UN convention on Biodiversity (CBD) came into force in 1993.As of Feb. 2010, 193 countries are parties to the convention. The convention has three main goals.

a. The conservation of biodiversity.
b. Sustainable use of the components of biodiversity.
c. Sharing the benefits arising from the commercial & other utilization of genetic resources in a fair & equitable way.

References :-

1. R. Rajgopalan, Environment, Oxford University Press, 2011.
2. Purohit, S.S.*et.al.* A text book of Environmental Sciences, Student Edition, 2004.

****

Chemodiversity - The Marine Treasure of the Future

B. K. Dangarh *

Abstract - Chemistry is the preferred mode of aquatic communication, thanks to the extraordinary solvation properties of water. Bacteria create biofilms inside which they communicate using their own chemical repertoire before colonizing new media, substrates or organisms.**Chemodiversity** usually refers to small **molecules that have a signaling** (offensive or defensive) function, sometimes protective. This leaves aside larger molecules that are purely structural and those that participate in essential metabolic functions, and make up the bulk of the organic body mass of living organisms.

To-date, very little is said or written on the fate of natural chemodiversity within the contextof local or general biodiversity collapse, both terrestrial and marine. After a brief historicalaccount of the intricate connections between chemodiversity and biodiversity since lifeappeared on our planet, this paper attempts to demonstrate that natural molecular diversityis a treasure to preserve for future generations, using a series of marine examples.

Key Words - Chemodiversity, Biodiversity, Marine ecology, Signaling.

Introduction - Over the last three decades, warning messages have been sent to the community about thedestructive consequences worldwide economic development will have on biodiversity, bothterrestrial and marine, during the 21st century. Direct impacts are caused by overexploitationand mismanagement of natural resources and improper recycling and disposal of wasteproducts.

Chemistry is the preferred mode of aquatic communication, thanks to the extraordinary solvation properties of water. **Chemodiversity** usually refers to small **molecules that have a signaling** (offensive or defensive) function, sometimes protective Bacteria create biofilms inside which they communicate using their own chemical repertoire before colonizing new media, substrates or organisms. Microalgae form blooms which are maintained by releasing semi chemicals for cell-cell recognition. Fish rely on their extraordinary sense of smell to hunt or to migrate to some specific breeding spot. The extraordinary biodiversity of coral reefs is maintained by a highly complex chemical network of toxins and pheromones, some soluble, some dispersed with a mucus carrier or surface-coated. But not only: the amazing colors used for warning or for camouflage, the bioluminescence used in the dark correspond to very sophisticated assemblages of pigments, small metabolites or proteins, each organism having its own strategy to be visually recognized or to blend into the background.

Humans have only recently been aware of the extraordinary potential marine molecules for the design of new drugs, cosmetics and nutraceutics. Well over **20000** natural molecules have been studied so far, and several have responded to the need for novel anticancer, antibiotic, anti-inflammatory or anti-pain agents etc. The necessity to preserve this exceptional resource, however, has only manifested itself in the delineation of protected areas and in the implementation of codes of good practices regarding non-destructive boating and durable sampling protocols.

The Chemical Origin Of Life On Earth - Irrespective of when the right conditions were first met for life to emerge, a small set of small organic molecules (reactants) is a prerequisite for the abiotic generation of life-essential molecules, in the presence of water and of some catalytic trigger, and later of thermodynamically favorable conditions for polymers to be built.

Different approaches have attempted to address the question of the chemical origin of life, leading to apparently conflicting conclusions: the “prebiotic soup theory” and the “pioneer organism theory”, fueling heated debate among specialists, and also reflecting the uncertainties that still remain on the greatest mystery in science.

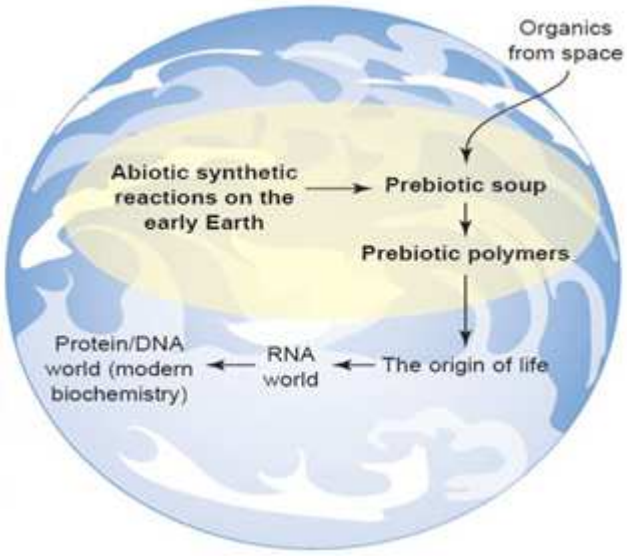

* Asst. Prof. (Chemistry) Govt. P. G. College, Neemuch (M.P.) INDIA

FIGURE 1 Depiction of the step-by step scenario involved in the origin of life on earth[1]

Chemodiversity as we know it today is mostly organic and is the result of complex biochemical processes within living organisms that must constantly adapt to changing environments and compete for their survival.

Chemodiversity Explodes With The Emergence Of Life- Chemodiversity is usually classified as mineral or organic. Organic chemodiversity is concentrated in the biosphere, as the result of the present and past metabolic processes of marine and terrestrial organisms. Chemically, organic molecules are carbon atoms and scaffolds of connected carbon atoms, linked to hydrogen and covalently to heteroatoms e.g. oxygen, nitrogen, atoms but also to sulfur, phosphorus and halogens or metal complexes (*coordination chemistry*) to form functional groups.

Organic chemodiversity is concentrated in the biosphere, as the result of the present and past metabolic processes of marine and terrestrial organisms. Chemically, organic molecules are carbon atoms and scaffolds of connected carbon atoms, linked to hydrogen and covalently to heteroatoms e.g. oxygen, nitrogen, atoms but also to sulfur, phosphorus and halogens or metal complexes (*coordination chemistry*) to form functional groups.

Marine Biodiversity And Chemodiversity Today -Water is an extraordinary medium and, in many respects, mysterious. Its outstandingsolvation properties are due to the capacity of the water dipoles (H-OH) to dissociate,re-orientate and accommodate salts and polar compounds in a monophasic system[2]. Saltsare essential to maintain osmotic balance and membrane polarization. Hydration is essentialfor the catalytic properties of enzymes. Semiotic (communication) substances are usuallyreleased as pheromones (intra-specific signaling) or allomones (against defense or predation).In addition, apolar (long chains or cyclic) molecules can be associated with mucus anddispersed. Some chemical cues are surface-adsorbed on dead substratum and serve as transgenerationsignaling, e.g. for the settlement of larvae near adult colonies. Fish have extraordinarilysensitive and selective receptors that allow them to detect specific chemical signaturesthat influence their behavior.Water participates in all life-essential molecular processes, from the most basic (e.g. Miller'sexperiment) to the most complex enzymatic processes, and it has allowed virtually all typesof interatomic and molecular interactions that have resulted in the highly complex and diversechemical diversity observed in our oceans today.

Minerals And Geochemical Cycles - The mineral world is massively involved in global geochemical processes, and in the composition of solutes in the oceans, as salts and inorganic carbon sources. The cycling of elements is both tectonic and biogenic. Metals are essential catalysts of many organic reactions, and salts are actively involved in osmotic balance and membrane polarization. The availability of heteroatoms (P, S, halogens in particular) is (and has been originally) fundamental in the evolution of natural organic chemistry, because of their involvement in life-essential processes.

Prokaryotes and prokaryote chemistry - Microbes are the drivers of global biogeochemical processes, and their genes have survived the great extinction events[3]. They have set the stage for other organisms to adapt and evolve. The capacity for pioneer organisms to modify their environment for the benefit of other life forms is termed metabiosis, and it has been largely documented in soil biology[4], but somewhat overlooked in aquatic ecosystems. They can occupyevery niche of the biosphere, utilize different carbon and/or energy sources available in order to generate ATP, the energy currency of all biochemical processes.A distinction is made between chemotrophs and phototrophs as primary producers of organicmolecules.

Chemotrophs - Chemotrophic Archaea and Bacteria that live in oxygen-depleted environments (e.g. in the vicinity of hydrothermal vents) derive their energy from the oxidation of reduced inorganic compounds and use (i) carbon dioxide as sole carbon source or (ii) lipids, sugars or proteins to form their own organic compounds. Chemotrophic Eubacteria include chemoautotrophs which utilize inorganic sources and environmental CO2, (like nitrogen-fixing soil bacteria, iron and manganese-oxidizing hydrothermal bacteria) and chemoheterotrophs which degrade existing organic substrates.

Phototrophs - Phototrophs harvest solar photons as the energy source to carry out their cellular energyprocesses. Most phototrophs carry out photosynthesis, a process by which carbon dioxide is converted into organic material, used structurally (generally as polymers or supramolecular complexes) or functionally for the regulation of cellular processes, or stored as reserves.

A trans-membrane electrochemical gradient is created, which is utilized by ATP synthase, to create ATP (adenosine triphosphate), the key molecule that fuels biochemical processes in the cell, from the oxidation of glucose. Oxygen is generated in the process.

Heterotrophs - the good, the bad and the ugly - Many bacteria derive their energy from the breakdown of organic substances produced byliving or dead multicellular organisms. They are instrumental in the recycling of dead organicmatter, and many strains live as commensals or symbionts of most eukaryotes, to help thehost's digestion with nutrient assimilation or with the energy-yielding catabolism of proteins,carbohydrates and lipids into small, usually water-soluble monomers.

Eukaryotes and Eukaryote-associated chemistry - Many eukaryotes have successfully colonized non-aquatic environments.This increase in biodiversity has itself led to competition for existing resources: food, space,access to light etc. Algae are generally non-toxic, but may contain antifeedants such as organohalogens orpolyphenols that are distasteful to fish[5]

Evolutionary reflections of chemical defenses in marine symbiotic systems have been recentlyproposed by[6].

Symbiotic and photosymbiotic systems that associate an invertebrate or algalhost and its specific microbial consortium are common in tropical shallow water reefs, whichconcentrate at least one third of the total marine biodiversity and certainly the largest proportionof all known "secondary" metabolites[7]. To these must be added marine fungi andactinobacteria that live in marine sediments.

A generally overlooked component of marine chemodiversity is mucus, sometimes constantlyand abundantly produced by epithelial goblet cells of cnidarians, and also found in othersessile invertebrates, and also in fish.

Behavioral adaptations like "advertising" (aposematic) colors and body shapes make use ofcolored metabolites borrowed from the prey organisms and concentrated into superficialdiverticula. Specialist predators like shell-less mollusks like dorid nudibranchs are beautifullycolored and highly toxic. Several aeolid nudibranchs on the other hand use camouflage forsimilar reasons.

References :-

1. Bada JL, Lazcano L. Some like it hot, but not the first biomolecules. Science 2002; 296:1982-1983
2. Dill KA, Truskett TM, Vlachy V, Hribar-Lee B. Modelling water, the hydrophobic effectand ion solvation. Annu. Rev. Biophys. Biomol. Struct. 2005;34: 173–99
3. Falkowski, PG, Fenchel; T, Delong, EF. The microbial engines that drive earth's biogeochemicalcycles. Science 2008; 320: 1034-1039.
4. Waid JS. Does soil biodiversity depend upon metabiotic activity and influences? AppliedSoil Ecology 1999;13: 151-158.
5. Hay ME, Fenical W. Marine plan-herbivore interactions: the ecology of chemical defense.Annual Review of Ecology and Systematics, 1988;19: 111-145.
6. Lopanik, N.B. (2013) Chemical defensive symbioses in the marine environment.Functional Ecology, doi: 10.1111/1365-2435.12160
7. La Barre S. Novel tools for the evaluation of the health status of coral reefs and forthe prediction of their biodiversity in the face of climatic changes. In: Zambianchi E.(ed.) Topics in Oceanography. Rijeka: InTech; 2013. P127-155.

****

Green Chemistry : Study of acid-base indicator property of Basella alba (Indian spinach)

Prashant Thote *

Abstract - In acid- base titrations, indicators are used to show a sharp color changes at interval of pH.Natural pigments in plants are highly colored substances and may show color changes with variation of pH. An attempt has been made to investigate the indicator activity of root extract of golden beet root and to replace the synthetic indicators as they have certain disadvantages like chemical pollution, availability problems and high cost. A purple coloured dye obtained from the ripe fruits of Basella alba .A study has been done to investigate the indicator activity of aqueous extract of fruit pigments and compared with that of already existing synthetic indicators. Pigments were extracted using hot water and a definite volume was added which gave accurate and reliable results for all the four different types of neutralization titrations - strong acid against strong base, strong acid against a weak base, weak acid against strong base and weak acid against weak base. The work proved to be acceptable in introducing root pigments as a substitute to the synthetic acid-base indicators.

Key Words - Basella alba, pH indicators, natural pigments, flower pigments, neutralization indicators, phenolphthalein substitutes.

Introduction - Commercial indicators are expensive and some of them have toxic effects on users and can also cause environ-mental pollution. For these reasons there has been an increasing interest in searching for alternative sources of indicators from natural origins. These alternatives would be cheaper, more available, simple to extract, less toxic to users and environmentally friendly. Volumetric analysis is one of the key quantitative techniques used to analytically determine both inorganic and organic acid interaction with strong or weak acids and bases in raw materials, intermediates and finished products for quality assurance purposes . This is accomplished via the use of appropriate weak organic dyes or acids pH indicators. Most pH indicators are either weak organic acids or bases dyes which accept or donate electrons. The change in color at a marginal range is attributed to their acidity or basicity properties. Although there are automated titration apparatus that determine the equivalent points between reacting species, indicators are still needed for teaching and research laboratories for simple titration.

Flavanoids are colored compounds that can be isolated from various parts of plants like flowers, fruits and are pH sensitive. Therefore it has been hypothesized that the fruit extract could be utilized as an indicator for different types of acid base titrations. The pulps of the fruit are pH sensitive and give different colors in acidic condition (pink) and basic condition (greenish yellow). The equivalence points obtained by using fruit extract matched with the equivalence points obtained by standard indicators. Flavones are soluble in water and alcohol and can be extracted by chopping and macerating the plant material, soaking it for a few minutes in hot water or rubbing with alcohol.

Colours of substances make the world a wonderful place. Because of the colours and structures; flowers, plants, animals, and minerals show their unique characters. There are various organic and inorganic compounds responsible for natural colours. Some of the organic compounds i.e. flavonoids, flavonols, acylated flavonoids, anthocyanins, glucosylated acylated anthocyanin, quinines, imines, polymethines, napthaquinones, anthraquinonoids, indigoids; dihydropyrans diarylmethanes carotene etc. imparts colours to the flower. Among them anthocyanidins and flavones are main.

The world has become aware of environmental issue in recent years. Synthetic compounds are highly polluting, hazardous and much more costly. Researchers are working in the field of natural products extensively as they are less hazardous, low cost, easily available, and eco-friendly.

Basella alba (Indian spinach), called Poi ka sag by the people of the Central India , is a very popular vegetable in many communities of Central India. Recently, Thote et al. (2013) extracted a purple dye from the ripe fruits of B. alba with several solvents including methanol and ethanol. The purple dye was applied on 100% cotton and polyester fibres and the wash fastness, heat fastness and light fastness properties of the dye were evaluated, but the acid-base indicator properties of this purple dye were, however, not reported. In this paper, we report the findings of our investigations on the acid-base indicator properties of dyes obtained from plants, Basella alba.

Review of Literature - Natural indicators have been extracted from Hibiscus (red species), Bougainvillea and rose flowers . Several authors have reported on the effectiveness

* **Principal,Gyanodaya Vidya Mandir, Narsingarh (M.P.) INDIA**

of natural indicators in acid-base titrations e.g. Nerium odorum Thespesia populnea extract used as indicators; Morus alba linn fruit extract indicator and Ixora coccinea, Datura stramonium, Sun flower (Helianthus annus), pride of Barbados (Caesalpinia pulcherrima) and rail creeper (Ipomoea palmate) flower petal extracts . The natural indicator sources investigated in these papers have been extracted and prepared using ethanol, water, or methanol.

Plant materials - The collection of fresh fruit of Basella alba from local market of Narsingarh Madhya Pradesh, India. It was then authenticated at Department of Botany, P.G. College .

Experimental procedure - The root of golden were separated and cleaned with distilled water. It was then cut to small pieces and transferred to a clean beaker. 100 ml of distilled water was taken in another beaker and gently warmed and poured to the petals and kept aside for 15 minutes. The extract was then poured carefully to a glass container through a funnel and stored aside separately without exposing to direct sunlight.

Reagents - Reagents of analytical grade were used. Sodium hydroxide, ammonia, hydrochloric acid, ethanoic acid and phenolphthalein were obtained from Department of Chemistry Gyanodaya Vidya Mandir, Narsingarh . The reagents and volumetric solutions were prepared as per Indian pharmacopeia IP 1996.

Glass wares - Burettes, pipettes etc were calibrated as per the procedures given in Indian pharmacopeia IP 1996.

Preparation of root extract - 1 g fresh fruit of Basella alba were extracted with warm water for 15 minutes and the aqueous extract separate and were maintained.

Test for color change - 0.1 ml of the extract was added to 25 ml each of buffer solutions of pH ranging from 1.

Table 1a. Titration of HCl against NaOH using aqueous Basella alba fruit extract indicator.

S. No	Vol of acid (ml)	Burette reading		Volume of titrant (mL) mean = £x/n
		Initial (ml)	Final (ml)	
1	25.0	0.0	24.50	24.50
2	25.0	0.0	24.60	
3	25.0	0.0	24.50	
4	25.0	0.0	24.50	
5	25.0	0.0	24.50	

Table 1b. Titration of HCl against NaOH using Phenolphthalein indicator

S. No	Vol of acid (ml)	Burette reading		Volume of titrant (mL) mean = £x/n
		Initial (ml)	Final (ml)	
1	25.0	0.0	25.10	25.10
2	25.0	0.0	25.00	
3	25.0	0.0	25.10	
4	25.0	0.0	25.10	
5	25.0	0.0	25.10	

Table 2a. Titration of HCl against NH3 using aqueous Basella alba fruit **extract indicator**

S. No	Vol of acid (ml)	Burette reading		Volume of titrant (mL) mean = £x/n
		Initial (ml)	Final (ml)	
1	25.0	0.0	24.70	24.80
2	25.0	0.0	24.80	
3	25.0	0.0	24.80	
4	25.0	0.0	24.80	
5	25.0	0.0	24.80	

Table 2b. Titration of HCl against NH3 using Phenolphthalein indicator

S. No	Vol of acid (ml)	Burette reading		Volume of titrant (mL) mean = £x/n
		Initial (ml)	Final (ml)	
1	25.0	0.0	24.80	24.90
2	25.0	0.0	24.90	
3	25.0	0.0	24.90	
4	25.0	0.0	24.90	
5	25.0	0.0	24.90	

Table 3a. Titration of Acetic acid against NaOH using aqueous Basella alba fruit **extract indicator extract indicator**

S. No	Vol of acid (ml)	Burette reading		Volume of titrant (mL) mean = £x/n
		Initial (ml)	Final (ml)	
1	25.0	0.0	23.70	23.80
2	25.0	0.0	23.80	
3	25.0	0.0	23.80	
4	25.0	0.0	23.80	
5	25.0	0.0	23.80	

Table 3b. Titration of Acetic acid against NaOH using Phenolphthalein indicator

S. No	Vol of acid (ml)	Burette reading		Volume of titrant (mL) mean = £x/n
		Initial (ml)	Final (ml)	
1	25.0	0.0	23.50	23.60
2	25.0	0.0	23.60	
3	25.0	0.0	23.60	
4	25.0	0.0	23.60	
5	25.0	0.0	23.60	

Table 4a. Titration of Acetic acid against NaOH using aqueous Basella alba fruit **extract indicator**

S. No	Vol of acid (ml)	Burette reading		Volume of titrant (mL) mean = £x/n
		Initial (ml)	Final (ml)	
1	25.0	0.0	24.30	24.30
2	25.0	0.0	24.30	
3	25.0	0.0	24.30	
4	25.0	0.0	24.30	
5	25.0	0.0	24.40	

Table 4b. Titration of Acetic acid against NH3 using Phenolphthalein indicator

S. No	Vol of acid (ml)	Burette reading		Volume of titrant (mL) mean = £x/n
		Initial (ml)	Final (ml)	
1	25.0	0.0	24.50	24.50
2	25.0	0.0	24.50	
3	25.0	0.0	24.50	
4	25.0	0.0	24.50	
5	25.0	0.0	24.50	

Titrations - 0.1 ml of the extract was added as indicator for each titration type- strong acid against strong base, strong acid against weak base. Weak acid against strong base and weak acid against weak base and the trials were repeated 5 times to check the precision. The titrations were again performed using phenolphthalein indicator as standard and the results obtained were compared with the results of titrations using plant extract indicator. The results for titrations are depicted in the tables 1a to 4b.

Conclusion - The equivalence point of the titrations using the fruit extract either coincided or almost reached close to the equivalence point using the standard indicator, phenolphthalein for all the titrations. In several cases it proved to be more reliable than the standard indicator and gave sharp color change at equivalence point. It was also observed that the extract act reversibly and gave sharp color change in both the directions.

Thus the study helped to realize that the root pigment of Basella alba fruit extract could be effectively used as a substitute to the presently existing indicators owing to the factors like simple preparation, good performance and accurate and precise results.

References :-

1. Patil M.V. ,Jadhav R.L. (2012) Use of Phyllanthus reticulatus Fruit Extract as a Natural Indicator in acid base titration International Journal of Pharmacy and Pharmaceutical Sciences Vol 4, Suppl 1, 2012
2. Pathan Mohd Arif Khan, Mazahar Farooqui (2011) Analytical Applications of Plant Extract as Natural pH Indicator: A Review J Adv Scient Res, 2011; 2(4): 20-27
3. Prashant Thote and Mansi Khare (2013) Investigation of a Simple and Cheap Source of a Natural Indicator for Acid-Base Titration: Effect of System Conditions on Natural Indicators Journal of Research ,Extension and Development (accepted for publication)
4. Prashant Thote and Medha Singh (2013) Investigation of a Simple and Cheap Source of a Natural Indicator for Acid-Base Titration: A small step for Eco-Friendly Environment Journal of Research ,Extension and Development vol.02 no 03 pp 54-65
5. Prashant Thote (2013) Isolation of herbal acid-base indicator from the seeds of Tagetes erecta Journal of Research,Extension and Development vol.02 no 00 pp 45-51
6. Prashant Thote Investigation of a simple an chef source of a natural Indicator for Acid-Base Titration :Effect of system Conditions on Natural Indicators (Unpublished work)
7. Sajin Kattuvilakam Abbas (2,012) Study of acid-base indicator property of flowers of Ipomoea biloba International Current Pharmaceutical Journal 2012, 1(12): 420-422.

****

Sustainable Development and Conservation Of Environment

Nilofer Yadav *

Abstract - Sustainable development is a development which using resources now and preserving them for future generations. Sustainable development involves economic growth, environmental protection and social equity and implies greater fairness in distributing the gains from growth among people and countries.

It concerns preserving environment and natural resources as a basis for progress and making policy. The concept of Sustainable development recognizes global co-operation for achieving sustainable economic, environmental and social conditions worldwide. Governments should enable them to align economic, environmental and social pillars of sustainable development in decision-making.

The challenge of Sustainable development is now recognized worldwide. Three dimensions: the interaction between culture, structure and technologies, the approaches optimization improvement- and the parties involved. Renewal of systems requires new ways of search of processes comprising human needs as a starting point. The aim of this report is to analyze the meaning of the Sustainable development and challenges and prospects of the Sustainable development.

Keywords: Sustainable development, Sustainable technology, Optimization–improvement–renewal, Culture–structure–technology, Needs, Eco efficiency.

Introduction - The term "sustainable development" first appeared in the the Brundtland Report in 1987 as "development that meets the needs of the present without compromising the ability of future generations to meet their own needs".

Sustainable development involves economic growth, environmental protection and social equity and implies greater fairness in distributing the gains from growth among people and countries.

Salient Features of Sustainable Development - Salient features of "Sustainable Development" as culled out from Brundtland Report and other international documents such as Rio Declaration and Agenda 21 are as follows:

1. Inter-Generational Equity,
2. Use and conservation of Natural Resources,
3. Environmental protection,
4. The Precautionary Principle,
5. The Polluter Pays Principle,
6. Obligation to Assist and Cooperate,
7. Eradication of Poverty, and

General principles, rights and responsibilities for environmental protection and sustainable development .

The world Community at Rio Conference was unanimous on two points i.e., to prevent global climate change and eradication of biological diverse specie. Accordingly The convention on biodiversity requires the States to take steps for protection and sustainable use of the world's diverse plant and animal spccies.

It concerns preserving environment and natural resources as a basis for progress and making policy. The concept of sustainable development recognizes global co-operation for achieving sustainable economic, environmental and social conditions worldwide. Governments should enable them to align economic, environmental and social pillars of sustainable development in decision-making.

Urbanization all over the world are developing. This urbaniz- ation process is causing a number of problems and can be met by sustainable development policies. Sustainable development is a development which using resources now and preserving them for future generations.The economic development can not be separated from environmental protection and social progress.

Challenges - The challenge of sustainable development is now recognized world wide. Today the world faces new challenges. The modern world development results in a depletion of the natural resources, an increase of negative environmental impact, a deterioration of the biosphere balance. The consequences of the climate change have become perceptible everywhere in the world. That is why the need to provide sustainable development is urgent. The core of this idea is the necessity to fit our constantly growing demands in the planet's natural capacity.

Implementation of the sustainable development tasks based on market economy means to ensure market demands on natural resources, ecosystem services and related characteristics of the goods, consumer demands (including by population and State). This measure will enable to stimulate the developed countries to diminish the negative environmental impact as well as to encourage the developing countries into defining ways of their development towards

* **Asst. Director, Directorate of Urban Administration, Bhpoal (M.P.) & Research Scholar, Barkatullah University, Bhopal (M.P.) INDIA**

the green economy, preservation and augmentation of natural capital through its capitalization and receiving benefits from the global community. These are the directions that should determine today the priorities of aide in the combat against poverty. Urgent need to combine both - to fit the growing demands and to minimize the depletion of natural capital has been formulated today as a decoupling idea. It means to reduce energy intensity and resource intensity in economic growth, to widely use renewable energy sources, to modernize production on the basis of innovations. This is the direction that sets today's priorities for growing economies and firstly for the BRICS nations.

Modernization should consider enormous potential in the use of renewable energy sources. This means to encourage energy production on the basis of renewable energy sources. This means to work out and pursue a new policy. The starting point in this regard should be that the ecology today is economy. That is why the mainstream development is determined as green economy. It is environmental standards that set directions of innovative development and modernization of production to ensure long-term successful economic development. top-priority measure to assess the situation and determine action priorities is to introduce a system of indicators of sustainable development.

These are primarily indicators of the resource intensity and energy intensity in economic growth and specific indicators of pollution. Moreover, accumulated environmental damage, resource depletion, landscape degradation and the impact of pollution on human health should be taken into account. It is principally important, especially to determine prospects for development and to assess the use of renewable energy sources, to evaluate ecosystem services (including various ecosystems, biological resources, biodiversity and area of protected natural reserves). Progress in the dissemination of the ideas of sustainable development and active participation in this process means their adjustment to the specifics of each country. The concepts of sustainable development and the ways of its implementation are different in various countries and will undoubtedly keep changing further on. It is necessary to assess achievements and challenges on the way to sustainable development at the national level.

Major challenge for the sustainable development are Population, Poverty, Inequality, shortage of drinking water, Human Consumption of energy, Deforestation, Petrol consumption .

Prospects - The 1992 Rio Earth Summit was enshrined in Agenda 21, a plan of action, and a recommendation that all countries should produce national sustainable development strategies.

The conceptual meaning of sustainable development is not to create an obstacle in development process but this concept belongs to how we utilize our resources so that an inter-relationship can be established among present and future generation. To attained sustainable development many probable strategies can be useful.

Input Efficient Technology can be reducing the exploitation of resources. So this technology may good for sustainable development. Via Using of Environmental friendly Sources of Energy, such as LPG and CNG which are eco-friendly fuel, we can reduce the green house gases from the earth, Such as CO2 and other harmful gases.

Integrated Rural Development Programs. Through this the burden and interdependency on cities for employment can be decrease. To focus on renewable sources of energy like solar and wind for energy needs. It will be beneficial for the country like India, where is enough sun light, to Convert Sun light into solar Energy and Solar Energy in Electricity. It will create an atmosphere for green development. For attaining the sustainable development it is necessary for the government and society to control on the Tragedy of Commons. It means to stop the maximum use of easy available resources. With above these government should stimulate the organic forming and recycle the wastes. Last but not least, it is responsibility of citizens to encourage the awareness to conserve the natural assets for inter-generational equality.

The success of the implementation of the ideas of sustainable development depends on the pro-active position and awareness by the broader population. This requires educational and outreach activities, targeted work by the media and social advertising. Culture (including cinema, pop music and literature), natural and cultural heritage sites should play a special role to set sustainable development as a priority for the broader public. Civil society organizations, including both mass NGOs/NPOs and professional institutions of public policy should play a greater role in this regard. This means to develop a broad public movement to support sustainable development as a priority for civil society activities and to set this topic as a key area of support by the businesses and the governments.

The mankind has started to realize that increased social and natural abnormalities are consequences of our wrong behavior and to be aware of the responsibility for the future of the planet. In order to determine priorities for joint action one should refer to the universally accepted rules of conduct, ethic code approved by the global community.

We should admit that, although ideas of sustainable development are very pressing for all countries and require joint efforts by the international community, only developed economies are able to ensure serious advance in this direction. There are a several reasons for this: economic growth, abundant natural resources, search for an optimal way of development among them. Priorities for these countries in innovation policy, energy efficiency and economic modernization naturally determine their movement towards sustainable development. These nations are the ones that could become leaders in the movement towards sustainable development.

The focus of this paper is on the need to remove the barriers to sustainable development in modern societies. Alleviate poverty and disease, manage natural resources

rationally, and promote responsible consumption and production. The main emphasis was to use the benefits of globalization to establish a balance between development and environment.

Conclusion And Suggestion - Sustainable development is a vision and a way of thinking and acting so that we can secure the resources and environment for our future generation. It will not be brough tabout by policies only it must be taken up by society at large as a principle guiding the many choices each citizen makes every day, as well as the big political and economic decisions that affect many. It is clear that environmental degradation tends to impose the largest costs on those generations that are yet to be born. Future generations are disadvantaged with regards to present generations because they can inherit an impoverished quality of life, share a condition of structural weakness in having no voice and representation among the present generation and so their interests are often neglected in present decisions and planning while it is very much needful that we think about our generation. We can only improve sustainable development when it will put an emphasis on involving citizens and stakeholders. Ultimately, the vision will become reality only if everybody contributes to a world where economic freedom, social justice and environmental protection go hand in hand; making our own and future generations better off than now.

References :-

1. Anna Kurtycz (2005) „Understanding Environmental behavioral change through communication: a new perspective of environmental education , International Journal of environment and Pollution, Vol.4, No.1, pp 35 - 46.
2. Duit, R. (1999) „Conceptual change approaches in science education', in Schnotz, W., Vosniadou, S. and Carretero, M. (Eds.): New Perspectives on Conceptual Change, Pergamon, Amsterdam, pp.263–282. (10)
3. Hufschmidt, M., James, D., Meister, A., Bower, B., Dixon, J., (1983) Environment, Natural Systems and Development: An Economic Valuation Guide, John Hopkins University, Baltimore.
4. James D. (1993) Economic Analysis in Environmental Impact Assessments for Forestry Activities, working document (25/10/93) quoted with permission.
5. Jacobs, M (1991) The Green Economy; Environment, sustainable development and the politics of the future, Pluto press, London.
6. Knetsch, J. (1993) Environmental Valuation: Some Practical Problems of Wrong Questions and Misleading Answers, Resource Assessment Commission Occasional Paper # 5, AGPS, Canberra.
7. Amsterdam Smart city. "Amsterdam Smart city – projects''. Retrieved 2015-05-30.
8. Komninos,Nicos (2013-08-22). "what makes cities intelligent?''. In Deakin. Mark. smart Cities; Governing, Modeling and Analyzing the Transition. Taylor and Francis. p. 77. ISBN 978-1135124144.
9. Paskaleva, K (25 January 2009). "Enabling the smart city: The progress of e-city governance in Europe". International Journal of Innovation and Regional Development 1 (4): 405-422(18).doi: 10. 1504/ijir d.2009.022730.
10. Dept Business(2O13) Page 3 Arup estimates that the global market for smart urban systems for transport, energy, healthcare, water and waste will amount to around $400 Billion pa. by 2020.
11. Deakin, Mark; Al Waer, Husam. "From intelligent to Smart Cities'' .Journal of Intelligent Buildings International; From Intelligent Cities to smart Cities' 3 (3). doi: 10. 1080/1 7 508975.2011.586671.
12. Deakin, Mark (2013-08-22). "From intelligent to smart cities''. In Deakin, Mark. Smart cities" Governing, Modeling and Analyzing the Transition. Taylor and Francis. p. 15. ISBN 978-1135124144.
13. Giffinger, Rudlolf; christian Fertner; Hans Kramar; Robert Kalasek; Natasa pichler- Milanrovic; Evert Mijers (2007). "Smart cities - Ranking of European medium-sized cities" (PDF). ,Smart Cities. vienna: centre: of Regional Science.
14. Sarwant Singh (19 June 2014). "Smart cities - A $ 1.5 Trillion Market Opportunit''. ,Forbes. Retrieved 4 November 2014.

****

Pollution And Human Health

Reena Rai *

Abstract - If you have coughed from breathing, car exhaust, you have experienced a mild health effect of air pollution. Pollution of air, water, and soil is frequently in the news, because people in the United States are so concerned about pollution, our country enjoys a relatively clean environment. But this situation is also due to the efforts of scientists who have studied the relationship between pollution and human health, Scientists are also beginning to understand the broader relationships between health and the environment.

Pollution causes illness in two main ways, First, it may cause illness directly by poisoning us as in the cases of lead poisoning and lung cancer, second, pollution may cause illness indirectly because many infectious diseases spread in polluted environments. The WHO's study shows that, the people in developed countries suffer fewer health impacts due to environmental causes than people in developing countries do. The main factor behind this situation is the enormous role of infectious diseases, such as tuberculosis and cholera, which are more common in crowded areas with poor sanitation.

Introduction - Pollution from Natural Sources - Pollution as being entirely caused by people, but some pollutants occurs naturally in the environment. Naturally occurring pollutants usually become hazardous in the environment. One example is the radioactive gas radon, in some areas, radon from granite bedrock may seep into buildings, where it becomes concentrated. Because it is an odorless gas, people may unknowingly breaths it in. Radon causes an estimated 5,000 to 20,000 cancer deaths every year in the United States.

Particulates - The most common pollutant from natural sources are dust, soot, and other particulates. Particulates are the particles in the air that are small enough to enter into the lungs. These particulates deposits in lungs & cause irritation ending conditions, such as chronic bronchitis and emphysemas worse. These particulates may produce from, dust storm, volcanic eruption or wildfire.

Heavy Metals - Another important type of pollution from natural source is the so called heavy metals. Dangerous heavy metals include the elements arsenic, cadmium, lead and mercury. These metals occur naturally in rocks and soil. Most of these elements cause nerve damage when they are ingested beyond their threshold dose. Selenium, also found naturally in many soils, is actually a beneficial element when taken in very small quantity, but larger does pose health risks to humans.

Pollution from Human Activities - Human activities release thousands of types of chemicals into the environment, but we know surprisingly little about the health effects of most of them. Only about 10 percent of commercial chemicals have been tested for their toxicity, and about 1,000 new chemicals are introduced every year.

Recent Improvements - Regulations in different countries have helped reduce our exposure to pollutants. Most vehicles and factories now have pollution-control devices. As a result, people living in such countries contain lower levels of some toxic chemicals in their bodies, on average than they did in the some toxic past. Levels of nicotine (from smoking), lead, and several other toxic chemicals were considerably lower in these people's tissues then they have been 10 years earlier.

Because we know so little about the effects of chemicals on our earth, new health risks are discovered frequently, for example, scientists now think that chemical pollution may be at least part of the cause of Parkinson's disease and Alzheimer's disease.

Burning Fuel - Despite the very real advances in public health resulting from pollution control, air pollution is still a major health problem. Burning fuels in vehicles, home furnaces, power plants, and factories introduces enormous amount of pollutants into the air. These pollutants include the gas carbon monoxide and many kinds of particulates. Gasoline and coal burning contribute to the many premature deaths each year from asthma, heart disease, and lung disorders. In fact, it may be possible to predict an area's death rate based on the amount of pollution. A recent study found that long-term exposure to air contaminated with soot particles raises a person's risk of dying from the lung cancer or other lung and heart diseases.

Pesticides - Pesticides are chemicals designed to kill unwanted organisms such as insects, fungi, or weeds. Pesticides are beneficial in that they allow us to grow more food by reducing pest damage. But because pesticides are designed to kill organisms, they are often dangerous to humans in large enough does, though we are exposed to pesticides residues on fruits and vegetables, the amounts consumed by most people pose little danger.

Most modern pesticides breaks-down quickly in the environment into harmless substances. Widely uses organophosphate pesticide have replaced more persistent

* Asst. Prof. (Education) Victoria College of Education,Indore (M.P.) INDIA

pesticides, such as DDT. But organophosphates are very toxic, causing nerve damage and perhaps cancer. Such pesticides pose the greatest risk to children, whose internal organs are still developing and who eat and drink more in relation to their body weight than adults do.

Chemicals that Disrupts Hormones - Manu pollutants disrupts the endocrine system. The glands that make up the human endocrine system produce hormones. Hormones are chemicals that circulate in the bloodstream and control many life processes, such as the development of muscles and sex organs.

Some pollutants, called hormone mimics, behave like natural hormones. Other pollutants are hormone disrupters, which prevent natural hormones from functioning normally. Even low levels of these kinds of pollutants can affect developing embryos and infants. Most hormone disrupters interfere with the sex hormones. They prevent normal production of testosterone in males or increase the chances of sexual abnormality in females.

Industrial Chemicals - It occurred on the night of 2–3 December 1984 at the Union Carbide India Limited (UCIL) pesticide plant in Bhopal, Madhya Pradesh. Over 500,000 people were exposed to methyl isocyanine (MIC) gas and other chemicals. The toxic substance made its way in and around the shanty towns located near the plant.

We are exposed to low level of industrial chemicals every day. Particularly inside new buildings that have new furnishing, Toxic chemicals are used to make building materials, carpets, cleaning fluids, and furniture. Older the buildings were often the painted using lead-based paint. Lead is directly linked to brain damage and learning disabilities.

Waste Disposal - Much of pollution in our environment is a byproduct of inadequate waste disposal. Wastewater from cities can carry oil and dozens of toxic chemicals into our waterways. One of the reasons that our air and water is less polluted in many areas than it was 50 years ago is that methods of disposing of waste have improved.

Radioactive Pollution - Radioactive pollution occurs when 'Radioactive' metals disintegrate releasing dangerous beta rays which can cause cancer and other mutative diseases. These types of pollution can occur by either the dumping of radioactive waste from nuclear power plants into water bodies, damage of nuclear reactors leading to radioactive contamination that would last for many years and many more. In the Second World War, when the U.S.A attacked Hiroshima and Nagasaki of Japan, the atomic bomb left a radioactive footprint leading to highly mutative diseases. So, most of the people who survived the atomic bombing died eventually from cancers and mutations.

Thermal pollution- Rise in the temperature in the ecosystem due the release of excessive heat energy into the environment by artificial methods or natural disasters is called "Thermal Pollution". Generally, manufacturing industries release a lot of heat energy which gets transferred to the air and water bodies. Even vehicles which have combustion engines release a lot of heat energy as they require high temperatures to function. Carbon dioxide has a property of blocking heat from exiting the atmosphere and so the heat coming in from the sun is trapped in the atmosphere.

Thermal pollution results in a temperature rise which is the main cause for the melting of the polar ice caps, which is in turn leading to a rise in the water levels. Thermal pollution has increased significantly since the eighteen hundreds resulting in a hotter earth.

Noise Pollution - There are different qualities of sounds. The sounds which are not pleasant to hear are called 'Noises'. So an excess of noise in the outdoors leads to "**Noise Pollution**". This can be experienced by too many vehicles honking at the roads, heavy machinery being operated in the open (for ex, a jackhammer), trains, clubs, over populated crowds and many more. Noise pollution is known to cause mental stress and depression. It can also cause damage to the ear drum which can cause deafness. **Noise pollution** has more of a psychological effect rather than a physical one

Toxicology - The word toxic means poisonous Toxicology is the study of the harmful effects of substances on organisms.

The study shows the following effects of different pollutants.

Pollutant	Source	Possible Effects
Pesticides	Use in agriculture and landscaping	Nerve damage, birth detects & cancer
Pesticides	Lead Paint and Gasoline	Brain damage and leaning problems
Lead	Vehicle exhaust, burning waste,fires, and tobacco smoke	Respiratory damage (Asthma, Bronchitis, Cancer)
Coal Dust	Coal Mining	Black Lung disease
Bacteria in food	Poor sanitation and poor food handling	Gastrointestinal infections

Pollution in all its various forms causes immense damage covering all possible aspects that can be damaged. Therefore it is important to prevent all these forms to look forward to a greener cleaner and much more pleasant living experience.

Conclusion - We are exposed to small amounts of chemicals every day, in food, in the air we breathe and sometimes in the water we drink. Almost any chemical can be harmful if taken in, or ingested, in large enough amounts. The question is whether the concentration of any particular chemical in the environment is high enough to be harmful. To determine the effect of a pollutant on health, we need to know several things. We need to know how much of the pollutant is in the environment and hoe much gets into the body. Then we need to determine that concentration of toxin damages the body. The amount of a harmful chemical to which a person is exposed is called the dose of that chemical. The damage to health that results from exposure to a given does is called the response.

We can all take action to reduce pollution through the choices we make around the house, with our pets, in lawn maintenance, and in transportation. By saving power, reducing vehicle use, Take public transportation. Governments throughout the world have already taken action against air pollution by introducing green energy. Some governments are investing in wind energy and solar energy, as well as other renewable energy, to minimize burning of fossil fuels, which cause heavy air pollution. Governments are also forcing companies to be more responsible with their manufacturing activities, so that even though they still cause pollution, they are a lot controlled. Companies are also building more energy efficient cars, which pollute less than before. Individual Level Prevention Encourage your family to use the bus, train or bike when commuting. If we all do this, there will be less cars on road and less fumes.

References :-

1. http://readanddigest.com/what-are-different-types-of-pollution/#sthash.Viv2tlBO.dpuf
2. Air Pollution & Heal by Stephen T. Holgate, Stephen T. Holgate, Hillel S. Koren & Robert L Maynard.
3. Marin Pollution & Health by R.E. Hester & R.M. Harrison
4. en.wikipedia.org/wiki/Pollution
5. eschooltoday.com/pollution/air-pollution/effects-of-air-pollution.html
6. www.sciencedirect.com/science/article/pii/S026974910700284
7. www.ourair.org/air-pollutants-and-our-health/

✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻

Climate change, Bio-cultural diversity and Livelihoods : New Challenges for indigenous peoples

R. K. Pensia * Devesh Sagar ** B. K. Dangarh ***

Abstract - Climate change is considered to be a critical global challenge and recent events have demonstrated the world's growing vulnerability to climate change. The impacts of climate change range from affecting agriculture to further endangering food security, to rising sea-levels and the accelerated erosion of coastal zones, increasing intensity of natural disasters, species extinction and the spread of vector-borne diseases.

Climate change is about the growth of greenhouse gas emissions due to the burning of fossil fuels, resulting mainly from industrial activities and motor transportation, hence there is a buildup of the carbon dioxide levels in the atmosphere. The carbon dioxide build up is made worse by the increasing loss of forests, which act as "carbon sinks" that absorb gases and prevent its release into the atmosphere. Further, the increase of carbon dioxide and other gases in the atmosphere also enhances the "Greenhouse Effect" (in which more heat is generated), thus leading to temperatures rising. A significant rise in temperature can trigger several events, such as melting of the ice sheets, the death of some significant marine life and other biodiversity, and effects on agriculture and human health.

Key Words - Climate Change, greenhouse effect, carbon trading, biofuels.

Introduction - Climate change is a major issue for indigenous peoples around the world so it is no coincidence that it was the special theme for the seventh session of the UN Permanent Forum on Indigenous Issues.

In his address to the High Level Event on Climate Change on 24 September 2007, **Mr Ban Ki Moon**, the **Secretary General of the United Nations**, stated "I am convinced that climate change, and what we do about it, will define us, our era, and ultimately the global legacy we leave for future generations. Today, the time for doubt has passed. The United Nations Intergovernmental Panel on Climate Change has unequivocally affirmed the warming of our climate system, and linked it directly to human activity".

The carbon dioxide build up is made worse by the increasing loss of forests, which act as "carbon sinks" that absorb gases and prevent its release into the atmosphere. Further, the increase of carbon dioxide and other gases in the atmosphere also enhances the "Greenhouse Effect" (in which more heat is generated), thus leading to temperatures rising. Based on data from the UN's Intergovernmental Panel on Climate Change, it is estimated that the mean global surface temperature has increased by about 0.3 to 0.6 degree Celsius since the late 19th century to the present, and an increase of 0.2 to 0.3 degree over the last 40 years. A significant rise in temperature can trigger several events, such as melting of the ice sheets, the death of some significant marine life and other biodiversity, and effects on agriculture and human health.

Effects of Climate Change - In the tropical rainforests of Asia, temperatures are expected to rise 2-8 degree Celsius and further climatic variation will include decrease in rainfall, crop failures and forest fires. Tropical rainforests are the haven for biodiversity, as well as indigenous peoples' cultural diversity and forest fires will threaten this heritage of biodiversity.

People in low-lying areas of Bangladesh could be displaced by a one-meter rise in sea levels. Such a rise could also threaten the coastal zones of Japan and China. The impact will mean that salt water could intrude on inland rivers, threatening some supplies of fresh water. In the high altitude regions of the Himalayans, there are glacial melts which effect hundreds of millions of rural dwellers who depend on the seasonal flow of water; there might be more water in the short term, but less in the long run as glaciers and snow cover shrink. The warming of the high altitude regions are likely to mean that population growth, settlement expansion and encroachment are likely to become a major management challenge and these external influences are likely to have an impact on indigenous peoples and their lands.

The poor, many of whom are indigenous peoples, are highly vulnerable to climate change in urban areas because of their limited access to profitable livelihood opportunities and limited access to areas that are fit for safe and healthy habitation. Consequently, the poor sector will be exposed to more risks from floods and other climate related hazards in areas where they are forced to live.

* Prof. (Physics) Govt. Girls College, Neemuch (M.P.) INDIA
** Asst. Prof. (Mathematics) Govt. Girls College, Neemuch (M.P.) INDIA
*** Asst. Prof. (Chemistry) Govt. P. G. College, Neemuch (M.P.) INDIA

Adapting to Climate Change - Adaptation to climate change is a necessary strategy to complement climate change mitigation effects. Adaptation often produces benefits as well as forming a basis for coping with future climate change. However, experience demonstrates that there are constraints to achieving the full measure of potential adaptation. There are many instances of, maladaptation, such as promoting development in risk-prone locations, which can occur due to decisions based on short-term considerations. The ability of human systems to adapt to and cope with climate change depends on factors such as wealth, technology, education, information, skills, infrastructure, access to resources and management capabilities.

Adaptation to climate change is a necessary strategy to complement climate change mitigation effects. Adaptation often produces benefits as well as forming a basis for coping with future climate change. However, experience demonstrates that there are constraints to achieving the full measure of potential adaptation. There are many instances of, maladaptation, such as promoting development in risk-prone locations, which can occur due to decisions based on short-term considerations. The ability of human systems to adapt to and cope with climate change depends on factors such as wealth, technology, education, information, skills, infrastructure, access to resources and management capabilities.

Long-term adaptation to climate change requires anticipatory actions, which would require considerable investment of capital, labor, and time. However, in the Asian region there are already constraints on resources and a lack of access to technology. For many indigenous peoples however, the impacts of climate change are already hitting vulnerable communities. Hence indigenous people, who are among the poor in the region are starting to adapt their lives to this reality. In Bangladesh, villagers are creating floating vegetable gardens to protect their livelihoods from flooding.

In Vietnam, communities are helping to plant dense mangroves along the coast to diffuse tropical-storm waves. It has been common for indigenous peoples to grow many different varieties of crops in order to minimize the risk of harvest failure and this is supplemented by hunting and fishing. Where there is market access, indigenous peoples also supplement their subsistence base with handicrafts, wage labour and forest products or by selling surplus crops. In other instances, indigenous peoples switch to extracting starch from wild Sago palms during droughts when crops suffer from lack of water.

Biofuels and Carbon Trading - Meeting greenhouse gas emissions reduction though carbon emissions trading is an issue that continues to be debated in the international community. In many developing countries the production of biofuels, carbon sinks and carbon emissions trading are not only emerging issues, but also having a major impact on indigenous peoples. For example, biofuel crops such as oil palm plantation are now grown on lands that were once native forests in the tropical areas of Africa, Asia-Pacific, Latin America and the Caribbean. Many of these projects take place on indigenous peoples lands and territories.

Carbon sequestration through forest growth is said to mitigate global warming, but where plantation monocultures of exotic plants replace the fragile ecosystems of the *páramos (*a neotropicalecosystem located in high elevations, between the upper forest line and the permanent snow line), the sequestration benefits are questionable. Due to weak legislation in developing countries, especially in Latin America, these plantations make it easier and cheaper for high-polluting developed countries to offset their greenhouse gas emissions in developing countries rather than in their own countries. The concern is that not all the costs are being counted. For example, the plantations negatively affect the hydrological cycle and also reduce the amount of land available for indigenous peoples. Hence, not only is the climate changing, so, too, are the lives of the indigenous peoples and farming communities.

The right to food is a growing issue in the world and is further exacerbated by biofuels. According to the Special Rapporteur on the Right to Food, Mr Jean Ziegler, “the creation of biofuels to protect the environment and reduce oil dependence was not a bad idea, but its negative impact on hunger would catastrophic’.

However, carbon trading continues to be a hugely contentious issue mainly due to its inherent problems. The main concern is that while companies do not have to actually reduce their emissions they can pay other companies and groups, mostly from non-industrialized countries, to reduce emissions or to absorb CO2 from the atmosphere, and account that as their own reductions. The big profit for companies is that when paying others, they pay only a fraction of what they would need to invest at home to achieve the same goal.

Conclusion - Indigenous peoples’ experiences and interpretation as well as scientific research indicate that climate change seldom acts in isolation but interacts with other environmental and social factors.

Given past experiences, indigenous peoples and their communities have been especially resilient and have adjusted to environmental and socio-economic changes. Further, they continue to fight to protect their rich social and cultural fabric and enduring community attachment. Assessment of adaptive capacity of indigenous peoples and their communities must take into account not only their inherent resiliencies, but also differential rights, discrimination and other social processes that limit access to resources, power and decision-making. In other words, the socio-cultural context in which community activities and livelihoods are situated is important.

For indigenous peoples, climate change is already a reality and poses threats and dangers to the survival of their communities. While there is scientific consensus, notably through the Intergovernmental Panel on Climate Change in regards to the threats that climate change poses, the response from governments have been slow.

References :-

1. http://www.un.org/sg/press_article_climate.shtml.
2. Report of the 2007 Annual Meeting of the Interagency Support Group on Indigenous Peoples.
3. Biodiversity and Climate Change: International Day for Biological Diversity, Convention on Biological Diversity, 2007 p12-13.
4. Chakravarthi Raghavan 'Global warming: Net losses for developing world" *South*-North Development Monitor (SUNS), 2001.
5. Report of Intergovernmental Panel on Climate Change, Working Group 2: Climate Change Impacts, Adaptation and Vulnerability, 2007, p708.
6. Martin Khor 'Race on to tackle Climate Change' *Third World Network*, p2http://twnside.org.sg/title2/climate/climate.change.doc.
7. Wysham, D "A Carbon Rush at the World Bank, *Foreign Policy in Focus,* February 2005 www.fpif.org.
8. The World Bank and Carbon Trading *A Sustainable Energy Economy Network, Europe,* 27 February 2007, www.aseed.net.
9. The World Bank Carbon Finance Unit Http://carbonfinance.org

****

Effect Of Gender And Level Of Education On Home Environment-Special Reference To Rural Area Of Rajasthan

Kamlesh Upadhyay *

Abstract - The purpose of the study is to find out the effect of gender and level of education on home environment. A 2x2 factorial design was followed for this purpose.**Home *Environment Scale constructed by Dr.(Smt.) Meenu Agarwal, Jaipur*** was used for the random collection of data. 40 students (20 M and 20 F) from class VIII and 40 students (20 M and 20 F) from studying in class XII were taken as subjects from rural area of rajasthan. The results indicate that – **(a)** Gender and Level of education dose not affect significantly to the home environment. (**b)** The interaction of gender and level of education dose not affect significantly to the home environment of middle and higher secondary students. **(c)-** On the basis of mean the male students are having better home environment in compare to female Ss.**(d)** Male Ss of class XII are better as compared to other groups of the study in relation to their Home Environment.

Introduction - United Nations Conference on Human Environment at Stockholm in 1972 was a major event for those concerned with the quality of the environment. After that environmentalists have taken up an environmental protection aspects in a serious way. The present century is witnessing such problems of environment crisis which are nothing but the creation of greedy human society which wants to exploit nature beyond any reasonable limit. Environment is a broad term. It includes not only physical or material aspect but psychological, social and cultural aspects as well.(1) Dr. D. Hassan & Dr. G. Paul Ratnakar found in there study that environmental awareness has positive relationship with different dimensions of the scientific attitude of high school students. This means that students with better scientific attitude are more aware towards environmental awareness and vice-versa.(1) Environmental attitudes can be defined as a collection of beliefs, affects and behavioral intention a person holds regarding environmental related activities or issues. Dr. Chetna Pandey found that environment attitude is positively related to achievement in environment education among all the students of CBSE Board. She has been taken a sample of 357 secondary students of CBSE Board who have been studied environmental education till class X.(2)

Objectives –To measure the effect of Home Environment, the following criteria were taken under this study -

A. Effect of Gender on Home Environment.

B. Effect of Level of education on Home Environment.

C. Effect of interaction between gender and level of education on Home Environment.

Hypothesis –To examine the relevance of above mentioned criteria it is hypothesized that, statistically there exist no significant difference between the means of the following groups –

H_{01}**—** Gender–Male and Female.

H_{02}**-** Level of Education –Class VIII and XII.

H_{03} -Interaction between gender and level of education on Home Environment.

Sampling –The sample of the present study was collected from the chittorgrah District of Rajasthan. 40 students (20 Male and 20 Female) from class VIII and 40 students (20 Male and 20 Female) from studying in class XII were taken as subjects randomly ,with age of the subjects from 13 to 18 years.

Tool Used – Home *Environment Scale constructed by Dr.(Smt.) Meenu Agarwal, Jaipur* was employed for the random collection of data .Subject was asked to respond in two different categories like–Yes and No. Out of total 60 items 30 statements are favorable and show good environment and 30 are unfavorable and show poor environment. The scoring for favorable items 1 mark for yes and zero for no response and just reverse process has been adopted for unfavorable statements.The scale was standardized on a sample of 1200 male and 950 female Ss, aging from 10 to 19 years. The Test-Retest reliability of the test is .82. Category of home environment can be sorted out by the Ss raw scores, with the help of Z score, T score and classification table given in the manual.

Design –A 2x2 factorial design was followed for the study. The data was collected on 80 Ss from VIII and XII. Totally 40 male and 40 female Ss studying in class VIII and XII. They are hailing from rural areas of chittorgrah District of Rajasthan.

*Assistant Professor (Psychology) S.R.J. Govt.Girls College, Neemuch (M.P.) INDIA

Analysis And Data Interpretation

Table -1: (see)

Table -1 presents the results of analysis conducted on the impact of Home Environment based on gender. The result clearly reveals that no significant difference exist in the Home Environment of male and female Ss. Subjects with (t-cal=1.21;t-crit=2.64;df=78;P>.01 level) is not significant, Which means hypothesis $\mathbf{H_{01}}$, is accepted in favors of male subjects.

Table -2: (see)

Table -2 presents the results of analysis conducted on the impact of Home Environment based on level of education. The result clearly indicates that no significant difference exist in the Home Environment of Ss studying in class VIII and XII. Subjects, with (t-cal=1.27; t-crit=2.64;df=78;P>.01) is not significant. Therefore null hypothesis ($\mathbf{H_{02}}$) that there exists no significant difference between the Home Environment of the students of class VIII and XII stands accepted.

T**able -3 (see in the next page)**

Table -3 shows the results of analysis of variance (ANOVA) on the impact of interaction between the gender and level of education on Home Environment. The analysis indicates that there exists no significant difference between the interactions of both independent variables. Subjects with (F-cal=1.062;F-crit=4.04; df=3,76 ; at p>.01 level),Which means hypothesis $\mathbf{H_{03}}$,is accepted .

Table -4: (see in the next page)

Table -4 shows the 't'-value of groups of the study. Although statistically obtained all the 't'-values are not found significant, Even on the basis of means it is clear that male and female Ss of class XII are having good Home Environment, in compare to female and male Ss of the class VIII. Male Ss of Class VII and XII are having better Home Environment in compare to female Ss of same class.

Inferences –

1. A significant effect of gender on home environment is not found.
2. Level of education dose not affects significantly to home environment.
3. A significant effect of interaction between gender and level of education is not found on home environment.
4. On the basis of mean it is explored that male Ss of class xii were having good home environment than other counter parts of the study.
5. Whereas the female Ss of class viii were having the least home environment in comparison to other groups of the study.

Recommendations –

1. Male and Female Ss of class viii are having poor home environment in compare to Ss of class xii. They are suggested to make a balance between their behavior and feelings in life for the improvement in their home environment.
2. Female Ss of Class viii are suggested to manage the level of home environment for coping up with school and family pressures of the life.
3. Its good to try for the better but its necessary to feel happy with the things around you for the improvement in the level of home environment.
4. Be practical, realistic and facts oriented in your life, for maintaining the higher level of home environment.
5. Male Ss of class XII are suggested to keep up the process of home environment managed by them.

References :-

1. Dr. D. Hassan & Dr. G. Paul Ratnakar, "A study of Relationship Between Environmental Awareness and Scientific Attitudes Among Higher Secondary Students." Indian Journal of Applied Research,Vol;12,Issue;12,Sep-12 ISSN-2249-555x, pp-01-5
2. Dr. Chetna Pandey, "A Study Of Relationship between Environmental Attitude and Environmental Education Among Secondary Students of CBSE Board." Indian Journal of Research, PARIPEX Vol;3,Issue;4,April-14 ISSN-2250-1991, pp-01
3. Ranu Malviya, "A Comparative Study of Home Environment." An on going filed study report 2015 under my supervision in the Department of Psychology, SRJ Government Girls' College, Neemuch affiliated to Vikram University, Ujjain.(M.P.)
4. A Manual of Home *Environment Scale constructed by Dr.(Smt.) Meenu Agarwal,Jaipur.*

Table -1: t-Test showing the impact of Home Environment on Gender.

Gender	N	Mean	SD	df	t-cal	t-crit	Decision
Male	40	32.60	1.16	78	1.21	2.64	Non-significant
Female	40	30.75	1.25				

Table -2: t-Test showing the impact of Home Environment on level of Education

Level of Education	N	Mean	SD	df	t-cal	t-crit	Decision
Class VIII	40	30.70	1.39	78	1.27	2.64	Non-significant
Class XII	40	32.65	1.00				

Table - 3 ANOVA source Table summary of Interaction , Gender and level of Education onHome Environment						
Source of variation	Sum of Squares	df	Mean Squares	F-calcu -lated	F-critical	Decision
Between group	150.55	3	50.18	1.062	2.02	Non Significant
Within group	3591.0	0	76	47.25		

Table - 4: Showing the mean , SDs and t- values of all the groups of the study				
No.	Groups of the study	Means	SDs	t-calculated
I	Only Male	31.35	1.43	1.19
		33.85	0.76	
II	Only Female	30.05	1.33	
		31.45	1.17	0.62
III	Only VIII	31.35	1.43	
		30.05	1.33	0.52
VI	Only XII	33.85	1.17	
		31.45	0.76	1.32

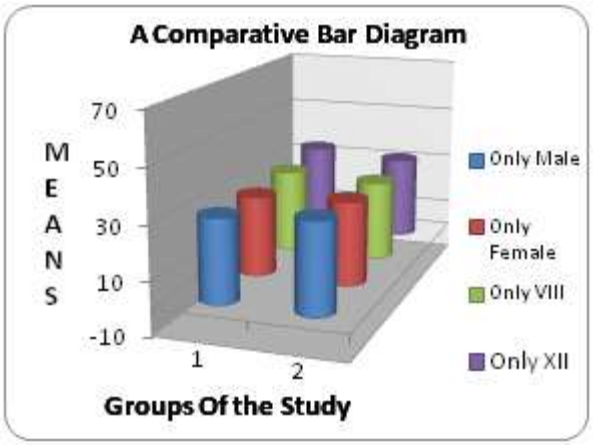

****

Ethno-Botanical Diversity of Traditional Medicinal Plants Used By Ethnic Societies Of Jawad Tahasil of Neemuch (M.P.)

Archana Pancholi *

Abstract -The ethno medicinal information of Neemuch is described. The plants used by the Rural people were listed in alphabetical orders by their botanical name together with family, local name and ailments. A total 90 species belonging to 45 families were documented.
Citation - Pancholi Archana , Ethnobotany of Traditional Medicinal Plants Of Neemuch (Madhya Pradesh)
Key Words - Neemuch , Ethno medicine, Ethnobotany, medicinal plants, traditional use.

Introduction - Human beings have been using plants since long research works are bringing to light additional information on the relationship between plants and man. This relationship between the indigenous people and their plant surroundings forms the subject of ethno botany. The field approach of study of ethno botany plays a vital role because of the direct contact that can be established with the authentic information on the uses of plant, both wild and cultivated. The rural and tribal society depends on the plants around him, made him to acquire knowledge of economic and medicinal properties of many plants by trial and error. Consequently, he became the storehouse of knowledge of many useful as well as harmful plants accumulated and enriched through generations and passed on from one generation to another, without any written documents.

It is therefore important to study ethno botany and it must be properly documented and preserved urgently because most of the rural and tribals are rapidly being assimilated into modern societies and the treasure of knowledge of uses of plants and plant resources is fast disappearing. Ethno botany is a biological contribution of the ethnic society to the modern man. The ethnobotany has now become a critical need of the time. It has records and documents the age-old knowledge and wisdom of the traditional people about the miraculous properties of diverse plants sp. is now emerging as holistic segment of ecology.

Study Area - Neemuch is a important station of railways and road transport. It is situated in the North West part of Madhya Pradesh which is the meeting place of Malwa and Mewar region on the Aravalli hills. Neemuch as a district came into existence in the year 1998. it has longitude 24.15 - 25.02 East and 74.43 – 75.37 North. It is 440 km. away from state capital Bhopal. The area of Neemuch district is 3875 sq. km. It is 496 mt. high at sea level.

Monsoon prevails in Neemuch from July to September and average rainfall is 620.8 – 785.2 mm. In summer maximum temperature reaches to 48 c and in winter minimum temperature reaches to 2.2 c. Water level present at the depth of 1500 feet. Its forest area is about 94487 hectare.

Material and Methods - The present work is based on the results of 5 yrs .During the course of study a large no. of rural person including tribal men were interviewed together the ethnobotanical information through specially prepared questionaire. In selected villages of Jawad tahasils were surveyed and ethobotanical information and plant specimens were collected. **(Map See in next page)**

Attempt was made to extract the ethnobotanical information from medicine men, knowledgeable person of villages through personal communication. While collecting such ethnobotanical information, care has been taken to record only that information whose curative potentialities have been confidently claimed by the informants.
(Map See in next page)

The data documented according to the methodology suggested by Jain(1964) Each specimen was collected and identified on the spot and later confirmed with the help of Flora of Upper Gangatic Plain By Duthie & British flora of Bentham & Hooker .

Results - There are many indigenous drugs of extreme utility. In the present study, detailed etnomedicinal importance of several plants is collected mostly from rural area. The ethno-medical importance of the plants along with the local name with their botanical name ,family have been enumerated in Table – 1. **(See in the last page)**

Conclusion - The rural and tribal men are well-versed with the symptoms of various types of diseases and with their herbal remedies because they have carried on practice traditionally by verbal instruction. Moreover it has been observed that although modern medical facilities are approachable at places, still they prefer to use herbal drugs owing to their confidence and belief in such treatment. In view of the fact that the medicinal uses of plant have been confidently claimed by the rural and tribal people, detailed

*Asst. Prof. (Botany) Govt. P.G. College, Neemuch (M.P.) INDIA

pharmacological and clinical studies are needed to ascertain their role in modern medicines.

References :-

1. Acharya. Deepak, & Shrivastava. Anshu. 2008, Indigenous harbal medicines, Avishkar publishers and Distributors. Jaipur (Raj.) P.1-444.
2. Bentham & Hooker, Flora of British India
3. Duthie:, Flora of upper gangatic plains Vol. 1-7
4. Flora of Madhya Pradesh.
5. Jain, S.K. 2004 (ED.). A Mannal of ethnobotany. scienticfic publishers, Jodhpur.P p1-193.
6. NIC of Neemuch district.
7. Ratnam .K. Ravendra. & Martin P. 2006, Ethomedicinal Plants, Agrobios. india p.1-285.
8. Sinha, Rajiv, K "Ethnobotany "the Renaissance of Traditional herbal medicine.
9. Trevedi, P.C. 1999. "Ethnobotany, Avishkar publishes Jaipur.P.1- 375.
10. Trivedi, P.C. 2007, Ethnomedicinal plants of India Avishkar Publishers and Dstributors Jaipur P.1-410.
11. Trivedi, P.C. 2010. Ethnic tribes and medicinal plants. Pointer publishers, Jaipur.

Table 1: Ethnomedicinal Importance of Plants with Local Names

SN	Plant Name	Local Name	Family	Part used	Ailments
1	Abrus precatorius	Gunj/gunchi	Papilionaceae	Plant decoction seed paste roots	Gonorrhea Ulcer& skin infection For securing conception in women.
2	Acacia catechu	Khair	Mimosoidae	bark	Conjuctivitis, diarrhoea, leprosy's, skin disease.
3	Adhatoda vasica	Adusa	Acanthaceae	Leaf and leaf smoked	Bronchitis, Cough, throat infection, asthma
4	Aegle marmelos	Bilva	Rutaceae	Fruit juice & pulp.	Leaf paste, root bark Abdominal pain, Bleeding piles, applied externally on piles, vomiting, diarrhoea.
5	Aloe vera	Gwarpatha	Liliaceae	Leaf pulp &leaf juice	Clean the uterus of delivered women, leucoderma, eczema, skin disease.
6	Alstonia scholaris	Jangli chaulai	Apocynaceae	Stem bark	With honey for the treatment of malaria
7	AmaranthusViridis	Chauli	Amaranthaceae	Root paste	Leucorrhoea
8	Anogeissus latifolia	Kardhai/dhawda	Combretaceae	Bark powder	Polyurea & other urinary disorder.
9	Anona squamosa	Sitaphal	Annonaceae	Young fruit powder	Dysentery
10	Anthocephalus Chinensis	Kadam	Rubiaceae	Leaf decoction	Stomach problem & flatulence(cattle disease)
11	Argemone maxicana	Peeli kantilee	Papaveraceae	Yellow latex of floral bud	Eyes treatment to control small. tumor.
12	Asparagus racemosus	Shatawar	Liliaceae	Tuber Boiled tubers with milk	Lactagogue, given before delivery to relieve pain To stabilize the foetus (abortion)
13	Baliospermum montanum	Wild Jamal Ghota	Euphorbiaceae	Seed	Asthma,Dropsy,Jaundice.
14	Bauhinia racemosa	Astara	Caesalpiniaceae	Stem gum Leaf decoction	Skin diseaseUrinary disorders
15	Bauhinia varigata	Kachnar	Caesalpiniaceaea	Leaves	Anthelmintic,diarrhoea
16	Boerhaavia diffusa	Punarnava	Nyctaginaceae	Root, leaves,seeds, juice, leaf decoction	Diuretic(urinary infection), Asthma, Jaundice,Painful urination.
17	Bombex ceiba	Semal	Bombacaceae	Flower pasteFlower powderRoot paste Young fruit	ContraceptivePiles Spermatorrhoea & irregular menstruation, Bladder & Kidney stone
18	Boswellia serrata	Salai	Burseraceae	Stem barkresin	AntisepticDiabetis
19	Butea monosperma	Dhak /Palash	Papilionaceae	Bark decoction Stem barkSeed paste	Fever & menstrual disorders , bound on fractured bone &sprain. Expel intestinal warms
20	Calotropis gigantea	Aak/akra	Asclepidiaceae	Root decoctionLeave sLatexFlower paste	With pepper to treat leucorrhoeaInducing abortionEczemaWheezing treatment
21	Careya arborea	Kumhi	Myrtaceae	Stem bark & flower pasteRoot bark paste	Cough & coldHealing of bone fractures
22	Carissa opaca	Karaunda	Apocyanaceae	Root powder	Wounds treatment
23	Cassia fistula	Amaltas	Caesalpiniaceae	Bark decoctionFruit pulpSeed powder	Dysentry,Jaundice LeucodermaLever disorderDiabetes

24	Cassia obtusifolia	Chirota	Caesalpiniaceae	Leaves decoction	Anthelmintic,Skin disease
25	Cassia occidentalis	Chakora	Caesalpiniaceae	LeavesSeed powder	Leucoderma,Leucorrhoea With honey to treat urinary disorder
26	Cassia tora	Puar/Puwad	Caesalpiniaceae	Leaf paste	Ringworm diseases & used as plaster to treat bone fracture.
27	Curculigo orchioides	Kalimusli	Amaryllidaceae	Root tubers	Aphordisiac,Lactagogue, Antiseptic used in Venereal diseases.
28	Cyanodon dactylon	Dub	Poaceae	Whole plant	Vomiting,Burning sensation,Fever, Menorrhagia,retention of urin,Diuretic
29	Datura metal	Kaladhatura	Solanaceae	LeavesRoot powder	Reduce swellingAsthma and Bronchial disorder.
30	Delonix regia	Gulmohar	Caesalpiniaceae	Leaf juiceDry leaves	Body painGastric problem
31	Embellica officinalis	Amla	Euphorbiaceae	Fruit juice	Lever tonic(Anemia, Jaundice Cold,Diabetes) Hair tonic
32	Feronia limonia	Kabeet	Rutaceae	Ripe fruit	AntiscorbuticLithargic habit treatment Carminative
33	Ficus benghalensis	Bargad	Moraceae	Young budLeaves Latex	DiarrhoeaPultis over the abscessCracks of the feet
34	Ficus glomerata	Gular	Moraceae	Unripe fruit	Menorrhoea,Jaundice, Diarrhoea
35	Ficus religiosa	Peepal	Moraceae	Bark infusionRoot ashDry fruit	UlcersVomitingAsthma
36	Gmelina arborea	Gamer	Verbenaceae	Root decoction Leaf decoction	Increase strength , IndigestionSmall pox
37	Grewia tiliaefolia	Dhaman	Tiliaceae	Stem bark Stem powder	Chronic dysenteryEmetic
38	GymnemaSylvestre	Gudmar	Asclepidiaceae	Leaf juice	Stomach ache,cough, diabetes,heart stimulant , activate uterus.
39	Helicteres isora	Marod Phali	Sterculiaceae	Leaf decoction Root decoction	Stomach problem Diarrhoea,Dysentery
40	Holarrhena antidysenterica	Dudhi	Apocynaceae	Stem barkBark decoctionRoot powder	Skin diseasesTooth-achestomach pain & kill intestinal worms
41	Jatropha curcas	Ratanjot	Euphorbiaceae	LatexLeaf juiceLeaves SeedsBark decoction	Blisters in mouthEar – acheAnemia, LactogogueInflamma - tionsPoisonous Anthe - lmintic skin diseases Rheumatism,Leprosy
42	Lantana camera	Lantana	Verbenaceae	Plant decoction Laef paste	Tetanus,Rheumatism Measles,Chickenpox
43	Lawsonia inermis	Mehndi	Lythraceae	Leaf pasteLeaf decoctionLeaf paste	Skin diseases,burn injuriesMouth wounds & throat infectionFungal infection
44	Madhuca indica	Mahuda	Sapotaceae	flower	Cough,Bronchitis & Sexual disability
45	Mangifera indica	Aam	Anarcardiaceae	Stem bark decoction/ powderFumes of leaf	Menorrhagia/Syphilis , GonorrheaBronchial disorder
46	Melia azadirachta	Bakayan	Meliaceae	Paste of leaves	Boils,Eczema,Wounds, Stomach pain

47	Moringa oleifera	Sahjan	Moringaceae	Crushed Bark boiled in Mustard oilLeaf & Fruit	Used as balm for acute traumatic painLowering of BP
48	Murraya koegnii	Meetha Neem	Rutaceae	LeavesLeaf decoction	Hair falling treatment, With ghee for vision improvementCough, Cold &Dysentery
49	Nerium indicum	Kaner	Apocynaceae	Dry leafBark boiled in mustard oilFresh leaf juice	Stomach painScabies & Scaly skinEye disorder
50	Nyctanthus arbortristis	Harsingar	Nyctaginaceae	Seed powderStem bark decoctionLeaf juice Flower paste	Killing of lice,Dandruff DysenteryFever, constipation,ColdBreast tumors
51	Ocimum basilicum	Wild Tulsi	Labiateae	Leavesseed	Diaphoretic,Stomachic, Expectorant.Piles & Gonorrhea
52	Ocimum sanctum	Tulsi	Labiateae	Root decoction Leaf juice	Malaria prevention Ear –ache
53	Opuntia dillenii	Nagph-ni	Cactaceae	Stem mucilagePlant powder with sugar	ConjuctivitisContraceptive
54	Parkinsonia aculeata	Vilayati babool	Caesalpiniaceae	Leaf & bark decoction	Vaginal douche for abortion
55	Phoenix sylvestris	Khajur	Palmaceae	RootSeed powderFruit	Tooth ache,Nervous debilityLeucorrheaCough, Fever,Tuberculosis
56	Pithecellobiumdulce	Jangal Jalebi	Papilionaceae	Root decoctionStem bark	Dysentery,Fever Leucorrhaoea
57	Pongamia pinnata	Karanj	Fabaceae	Seed oilRoot juice Seed paste	ScabiesClean wound & soresContraction of uterus during delivery
58	Prosopis juliflora	Vilayati kikar	Mimosaceae	Flower burnt in mustard oil	Treat discharges from ear
59	Pterocarpus marsupium	Beeja	Papilionaceae	Wood	Dibetes and Chest pain
60	Ricinus communis	Arandi	Euphorbiaceae	Leaf pasteSeed pasteSeed oil	Stomach pain,Rheumatic swellingConstipation Cathartic
61	Salvadora persica	Peelu	Salvadoraceae	Paste of leavesfruit	Boils,Swelling,Piles Constipancy,Indigestion
62	Santalum album	Chandan	Santalaceae	wood	Fever,Skin disease, Dysuria,Cystitis
63	Sapindus emarginatus	Reetha	Sapindaceae	SeedsFruit	Dandruff,Ophthalmic diseasesAnthelmintic
64	Schluchera oleosa	Kusum	Sapindaceae	Paste of stem bark	Dysentery
65	Schrebera swietenioids	Mokha	Oleaceae	Bark	Stomach ache
66	Sida cordifolia	Mamas	Malvaceae	Root	Urinary diseases ,Piles, Leucorrhea
67	Smilax macrophylla	Ramdatun	Lliaceae	Stem	Tooth-ache(tooth-brush)
68	Solanum nigrum	Makoya	Solanaceae	Plant extract	Jaundice,Dropsy,Cough
69	Solanum xanthocarpum	Kateli champa	Solanaceae	Plant decoction Fruit powder	Gastric problemAsthma, Fever
70	Soymida fabrifuga	Rohan	Meliaceae	Bark decoction	Stomach pain
71	Sterculia urens	Kullu	Sterculiaceae	Gum	Leucorrhoea
72	Syzigium cumini	Jamun	Myrtaceae	Seed powderRipe fruitLeaf fruit with goat milk	AntidiabeticStomach ache,ColitisBlood dysentery
73	Tamerindus indica	Imali	Caesalpiniaceae	Ripe fruitBark extract Fruit juice	Toungue soresStomach-acheDysentery
74	Tectona grandis	Sagwan	Verbenaceae	Flower decoctionSeed decoctionSeed oil	BronchitisDiureticScabies
75	Terminalia arjuna	Arjun	Combretaceae	Bark powder	Body pain,Blood purifier, Chest pain,Dysentery

76	Terminalia ballarica	Baheda	Combretaceae	Fruit pasteRoot pasteRipe fruit	Blood purifierBody pain Purgative
77	Terminalia tomentosa	Saja	Combretaceae	Bark	Fractured bones & in the ear of hard hearing
78	Tinospora cordifolia	Gudbel	Menispermaceae	Root & stem extract	Snake bite,Diarrhoea, LeucodermaChronic fever
79	Tribulus terrestris	Gokhru	Zygophyllaceae	Plant pasteFruit powder	Break stones Spermatorrhoea & UTI infection during pregnancy, Aphrodisiac
80	Tridax procumbens	Bhrangraj	Compositae	Leaf pasteLeaf juice	Migrain,Dysentery, Bbronchial disorder Antiseptic-eczema
81	Ventilago denticulata	Kewati	Rhamnaceae	Seed powderLeaf & flower crushed	Body painHead- ache
82	Vitex negundo	Neergud	Verbenaceae	Decoction of leaf Root powder	For bathing of women recently gave birth to a childNeuro skeletal & mascular disorder Expectorant,Anthelmintic & Diuretic
83	Vitis quadrangularis (cissus quadrangularis)	Hadjod	Vitaceae	Stem paste	Asthma,Mascular pain , Applied as plaster for healing bone fractures
84	Withania somnifera	Ashwagandha	Solanaceae	Root powder with milk Root decoctionLeaf juiceSeed decoction	Lactogogue(During Pregnancy), Aphrodisiac AbortionSyphilisDiuretic
85	Wrightia tinctoria	Dudhi	Apocynaceae	Bark & leaf decoction Seed, Root decoction	Dropsy ,stomach- ache , Dysentery,Veneral diseases Aphrodisiac & AnthelminticEpilepsy
86	Wrightia tomentosa	Kalidudhi	Apocynaceae	Lea vesLeaf & Root juice	ToothacheFever
87	Xanthium strumarium	Banokra	Compositae	Plant decoction	Leucorrhoea,UTI infection
88	Ziziphus mauritiana	Ber	Rhmnaceae	Root decoctionFruit Stem bark	Chest pain Aphrodisiac tonicDysentery & Uterus inflammation
89	Ziziphus nummularia	Jharbery	Rhamnaceae	Leaf paste	Boils, wounds & cuts
90	Ziziphus xylopyrus	Ghotbor	Rhamnaceae	Bark & leaf powder paste	Externally to chest pain

****

Climate Change and Ecological Consequences in the Arctic Region

Nikkey Keshri * Ravi Kant Anand **

Abstract - The present scenario of Arctic region is very critical in terms of ecological challenges. Earlier it was considered as being a frozen desert where no one has raised any legal interest. But as time changes the global warming , the technological increase, and need for energy resources has transformed the situation of frozen high north into emerging geopolitical region. The competition between the powerful countries to rule over Arctic region seems to be threatening the environment, fauna, flora, surrounding human population and pre-existed political boundaries. Climate change is one of the most important threats which perishing the natural beauty of Arctic. This climate change is directly or indirectly as the result of irresponsible human activities. Melting of ice has made complex ecological changes and this is resulting as an important driver of marine and terrestrial ecological dynamics, influence productivity, population merge, species interactions, gene flow and disease transmission. Main challenges in the future include conveying clearer attribution to sea ice as a primary driver of such dynamics, especially in terrestrial systems and dealing with pressures arising from human use of Arctic coastal and near-shore areas as sea ice shrinks. Ecological changes in the distribution of plants and animals are happening in all throughout marine, freshwater, and terrestrial groups. The main objective of this paper is to explain how climate change is becoming important reason behind the fragile condition of biodiversity in the Arctic region and environmental implication.

Keywords - Arctic Region, Climate Change, Ecological Challenges, Environmental implication, Geopolitical and Global Warming.

Introduction - The Intergovernmental Panel on Climate Change (IPCC) has considered that the Earth's climate has warmed up. As the rise in average global temperatures since the mid 20th century is very likely the result of increasing levels of greenhouse gas concentrations. To support this argument of warming includes increases in global average air and ocean temperatures, widespread melting of snow and ice, and rising global average sea levels (IPCC 2007). Climate is the important external factor controlling the functioning of global ecosystem. Presently, there is scientific agreement is that the climate is expected to change within our lifetime. This change is resulted in a form of global warming which is likely to be most prominent at polar latitudes. The global processes are affecting the Arctic region and as a result of this the Arctic processes that will extensively influence global climate. In the atmosphere, increase of carbon dioxide will probably warm the earth most strongly at the poles and this will have widespread effects on other components of the Arctic climate such as evaporation, cloudiness and precipitation.Arctic is a polar region located at the north of the earth. This consists of the Arctic Ocean and other parts of Canada, Russia, the United States, Denmark, Norway, Sweden, Finland, & Iceland. The region is covered with Ice Ocean & surrounded by treeless permafrost. The Arctic has vast natural resources which are exploited with modern technology and the economic opening up of Russia has given new opportunities.

North Pole region are sovereign in nature. The surrounding Arctic states - Canada, Denmark, Iceland, Norway, Russia, and United States are limited to a 200 nautical miles economic zone around their coast. All these states have connected with the Arctic region for economic activities and the extraction of resources affect region ecology. Pollution problem is a serious threat to the people health living around pollution sources. Due to the prevailing worldwide sea and air currents, the Arctic area is the fallout region for long-range transport pollutants, and in some places the concentrations exceed the levels of densely populated urban areas. The Arctic is especially vulnerable to the effects of global warming, as has become apparent in the melting sea ice in recent years. Climate models predict much greater warming in the Arctic than the global average, resulting in significant international attention to the region. In particular, there are concerns that Arctic shrinkage, a consequence of melting glaciers and other ice in Greenland, could soon contribute to a substantial rise in sea levels worldwide. The global warming has an adverse impact on the climate, indigenous people, wildlife and infrastructure. However, there are several opportunities that have emerged in the form of shipping routes, new territories and resources.

Arctic is a reality and is currently navigable for a few weeks during summers. There are large deposits of oil and

* Research Scholar, School of International Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi, INDIA
** Research Scholar, School of International Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi, INDIA

gas, minerals and fish and the surrounding countries with Arctic coastlines are becoming quite assertive about exercising their sovereignty over the newfound wealth. They are zestfully guarding their national interests and prevent any hostile activity be it political, economic, environmental and military. This research takes a look at Climate Change results in terms of melting of ice and ecological consequences in the Arctic region.

The Arctic has different environmental nature due to variation in temperature. It is only indicator and determinant of this diversity. The rates of precipitation, the presence of permafrost, sea ice, forest or tundra all are found in diversify nature. Most part of Greenland is covered with ice, however the rate of global warming is increasing and this has affected the natural environment as a whole. This will transform the Arctic geography, ecosystem and environment.

Research Methodology - The study is based on historical, descriptive and analytical methods. The research is incorporated with both primary and secondary sources. The primary sources are reports, government documents, empirical facts, interviews, speeches, treaties & declarations. The secondary sources include journals, articles, books and internet materials available in the websites.

The Arctic Climate Change in Recent Decades - Although there has been a broad increase in global temperatures over the second half of the previous century, the temperature increases in the Arctic have been quite significant. These increases are part of a longer-term global pattern of a modest increase beginning near the start of the twentieth century with greater increase over the past 30 years. However, the temperature increases have not been uniform in time and space. Approximation of trends strongly depends on the time, season, and region under consideration. Trends for 1979–1995, obtained using surface data from the central Arctic, show large changes for spring and winter; whereas changes are small for summer and autumn. Surface air temperature trends are greater for inland regions than coastal/ocean regions. Surface air temperatures in the 1990s were normally warmer throughout the Arctic, and the periodic warm events from the 1930s through 1950s were more variable among regions. Siberia had warm anomalies appear around 1980, and much of Canada has been warm since 1989. In addition to changes in mean temperatures, Alaska shows a substantial decrease in the number of extremely cold days with temperature less than -40^{0}C.

In summary, we see a trend for warmer temperatures in the Arctic over the previous few decades with some of the warmest temperatures in the past few years. Since the mid-twentieth century, monthly temperature changes have been as large as 3^{0}C–4^{0}C on a regional basis. There have also been trends for increasing soil temperatures in both Alaska and Siberia, with permafrost temperatures approaching 0æ%C in many areas. Although permafrost temperatures are increasing in much of the Arctic, the evidence for systematic increases in active layer depth or for systematic changes in the permafrost boundary is less compelling at the present time.

Direct, Indirect and Reciprocal Changes across the Arctic - Transformation in temperature, snow, ice-cover, and nutrient availability exercise major influences on biological dynamics in the Arctic, and extensive ecological consequences of recent warming-related trends in these abiotic factors are highlighted.

For instance, earlier onset of the spring melt associated with rapid warming has been linked to expansion of the growing season in aquatic and terrestrial systems: Plant flowering and invertebrate appearance have highly developed by up to 20 days over the past decade in some areas. Recent episodes of uncommonly early spring rain in the Canadian Arctic have led to melting, collapse, and washout of sub nivean birth lairs of ringed seals, leaving newborn pups exposed on bare ice, increasing their vulnerability to hypothermia and predation. Periodic melting may, however, also benefit some animal populations, depending on the degree of melting. For example, substantial ablation associated with winter warming resulted in reduced mortality, increased fecundity, and increased abundance of Svalbard reindeer. Some of the most rapid ecological changes associated with warming have occurred in marine and freshwater environments, associated with changes in sea ice dynamics and external nutrient loading. Species most affected are those with limited distributions and specialized feeding habits that depend on ice for foraging, reproduction, and predator avoidance, including the ivory gull, Pacific walrus, ringed seal, hooded seal, narwhal and polar bear. Polar bears, in particular, are experiencing rapid declines in birth rates and survival due to loss of sea ice habitat. In contrast to reduced stratification of Antarctic lakes, warming in the Arctic has enhanced lake stratification, changed the migration pattern of some fish species, and increased the likelihood of their colonizing fishless lakes and altering lake eco- system structure and function. The northward and altitudinal expansion of species distribution already reported for temperate and north- temperate ecosystems are also occurring in the Arctic. Range expansions of Low Arctic trees and shrubs area prominent example of climate change induced shifts in distributions. These have broader ecological consequences as well, including alteration of trace gas exchange. Hence, shifts in species composition may affect land-atmosphere green- house gas balances. Animal invasions due to range shifts in the Arctic will also alter the dynamics of simple Arctic systems. For example, two species of geometrid moths are rapidly expanding in northern Fennoscandian birch forests, consistent with warmer winters and earlier springs and their outbreaks are already altering the atmospheric carbon budget of parts of the Arctic. Numbers of Arctic fox are declining in parts of the Arctic in conjunction with northward expansion of the range of red foxes which may itself be a response to warming. Not all biological responses to climate change in the Arctic have been direct or as enthusiastically noticeable Responses to climate change may be covered by species interactions,

risking that responses are unseen as evidence that climate change has no effect on a particular species, or that the strength of species interactions balance the effects of abiotic factors on determination of populations. For example, in aquatic systems, increases in the amount of rain in precipitation may develop nutrient loading of lakes and increase cross-lake fish colonization due to better connectedness, with main flowing effects in lake food webs. In Low Arctic Greenland, beginning of the plant growing season has advanced in response to warming, whereas the timing of caribou calving has not. As a result, a tropic disparity has developed, and the peak demand for resources by reproductive females now falls considerably later than the seasonal peak of resource availability, it appears that contributing to reduced production and survival of caribou calves. Similar warming-induced disruptions may have a role in the current Arctic-wide decline of nearly all caribou populations. Temporal changes in plant-herbivore relationships may also have consequences throughout food webs. For instance, threatens to alter tropic interactions and ecosystem processes of which these species are key determinants. Vegetation reactions to abiotic changes in the Arctic are not restricted to individual growth responses or changes in plant community composition. To a certain extent, they also influence the dynamics of trace gas exchange between the biosphere and atmosphere, which may ultimately response onto climate itself. For example the aforementioned expansion of shrubs and trees has supported snow accumulation, increased winter soil temperatures, and enhanced soil microbial activity and nutrient mineralization rates, which together may further promote shrub growth. Experimental studies also show potential atmospheric feedback consequences of vegetation response to warming. In the Canadian High Arctic, experimental warming increased by 2 weeks the period during the plant growing season when the tundra acts as a carbon dioxide sink. Recent warming has also changed biogeochemical cycles and hydrological cycles across the Arctic, leading reaction to the atmosphere, further complicating calculation of the magnitude of future climate change in the region (Post, 2009).

Perceptive of Ecological complication in the Arctic - The Arctic is frequently regarded as a comparatively simple system in which species interactions and Environment-organism dynamics are easily understood. Recent research on the effects of climate change in the Arctic has made known larger ecological inter-connectedness in this region. The Arctic's structural complexity is marked in nutrient cycling between terrestrial, freshwater, and marine components, which may be area under discussion to rapid modification with future warming. For instance, transport of terrestrial carbon into the fjords of northeast Greenland is expected to increase as the ice-free period doubles following the expected 6°C warming over the next century, with implications for increased nutrient input and productivity of fjords and lakes. Such changes at the interface between terrestrial and aquatic systems have key implications for the dynamics of species whose existence is dependent on aquatic productivity.

Species interactions are also a key component of the complexity of ecological responses to climate change in the Arctic. Increasing summer temperatures may increase insect harassment and parasitism of caribou, potentially reducing the annual caribou harvest by local communities, threatening cultural integrity and subsistence traditions already compromised by encroachment and landscape alteration due to exploitation of northern oil and gas reserves. Warming may also alter food-web structure in aquatic communities in the Arctic. Studies of 10 first-order streams in Iceland differing in geothermal influence and temperature showed that macro-invertebrate evenness and species overlap decreased with increasing temperature, whereas density of other organisms, notably of filter feeders, increased. Moreover, food-web complexity increased markedly along this natural temperature gradient, with implications for the sole fish species present.

Vegetation responses to warming may like-wise be more complex than warming experiments suggest. One consistent finding has been that warming results in the expansion of shrubs, in turn leading to a short-term decline in vascular plant diversity. Herbivory by caribou and muskoxen, however, constrains the positive effects of warming on the growth of shrubs, but promotes the growth of graminoids. Although warming is currently insufficient to promote shrub expansion in the High Arctic, graminoids are also promoted there by herbivores. Both reindeer and geese trample and compact the moss layer, resulting in elevation of soil temperature that, together with grazing and fecal deposition, promotes the productivity and expansion of graminoids, and also productivity in lakes where geese rest. Collectively, these finding indicate the need for understanding plant-herbivore interactions in a warming Arctic and their further consequences for below-ground biodiversity, community composition, and ecological processes.

Conclusion - The exploitation of Arctic resources is in pick especially in last few years. It is also the fact that the intervention of developed countries likes America, Russia and European countries in Arctic region for oil and natural gas has been increased. In future, Arctic would be the key source of resources. Therefore, the competition between the powerful countries for Arctic resources is quite high. Geopolitically, the Arctic is also important because of the sea routes especially in summer when ice melts. But the intervention is somehow leading to the climatic change in Arctic which is a serious issue. If Arctic affected more, than no dough the whole world would be in danger zone. The impacts of climate change observed by the people may be divided into these groupings: access to resources, safety, predictability, and species availability. The climate change leads to biodiversity loss, human loss, melting of ice, sea level rise, sinking of coastal areas, temperature variation in ocean water cause the loss of fauna and flora, coral reefs died, deprivation in tourism, increase in natural disasters,

ruining of natural vegetation with ecological imbalances. This is the proper time to wake up and take effective steps to control greenhouse gases and other factors which contributing in climate change. The current initiatives are not sufficient to cope up the fragile situation of Arctic region.

References :-

1. Overpeck J. (1997), "Arctic Environmental change of the Last Four Centuries", Science 278, 1251.
2. Post Eric (2009), "Ecological Dynamics across the Arctic Associated with Recent Climate Change", Science 325, 1355.
3. Post Eric (2013), "Ecological Consequences of Sea-Ice Decline", Science 341,519.
4. McCarty John P. (2001), "Ecological Consequences of Recent Climate Change", Conservation Biology, Vol. 15, No. 2, pp.320-331.
5. McGuire A. David, Chapin iii F.S., Walsh John E. and Wirth Christian (2006), "Integrated Regional Changes in Arctic Climate Feedbacks: Implication for the Global Climatic System", Annu. Rev. Environ. Resour.
6. Parmesan Camille (2006), "Ecological and Evolutionary Responses to Recent Climate Change", Annual Review of Ecology, Evolution and Systematics, Vol. 37, pp. 637-669.
7. Ford James D, Smit Barry, Wandel Johanna (2006), "Vulnerability to climate change in the Arctic: A case study from Arctic Bay, Canada", Global Environmental Change, pp. 145-160
8. -
9. Berkes Fikret and Jolly Dyanna (2001), "Adapting to Climate Change: Social – Ecological Resilience in a Canadian Western Arctic Community", Conservation Ecology.
10. Kovacs Kit M, Lydersen Christian, Overland James E and Moore Sue E (2010). "Impact of changing sea –ice conditions on Arctic marine mammals", Marine Biodiversity.
11. Tynan Cynthia T. and DeMaster Douglas P. (1997), "Observation and Prediction of Arctic Climate Change: Potential Effects on Marine Mammals", Arctic Institute of North America, Arctic, Vol. 50, No. 4, pp. 308-322.

✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻

Primitive Social System & Ecological Balance

Dr. Sanjay Joshi *

Introduction - How much importance is of the biodiversity in our ancient social system to keep Environmental balance may be seen in the old traditions, social values, rituals and in sacraments. Importance of environment for human being, it had been known very earlier by the Indian mystics and social scientists. That's why they had been included environment and nature in our festivals, Sanskars, rituals & in social teachings. Giving importance to worship of natural things like basil, the tree of Amla, Banana, Peepal and the thing that has been prepared by five ingredients of cow called Panchamrit in celebration of Sixteen sacraments and various rituals proves the importance of nature and environmental balance. The speech & teachings of Mahaveer and Gandhi ji are more relevant in these days in which it is said "Non-Violence is great religion" & "Live or Let Live".

By accepting the significance of all birds, animals, insects and beasts whether they are useful or poisonous, helpful or destructive, they had been included in our religion, worship and religious activities for the noble cause of conservation of the creature. In this manner they had played very valuable & notable roll of biological balance by handing over to generation by generation.

Objectives - The main objectives of the study is to find out the ancient principle social values, social teachings & traditions who played a significant role to maintain ecological balance & survival of creature. The present study is an attempt to understand the role of our primitive social values, rituals, festivals, norms or sacraments to make pure and preserve clean environment.

The major objectives are -

1. The motto of this research paper is to highlighted the healthy practices of our ancient people regarding significance of protection of environment.
2. The sole objective of the paper is to suggest an amicable way to create awareness through transmission of knowledge of our ancient saints & sages about significance of birds, live stock and creature for human & environment.
3. To understand the roll of teaching of old traditions, rituals, ethics, ancient life style & primitive social values can help to maintain biological balance & harmony for centuries. It is also one another aim of the study.

Hypothesis - Main hypothesis of this investigation were as follows : -

1. Ancient social values, rituals & sacraments were much more beneficial & scientific regarding to maintain ecological balance in environment.
2. Primitive peoples and their traditions, festivals, Sanskars and social system of that time played a very significant roll to keep environment neat and clean and in biological balance.
3. Ancient Social system & teaching and religious persons were helpful in establish the theory of Co-existence and preservation of the bio & creature .

Methodology - For achieving above objectives data and information have been collected from primary sources as well as secondary sources. This study is conducted on the basis of exploratory and descriptive research design. Interviews with priest, saint, old age religious womens & elites of rural society were the main tool to collect social fact. For this study empirical data & information were collected by a small sample of respondents which was selected on the basis of purposive sampling. Main techniques of data collection were informal talk, group & face to face interviews. Observation is also used as a fundamental device of the study. Secondary data collected from printed & electronic sources viz. different books, articles, Journal, Newspapers, Television and Internet. The content of the data were then analyzed for analysis of the issue. The study is basically descriptive, analytic and evaluates discourse.

Findings - It is a tradition in our domestic life that the very first bread cooked in the kitchen is given to Cow & Dog , In the Shardha Paksha provide sweet & recipes to crow, vulture , cow & dog along with priest, to give cereals to pigeon & fish, flour to ants as the Astrological remedies to keep safe from the harmful results of planets. In this way these all activities predicated the significance & utility of creature for human being.

We cannot imagine the existence of a primitive people without water, woodland, land & beasts. According to Hindu Mythology killing of any creature is a sign of sin. Due to it the snake is most poisonous insects is offered milk and worshiped on the Naag panchmi. The importance of cackling of cock and twittering of birds early in the morning is

*Asst. Professor (Sociology) Govt. P.G. College, Neemuch (M.P.) INDIA

acceptable today also. because of it the arrangement of drinking water for animals & birds is made by us. The importance of both the cuckoo & crow has been accepted & followed by us in our cultural traditions the different birds & beasts have been treated as vehicles for God & goddess. In this way they have establish the value of biological balance by co- existence and maintain environmental balance & harmony for centuries.

Conclusions - It is a tragedy that the excessive development of industries & growth of materialistic values ignore the value of co-existence that is why environment is losing its balance. Due to it the existence of various birds & live stocks have not only disappear in our villages & cities but their existence is completely getting invisible.

Suggestions - Today again it is need to teach and create awareness about those social values, rituals which are related to nature. We can save the human being and could give a clean marvelous world to our next generation by protecting the water, woodland, earth & animals. Major suggestions of this study are follows :-

1. Government and policymakers should include healthy practices, social values, norms and traditions regarding to environment in course books for all ages of children.
2. Social Values, ethics and rituals related to conservation of animals and significance of environment in our life must be teaches in classrooms by environmental sociology.
3. Today there is a necessity of saving and preserve the bio-diversity without them we could not save the human existence and environment.

References :-

1. Ahuja, Ram(1993), **Indian Social System**, Jaipur : Rawat Publications.
2. Ambastha, N.K. (1969), **A Critical Study of Tribal Education**, Delhi : S. Chand.
3. Atal, Yogesh (1965), **Tribal India**, Delhi : Raj kamal Prakashan Pvt. Ltd.
4. Dassman, R.F. (1937) **Conservation, Counter, Culture and Separate Human Ecology**, New York : M.C. Graw Hill
5. Dubey, S.C. (1990), **Tradition and Development**, New Delhi: Vikas publishing House.
6. ——————— (1969), **Man and Culture**, Delhi: Raj Kamal Prakashan Pvt. Ltd.
7. Gokhale, B.G. (1954), **Indian Thought through Ages**, Bombay : The Popular Book Depot.
8. Kanal, S.P. (1955), **Dialogues on Indian Culture**, Delhi : Panchal Press Publications.
9. Kane,P.V. (1962), **A History of the DharamSastras**, Bombay: Asia Publishing House.
10. **Naidunia**, Daily Newspaper Editorial : 21 August 1985, Indore
11. Pande, Raj Bali, (1949), **The Hindu Sanskars**, Bombay: Asia Publications.
12. Prabhu, P.N. (1954), **Hindu Social Organisation**, Bombay : The Popular Book Depot.
13. Ramay, Raghav (1964), **Ancient Indian Traditions and History**, Bombay: Asia Publishing House.
14. Sachchidananda (1980), **Elite and Development**, New Delhi: Concept Publishing Company.
15. Singh, Yogendra (1973), **Modernisation of Indian Tradition**, New Delhi: Thomson Press.
16. Kumar, Sanjeev (2012), **Enviroment and Ecology,** Patna : Lucent Publications.

✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻

Manu Samhita : Paved the path of Biodiversity

Aparna Ray *

Abstract - Manusamhita is a Dharmasastra which provides both religious and civil laws, Manu was also pioneer to introduce the Bionomical Nomenclature system based on phyllogenetic principles with social and ecological implication. Manu's division of plant kingdom is similar to modern botany and classification of animals on a specific basis of birth, elevating the seer's status as father of Biological Classification also, of an ecological indicator to ascertain a conducive environment, concept of food chain and ecological niche, raising voice against pollution and contamination with various maxims on solubrity and ethics for conservation of biodiversity. With many fold approach from ethical, social, sympathetic administrative, dietic and religious point of view. Presently my paper is a search how Manusamhita shows intimate relationship with diverse biological entities and concern for their conservation According to it Brahma has created all plants and animals with specific characteristic and function and none should disturb them. It has also prescribed various punishments for the offender. How this ancient script had paved the path of Biodiversity the same have been analyzed and then it's relevance in modern times has been emphasized.

Key words: Manusamhita, Dharmasastra, biodiversity, conservation, ethical, bionomical nomenclature, phyllogenetic, biological classification, animals, plants.

Introduction - Biodiversity is a natural attribute of environment. A region, with larger number of living species, is usually considered to have better environment and the range of biodiversity of a place indicates the richness of natural wealth of that place. Industrialization and urbanization are causing degradation of environment; consequently the existence of many species of plants and animals has become threatened. In view of scientists, all over the world, have become concerned about conserving the existing biodiversity. It may be said that, the conservation of biodiversity is considered as a thrust area of modern scientific activities.

The awareness worldwide for the urgent need in protecting the environment is reflected from the past 50 years or so only after man realized the price he was paying for indiscriminate manipulation of nature. Nature was no longer the reservoir of natural resources. Its air and water got polluted, many species became extinct and many more still are facing extinction. There is major depletion in forest wealth leading to drastic climatic changes because of greenhouse effect. All this is occurring at such a fast phase and to such an extent that the very notion of progress and development has become a paradox. The worldscenario is not only restricted to the economically weaker nations or developing nations but its effect is being felt by the developed nations also.

Against this scenario, we look for guidance from our ancient Indian treatises and ponder on how these ancient traditional values can throw light in caring for our earth and all its life-sustaining resources. An alternate search for sustaining lifestyle can be had from the ancient scriptures whose environmental philosophy has an ethical, spiritual and aesthetic appeal to all generations.

In India too, some efforts have been made during the last two decades, to comprehend the range and impact of biodiversity as also the problems related to the conservation of living forms. But, very little has been done to record and analyse the evolution of the traditional perceptions and prescriptions about the conservation of biodiversity. Sanskrit texts are an important resource of ancient Indian wisdom. The Sanskrit literature is vast in extent and varied in contents; it originated in different periods and in various regions of India. In this situation, it is better to study on Sanskrit text at a time, and after analyzing a number of texts, the collected information may be arranged sequentially. With this in view, the Manu-Samhita, an ancient text having continuous and pervasive influence on a section of the Hindu society even today,

Manu-Samhita – is a Dharmasastra which provides the code of both religious and civil law. The text has 2,694 verses in 12 chapters. It deals with many topics, including the creation of universe, living creatures, caturvarna (four principal castes) and their duties, kingship and duties of a king, laws of inheritance of properties, various socio-religious customs, eatables and non-eatables, etc "The text is, in sum, an encompassing representation of life in the world-how it is, and how it should be lived". The text contains instructions for conservation of plants and animals.

Manusmruti is an open volume of human life, deals with aspects from birth to transmigration.,In addition to its glory as an epic of social science,and jurisprudence; analysed

*Asst. Prof. (English) Govt. P.G. College, Neemuch (M.P.) INDIA

form enthnobiological,point of view is resourced with many,scientific concepts on creation, dissolution, geological time scale, ecological factors, origin of life and eugenics which are equalised at par with facts of modern science. *Manusmruti* is the pioneer to introduce the Binomial Nomenclature system based on phyllogenetic principles with social and ecological implications. Moreover, Manu's division of plant Kingdom as flowerless and flowering similar to modern Botany and classification of the animals on a specific basis i.e. birth elevates the seer's status as the father of Biological Classification. Similarly, the various ecological facts retrieved from the epic such as identification of an ecological ,indicator to ascertain a conducive environment, concept of food-chain and ecological niche, raising voice against pollution and contamination with various maxims on solubrity and ethics for conservation of biodiversity with a many fold approach from ethical, social, sympathetic, administrative, dietic and religious point of view, with the basic theme non-violence to subhuman beings and vegetation, confers the seer scientist as an apostle of ecological knowledge.

As per *Manusmruti* the present creation have started 1972949103 years back. Uptil now seven Manu(s) have reigned this world namely 1. *Svayambhu*, 2 *Svarachisa*, 3. *Auttama*, 4. *Taamasa*, 5. *Raivata*, 6. *Chaakshusha* and 7. the present ruler *Vaivassvata*. The ruling period of each Manu is named as *Manvantara*, a time period of 30672 x 104 earthly years.

The authorship of the Manu-Samhita is attributed to the first Manu, i.e. the Swayambhuba Manu, who is considered as a secondary creator. It is estimated that the extant text originated between the 2nd Century BC and the 2nd Century A.D.

The text has been treated by scholars especially as a guide to socio-religious activities and the modes of inheritance of properties. In British India, the text became instrumental in the construction of a complex system of jurisprudence. Nine commentaries and many translations of the text in various Indian and European languages have appeared from time to time. In this paper I am trying to show that . In ancient days there were punishment and penalties if one tried to hurt animals and destroy plants.

1. According to Manu-Samhita (I. 28, 39-45), Brahma, the god of creation has created all the plants and animals with specific characteristics and functions, and none should disturb creatures. Manu-Samhita attributes some of divine origin to plants and animals. Normally, God-fearing people do not dare to cause any harm to the divine beings.
2. The text (X. 89) mentions that the forest-dwelling animals and birds are not articles for sale. Before enunciating this general instruction, the text states (III.162) that, one who coerces the elephant, cow, horse or camel (hastigo' svostradamake) or maintains syena (falcon) for sport or for sale to earn a living, should not be invited to any socio-religious festival. The text continues (III. 164, 166) that, those persons who subsist by displaying various exercises of dog, falcon, and those who earn livelihood with the help of sheep or buffalo should be shunned meticulouse from all oblational functions. If one cannot make profit by catching wild animals and birds, then why one should face the hazards of trapping them. Thus it may be said that, the above instructions go a long way in saving these creatures from poaching.
3. The text (VI.46) states that, one should carefully see the ground before setting foot there, and must drink water only after straining it with cloth (drstiputamnayaset padam vastraputam jalam pibet) Whaterver may be the purpose of the instruction, it helps one to avoid killing small creatures. It is true that microbes occurring on the road or in the ground cannot be seen with the naked eye, but very small creatures can be observed and trampling them can be avoided. Similarly, straining water with cloth will not remove bacteria or still smaller living objects, but definitely would help to save tiny creatures which can not be seen with the naked eye.

Plants - Storage organs of plants like tuberous roots and underground stems, leafy vegetables, beautiful flowers, tasteful fruits, timber-yielding trees, crops etc. have remained objects of allurement since ancient times. For saving the plants and their parts from injury/destruction, Manu-Samhita prescribes various punishment s for the offenders. The fear of punishments acts as a significant deterrent, and greedy people dither to cause harm to the plants.

Table I : Protection of plants

S.	Nature of offence	Punishment
1	Felling living tree for (a) establishing mine, factory of constructing big bridge/dam etc/ (b) firewood.	Offender should be condemned as a degraded person (XI.64). Offender should be condemned as a degraded person (XI.65).
2	Cutting down fruit-laden tree, shrub, twiner, climber, flowering herb	Rks. For hundred times (XI.143)
3	Destroying plants – cultivated or monocar -pous or wild	The offender has to attend on a cow for whole day and undergo penance by living only on milk (XI. 145).

Animals - Some animals are useful, some are attractive, while others appear to be dangerous. For any of these reasons humans may feel allured to catch the animals and in certain cases to drive away the dangerous animals. In these efforts men often cause injury to the animals.

The Manu-Samhita states the protecting the animals is the duty of the king. According to this text (VIII. 306), the king who protects animals and punishes the killers earns merits.

From the hunter-gatherer stage of life, humans have been consuming fish and the meat of animals and aves. This habit of man causes destruction of wild life. Perhaps with a view to saving creatures from wanton killing by greedy

men, the Manu-Samhita (V.11-36) describes some specific situation when these can be eaten, but normally one should not eat them. The text (V.37) categorically prohibits the unwanted slaughter of animals. Manu so severely condemns the unnecessary slaughter of animals , he say (V-38) that the sin of such an act haunts the sinner after birth. Manu states explivitly that excepting some religious rites violence must not be caused to the animals.

To save the useful animals from destruction, Manu-Samhita (XI. 69) states that killing of khara asva, ustra(camel), mrga(deer), ibha(elephant), aja(goat), avika(sheep), mina, ahi(snake), and ahisa(buffalo) is a sin, In (XI.71) further states that killing even krmi(Worm), Kita (insect) and vayas (bird) is a sinful act. Various punishments have been suggested.

Protection of animals

S.	Nature of offence	Punishment
1	Teasing the animals.	Punishment was with the gravity of offence (VIII. 286)
2	Wounding, injuring, leading to blood-shed	Cost of the treatment borne by the offender (VIII.287)
3	If harmed by untrained driver of a vehicle.	One had to pay a fine of two hundred panas (VIII.293)
4	Causing harm to noble animals like cow, elephant, camel, horse, etc.	Offender Had to pay a fine of five hundred panas (VIII.296)
5	(i) Causing violence to small animals (ii) Harming ass, goat,cattle: (iii) Killing dog, boar.	(i) 50 panas (VIII.297) (ii) Five masas of silver (VIII.298) (iii) One masa (VIII.132)
6	Knowingly killing cat, mongoose,toad, dog, iguana, owl, crow.	Offender should perform candravana vrata (XI. 132)

Conclusion - Attitude towards nature and natural environment has evolved because of the utilitarian and exploiting world view held by humans thereby discrediting the intrinsic values that exist in nature and other living and non-living beings within it. Human attitude towards nature and environment is the fundamental reason which determines our treatment of the natural environment. The attitude is formed and fashioned by the ethical and moral values we embrace. There has been a tremendous shift in the human attitude towards nature and environment through the ages. The ancient Indians had embraced and adopted a set of ethical and moral values which truly respected nature. They followed ethical principles while using land, water and air. For ex: since the land is the part of the earth, and they looked upon earth as the benign mother, land needs protection from all kinds of pollution, environmental hazards and exploitation for egoistic reasons. But now, sanctity and divinity is not found in the ethical principles as they are no longer deemed important. As such, land has become a commodity to be played with. The same is true when we look at the other resources.

Earlier natural resources where looked at not only from the perspective of their usefulness to humans but also largely from the view of their being a home for the millions and millions of animals and birds and other living and non-living entities. Plants and trees had their own life which not only sustained humans but was sanctuaries to other creatures. But now, environment and its pollution, is looked only from the human point of view and biodiversity that is also a part of this earth is grossly forgotten.

Since the dawn of human civilization, man has been modifying nature but never with an intention of destroying it completely as is evident today. It is a very true fact that environment has been, is and will be mans permanent teacher. Better understanding of the environment is vital and an indispensable knowledge to share. The environmental education had by the ancient Indians from their formative years helped in instilling in them awe, respect, wonder, gratitude and a sense of belonging and awareness of living life in harmonious balance with natural surroundings.

In ancient scriptures, the Vedic scholars have not only explained the usefulness of trees and plants but also depicted their beauty and charm in their writings. It is a fine illustration of their position and usefulness in life and their affiliation with humanity. It was evident to the ancients that only an earth that is filled with trees and forests and hills can harbor and nurture the human race. Hence ample evidence can be seen in the ancient scriptures pointing out to the need for protection of environment that helps in maintaining the ecological balance which in turn has an overall benefit to the society.

Reference :-

1. Banerji. S.C. : A companion to Sanskrit Literature, 2nd Edn,. Motilal Banarasidas. Delhi, 1989,
2. Jain S.K. : Some aspects of biodiversity and indian traditions. Ind. Jour. of Hist. of Sc., 1998
3. Doniger, W. and Smith, B.K. : The Laws of Manu. Penguin Books USA Ins. 1991
4. Dr.Anirban Ganguly, (Associate Fellow,VIF), Man and Environment in India: Past Traditions and Present Challenges<http://www.vifindia.org/article/2012/july/26/man-and-environment-in-india-past-traditions- and present- challenges.
5. Padhy, S.N., Dash, S.K. And Mohanty, R.B. : Ethno biological Studies from Manu Smruti.
6. Jaimini Sarkar, “Indian Science through the Ages”. Scientific Reporter ,August 2011, pp:8–14.
7. Pandit Satyakam Vidyalankar, The Holy Veda – a Golden Treasury. New Delhi: Clarion Books, 1996.

✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻

Smart Cities : Importance And Expectations

Nilofer * Dr. Nisha Dube **

Abstract - Over the next three decades, seventy percent of the global population will live in cities, this implies the development of best practices to improving city resources management. 60% of the world's population is expected to live in urban environments by 2025. It is expected that around 26 global cities and more than 90 sustainable cities will develop, which leads to the vast consumption of the world's resources.

Across the world, the stride of migration from rural to urban areas is increasing. By 2050, about 70 per cent of the population will be living in cities. It will need new cities to accommodate the population. With increasing urbanisation and the load on rural land, the government has now realised the need for cities that can cope with the challenges of urban living and also be magnets for investment.

A Smart City is a sustainable city which recognizes the physical limits to its growth without compromising the quality of life of the present and future generations. A smart city must also be modular and dynamic in nature and has the ability to adopt and evolve with time without compromising the ecological integrity and quality of life of its inhabitants.

Keywords - smart cities, infrastructure, urbanisation, urban development, city planning.

Introduction - "A smart city (also smarter city) uses digital technologies to enhance performance and wellbeing, to reduce costs and resource consumption, and to engage more effectively and actively with its citizens. Key 'smart' sectors include transport, energy, health care, water and waste,".

A smart city is one that completely runs on technology—be it for electricity, water, sanitation and recycling, ensuring 24/7 water supply, traffic and transport systems that use data analytics to provide efficient solutions to ease commuting, automated building security and surveillance systems, requiring minimal human intervention, and Wi-Fi-powered open spaces and houses that ensure always-on, high-speed connectivity. Consider these scenarios: an office that's walking distance from home. A completely Wi-Fi enabled city. A smart card for cashless transactions that is also capable of facial recognition and acts as a key to enter your building with advanced security systems. The same smart card also allows you to operate the electrical equipment at home through motion sensor technology. All this with a promise of 30% savings on electricity and water costs.

The concept of smart city is influenced by the idea of developing the urban hubs which would be running on technology to provide better electricity and water supply, improve sanitation and recycling, proper traffic and transport management systems.

It will be equipped with the latest and most advanced technologies. It will have state-of-the-art infrastructure with 24-hour water supply, round-the-clock electricity, and world-class water conservation & waste management techniques. Smart city will be powered with green technology and Wi-Fi connectivity.

A carefully planned city will attract investments, create jobs, have strong infrastructure, and most importantly, up the standard of living of its citizens.

People migrate to cities primarily for employment. To support their happy and comfortable living, they also need good quality housing, cost efficient physical and social infrastructure such as water, sanitation, electricity, clean air, education, health care, security, entertainment, etc. Industries also locate in cities because there are agglomeration economies that provide easy access to labour and other factors of production. In this context, Smart Cities are those that are able to attract investments.Good infrastructure, simple and transparent online processes that make it easy to establish an enterprise and run it efficiently are important features of an investor friendly city.

Challenges - The concept is not without challenges, especially in India. For instance, the success of such a city depends on residents, entrepreneurs and visitors becoming actively involved in energy saving and implementation of new technologies. There are many ways to make residential, commercial and public spaces sustainable by ways of technology, but a high percentage of the total energy use is still in the hands of end users and their behaviour. Also, there is the time factor — such cities can potentially take anything between 20 and 30 years to build.

With increasing urbanisation and the load on rural land, the government has now realised the need for cities that

* Research Scholar, Barkatullah Univercity, Bhopal (M.P.) INDIA
** Former Vice-Chancellor, Barkatullah Univercity, Bhopal (M.P.) INDIA

can cope with the challenges of urban living and also be magnets for investment. The announcement of '100 smart cities falls in line with this vision. Then the concept of smartcity.

For instance, the success of such a city depends on residents, entrepreneurs and visitors becoming actively involved in energy saving and implementation of new technologies. There are many ways to make residential, commercial and public spaces sustainable by ways of technology, but a high percentage of the total energy use is still in the hands of end users and their behaviour. Also, there is the time factor — such cities can potentially take anything between 20 and 30 years to build.

With a large number of people migrating from rural areas to cities in search of better opportunities, the goal of providing a roof over everyone's head is bound to get even more challenging for the government.

The urban housing shortage will grow faster than the rural housing shortage over the next five years due to increase in migration to cities, rise in incomes and proliferation of nuclear families.

To deal with the rapid urbanization and also avoid severe strain on the existing infrastructure in cities, the government intends to create 100 smart cities as satellite towns of large cities.

A smart city is one which enjoys sustainable economic growth and high standards of living. Investments in human and social capital, physical infrastructure such as transport, and social infrastructure like healthcare, education and recreation, are the usual hallmarks of such a city. It intelligently manages resources and uses Information and Communication Technology and technology platforms including automated sensor networks and data centers to make living efficient. In other words, a smart city has a mix of commercial (services and manufacturing), residential, social infrastructure, physical infrastructure and public utilities.

Pointing out that a smart city could take between 8 to 10 years to build from scratch and even more time to attract businesses and people, the white paper said such an initiative required commitment and persistence on part of the government over a long period of time. It stressed that the authorities needed to be aware of the latest relevant technologies and the technologies had to be tailor-made and used effectively taking into account the topography, location and natural resources of the area. It added that the success of a smart city depended on residents, entrepreneurs and visitors actively participating in energy saving, implementation of new technologies and decisions to improve quality of life.

A shade less than a third of India's population now lives in urban areas, overcrowded cities and towns with infrastructure bursting at the seams. Earlier attempts at providing better urban infrastructure or at creating new townships have not been able to deal with the issue of liveability satisfactorily. Even successful special economic zones have had to contend with the issue of lack of social infrastructure, which usually means access to avenues of education, health, arts, sports, and so on.

The government has plans to have different categories of smart cities depending upon population. As per the proposed plan, focus is on State/UT capitals, even if they have a population of less than one million, cities of tourist and religious importance, cities in 0.5 to 1 million population, cities in the population range of 1 – 4 million people, cities with a population of 4 million people or more.

Institutional infrastructure, physical infrastructure and social infrastructure constitute three pillars on which smart city rests. Institutional infrastructure refers to the activities that relate to the planning and management systems. Physical infrastructure refers to urban mobility system, the housing stock, the energy system, the water supply system, sewage system, sanitation facilities, solid waste management system and drainage system which are all integrated through the use of technology.

The cities of the future are all but certain to confront a number of unique challenges. -

These cities of the future will need to balance the basic demands of a growing population against concerns for the environment, economic sustainability, and the logistics required to simply keep these enormous cities running. Planning for this future is made more complicated by the dearth of usable data.

With more than half of the global population now living in urban areas, some in abject poverty, the path to sustainable development must pass through cities. In a meeting in July, the Working Group for the UN's Sustainable Development Goals set a target to build 'inclusive, safe resilient and sustainable' cities and human settlements.

The concept is based on ecologically friendly urban settlements that exploit technology to offer a more structured living environment. Such cities would have a centralized control system that provides real-time data on the availability of water, electricity, education, public transportation and sanitation: the basic modern-day needs.

Definition of a Smart City vary widely - ranging from the use of discrete new technology applications to a more holistic conception of intelligent, integrated working and user-generated services. Smart City Challenge is an unique initiative which aims at providing a strong sharing platform and offers a unique opportunity for the students to get involved in the development of smart cities to exchange ideas and foster the new integrated approaches in India. It has been designed with a vision to involve indian student community in developing smart cities which are ecologically friendly, technologically integrated and meticulously planned with a particular reliance on the use of information technology to improve efficiency. We wish you to came with new ideas of urban planning, smart mobility, smart utilities, smart energy, safety & security, smart governance and economic development of city by smartening the urban systems with existing circumstances to optimize resource utilization.

If the concept note (which has been described as a work in progress) is to be believed, this is how our smart cities are going to be:

- No commuter would have to spend the best part of his time on travel - not more than 30 minutes in small and medium sized cities and 45 minutes in metropolitan areas, for instance. Unobstructed footpaths should be a norm on either side of the broader roads. Not to speak of cycle tracks. - And ninety-five percent of residents would not have to walk more than 400 metres to find parks, primary schools and recreational areas and also for shopping. It should be possible to access work places and public and institutional services using public transport or bicycle or by walking.
- The benchmarks cover different sectors including health and education. For example, telemedicine facilities should be available to 100 per cent of residents and the emergency response time should be no more than 30 minutes. The city should have Wi-Fi coverage.

Universities, medical colleges, engineering colleges and technical education centres should be so distributed as to cover a population of 10 lakhs each. And so on.

Sanitation is important for all the urban residents. Lack of sanitation cause outbreaks of epidemics, health disorders and keep the mortality rates high in general and among the poor in particular.

Waste management is the "generation, prevention, characterization, monitoring, treatment, handling, reuse and residual disposition of solid wastes".

There need to be incentives for curbing waste. Pricing structures should be such that while services are affordable, waste is discouraged.

Attaining a 24 X 7 level of service needs to happen to a great extent through reducing leakages and waste. Solid waste management is another important area where there is considerable potential for recycling. Wet garbage needs to be segregated from dry garbage.

As per the Government of India statistics, nearly 94% of the households in urban areas have access to electricity, however, the availability of the supply remains a concern. Smart cities should have universal access to electricity 24 X 7. This is not possible with the existing supply and distribution system.

The selected cities will have to attain specified benchmarks –

1. Have an existingmaster plan that is valid for atleat the next 10 years .
2. Electronic/Online delivery of all public services, so that visits to the local offices are rendered gradually redundant.
3. Adopt tariff structures that are affordable for the poor and yet minimize waste. In doing so the state/ cities could use their own resources to bridge the gap between the revenue and expenses.
4. Make all information and decisions taken available in the public domain.

Prospects - A 'smart city' is an urban region that is highly advanced in terms of overall infrastructure, sustainable real estate, communications and market viability. It is a city where information technology is the principal infrastructure and the basis for providing essential services to residents. In a smart city, economic development and activity is sustainable and rationally incremental by virtue of being based on success-oriented market drivers such as supply and demand. They benefit everybody, including citizens, businesses, the government and the environment.

With increasing urbanisation and the load on rural land, the government has now realised the need for cities that can cope with the challenges of urban living and also be magnets for investment. The announcement of '100 smart cities' falls in line with this vision.

Sustainability includes social sustainability, environmental sustainability and financial sustainability. Quality of Life includes safety and security, inclusiveness, entertainment, ease of seeking and obtaining public services, cost efficient healthcare, quality education, and opportunities for participation in governance.

Accordingly, the current thinking is that 100 cities to be developed as Smart Cities may be chosen from amongst the following:_-

1. One satellite city of each of the cities with a population of 4 million people or¬ more(9 cities)
2. All the cities in the population range of 1 – 4 million people (44 cities)
3. All State/Union Territories Capitals, even if they have a population of less than¬ one million (17 cities)
4. Cities of tourist and religious importance (10 cities) Cities in the 0.5 to 1.0 million population range (20 cities)

Five key elements of PM Narendra Modi's 100 smart cities :

1. In terms of infrastructure, the smart cities should have 24x7 availability of high quality utility services like water and power.
2. A robust transport system that emphasises on public transport is also a key element.
3. In social infrastructure, the cities should provide opportunities for jobs and livelihoods for its inhabitants.
4. The smart cities should also have proper facilities for entertainment and the safety and security of the people. State-of-the-art health and education facilities are also a must.
5. The smart cities should minimize waste by increasing energy efficiency and reducing water conservation. Proper recycling of waste materials must be done in such cities.

Why do we need smart cities :

1. It has not only a few hours of water supply a day, or electricity that goes off for several hours, or streets littered with garbage. The general appearance of the city has to be pleasing and clean.It would make our tourist sector more attractive and it will lead to earn more dollars.

2. It will create more jobs for the unemployed youth of India.

People migrate to cities primarily for employment. To support their happy and comfortable living, they also need good quality housing, cost efficient physical and social infrastructure such as water, sanitation, electricity, clean air, education, health care, security, entertainment, etc. Industries also locate in cities because they provide easy access to labour and other factors of production. In this context, Smart Cities are those that are able to attract investments. Good infrastructure, simple and transparent online processes that make it easy to establish an enterprise and run it efficiently are important features of an investor friendly city.

1. Competitiveness
2. Sustainability
3. Quality of Life

Institutional Infrastructure (including Governance), Physical Infrastructure and Social Infrastructure constitute the three pillars on which a city rests. The center of attention for each of these pillars is the citizen. In other words a Smart City works towards ensuring the best for all its people, regardless of social status, age, income levels, gender, etc.

There are several instruments that facilitate the development of a Smart City. These are:-

1. Use of Clean Technologies
2. Use of Information and Communication Technology
3. Participation of the Private Sector Citizen participation
4. Smart Governance

These include several aspects such as smart planning, transparency in governance, smart energy, smart infrastructure, smart buildings, and smart service delivery mechanisms. Essentially, a smart city is not about a single or a certain industry segment but will open multiple growth opportunities across all industries. Technology is at the heart of a smart city ecosystem - from urban planning to creating healthy environment, ensuring safety of people, smart and efncient power distribution, ensuring 24/7 water supply, intelligent trafnc and transportation management systems that use analytics to provide efncient solutions to ease commuting, and automated building security and surveillance systems requiring minimal human intervention. However, what is imperative is a need for a common technology platform which integrates all aspects of city planning and management providing a common operating picture to all. such as Urban Observatory could be used to compare and contrast global cities on numerous subjects, such as their growth patterns, demographics, land use, infrastructure, and transportation.

Components of Smart City :

1. Traffic management:
2. Smart urban lighting:
3. Waste management
4. City maintenance:
5. Wi-Fi:
6. Intelligent Transport System:
7. Smart Grids:

Smart cities can be horizontal or vertical, depending on the available space.

Conclusion And Suggestion - Future of smart city: Imagine yourself in an Indian city where every home is connected to internet, gas, water and electricity via a smart grid. All citizens are linked to each other and to civic facilities in real time. The city uses renewable energy and its transport systems are controlled via central command centres to reduce traffic and pollution. In this city, there are no offensive smells, no noise, no dust, no heaving crowds. It is a smart city, the ideal city.

Engage effectively with local people in local governance and decision by use of open innovation processes and e-participation, improving the collective intelligence of the city's institutions through E-Governance, with emphasis placed on citizen participation and co-design.

The criticisms of smart cities - A bias in strategic interest may lead to ignoring alternative avenues of promising urban development.

1. The focus of the concept of smart city may lead to an underestimation of the possible negative effects of the development of the new technological and networked infrastructures needed for a city to be smart.
2. As a globalized business model is based on capital mobility, following a business-oriented model may result in a losing long term strategy .

To handle large-scale urbanization and finding new ways to manage complexity, increase efficiency, reduce expenses, and improve quality of life there is a need of smart city.

`The key features of a Smart City is in the intersect between competitiveness, Capital and Sustainability. The smart cities should be able to provide good infrastructure such as water, sanitation, reliable utility services, health care; attract investments; transparent processes that make it easy to run a commercial activities; simple and on line processes for obtaining approvals, and various citizen centric services to make citizens feel safe and happy.

In smart cities buildings, transport and infrastructure should be energy efficient and environmentally benign. Use of Information and Communication Technology and this often helps reduce the need for travel.

Installation of water leakage prevention devices and water rates that rise steeply with consumption will be essential. Incentives for rain water harvesting, such as discounts in the water bill for rain water harvested will go a long way in minimizing waste and conserving natural resources.

Water supply systems could also help reduce waste and conserve water. Educating citizens on the importance of conserving natural resources will go a long way in furthering a culture of conservation.

Citizen consultation and a transparent system by which citizens can rate different services is yet another instrument for improving performance.

ULBs would need to make effective use of ICTs in public administration to connect and coordinate between various departments. This combined with organizational changeand new skills would improve public services and strengthen support to public. This will mean the ability to seek and obtain services in real time through online systems and with rigorous service level agreements with the service providers. Identifying the Smart Cities.

Local linkages within the city is very poor, the city lacks basic infrastructural facilities like proper sewerage, solid waste management systems, etc.

Principles Key Feature of tourist attraction. 4. Connected to other Cities Cities should have good regional connectivity. This not only saves time, but helps businesses grow. This encourages exports and imports of both goods and labour. This can be done via building high speed trains, airport for enhancing the regional connectivity of cities.

References :-

1. Southampton City Council. "SmartCities card". Retrieved2015-05-30.
2. Amsterdam Smart City. "Amsterdam Smart City ~ Projects". Retrieved 2015-05-30.
3. Komninos, Nicos (2013-08-22). "What makes cities intelligent?". In Deakin, Mark. Smart Cities: Governing, Modelling and Analysing the Transition. Taylor and Francis. p. 77. ISBN 978-1135124144.
4. Paskaleva, K (25 January 2009). "Enabling the smart city:The progress of e-city governance in Europe". International Journal of Innovation and Regional Development 1 (4):405–422(18).doi:10.1504/ijird.2009.022730.
5. Dept Business(2013) Page 3 Arup estimates that the global market for smart urban systems for transport, energy, healthcare, water and waste will amount to around $400 Billion pa. by 2020
6. Deakin, Mark; Al Waer, Husam. "From Intelligent to Smart Cities".Journal of Intelligent Buildings International: From Intelligent Cities to Smart Cities 3 (3). doi:10.1080/17508975.2011.586671.
7. Deakin, Mark (2013-08-22). "From intelligent to smart cities". In Deakin, Mark. Smart Cities: Governing, Modelling and Analysing the Transition. Taylor and Francis. p. 15. ISBN 978-1135124144.
8. Giffinger, Rudolf; Christian Fertner; Hans Kramar; Robert Kalasek; Nataša Pichler-Milanovic; Evert Meijers (2007). "Smart cities – Ranking of European medium-sized cities" (PDF). Smart Cities. Vienna: Centre of Regional Science.

****

The Soliloquy

Dr. Rashmi Nagwanshi *

Abstract - When the word soliloquy derived from, what it's mean, when and where the dramatist use it. It is systematic collection and Analysis in order to increase our understanding of the word about which we are concerned or interested. This is my effort to highlight the hidden fact. The word soliloquy is derived from Latin word "*solo*" which means "to him" and "*loquor*" means "I speak" respectively. A soliloquy is often used as a means of character revelation or character manifestation to the reader or the audience of the play. Due to a lack of time and space, it was sometimes considered essential. The purpose of this piece of pure convention is, of course, clear. It is the dramatist's mean of taking us down into the hidden recesses of a person's nature, and of revealing those springs of conduct which ordinary dialogue provides him with no adequate opportunity to disclose. It may be necessary for our complete comprehension of his action that we should know certain of his characters from the inside.
Key words - Revelation, manifestation, nature, inside.

Introduction - *Soliloquy is* an act of speaking one's thoughts aloud when by oneself or regardless of any hearers, especially by a character in a play. Soliloquy is a Dramatic or literary form of discourse in which a character talks to himself or herself or reveals his or her thoughts when alone or unaware of the presence of other characters. Soliloquy is a specific speech or piece of writing in this form. Soliloquy is the act of speaking to oneself. The word soliloquy is derived from Latin word "*solo*" which means "to him" and "*loquor*" means "I speak" respectively. A soliloquy is often used as a means of character revelation or character manifestation to the reader or the audience of the play. Due to a lack of time and space, it was sometimes considered essential to present information about the plot and to expose the feelings and intentions of the characters. Dramatists made extensive use of soliloquies in their plays but it has become outdated, though some playwrights still use it in their plays. Soliloquy examples abound during the Elizabethan era.

A soliloquy is a popular literary device often used in drama to reveal the innermost thoughts of a character. It is a great technique used to convey the progress of action of the play by means of expressing a character's thoughts about a certain character or past, present or upcoming event while talking to him without acknowledging the presence of any other person. The dialogue is the dramatist's only substitute for the direct analysis and the commentary of the novel. This exception is furnished by the device known as the soliloquy, under which term we include not only the soliloquy proper, but also that minor subdivision of the same form which we call the "aside."

The purpose of this piece of pure convention is, of course, clear. It is the dramatist's mean of taking us down into the hidden recesses of a person's nature, and of revealing those springs of conduct which ordinary dialogue provides him with no adequate opportunity to disclose. It may be necessary for our complete comprehension of his action that we should know certain of his characters from the inside. He can not himself dissect them, as the novelist does. He therefore allows them to do the work of dissection on their own account. They think aloud to themselves, and we overhear what they say.A very fair account of the rationale and functions of soliloquy in characterization will be found in the following remarks by Congreve. His Double Dealer had been criticized because, among other things, of the place given in it to soliloquy. As this criticism did "not relate in particular to this play, but to all or most that were ever written," Congreve undertakes to answer it "not only for my sake, but to save others the trouble, to whom it may hereafter be objected," and he proceeds-

'I grant that for a man to talk yo himself appears absurd and unnatural; and indeed it is so in most cases; but the circumstances which may attend the occasion make alteration. It oftentimes happens to a man to have designs which require him to himself, and in their nature cannot admit of a confident. such for certain, is all villainy, and other less mischievous intentions may be very improper to be communicated to a second person. In such a case, therefore, the audience must observe whether the person upon the stage takes any notice of them at all, or no. For if he supposes any one to be by when he talks to him, it is monstrous and ridiculous to the last degree. Nay not only in this case, but in a any part of a play, if there is expressed any knowledge of an audience, it is insufferable. But otherwise, when a man in soliloquy reason with him, and pros and cons, and weighs all his designs, we ought not to imagine that this man either talks to us or to himself; he is

* Asst. Professor (English) Govt. College, Junnordeo (M.P.) INDIA

only thinking, and thinking such matter as were inexcusable folly in him to speak. But because we are concealed spectators of the plot in agitation, and the poets find it necessary to let us know the whole mystery of his contrivance, he is willing to inform us of this person's thoughts; and to that end is forced to make use of the expedient of speech, no other better way being yet invented for the communication of the thought." This passage is noteworthy because it serves to remind us that the convention in question was a common feature of our English drama.

Shakespeare's soliloquies contain some of his most original and powerful writing. Possibly prompted by the essays of Montaigne, he explores in his greatest tragedies the way someone wrestles with their private thoughts under pressure, often failing to perceive the flaws in their own thinking, as in the great galloping I-vii soliloquy ('if 'there done when 'tis done…') in which Macbeth unconsciously reveals through his imagery his fear of damnation but fails to realize what really holds him back from murdering his king: simply the fact that it is wrong. The earliest of the mature soliloquies occur in Julius Caesar where Shakespeare develops Brutus as a forerunner of Hamlet: the self-critical and honest man struggling to do what's right in unpropitious circumstances. Hamlet's seven soliloquies, and the single major soliloquy of Claudius in Hamlet can all be described as 'a search for a difficult sincerity', and represent Shakespeare's most extended study of the workings of the human mind; it is not until the novels of Dostoyevsky that a character's inner self is examined with such power, discrimination and technical skill.

Shakespeare's soliloquies are written in blank verse of unparalleled variety, invention and rhythmic flexibility, suggestive of the rapidly changing moods of their speakers. Often, it is through vivid and memorable imagery that an individual registers his unique take on the world: Hamlet's perception of Elsinore as 'an unwedded garden that grows to seed', the frantically deluded Leontes who feels he has 'drunk and seen the spider', the self-dramatizing murderer, Othello 'Methinks it should be now a huge eclipse' or Antony's transcendent vision of his afterlife with Cleopatra: 'Where souls do couch on flowers, we'll hand in hand, And with our sprightly port make the go A soliloquy is a popular literary device often used in drama to reveal the innermost thoughts of a character. It is a great technique used to convey the progress of action of the play by means of expressing a character's thoughts about a certain character or past, present or upcoming event while talking to him without acknowledging the presence of any other person.

In Hamlet's final soliloquy we see a distinct alteration in his tone, in comparison to all of the other soliloquies, especially the 'Hecuba speech', where Hamlet tore into himself for his lack of action. Hamlet is furious for being a "pigeon-livered" "rogue", who has all "motive and the cue for passion" to kill Claudius yet does nothing. The 'player king' who is merely acting shows more sadness and emotion than Hamlet. Here we do not see this anger, self-hatred and disappointment, it is much more contemplative. Hamlet is finally realizing and coming to terms with what he has been doing wrong. He now understands that he has been "thinking too precisely", and ponders whether it is merely the "three parts coward" that is holding him back from action. Hamlet sees that there is every reason in the world to avenge his father's death and his "mother stained", he has "will and strength, and means", yet despite all this Claudius still lives. In the Hecuba soliloquy the words were very disjointed. There were many hard sounding words, which enabled Hamlet to 'spit them out' in disgust; "what a rogue and peasant slave am I". In this sentence there has even been inversion to put direct emphasis on the "I" to show Hamlet's disgrace at himself. Hamlet shows his mood and feelings in the words, he even breaks away from the meter of iambic pentameter to further enhance his amazement that the player king could be so distressed "For Hecuba!" Even the punctuation expresses his anger; there are numerous exclamation marks and question marks, as he cannot believe his "monstrous" lack of revenge. However in this soliloquy there is only one exclamation mark as Hamlet suddenly understands what he should have been doing; "spur my dull revenge". Hamlet is saying that his revenge has been boring; "dull". One would not consider this to be a word used with revenge, and neither does Hamlet. Fortinbras is the reason Hamlet re-assesses his situation in a calm but critical way.

A soliloquy in a play is a great dramatic technique or tool that intends to reveal the inner working of the character. No other technique can perform the function of supplying essential progress of the action of the story better than a soliloquy. It is used not only to convey the development of the play to the audience but also provide an opportunity to see inside the mind of a certain character.

References :-

1. An Introduction to the study of English Literature, William Henrey Hudson, Indian Publishins House,Jaipur, 2010.
2. Aspects of Literature, J. Middleton Murry, Srishtl Book Distributers, New Delhi India, 2011.
3. Myles Amita, 2010, Contemporary Indian English drama, sarup Book Publishers Pvt. Ltd., New Delhi.

****

नीमच जिले में वन क्षेत्र का स्थानिक तथा कालिक विश्लेषण

डॉ. अख्तर बानो *

प्रस्तावना – वन प्राकृतिक सम्पदा है । वन प्रत्येक देश के लिए अति आवश्यक है, क्योंकि वनो का स्थानीय जलवायु , वर्षा , मिट्टी कटाव उद्योग पर प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है । अत: वन क्षेत्रो का अध्ययन अत्यावश्यक है। किसी भी राष्ट्र के कुल भौगोलिक क्षेत्र के 33 प्रतिशत भाग पर वन क्षेत्र होना चाहिए। नीमच जिले में वन क्षेत्र का प्रतिशत 33 से कम 24 प्रतिशत है । अत: नीमच जिले में वन क्षेत्र में वृद्धि तथा इनके संरक्षण की आवश्यकता है। इसी उद्देश्य से प्रस्तुत शोध पत्र में नीमच जिले में वन क्षेत्र का स्थानिक तथा कालिक विश्लेषण किया गया है ।

अध्ययन क्षेत्र – अध्ययन क्षेत्र नीमच जिला है । जिले में तीन तहसील जावद , मनासा और नीमच है। नीमच जिला मध्यप्रदेश के पश्चिम में स्थित है। वर्तमान में इसमें पांच तहसीले हो गई है किन्तु शोध पत्र में वर्ष 1981के आकड़ो के आधार पर वन क्षेत्र में वृद्धि दर्शाई गई हैं , अत: अध्ययन की सुविधा तथा सही निष्कर्ष निकल कर सामने आए इस हेतु तीन तहसीलो को अध्ययन का आधार बनाया गया है। नीमच जिले का कुल क्षेत्रफल 4256 वर्ग किमी है । नीमच जिले की जनसंख्या लगातार बढ़ रही है (तालिका क्रमांक 1)

तालिका क्रमांक 1

नीमच जिला : तहसीलवार जनसंख्या तथा वन क्षेत्र (प्रतिशत में)

क्र.	तहसील	वर्ष		वन क्षेत्र	
		1981	2011	1981	2010
1	जावद	104674	246178	18.73	32.10
2	मनासा	126236	267541	25.10	25.31
3	नीमच	180011	312348	02.97	05.19
	जिला	410921	826067	14.16	24.00

उद्देश्य –

- नीमच जिले में वन क्षेत्र में कमी के कारण दर्शाना।
- जिले में वन क्षेत्र में वृद्धि हेतु सुझाव देना ताकि क्षेत्र में वन क्षेत्र 33 प्रतिशत हो सके ।

शोध प्रविधि – प्रस्तुत अध्ययन द्वितीयक आंकड़ो पर आधारित है। नीमच जिले के तहसीलवार वन क्षेत्र के आंकड़े सांख्यिकीय कार्यालय मंदसौर तथा नीमच से (वर्ष 1981 तथा 2010) लिये गए है। अध्ययन हेतु वन क्षेत्र के आंकड़ो का प्रतिशत में उपयोग किया गया है। यह प्रतिशत तहसीलवार कुल भौगोलिक क्षेत्रफल से निकाला गया है एवं विगत 30 वर्षो का अध्ययन किया गया है।

वन क्षेत्र : नीमच जिला – नीमच जिले में वन क्षेत्र का वितरण असमान है। सामान्यतया किसी प्रदेश के एक तिहाई भाग पर वन होना चाहिए। अध्ययन क्षेत्र की (जावद तहसील 32 प्रतिशत) को छोड़कर अन्य दो तहसीलों में वन क्षेत्र बहुत कम है। प्रस्तुत शोध पत्र में वर्ष 1981 से वर्ष 2010 तक वन क्षेत्र का विश्लेषण किया गया है। जिले की सभी तहसीलो में विगत तीस वर्षो में वन क्षेत्र में वृद्धि तो हुई है किन्तु यह वृद्धि मनासा (25.10–25.31 प्रतिशत) और नीमच (2.97–5.19 प्रतिशत) तहसीलो में बहुत कम है। जिले में कुल क्षेत्रफल के वर्ष 1981 में 14.16 प्रतिशत भाग पर वन थे जो वर्ष 2010 में बढकर 24 प्रतिशत हो गए। केवल जावद तहसील में वन क्षेत्र (18.73–32.10) में वृद्धि सराहनीय हुई है। (तालिका क्रमांक 1)

जिले में वन क्षेत्र में कमी के कारण जनसंख्या वृद्धि है । भूमि सीमित संसाधन है । किन्तु क्षेत्र की जनसंख्या वर्ष 1981 वर्ष 2011 तक सभी तहसीलों में दुगुनी हो गई है। जनसंख्या वृद्धि से आवास की समस्या उत्पन्न होती है और इस हेतु कृषि भूमि पर आवास बनाए जाने लगे है। क्षेत्र में शहरो का विकास हो रहा है। जंगल कट रहे है। वन भूमि पर अतिक्रमण के कारण भी वन क्षेत्र में आशानुरूप वृद्धि नहीं हो रही है। नीमच तहसील में तो सिर्फ 5.19 प्रतिशत भूमि वन हैं इसका कारण नगरीय क्षेत्र में वृद्धि है । पशुचारण हेतु अलग से चारागाह का न होना भी वन क्षेत्र में वृद्धि में बाधा है। वनो की अवैध कटाई भी वन क्षेत्र में कमी का कारण है।

वन वृद्धि हेतु सुझाव – अध्ययन क्षेत्र में वन विनाश को रोकने तथा वन क्षेत्र में वृद्धि हेतु सुझाव निम्न है।

- क्षेत्रीय विकास हतु वनों की कटाई भी आवश्यक है। इस हेतु वृक्षों को जड़ से नहीं काटना चाहिए। पेड़ो की कटाई वैज्ञानिक तरीके से होना चाहिए। वृक्ष का कुछ हिस्सा छोड़कर कटाई होगी तो वृक्ष पुन: जल्दी बढ़कर हरा भरा हो जाएगा।
- पशुओ की चराई के लिए अलग से चारागाह बनाना चाहिए तथा चराई भी 21 दिन बाद रोटेशन में होना चाहिए ताकि क्षेत्र की चराई क्षमता बनी रही। पशुओ की संख्या के आधार पर चारागाह बनाए जा सकते है।
- स्थानीय स्तर पर वनो के बार में जागरूकता की आवश्यकता है, जिससे स्थानीय वासियों में वनों के प्रति जागरूकता पैदा होगी और पेड़ों के विनाश को रोकने में सहायक होगे और वन क्षेत्र में वृद्धि हो सकेगी।
- वनो की लकड़ी गरीब जनता का ईधन भी है। सरकार को चाहिए कि वह गोबर गैस , सोलर ऊर्जा का प्रचार, प्रसार करे और ग्रामीणों को

* सहायक प्राध्यापक (भूगोल) आर.जी.शासकीय पी.जी महाविद्यालय, मंदसौर (म.प्र.) भारत

गोबर गैस बनाने का प्रशिक्षिण दे ताकि लकड़ी का उपयोग ईधन के रूप में कम हो और अध्ययन क्षेत्र के जंगल बच सकें।

- क्षेत्रवासी लकड़ी की जगह घरो में दरवाजे, खिड़की लकड़ी के स्थान पर प्लास्टिक से बनी वस्तुतऍ उपयोग में ला सकते है। इससे वनो की अवैध कटाई रूकेगी
- सरकार ग्रामीणो को सस्ती बिजली ईधन हेतु उपलब्ध कराकर वनो को संरक्षण दे सकती है।

निष्कर्ष – नीमच जिले में वनो का वितरण असमान है। नीमच तहसील में तो वन क्षेत्र नहीं के बराबर है। इसका कारण नगरीकरण तथा जनसंख्या वृद्धि है। अत: अध्ययन क्षेत्र में जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण की आवश्यकता है। जिले की तहसीलो में बेकार पड़ी भूमि पर वृक्ष लगाकर वन क्षेत्र में वृद्धि कर वनो को संरक्षण दिया जा सकता है तभी अध्ययन क्षेत्र में वन क्षेत्र एक तिहाई हो सकेगा अन्यथा वर्षा की कमी से क्षेत्रवासियों का जीना दूभर हो जायेगा। अत: अध्ययन क्षेत्र में वन क्षेत्र में वृद्धि कर उनका संरक्षण और सुस्थिर विकास अति आवश्यक है।

संदर्भ ग्रंथ सूंची :–

1. Dutta ,A.K. ,20 years Forestry in M.P, 1956-76 Bhopal
2. तिवारी K.M. (1983) Social Forestry for Rural Development International and Book Distributor ,Dehadrun

****

जैव विविधता सरंक्षण एवं प्रबंधन

डॉ. भूपेन्द्र कुमार अम्ब *

शोध सारांश – जैव विविधता का सीधा अर्थ जीवित संसार की विविधाओं से है। सामान्यत: जैव विविधता का प्रयोग प्रजातीय विविधता के लिए किया जाता है। परन्तु जैव विविधता जीवों की असामान्य विविधताओं तक ही सीमित नहीं रहती, वरन इसमें पारिस्थितिकी तंत्र भी शामिल हैं, इसमें जीवों के अन्दर और उनके मध्य की विविधताओं को दृष्टिगत रखते हुए एक दूसरे के ऊपर प्रभाव डालने वाले समुदाय एवं कारको को भी शामिल किया जाता है। अर्थात जैव विविधता विभिन्न परिस्थितिकी तंत्रो में उपस्थित जीवों के बीच तुलनात्मक विविधता का आकलन हैं। जीव एवं उनका पर्यावरण एक दूसरे पर अत्यंत नजदीकी प्रभाव डालते है। अत: जैविक संगठन के सभी स्तरों पर पाई जाने वाली विविधताएं ही जैव विविधता हैं। जैव विविधता के अर्न्तगत सूक्ष्मजीव विविधता को भी सम्मिलित किया जाता है, क्योकि अदृश्य सूक्ष्मजीव ही कई परिस्थितिकी चक्रों में भूमिका अदा करते है, जो जीवन की गाड़ी चलाने में महत्वपूर्ण है। जैव विविधता की आदर्श परिभाषा 1992 में रियो डि जेनेरियों में पृथ्वी सम्मेलन में दी गई थी जिसके अनुसार 'समस्त स्त्रोतो; यथा अन्तर्क्षेत्रीय; स्थलीय, समुद्री एवं अन्य जलीय परिस्थितिकी तंत्रो के जीवों के मध्य अन्तर और साथ ही उन सभी परिस्थितिकी समूह जिनके ये भाग है, में पाई जाने वाली विविधताएं जिसमें एक प्रजाति के अन्दर पाई विविधताएं, विभिन्न प्रजाति के मध्य विविधताए एवं परिस्थितिकी तंत्रो की विविधताएं सम्मिलित है।' जैव विविधता के लाभ – सभी जीव अपने एवं पारिस्थितिकी तंत्र के मध्य परस्पर एक दूसरे से मदद प्राप्त करते है। एक पारिस्थितिकी तंत्र में प्रत्येक प्रजाति कम से कम एक कार्य के लिए अच्छी होती है। एक पारिस्थितिकि तंत्र में जितनी अधिक विविधताएं होंगी, उतना ही अधिक ये पर्यावरण संबंधी दबाव को सहने में सक्षम होता है। स्वस्थ परिस्थितिकी तंत्र अधिक टिकाऊ और किसी बदलाव के प्रति अधिक अनुकूलता रखते हैं। एक पारिस्थितिकि तंत्र में जितनी अधिक प्रजातियां होंगी, उतना ही अधिक तंत्र स्थायी होगा। हालांकि इन प्रभावों को दर्शाने की क्रियाविधि बहुत जटिल है। जैव विविधता की वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक महत्ता को नहीं अस्वीकारा जा सकता हैं। जैव विविधता को खतरा: आज वनस्पतियों की हर आठ में से एक प्रजाति विलुप्तता के खतरे से जूझ रही है। जैव विविधता के लिए पैदा हुए ज्यादातर खतरे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से बेलगाम दर से बढ़ती जनसख्या से जुड़े हुए हैं। वैज्ञानिकों ने इंगित किया है कि जैव विविधता सिर्फ एक ही प्रजाति के अस्तित्व के लिए गायब होती जा रही है और वह प्रजाति इन्सान है, एक अनुमान के अनुसार पृथ्वी के बायोमास का चालीस फीसदी से ज्यादा हिस्सा मात्र कुछ ही प्रजातियों से जुड़ा है जिसमें मानव, पालतू पशु और फसलें सम्मिलित हैं। वैज्ञानिक यह भी चेतावनी देते हैं कि प्रजातियों के प्रचुरता के घटने से परिस्थितिकी तंत्रो की टिकाऊ क्षमता घटती है, जिससे विश्व के पारिस्थितिकी तंत्र विनाश की ओर बढ़ रहे हैं। प्रबंधन: जैव विविधता का सरंक्षण आज के समय की मांग है, मूल रूप से संरक्षण क्रियाएं दो प्रकार से हो सकती हैं– इन सीटू एवं एक्स–सीटू संरक्षण। उदाहरण के तौर पर आरक्षित या सुरक्षित क्षेत्रों का गठन करना है एवं एक जर्मप्लाज्म बैंक या बीज बैंक की स्थापना करना है। जैव विविधता का सरंक्षण में परम्पराओ की भी अहम भूमिका होती है। यहॉ वर्तमान चुनौतियों के साथ भी जैव विविधता के सरंक्षण के प्रयास किये जा रहे है। यह एक गंभीर विचार हैं कि यदि हम अपनी बची–खुची जैव विविधता को बचाने के लिए अभी भी जागृत नहीं हुए तो शायद आगे बहुत देर हो चुकी होगी।

कुंजी शब्द – जैव विविधता–अर्थ, महत्ता, क्षरण, सरंक्षण प्रबंधन।

प्रस्तावना – थॉमस यूजीन लवजॉय ने 1980 में बायोलाजिकल और विविधता या जैविक विविधता शब्द प्रस्तुत किया, 1985 में डब्ल्यू. सी. रोसेन ने जैव विविधता शब्द की खोज की । जैव विविधता का सीधा अर्थ जीवित संसार की विविधाओं से है। परन्तु विविधता शब्द की व्याख्या कई तरह से की गई है, इस के अन्तर्गत न सिर्फ एक प्रजाति के अन्दर पाई जाने वाली विविधताएं अपितु विभिन्न प्रजाति के मध्य तुलनात्मक विविधता भी शामिल की गई हैं। सामान्यत: जैव विविधता का प्रयोग प्रजातीय विविधता के लिए किया जाता है। एक प्रजाति का अर्थ ऐसे प्राणियों का समूह जो ऐसी संतति पैदा करने की क्षमता रखते हों जो स्वय जननक्षमता रखती हो। सामान्यत: इस शब्द के अन्तर्गत कबूतर से लेकर हाथी और अनार से लेकर शलजम की प्रजातियॉ सम्मिलित है। परन्तु जैव विविधता जीवों की असामान्य विविधताओं तक ही सीमित नहीं रहती वरन इसमें पारिस्थितिकी तंत्र भी शामिल हैं। इसमें जीवों के अन्दर और उनके मध्य की विविधताओं को दृष्टिगत रखते हुए एक दूसरे के ऊपर प्रभाव डालने वाले समुदाय एवं कारको को भी शामिल किया जाता है। अर्थात जैव विविधता विभिन्न परिस्थितिकी तंत्रो में उपस्थित जीवों के बीच तुलनात्मक विविधता का आकलन हैं। जीव एवं उनका पर्यावरण एक दूसरे पर अत्यंत नजदीकी प्रभाव डालते है। पर्यावरण में बदलाव जहॉ जीवों के विलुप्तता या संख्या में विस्फोटक बढ़ोतरी का कारक बनता है, वहीं प्राणी या वनस्पति की संख्या में कमी या वृद्धि इसके पर्यावरण में परिवर्तनीय प्रभाव ड़ालते है, जिससे अन्य प्रजातियों के जीवन पर भी प्रभाव पड़ता है। अत: जैविक संगठन के सभी स्तरों पर पाई जाने वाली विविधताएं ही जैव विविधता हैं अर्थात किसी क्षेत्रों के जीनों प्रजातियों और

* सहायक प्रध्यापक (रसायन शास्त्र) स्वामी विवेकानन्द शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.) भारत

परिस्थितिकी तंत्रो की सम्रगता का विश्लेषण प्रजाति विविधता के स्थान पर अन्तर्जातीय विविधता का प्रयोग आमतौर पर किया जाता है जो विभिन्न जातियों के मध्य विविधतायों को दर्शाता है, यह प्रजाति के सदस्यों के मध्य विविधतायों को भी दर्शाता हैं। सूक्ष्मजीव जीवन बहुकोशीय जीवन से कहीं अधिक विविधता रखता है, अत: जैव विविधता के अन्तर्गत सूक्ष्मजीव विविधता को भी सम्मिलित किया जाता है, क्योकि अदृश्य सूक्ष्मजीव ही कई परिस्थितिकी चक्रों में भूमिका अदा करते है जो जीवन की गाड़ी चलाने में महत्वपूर्ण है। जैव विविधता की आदर्श परिभाषा 1992 में रियो डि जेनेरियों में पृथ्वी सम्मेलन में दी गई थी जिसके अनुसार 'समस्त स्त्रोतो; यथा अन्तर्क्षेत्रीय; स्थलीय, समुद्री एवं अन्य जलीय परिस्थितिकी तंत्रो के जीवों के मध्य अन्तर और साथ ही उन सभी परिस्थितिकी समूह जिनके ये भाग है, में पाई जाने वाली विविधताएं जिसमें एक प्रजाति के अन्दर पाई विविधताएं, विभिन्न प्रजाति के मध्य विविधताएं एवं परिस्थितिकी तंत्रो की विविधताएं सम्मिलित है।'

जीव विज्ञानी जैव विविधता के अन्तर्गत जीवों एवं प्रजातियों तथा उनके मध्य प्रभावों का सम्पूर्ण अध्ययन करते है। जबकि परिस्थितिकी विज्ञानी जैव विविधता के अन्तर्गत प्रजातियों के निकटतम वातावरण और उस वृहद परिक्षेत्र जिसमें वह निवास करते है, का अध्ययन करते है। जीवन सिर्फ अन्य जीवों से बल्कि वायु, जल और मिट्टी से भी परस्पर प्रभावित होते है। अनुवांशिकी विज्ञानी जैव विविधता के अन्तर्गत जीवों की विविधता को इस से सम्बद्ध करते है। वे उत्परिवर्तन, जीन विनिमय एवं डी.एन. ए. के स्तर होने वाली परिवर्तनात्मक सक्रियता अध्ययन करते है।

जैविक संगठन के सभी स्तरों पर पाई जानें वाली विविधताएं ही जैव विविधता हैं। सन् 2010 को जैव विविधता का अन्तर्राष्ट्रीय वर्ष घोषित किया गया था अर्थात यह एक व्यापक अवधारणा है जिसे उद्देश्य के उपायो का एक विभिन्न प्रकार आर्डर करने के लिए सृजित किया गया है। जैव विविधता का इतिहास पिछले 540 मिनियन वर्ष का हैं।

जैव विविधता के लाभ– सभी जीव अपने एवं पारिस्थितिकी तंत्र के मध्य परस्पर एक दूसरे से मदद प्राप्त करते है। एक पारिस्थितिकी तंत्र में प्रत्येक प्रजाति कम से कम एक कार्य के लिए अच्छी होती है। जैव विविधता में कमी पारिस्थितिकी तंत्र को कम टिकाऊ कर देती है, जिससे प्राकृतिक चक्र कमजोर पड़ जाते है। जैव विविधता पारिस्थितिकी तंत्र सूक्ष्म सेवाए भी हमें प्रदान करता है, जैसे मिट्टी के जीव कूड़े-कचरे को अपघटित कर उर्वर भूमि का निर्माण करते है। चमगादड़ , मधुमक्खी पौधों में परागण क्रिया के वाहक होते है वही लेड़ीबग, मेंढ़क फसलों के कीटाणुओं को सीमित करने में सहायक होते है। पानी की शुद्धता, जलवायुवीय नियमन एवं बाढ़/सूखा आदि को भी यह प्रभावित करते है।

एक परिस्थितिकि तंत्र में जितनी अधिक विविधताएं होंगी, उतना ही अधिक ये पर्यावरण संबंधी दबाव को सहने में सक्षम होता है। स्वस्थ परिस्थितिकी तंत्र अधिक टिकाऊ और किसी बदलाव के प्रति अधिक अनुकूलता रखते हैं। एक परिस्थितिकी तंत्र में जितनी अधिक प्रजातियां होंगी, उतना ही अधिक तंत्र स्थायी होगा। हालांकि इन प्रभावों को दर्शाने की क्रियाविधि बहुत जटिल है।

जैविक रुप से विविधतापूर्ण प्राकृतिक पर्यावरण अर्थव्यस्था के लिए आधार तैयार करता है जो भोजन निर्माण के लिए कच्चा माल, औषधियों और सौंदर्य प्रसाधनों के काम आती है। वैश्विक अर्थव्यवस्था का आधार कच्चा माल प्रकृति से ही प्राप्त होता है। मनोरंजन और ईको-टूरिज्म भी आर्थिक लाभ प्रदान करते है। जैव विविधता पारिस्थितिकी तंत्र हमें औषधियां हमें प्रदान करता है, जैसे एस्पिरिन, टैक्सोल, एन्टीबायोटिक्स, कुनैन, तुलसी आदि। लगभग 121 दवाईयां उच्च वनस्पतियों से प्राप्त की जाती है। कृषि फसल विविधता पर निर्भर है।

जैव विविधता एवं वैज्ञानिक भूमिका –यह जीवन की कार्यशैली को समझने एवं स्थायी पारिस्थितिकी तत्रं में प्रत्येक प्रजाति के महत्व को जानने में सहायता प्रदान करती है। प्रत्येक जीवित प्रजाति के विशिष्ट आनुवांशिक द्रव्य में चिकित्सकीय एवं आनुवांशिक शोध कार्यो के लिए अपरिष्कृत द्रव्य की भूमिका निभाने की क्षमता होती है, जिससे बीमारियों से लड़ने वाली दवाओं की खोज करने में सहायता मिलती है। किसी प्रजाति की मृत्यु के बाद इसका आनुवांशिक द्रव्य नष्ट हो जाता है। इसके साथ ही एक चिकित्सकीय उपचार को खोजने की संभावना के द्वार भी बंद हो जाते हैं।

सांस्कृतिक महत्ता–मानवीय सांस्कृतिक अभिज्ञान, आध्यात्मिक क्रियाकलापो एवं सृजनात्मक अभिव्यक्तियों ने अपनी मूलभूत ताकत प्रकृति से ही प्राप्त की है। सांस्कृतिक विविधता अटूट रूप से जैव विविधता से संबंधित है। यह लगभग निर्विवाद रूप से स्थापित है कि हम पृथ्वी की एकमात्र प्रजाति के रूप में नहीं जी सकते और शायद जीना भी नहीं चाहेंगे।

जैव विविधता को खतरा –आज वनस्पतियों की हर आठ में से एक प्रजाति विलुप्तता के खतरे से जूझ रही है। जैव विविधता के लिए पैदा हुए ज्यादातर खतरे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से बेलगाम दर से बढ़ती जनसंख्या से जुड़े हुए हैं। दुनिया की जनसंख्या इस समय 6 अरब से अधिक है, जिसके 2050 तक 10 अरब तक पहुंचने का अनुमान हैं। जैव विविधता को नष्ट करने में सहयोगी कारक ये है जो मानवीय गतिविधियों से संबंधित हैं – अधिक जनसंख्या, वनों का कटाव, वायु प्रदुषण, मृदा प्रदूषण एवं ग्लोबल वार्मिंग आदि।

जब किसी एक फसल को उगाने के लिए वनों को काटा जाता है तब भी जैव विविधता को दर किनार कर दिया जाता है। शिकार एवं मांसाहार के नाम पर बहुत से प्रजाति विलुप्त कर दी जाती हैं। पैसेन्जर कबूतर (एक्टोपिस्टेस माइग्रेटोरियस) जो धरती पर एक समय बहुतायत में पाये जाते थे, मानवीय निर्दयता के कारण विलुप्त हो गया। सन् 1878 में यू.एस.ए. के मिशीगन में 5 माह तक हर रोज 50000 पैसेन्जर कबूतर (एक्टोपिस्टेस माइग्रेटोरियस) को मारा जाता था। इस स्तर के हत्याकांड को तो प्रकृति की भरपाई करने वाली ताकत भी नहीं झेल सकती है।

मानव द्वारा विदेशी प्रजातियों को प्रवेश कराना जैव विविधता के लिए बहुत बड़ा खतरा है। ऐसी प्रजाति जो किसी क्षेत्र विशेष की मूल निवासी नहीं होती विदेशी प्रजाति कहलाती है, ऐसी बाहरी प्रजाति कभी-कभी नए पारिस्थितिकी तंत्र में आश्चर्यजनक रूप से तालमेल बिठाकर इतनी अच्छी तरह से प्रजनन करती हैं कि क्षेत्र की मूल प्रजातियों के लिए उपलब्धता अत्यन्त घट जाती है। इसके अलावा विदेशी प्रजाति शिकारी, परजीवी या फिर देशी प्रजाति से कहीं अधिक आक्रामक हो सकती हैं। देशी जीवों में भी बहुधा इतना अनुकूलन नहीं पाया जाता जिससे उन्हें सुरक्षा मिल सकें । किसी अन्य प्रजाति के इनके प्रसार को रोकने और निर्धारित नहीं कर पाने पर विदेशी प्रजाति इस स्तर तक फल-फूल जाति हैं कि वे प्राकृतिक संतुलन को बिगाड़ देती हैं।

हवाई द्वीप की एक प्रजाति मैना है। इसे गन्ने के कीटों के नियंत्रण के लिए प्रवेश कराया गया था परन्तु यह लैन्टाना कैमारा नामक खरपतवार के

बीजों के प्रसार का काम करने लगी। गुवाम में मूल रूप से पाई जाने वाली जंगली चिड़िया की 13 प्रजातियों में से अब मात्र 3 जीवित है, वही छिपकली की मूल 12 प्रजातियों में से भी मात्र 3 ही जीवित हैं।

वैज्ञानिकों ने इंगित किया है कि जैव विविधता सिर्फ एक ही प्रजाति के अस्तित्व के लिए गायब होती जा रही है और वह प्रजाति इन्सान है, इसके पीछे तर्क यह है कि यद्यपि विलुप्त हो रही प्रजातियां इन्सानी भोजन के रूप प्रयोग में नहीं आती परन्तु उनका बायोमास यानी जैवसंहति मानव भोजन के रूप में परिवर्तित होता जाता है जब उनके प्राकृतिक आवासों को खेती की जमीन के रूप में प्रयोग कर लिया जाता है। एक अनुमान के अनुसार पृथ्वी के बायोमास का चालीस फीसदी से ज्यादा हिस्सा मात्र कुछ ही प्रजातियों से जुड़ा है जिसमें मानव, पालतू पशु और फसलें सम्मिलित हैं। वैज्ञानिक यह भी चेतावनी देते हैं कि प्रजातिय प्रचुरता के घटने से परिस्थितिकी तंत्रो की टिकाऊ क्षमता घटती है, जिससे विश्व के पारिस्थितिकी तंत्र विनाश की ओर बढ़ रहे हैं।

प्रबंधन– जैव विविधता का सरंक्षण आज के समय की मांग है, परन्तु कोई इस बात पर एक मत नहीं है कि इसे कैसे किया जाए। मूल रूप से संरक्षण क्रियाएं दो प्रकार से हो सकती हैं–'इन सीटू' एवं 'एक्स–सीटू' संरक्षण। 'इन सीटू से तात्पर्य है, 'इसके वास्तविक स्थान पर या उत्पत्ति के स्थान तक सीमित।' उदाहरण के तौर पर आरक्षित या सुरक्षित क्षेत्रों का गठन करना है। एवं एक्स–सीटू' संरक्षण की कोशिश का उदाहरण एक जर्मप्लाज्म बैंक या बीज बैंक की स्थापना करना है।

जैव विविधता का सरंक्षण में परम्पराओं की भूमिका –कई परम्परावादी समाजो व संस्कृतियों में, प्रकृति एवं प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के लिए अपनी योजनाएं मौजूद हैं। भारत के पौधों और वृक्षों को पूजना भारतीय संस्कृति का हिस्सा है कई हिस्सों में ,ग्रामीण लोग आज भी इनमें से कई संरक्षण योजनाओं को अपनाते हैं।

वर्तमान चुनौतियों के साथ जैव विविधता के सरंक्षण के प्रयास– आज सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि वैश्विक शहरी संस्कृति के बढ़ते दायरे और हमेशा फैलती हुई बाजारी अर्थव्यवस्था के कारण परम्परागत ज्ञान एवं रिवाज समाप्त होते जा रहे हैं। इन दबावों ने कई समुदायों को अपनी पहचान खोने, के लिए विवश कर दिया है, जिनमें संरक्षण क्रियाएं जीवित थी। सौभाग्यवश, भारत में बहुत से संरक्षणकर्ता, समुदाय, सरकार और गैर–सरकारी सस्थाएं यह जान चुके हैं कि विकास; प्रगति एवं आधुनिकता, परम्परागत रिवाजो के साथ–साथ चल सकते हैं।

एन.सी.एल. जैव विविधता सूचना केन्द्र एक वेब–अन्तर्राष्ट्रीय मल्टीमीडिया डाटाबेस तैयार कर रहा है जिससे पवित्र उपवनों की जैव विविधता के स्तर को संग्रहित किया जा सके। इससे संस्कृति एवं परम्पराएं, सरंक्षण इतिहास को भी सम्मिलित किया जावेगा।

भारत में जैव विविधता का सरंक्षण– भारत में जंगल, वन्यजीव आदि से संबंधित अनेक कानून हैं। उदाहरण के लिए हमारे पास भारतीय वन्य अधिनियम 1927, भारतीय वन्यजीव संरक्षण अधिनियम 1972 है और वन संरक्षण अधिनियम 1980 भी है।

केन्द्र सरकार द्वारा जैविक विविधता अधिनियम 2002 प्रस्तुत किया गया है। जिसकी निम्नलिखित प्रमुख विशेषताएं हैं:–

1. देश के जैविक संसाधनों की अभिवृद्धि का नियमन जिससे जैविक संसाधनों के प्रयोग से प्राप्त लाभो का समान बंटवारा हो सके एवं जैविक संसाधनों से संबंधित ज्ञान में वृद्धि हो सके।
2. जैव विविधता को संरक्षित एवं टिकाऊ विधि से प्रयोग करना।
3. जैव विविधता से संबंधित क्षेत्रीय समुदायों के ज्ञान का सम्मान एवं सुरक्षा करना।
4. क्षेत्रीय लोगों के साथ लाभों के समान बंटवारे की सुरक्षा करना, जो स्वयं जैविक संसाधनों के संरक्षक हैं और जैविक संसाधनों के उपयोग से संबंधित ज्ञान एवं सूचनाओं को जानने वाले हैं।
5. जैविक विविधताओं के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण क्षेत्रों को जैविक विविधता विरासत क्षेत्र घोषित कर इनका संरक्षण एवं विकास करना।
6. संकटग्रस्त प्रजातियों की सुरक्षा और पुनर्वास की व्यवस्था।
7. जैविक विविधता के कार्यान्वयन की वृहद योजना में राज्य सरकारों के संस्थानों को सम्मिलित करना।

यह एक गंभीर विचार हैं कि यदि हम अपनी बची–खुची जैव विविधता को बचाने के लिए अभी भी जागृत नहीं हुए तो शायद जब हम अपने गैर–इन्सानी भाइयों के पीछे–पीछे शाश्वत विस्मृति का हिस्सा बनें उस समय बस ये वास्तविक तालिकाएं ही बची रह पाएं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. Moustakas, A.; Karakassis, I. (2008). "A geographic analysis of the published aquatic biodiversity research . Stochastic Environmental Research and Risk Assessment 23 (6): 737.
2. Leveque, C. & J. Mounolou (2003) Biodiversity. New York: John Wiley.
3. Pereira, H. M.; Navarro, L. M.; Martins, I. S. S. (2012). "Global Biodiversity Change: The Bad, the Good, and the Unknown'. Annual Review of Environment and Resources 37: 25.
4. Rosing, M.; Bird, D.; Sleep, N.; Bjerrum, C. (2010). "No climate paradox under the faint early Sun'. Nature 464 (7289): 744–747.
5. Hawksworth, D. L. (24 July 2012). "Global species numbers of fungi: are tropical studies and molecular approaches contributing to a more robust estimate?'. Biodiversity and Conservation 21 (9): 2425–2433.

****

शासकीय एवं अशासकीय अधिकारियों का पर्यावरणीय मूल्य का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. पल्लवी विश्वास * वंदना पटेल **

शोध सारांश – शासकीय एवं अशासकीय अधिकारियों के पर्यावरणीय मूल्य प्रस्तुत अध्ययन शासकीय एवं अशासकीय अधिकारियों के पर्यावरणीय मूल्य का अध्ययन करने के उद्देश्य से प्रस्तुत किया गया है। जिसके लिये चयन उद्देश्यपूर्ण प्रति चयन विधि के द्वारा द्विसमूह अभिकल्प की रचना की गई जिसमें 30 से 50 आयु वर्ग के 20 शासकीय एवं 20 अशासकीय अधिकारियों का चयन किया गया। इनके पर्यावरणीय मूल्य मापन के लिये डॉ. एन.एन श्रीवास्तव एवं डॉ. शशि प्रभा दुबे द्वारा निर्मित पर्यावरणीय मूल्य परीक्षण का उपयोग किया गया, जिसकी विश्वसनीयता .78 तथा वैधता .62 है। आंकड़ों का सांख्यकीय विश्लेषण t परीक्षण के द्वारा किया गया जिसमें t का मान 1.7 प्राप्त हुआ। प्राप्त परिणामों के आधार पर प्रस्तुत अध्ययन की शून्य परिकल्पना सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा। असत्य सिद्ध हुई अर्थात दोनों समूह में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

शब्द कुंजी – शासकीय, अशासकीय अधिकारी एवं पर्यावरणीय मूल्य।

प्रस्तावना – पर्यावरण शब्द का शब्दकोषीय अर्थ होता है। आसपास या पास–पड़ोस मानव जंतुओं या पौधे की वृद्धि एवं विकास को प्रभावित करने वाली बाह्य दशाएं कार्यप्रणाली तथा जीवन यापन की दशाएं आदि।

प्रारंभ में मुनष्य के पर्यावरण की रचना इस ग्रहीय पृथ्वी के केवल भौतिक पक्षों (स्थल वायु तथा जल) तथा जैविक समुदाय द्वारा होती थी। परंतु समय के साथ मानव समाज में विकास के द्वारा मनुष्य ने अपने सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक पर्यावरण आदि सम्मिलित होते गये।

सी.सी.पार्क (1980) के अनुसार 'पर्यावरण का अर्थ उन दशाओं के योग से होता है जो मनुष्य को निश्चित समय में निश्चित स्थान पर आवृत्त करती है।'

श्री लक्ष्मीधर मिश्र का मत है कि 'पर्यावरण उन सभी प्राकृतिक संसाधनों की समग्रता का नाम है, जो धरती माता ने मानव जाति के लिये वरदान के रूप में दिये हैं। ये संसाधन है भूमि, जल, वायु, पेड़ पौधे, जीवन–जन्तु वन्य, प्राणी जो हमें चारों ओर से घेरे हुये हैं और जो प्रतिदिन हमारे जीवन को प्रभावित करते रहते हैं।'

ए.गाउडी (1984) ने अपनी पुस्तक 'द नेचर ऑफ द इंवायरमेंट' में पृथ्वी के भौतिक घटकों को ही पर्यावरण का प्रतिनिधि माना है तथा उनके अनुसार पर्यावरण को प्रभावित करने में मनुष्य एक महत्वपूर्ण कारक है।'

पर्यावरण तथा समाज एक दूसरे से घनिष्ट रूप से संबंधित है। वास्तव में पर्यावरण तथा समाज परस्परावलम्बी (एक दूसरे पर निर्भर है)। मानव सभ्यता के विकास के विभिन्न चरणों के दौरान विभिन्न प्रकार के सामाजिक वर्गों तथा संरचनाओं का उद्भव एवं विकास हुआ है। एक तरफ प्राकृतिक पर्यावरण ने मानव समाज की विभिन्न संरचनाओं एवं संगठनों के विकास एवं संवर्धन में सहायता प्रदान की है तो दूसरी तरफ पर्यावरण की गुणवत्ताा तथा उसका अस्तित्व मानव समाज की इन संरचनाओ पर निर्भर करता है। विगत तीन दशकों में पर्यावरणीय समस्याओं से संबंधित कई विचारणीय विषय उठाये गये हैं। यथा पर्यावरण की गुणवत्ता, पृथ्वी के प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र का विघटन तथा विनाश, पर्यावरण अवनयन तथा प्रदूषण, पारिस्थितिकीय असंतुलन, प्राकृतिक संसाधनों की रिक्तता आदि। नि:संकोच रूप से यह कहा जा सकता है कि अब समाज पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति संवेदनशील एवं संचेत हो चुका है। पर्यावरण के प्रति जनसमुदाय की अभिरूचि भावनात्मक शिखर तक पहुंच चुकी है।

इन सभी समस्याओं को देखते हुये मनोविज्ञान में पर्यावरणीय मनोविज्ञान का प्रादुर्भाव हुआ। जिसमें यह देखा गया कि पर्यावरण व्यक्ति को प्रभावित करता है। इसमें सबसे अधिक अभिरूचि दिखाने वाले वैज्ञानिक डॉ. एलेन बोमाबार्ड हैं जो एक फ्रेंच फिजिशियन थे इन्होंने अपने अध्ययन के माध्यम से पर्यावरणीय मनोविज्ञान के विभिन्न पहलुओं तथा उसके मानव व्यवहार पर पड़ने वाले प्रभावों के अध्ययन की ओर वैज्ञानिकों का झुकाव बढ़ने लगा।

ब्रेल फ्रेजर तथा लूमिस (1978) के अनुसार पर्यावरणीय मनोविज्ञान व्यवहार तथा निर्मित एवं स्वाभाविक पर्यावरण के अंतरसंबंध का अध्ययन करने वाला विज्ञान है।

बेरोन तथा बिर्ने (2005) के अनुसार – पर्यावरणीय मनोविज्ञान वह क्षेत्र है जो भौतिक जगत तथा मानव व्यवहार के बीच पारस्परिक क्रिया का अध्ययन करता है।

ए.एस.रेबर तथा इ.रेबर (2001) के अनुसार 'पर्यावरणीय मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की वह उपशाखा है जिसके अंतर्गत समाज मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, आचारशास्त्र, वस्तुकला तथा मानवशास्त्र आदि विविध क्षेत्रों से प्राप्त प्रदत्त तथा सिद्धांतों का उपयोग व्यक्तियों तथा उनके पर्यावरणों के बीच जटिल पारस्परिक क्रियाओं से संबंधित समस्याओं के अध्ययन हेतु किया जाता है। पर्यावरणीय मनोविज्ञान के लक्ष्यों या उद्देश्यों के संबंध में बेरोन तथा बिर्ने ने जो विचार प्रस्तुत किये हैं, उनके आलोक में निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं–

1. पर्यावरणीय मनोविज्ञान का एक उद्देश्य पर्यावरण तथा व्यवहार के

* शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नरसिंहपुर (म.प्र.) भारत
** शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नरसिंहपुर (म.प्र.) भारत

बीच पारस्परिक क्रिया का अध्ययन करना है ।

2. इस मनोविज्ञान का एक लक्ष्य यह निर्धारित करता है कि भौतिक तथा सामाजिक पर्यावरण का प्रभाव मानव व्यवहार को किस तरह प्रभावित करता है।
3. पर्यावरणीय मनोविज्ञान का चरम उद्देश्य पर्यावरण सुधार है।

उद्देश्य – प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य शासकीय एवं अशासकीय अधिकारियों के पर्यावरणीय मूल्य का तुलनात्मक अध्ययन करना है।

उपकल्पना – शासकीय एवं अशासकीय अधिकारियों के पर्यावरणीय मूल्य में सार्थक अंतर नहीं पाया जायेगा।

विधि – न्यादर्श – प्रस्तुत शोध कार्य में न्यादर्श का चयन उद्देश्यपूर्ण प्रतिचयन के आधार पर किया है। जिसमें 30 से 50 आयु वर्ग के 20 शासकीय एवं 20 अशासकीय अधिकारियों का चयन किया गया।

अभिकल्प – द्वि – समूह अभिकल्प

उपकरण – डॉ. एन.एन. श्रीवास्तव एवं डॉ. शशिप्रभा दुबे द्वारा निर्मित पर्यावरणीय मूल्य परीक्षण प्रपत्र इस परीक्षण की विश्वसनीयता 0.78 व वैधता 0.62 है, मेन्युअल आदि।

प्रक्रिया – प्रपत्र में दिये निर्देश समझने के उपरांत प्रक्रिया आरंभ की जिसमें सहभागी को भरने को कहा प्रपत्र भरने के उपरांत सधन्यवाद दिया और प्रपत्रों का संकलन तथा फलांकन किया गया ।

परिणाम –परिणाम तालिका

क्रं.	समूह	संख्या	मध्यमान	प्रमाणिक विचलन	टी मूल्य
1	शासकीय अधिकारी	20	39.9	3.06	1.7
2	अशासकीय अधिकारी	20	37.6	5.59	

38df " सार्थक अंतर नहीं पाया गया

सार्थकता के स्तर

.05 स्तर – 2.02

.01 स्तर – 2.71

विवेचना – प्राप्त परिणाम तालिका के आधार पर यह कहा जा सकता है कि शासकीय अधिकारियों के पर्यावरणीय मूल्य का मध्यमान प्राप्तांक 39.9 व अशासकीय अधिकारियों के पर्यावरणीय मूल्य का मध्यमान प्राप्तांक 37.6 है। और समूहों का क्रमश: प्रमाणिक विचलन एस.डी. 3.06 व 5.59 है । तथा दोनों समूह के माध्य एस.ई.डी. 1.3 है। इनके आधार पर t की गणना करने पर t का मान 1.7 प्राप्त हुआ। एवं स्वतंत्रता के अंश df38 है । df38 के आधार पर 0.05 विश्वास के स्तर पर 2 समूह का मान 2.02 व 0.01 विश्वास के स्तर पर 2 समूह का मान 2.71 है।

0.05 विश्वास के स्तर व 0.01 विश्वास के स्तर के मान से प्रस्तुत अध्ययन पत्र के t का मान कम है। अत: सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

आलेखीय प्रदर्शन के आधार पर भी ज्ञात होता है कि शासकीय अधिकारियों में पर्यावरणीय मूल्य 39.9 प्राप्त हुआ तथा अशासकीय अधिकारियों में पर्यावरणीय मूल्य 37.6 है जिससे स्पष्ट पता चलता है कि शासकीय अधिकारियों के पर्यावरण के प्रति मूल्य अशासकीय अधिकारियों की तुलना में अधिक है।

रोब्लस, जॉन (1971) इन्होंने पर्यावरण मनोविज्ञान में मानव और अपने परिवेश के बीच परस्पर क्रिया पर ध्यान केन्द्रित कर शोध कार्य किया जिसमें क्षेत्र प्राकृतिक वातावरण, सामाजिक वातावरण, निर्मित वातावरण, सीखने का वातावरण और सूचना के वातावरण का अध्ययन किया। इस अध्ययन को यदि ध्यान में रखते हैं तो पाते हैं कि शासकीय संस्थान में समय–समय पर पर्यावरण से संबंधित विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम, सेमीनार, वर्कशॉप, वृक्षारोपण, एन.सी.सी., एन.एन.एस. के विभिन्न कार्यक्रम के माध्यम से इन्हें प्रेरणा प्राप्त होती रहती है, लेकिन अशासकीय संस्थान में ऐसा बहुत कम होता है जिसका स्पष्ट प्रभाव अधिकारी वर्ग पर पड़ता है।

वर्न, वास्केट तथा होज (1971) तथा फिशर एवं वर्न (1975) ने अपने अपने अध्ययनों में महिला और पुरूष के संस्थागत व्यवहारों में एक दूसरे प्रकार का अंतर पाया है। जो यौनगत अंतर होता है।

डी.एफ.टी.संस्था द्वारा (2005) में परिवहन से होने वाले पर्यावरण प्रदूषण के कारण व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन का अध्ययन किया जिसमें उन्हें ईंधन से चलने वाले वाहनों की तुलना में साईकिल को रखा और पाया कि साईकिल के प्रति अधिक समुदाय में अपनी अभिव्यक्ति प्रदर्शित की। स्पष्ट है कि साईकिल से प्रदूषण होता ही नहीं है और शारीरिक व्यायाम भी होता है इसी कारण इससे व्यक्ति स्वस्थ्य रहता है। 2011 मे स्वीडिश अनुसंधान परिषद के द्वारा जीवन शैली, मूल्यों और पर्यावरण के बीच जटिल लिंक पर अनुसंधान की जांच की जिसमें पाया कि जीवन शैली व मूल्य में पर्यावरण का प्रभाव पड़ता है। यदि हम शासकीय अधिकारियों की जीवन शैली की तुलना अशासकीय अधिकारियों से करते हैं तो पाते हैं कि शासकीय अधिकारियों की जीवन शैली अशासकीय अधिकारियों की तुलना अच्छी, सुव्यवस्थित होती है। उन्हें किसी भी प्रकार का भय नहीं होता है।

2015 में न्यूयार्क में अल्जाइमर डिजीज नाम पत्रिका में प्रकाशित किया गया कि प्रदूषण से बच्चे की याददाश्त भी प्रभावित हो सकती है। जो अत्याधिक वायु प्रदूषण के बीच शहरों में रह रहे बच्चों के मस्तिक पर हानिकारक प्रभाव पड़ने का खतरा अधिक रहता है ।

इन सभी अध्ययनों के आधार पर स्पष्ट पता चलता है कि पर्यावरणीय मूल्य का हर व्यक्ति के जीवन में कितना महत्व होता है। अत: इस आधार पर बनाई गई परिकल्पना असत्य सिद्ध हुई।

निष्कर्ष – इस प्रकार निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि शासकीय एवं अशासकीय अधिकारियों का पर्यावरणीय मूल्य पर प्रभाव पड़ता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची: –

1. नाथावत, एस.एस. एवं सक्सेना, एम.(1998)–व्यवहारिक मनोविज्ञान, पृ.क्रं.111–122
2. प्रतियोगिता दर्पण, अक्टूबर (2013), हिन्दी मासिक, पृ.क्रं. 27–28,
3. रस्तोगी, जी.डी. एवं भार्गव, एच.पी.(1992),– आधुनिक व्यवहारिक, मनोविज्ञान हर प्रसाद भार्गव प्रकाशक, पृ.क्रं. 418–450
4. सिंह,ए.के. (2002) समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पृ.क्रं. 763–806.
5. सिंह, एस. (2004)–पर्यावरणीय भूगोल, प्रयाग पुस्तक भवन इलाहाबाद, पृ.क्रं. 19–29.
6. सुलैमान, एम.एवं कुमार डी. (2010) मनोविज्ञान, और सामाजिक समस्याएं, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली पृ.क्रं. 58–88.
7. सुलैमान,एम. (2005) उच्चतर समाज मनोविज्ञान मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, पृ.क्रं. 746–771.

****

झाबुआ जिले में फ्लोराइड की समस्या एवं स्थिति-एक विश्लेषण

डॉ. कान्तु डामोर * विकास वर्मा **

शोध सारांश – स्वच्छ जल के अभाव में किसी प्राणी के जीवन की क्या, किस सभ्यता की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। ग्रामीणों के पेयजल की 85 प्रतिशत आवश्यकता भूमिगत जल से पूर्ण की जाती है। पिछले कुछ वर्षों में भू-जल भी प्रदूषण की चपेट में आ गया है। जल में यदि 1.5 पी.पी.एम. से अधिक मात्रा में फ्लोराइड पाया जाता है, तो वह जल पीने योग्य नहीं रहता है। फ्लोराइड वाले जल का सेवन करने से फ्लोरोसिस नामक बीमारी होती है। प्रस्तुत अध्ययन में झाबुआ जिले में फ्लोराइड की वर्तमान स्थिति एवं प्रभाव का विश्लेषण किया गया है। जिले में फ्लोराइड से प्रभावित गांव, स्रोतों एवं जनसंख्या की जानकारी दी गई है। प्रशासन के द्वारा फ्लोराइड समस्या के निदान हेतु अनेक स्वच्छ पेयजल योजनाएँ क्रियान्वित की जा रही है। इसके अन्तर्गत भूमिगत जल के स्तर में वृद्धि करना एवं तालाबों का निर्माण, गहरीकरण, वृक्षारोपण किये जाने चाहिए। ग्रामीण क्षेत्रों में शुद्ध पेयजल आपूर्ति की अन्य वैकल्पिक सुविधाओं का विस्तार करना चाहिए। फ्लोराइड प्रभावित गाँवों में डि-फ्लोराइडेशन यंत्रों का विस्तार किया जाना चाहिए। प्रशासन को फ्लोराइड जल स्त्रोतों को बन्द कर उनके स्थान पर नवीन स्वच्छ पेयजल स्रोतों को स्थापित किया जाना चाहिये।

प्रस्तावना – जल पर्यावरण का जीवनदायी तत्व है। मनुष्य की मुलभूत आवश्यकताओं में से एक है। मानव स्वास्थ्य के लिये स्वच्छ जल का होना नितान्त आवश्यक है। वनस्पति एवं प्राणियों की समस्त जैविक क्रियाओं में जल की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। यह पारिस्थितिकी का आधारभूत तत्व है। जल जीव-जगत का आधार है, जो न केवल मानव अपितु जीव-जन्तु, वनस्पति आदि का स्त्रोत है, बल्कि उन सबके अस्तित्व का आधार है। जल से न केवल मानव जीवन की प्यास बुझती है, बल्कि जीव-जन्तुओं पेड़-पौधों को भोजन मिलता है। वर्तमान भारत में जल प्रदूषण एक गंभीर समस्या है, विशेषकर नदियों एवं भूमिगत जल। सामान्यत: वह जल जिसमें अनेक प्रकार के खनिज, कार्बनिक तथा अकार्बनिक पदार्थों एवं गैसों का एक निश्चित अनुपात से अधिक अथवा अनावश्यक तथा हानिकारक पदार्थ घुल जाते हैं, वही प्रदूषित जल कहलाता है। भारत के ग्रामीण परिदृश्य में पेयजल की उपलब्ध सुविधाओं का विश्लेषण करें तो, एक सामान्य तथ्य उभरकर आता है कि अधिकांश ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल की सुविधाओं का नितांत अभाव है, इसलिए ग्रामीण पेयजल हेतु भूमिगत जल पर अत्यधिक निर्भर होते है। ग्रामीणों के पेयजल की 85 प्रतिशत आवश्यकता भूमिगत जल से पूरी की जाती है। भू-जल को शुद्ध जल माना जाता है किन्तु पिछले कुछ वर्षों में भू-जल भी प्रदूषण की चपेट में आ गया है। इसका मुख्य कारण मानवीय गतिविधियॉ एवं तीव्र औद्योगिकीकरण है। भू-जल प्रदूषण का मुख्य कारण विषैले अकार्बनिक तथा कार्बनिक रसायनों का भू-जल के स्रोतों में निस्पंदन है। अधिकांश प्रदूषण व्यर्थ जल के गलत ढंग से निपटान के फलस्वरूप उत्पन्न होता हैं। इसके कारण जल उपयोग में बाधा उत्पन्न हो सकती है तथा रोग फैलने से स्वास्थ्य सम्बधी गंभीर संकट उत्पन्न हो सकते है। भू-जल के भौतिक गुणों में तापमान, रंग, गंध, अविलिता तथा स्वाद आदि मुख्य है। इसके रासायनिक गुणों के अन्तर्गत पी.एच.मान, विद्युतचालकता, सोडियम, पोटेशियम, कार्बोनेट, फ्लोराइड, केडियम आदि है। तीव्र आर्थिक विकास एवं जल की निरंतर बढ़ती मांग के कारण भूमिगत जल स्तर निरंतर गिर रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों में भूमिगत जल स्तर गिरने के कारण जल में हानिकारक तत्व जैसे-फ्लोराइड, कार्बोनेट, अमोनिया, नाइट्रेट, कीटनाशकों इत्यादि की मात्रा बढ़ती ही जा रही है। मनुष्य और पशुओं के मलमुत्र द्वारा प्रदूषित पानी जिसमें रोगजनक जीवाणु युक्त पानी पीने से अनेक बीमारियॉ जैसे-हैजा, पेचिस, टाईफाइड, संक्रामक पीलिया, पोलियों, गोलकर्मी आदि होती है। जल प्रदूषकों के कारण जल गुणवत्ता संबंधी समस्या उत्पन्न हो जाती है। वर्तमान समय में जल प्रदूषण बढ़ता जा रहा है जिससे एक ओर तो हमारे सामने जल की उपलब्धता और दूसरी ओर शुद्ध पेय जल की समस्या उत्पन्न होती है। आज-कल पेयजल के स्त्रोतों में पाये जाने वाले हानिकारक रासायनिकों से सर्वाधिक ग्रामीण क्षेत्र प्रदूषण से ग्रसित है।

फ्लोराइड क्या है-भू-जल में फ्लोराइड एवं आर्सेनिक की मात्रा मानव स्वास्थ्य को प्रभावित करती है। फ्लोराइड फ्लोरिन नामक तत्व से निर्मित एक घुलनशील यौगिक है। यह भूमि में खनिज पदार्थों के साथ विद्यमान रहता है। ये भूमिगत जल में सर्वाधिक मात्रा में पाया जाता है। यह मानव शरीर में आसानी से प्रवेश कर जाता है। जल में यदि 1.5 पी.पी.एम. से अधिक मात्रा में फ्लोराइड पाया जाता है, तो वह जल पीने योग्य नहीं होता है। अत: इसका उपयोग करने से मानव शरीर पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। शुद्ध जल में फ्लोराइड की मात्रा प्राकृतिक रूप से 1 से 1.5 पी.पी.एम. के बीच होना चाहिये। सामान्यत: फ्लोराइड भोजन, भूमिगत जल, सौन्दर्य वस्तु, टूथपेस्ट, दवाइयों आदि में पाया जाता है। यद्यपि पेयजल में फ्लोराइड होने पर पानी के रंग स्वाद एवं उसकी गंध में कोई परिवर्तन नहीं होता है किन्तु जब जल में फ्लोराइड का परीक्षण किया जाता है तो जल के रंग में परिवर्तन हो जाता है। प्राय: 1.5 पी.पी.एम. से अधिक मात्रा में फ्लोराइड होने पर उसका रंग हल्का गुलाबी और 1.5 पी.पी.एम. से कम होने पर उस जल का रंग हल्का पीला हो जाता है।

मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव-जल प्रदूषण में एक प्रमुख तत्व है फ्लोराइड। देश के कई राज्यों में भूमिगत जल में यह हानिकारक तत्व पाया जाता है। शुद्ध जल स्वादहीन, रंगहीन, गंधहीन पदार्थ है, जो पूर्णत: पारदर्शी है। शुद्ध पेयजल में 1से 2 पी.पी.एम.फ्लोरीन पाया जाता है, जो शरीर के लिये उचित

*सहायक प्राध्यापक (भूगोल) शासकीय महावीर महाविद्यालय, पेटलावद, जिला-झाबुआ (म.प्र.) भारत
**अतिथि विद्वान (अर्थशास्त्र) शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालया,खण्डवा(म.प्र.) भारत

मात्रा में आवश्यक होता है। इससे अधिक मात्रा मानव स्वास्थ्य के लिये हानिकारक होती है। अति फ्लोरीन की मात्रा से दॉतों का रंग बिगड़ना, शरीर में कम्पन्न, हड्डियों का कमजोर होना आदि परेशानी होती है। फ्लोराइड का मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकुल प्रभाव पड़ता है। यह पेयजल के माध्यम से शरीर में आसानी से प्रवेश कर जाता है। फ्लोराइड वाले जल का सेवन करने से **फ्लोरोसिस** नामक बीमारी होती है। फ्लोरोसिस बीमारी तीन प्रकार की होती है–**1. दॉत सम्बधी फ्लोरोसिस**–दंतीय फ्लोरोसिस बच्चों के साथ स्थाई दॉतों को करता है जिसमें 8 वर्ष की आयु के बाद बच्चों के दॉतों पर स्पष्ट रूप से दिखाई देने वाले विवर्णता आ जाती है। इसका प्रभाव वयस्कों पर भी होता है। इस बीमारी से दॉतों में धब्बे तथा छिद्र होने से धीरे–धीरे दॉत सड़कर गिरने लगते है। **2. अ–कंकालीय फ्लोरोसिस**–इसका शरीर के सभी कोमल तन्तुओं, अंगों एवं प्रणालियों पर अवश्य प्रभाव पड़ता है, जिसके परिणामस्वरूप स्वास्थ्य संम्बधी विभिन्न प्रकार की समस्याएँ होती है। **3. कंकालीय फ्लोरोसिस**–इसे अस्थि फ्लोरोसिस कहते है। इसमें युवा भी बुढ़े लगते है। यह शरीर की अस्थियों एवं जोड़ों को प्रभावित करता है जैसे–गर्दन, पीठ, पृष्ठ भाग, कंधे–घुटनों जोड़ का दर्द। इसमें अपंगता भी आ सकती है। गैस बनना, आँखों में तकलीफ, खून की कमी, बार–बार पैशाब आना, मांसपेशियों में दर्द होना इसके प्रमुख लक्षण है।

झाबुआ जिले में फ्लोराइड की समस्या–झाबुआ मध्य प्रदेश का अदिवासी बाहुल्य जिला है। 2011 की जनगणना के अनुसार जिले की कुल जनसंख्या में अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या 891818 अर्थात 87 प्रतिशत निवास करती है। यहॉ की 72 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवासरत है, जो मुख्य रूप से भूमिगत जल स्रोतों–हेण्डपम्प, नलकूप, कुऍ, आदि पर निर्भर है। फ्लोराइड एक तरह से मीठा जहर है, जो कि जिले के भूजल स्रोतों में धुलनशील है। फ्लोराइड का सीधा प्रभाव मानव के शरीर पर होता है। इससे हड्डियॉ एवं दॉत प्रभावित होते है। जिले में पिछले कुछ वर्षो में वर्षा की कमी के कारण भूमिगत जल स्रोतों के जल स्तर में निरन्तर कमी आयी है, जिसके कारण फ्लोराइड की मात्रा में वृद्धि हुई है। फ्लोराइडयुक्त जल लगातार पीने से **फ्लोरोसिस** नामक बीमारी होती है। पीने का पानी दिखने में तो साफ–स्वच्छ हो सकता है, किन्तु इसमें न देखने वाले हानिकारक तत्व फ्लोराइड तथा आर्सेनिक पाये जाते है। फ्लोराइड जल एवं भोजन के माध्यम से शरीर में प्रवेश करता है। रक्त परिवहन तन्त्र द्वारा शरीर के विभिन्न अंगों में पहूँच कर धीरे–धीरे इनमें जमनें लगता है। यह मां एवं गर्भस्थ शिशु के बीच स्थित दीवार को भी प्रभावित करता है, जिनमें कैल्शियम तत्व की बहुलता होती है। फ्लोराइड तत्व के कारण आने वाली पीढ़ियॉ भी ग्रसित है। यह एक भयानक बीमारी है, इस पर हमें ठोस चिन्तन कर प्रबल प्रयास किये जाने की आवश्यकता है। फ्लोरोसिस बीमारी को खत्म कर इससे ग्रसित लोगों के स्वास्थ्य में सुधार लाया जाये जिससे वे अपने दैनिक कार्य सुचारू रूप से सम्पन्न कर सके।

जल गुणवत्ता के विभिन्न प्राचलों की अनुमेय सीमा–शुद्ध पेयजल में अनेक प्रकार के हानिकारक विषैले पदार्थ उपस्थित रहते है। एक निश्चत मात्रा तक ही मानव शरीर इन तत्वों को सहन कर सकता है। हानिकारक तत्वों की अनुमेय सीमा से अधिक होने पर यह स्वास्थ्य पर विपरित प्रभाव डालती हैं। प्रस्तुत तालिका में जल में उपस्थिति विषैले पदार्थो की अनुमेय सीमा का उल्लेख किया है। शुद्ध पेयजल में इतनी मात्रा ही होना चाहिये। **(सारणी देखें अगले पृष्ठ पर)**

झाबुआ जिले में फ्लोराइड की स्थिति (सारणी देखें अगले पृष्ठ पर)

निष्कर्ष–उपरोक्त अध्ययन के आधार पर स्पष्ट है, कि ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल से सम्बधित सर्वाधिक समस्या फ्लोराइड तत्व की है। अधिकांश ग्रामिण क्षेत्रों में तो पेयजल का संकट आज भी बना हुआ है। ग्रामीण जनसंख्या पेयजल के रूप में भूमिगत जल स्त्रोतों–हैण्डपम्प, ट्यूबवेल एवं कुओं पर निर्भर रहती है। किन्तु वर्तमान समय में परम्परागत पेयजल स्त्रोतों कुऍ, बावड़ी का उपयोग कम होता जा रहा है। भारत में 1980 के दशक के बाद से नवीन पेयजल स्त्रोतों हैण्डपम्प, तथा ट्यूबवेल का उपयोग बढ़ा हैं। जिस कारण भूमि की अत्यधिक गहराई से जल निकासी की जाती है। भूमि में जितनी अधिक गहराई से हम जल प्राप्त करते है, उतने ही अधिक मात्रा में अन्य तत्वों की मात्रा बढ़ती जाती हैं। जिससे जल की शुद्धता कम होती है, परिणामस्वरूप स्वच्छ पेयजल की पूर्ति नहीं हो पा रही है। जो पेयजल उपलब्ध होता है उसमें भी अनेक हानिकारक तत्व सम्मिलित होते हैं। भारत के लगभग 20 राज्यो के 7.5 करोड लोग फ्लोरोसिस बीमारी से ग्रसित है, जिनमें महिलाओं एवं बच्चों की संख्या लगभग 60 लाख है। इसमें आंध्रप्रदेश, गुजरात, राजस्थान तथा तमीलनाडु सर्वाधिक ग्रसित राज्य है। यहॉ के लगभग 50 से 100 प्रतिशत जिले प्रभावित हो चुके है। आन्ध्रप्रदेश के 16, गुजरात के 18, कर्नाटक के 16,राजस्थान के 32 जबकि उड़ीसा के 18 जिले फ्लोरोसिस से प्रभावित है । भू–जल में आर्सेनिक विषाक्तता से पश्चिम बंगाल, बिहार, छत्तीसगढ़, उत्तर प्रदेश तथा असाम के क्षेत्रों में **आर्सेनियोसिस** की समस्या हो चुकी है, जिसके कारण ग्रसित रोगियों में चर्म कैंसर, हाथ पैरों में छाले आदि होते है। भू–जल प्रदूषण का दूष्प्रभाव कृषि भूमि पर भी पड़ता है। मध्यप्रदेश के 50 जिलों में से 28 जिले फ्लोराइड से प्रभावित है। देश में मात्र 4 प्रतिशत संसाधन स्वच्छ पेयजल के है। 92 प्रतिशत भूमिगत जल का उपयोग कृषि कार्य जबकि, 3 प्रतिशत घरेलू कार्य में किया जाता है। फ्लोराइड जल में उपस्थित हानिकारक तत्व है। म.प्र. के ग्रामीण क्षेत्रों में यह तत्व बहुतायता से उपस्थित है। झाबुआ जिले में पेयजल स्त्रोंतों में फ्लोराइड के अतिरिक्त नाइट्रेट, आर्सेनिक भी पाया जाता है। अध्ययन से स्पष्ट है कि जिले में कुल 80 गांव जल गुणवत्ता से प्रभावित है। जिसमें सर्वाधिक झाबुआ विकासखण्ड में 42.5 प्रतिशत तथा रानापुर विकासखण्ड में 27.05 प्रतिशत गांव है। फ्लोराइड मुख्यरूप से भूमिगत जल स्त्रोतों में पाया जाता है। कुल कार्यरत पेयजल स्त्रोतों में से 3861 स्त्रोतों में फ्लोराइड की मात्रा पाई गई। राणापुर विकासखण्ड में 24.66 प्रतिशत, जबकि झाबुआ विकासखण्ड में 21.70 प्रतिशत स्त्रोतों में फ्लोराइड पाया जाता है। फ्लोराइड युक्त जल का ग्रहण करने से फ्लोरोसिस नामक रोग होता है, जो कि मानव शरीर को प्रभावित करता हैं। जिले के 13,665 लोग इस जल का प्रयोग करते है। झाबुआ विकासखण्ड में 48.71 प्रतिशत, जबकि थान्दला विकासखण्ड में 31.45 प्रतिशत लोगों के द्वारा प्रदूषित जल का सेवन किया जाता है। प्रशासन के द्वारा इस दिशा में अनेकों प्रयास किये गये है। इस हेतु अनेक शुद्ध एवं स्वच्छ पेयजल योजनाऍ बनाई गई है। झाबुआ जिले में इस प्रकार की 881 योजनाऐं बनाई जिसमें सर्वाधिक झाबुआ विकासखण्ड में 27.0 प्रतिशत है।

नीतिगत सुझाव–फ्लोराइड की समस्या प्राय: भूमिगत जल के स्तर में कमी के कारण होती है। अत: भूमिगत जल के स्तर में वृद्धि की जानी चाहिए। इसके अन्तर्गत तालाबों का निर्माण, वृक्षारोपण अधिक किये जाये। ग्रामीण क्षेत्रों में शुद्ध पेयजल की आपूर्ति के लिए अन्य वैकल्पिक सुविधाओं का विस्तार किया जाना। फ्लोराइड प्रभावित गाँवों में डि–फ्लोराइडेशन यंत्रों का विस्तार किया जाना आवश्यक है। पेयजल में फ्लोराइड की मात्रा के नियंत्रण हेतु

अनेक तकनीकियॉ जिनमें-नालगोंड़ा विधि, एक्टिवेड एल्यूमिना क्षेत्र पिरिक्षित और अभ्यातित तकनीकियॉ अपनाई जा रही है। विद्युतिय फ्लोराइड अपघटन एक नवीनतम विधि है। इस विधि का प्रयोग फ्लोराइडयुक्त जल में किया जाता है। यह संयत्र पानी में फ्लोराइड की मात्रा को कम करता है। अत: इस प्रकार की तकनीकियॉ प्रशासन द्वारा झाबुआ जिले में भी क्रियांन्वित की जानी चाहिए। फ्लोराइड चूँकि एक स्वतंत्र गैस होती है, जो कि अन्य तत्वों के साथ जल्दी क्रियाशील हो जाती है। अत: भूमिगत जल में से फ्लोराइड की मात्रा को कम करने के लिए अन्य रासायनिक गैसों के साथ क्रिया अथवा मिलाकर कम किया जा सकता है। मध्यप्रदेश के झाबुआ जिले में पेयजल में फ्लोराइड की प्रमुख समस्या है, लगभग 80 गॉव फ्लोराइड से प्रभावित है। प्रशासन को फ्लोराइड युक्त जल स्त्रोतों को बन्द कर उनके स्थान पर नवीन स्वच्छ पेयजल स्रोतों को स्थापित किया जाना चाहिये। फ्लोरोसिस बीमारी से प्रभावितों को पर्याप्त चिकित्सा सुविधाऍ प्रदान की जानी चाहिये। फ्लोरोसिस ग्रसितों को भोजन में पत्तेदार हरी सब्जियॉ, दूध-दही, नीबू, आंवला, हरी फलियॉ इत्यादि का समावेश किया चाहिये।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. ओझा दत्तदूर्गा (2014)-'भूजल प्रदूषण-कारण एवं निवारण', ज्ञान-विज्ञान: शैक्षिक निबन्ध-होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द्र, मानखुर्द-मुम्बई, पृ.-69
2. डॉ. निमोल मोहन (2014)-'ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्रों में जल संकट नियोजन एवं प्रबंधन' अक्षर विन्यास, ऋषि नगर-उज्जैन म.प्र.।
3. डॉ.एस.आखिलेश-शुक्ला संध्या (2011)-'पर्यावरण संरक्षण' सेन्टर फार रिसर्च स्टडीज, गायत्री पब्लिकेशन-रीवा (म.प्र.), पृ.- 308
4. गुर्जर रामकुमार-जाट बी.सी.(2006)-'पर्यावरण भूगोल', पंचशील प्रकाशन, फ़िल्म कॉलोनी-जयपुर, पृ.188-199
5. निलिम राजवैध (2009)-'प्रकृति, पर्यावरण एवं नियन्त्रण'-एस.पी.पब्लिसिंग हाउस,दरियागंज-नई दिल्ली पृ.119-123.
6. प्रो.नाथ त्रिभुवन (2012) -'पर्यावरण अध्ययन' म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी-भोपाल, पृ. 27-28
7. रधुवंशी डॉ.चन्द्रलेखा (2008)-'पर्यावरण तथा प्रदुषण' म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी-भोपाल, पृ.110-115
8. सिंह निशात (2011)-'ग्रामीण जीवन में जल प्रदूषण'-कुरूक्षेत्र ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली पृ.13-17
9. सिंह सविन्द्र (2008) -'पर्यावरण प्रदूषण',पर्यावरण भूगोल-प्रयाग पुस्तक भवन, युनिवर्सिटी रोड़-इलाहाबाद, पृ. 81-495

क्र.	विषैले पदर्थ (अनुमेय सीमा)		क्र.	विषैले पदर्थ (अनुमेय सीमा)	
1	**लेड**	0.05 मिग्रा.प्रतिलीटर		आयरन	5.0 मिग्रा.प्रतिलीटर
	आर्सेनिक	0.05 मिग्रा.प्रतिलीटर		मैंगनीज	5.0 मिग्रा.प्रतिलीटर
	सेलिनियम	0.01 मिग्रा.प्रतिलीटर		कॉपर	1.5 मिग्रा.प्रतिलीटर
	क्रोमियम	0.05 मिग्रा.प्रतिलीटर		जिंक	1000 मिग्रा.प्रतिलीटर
	सायनाइड	0.02 मिग्रा.प्रतिलीटर		मैग्नीशियम + सोडियम सल्फेट	0.5 मिग्रा.प्रतिलीटर
	कैडमियम	0.01 मिग्रा.प्रतिलीटर	4	**प्रदूषण रासायनिक सूचक**	
2	**स्वास्थ्य को जोखिम प्रदान करने वाले अवयय**			बी.ओ.डी.	6.0 मिग्रा.प्रतिलीटर
	फ्लोराइड	1.5 मिग्रा.प्रतिलीटर		सी.ओ.डी.	10.0 मिग्रा.प्रतिलीटर
	नाइट्रेट	45 मिग्रा.प्रतिलीटर		कुल नाइट्रोजन-आमोनिया	1.0 मिग्रा.प्रतिलीटर
3	**पेयता को प्रभावित करने वाले यौगिक**			कार्बन क्लोरोफार्म एक्सट्रेक्ट	0.5 मिग्रा.प्रतिलीटर
	टी.डी.एस.	1500 मिग्रा.प्रतिलीटर		तेल एवं ग्रीस	1.5 मिग्रा.प्रतिलीटर

स्त्रोत-'ज्ञान-विज्ञान शैक्षिक निबन्ध' (2014) होमी भाभा विज्ञान

झाबुआ जिले में फ्लोराइड की स्थिति

क्र.	विकासखण्ड का नाम	जल गुणवत्ता से प्रभावित गांव		प्रभावित कुल स्त्रोत		प्रभावित जनसंख्या		स्वच्छ पेयजल योजनाएँ	
		संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
1.	झाबुआ	34	42.5	838	21.70	4871	48.71	325	36.89
2.	मेघनगर	05	06.25	666	17.25	971	07.11	74	08.40
3.	रामा	07	08.75	676	17.51	694	05.08	188	21.34
4.	रानापुर	22	27.05	952	24.66	2831	20.72	144	16.35
5.	थान्दला	12	15.00	729	18.88	4298	31.45	150	17.03
	योग	80	-	3861	-	13665	-	881	-

स्त्रोत-लोक स्वास्थ्य यांत्रिकी विभाग-झाबुआ, मध्यप्रदेश

****

पर्यावरण अध्ययन, ध्वनि प्रदूषण – पटेल प्लाजा, टैगोर मार्ग, नीमच (म.प्र.) भारत के विशेष सन्दर्भ में (पर्यावरण एवं प्रदूषण)

डॉ. भूपेन्द्र कुमार अम्ब *

शोध सारांश – इस शोध पत्र में पटेल प्लाजा, चौराहा टैगोर मार्ग, नीमच पर भगवान श्री खाटू श्याम फाग महोत्सव चल समारोह के अवसर पर ध्वनि प्रदूषण की स्थिति को रेखांकित किया गया हैं। इस हेतु पटेल प्लाजा, चौराहा टैगोर मार्ग के स्थान को चिन्हित कर चल समारोह में होने वाली ध्वनि तीव्रता को ज्ञात कर उसका विश्लेषण प्रस्तुत किया गया हैं। प्रस्तुत अध्ययन में ध्वनि तीव्रता, ध्वनि तीव्रता मापन यन्त्र (sound level meter) से ज्ञात की गई हैं। यन्त्र को इस तरह स्थापित किया गया कि वह निर्धारित स्थान के 5 मिनिट अन्तराल में हर 2 सेकेण्ड अन्तराल के ध्वनि नमूने का पाठयांक ज्ञात कर सके। इस अध्ययन में यह पाया कि चिन्हित स्थान पर ध्वनि तीव्रता, केन्द्रीय प्रदूषण निवारण बोर्ड, भारत(CPCB2002) की निर्धारित मानक ध्वनि तीव्रता से कहीं अधिक थी। ध्वनि प्रदुषण संप्रेषण प्रक्रिया में बाधा, सुस्ती को बढ़ावा, कार्य क्षमता में कमी आदि कर मानव की स्वस्थ्यता को मूल रूप से प्रभावित करती हैं। इसे दूर करने हेतु आगे कुछ सुझाव दिये गये हैं।

प्रस्तावना – ब्रिटेन के बार्बरा वार्ड का कहना है कि ' मोटर वाहनों द्वारा उत्पन्न शोर परमाणु बमों जितना घातक है, अंतर केवल इतना है कि परमाणु बम तुरन्त मार डालते है और शोर प्रदूषण धीरे–धीरे । ध्वनि प्रदूषण अथवा शोर–शराबा मानवीय प्रसन्नता को घटाती है, यह एक अनचाही एवं पसन्द न आने वाली ध्वनि हैं। ऐसा अवाधित पर्यावरणीय शोर या नुकसानदेय बाह्य ध्वनि जो कि मशीन द्वारा मानवीय गतिविधियों से उत्पन्न होती हैं, गुणवत्तापूर्ण मानवीय जीवन को क्षय करती है। ध्वनि ऊर्जा का वह प्रकार है, जहॉ विभिन्न दवावो के साथ जब ऊर्जा बहती हैं तो हमारे कान उसे पहचान लेते हैं। आज अधिकतम बड़े/छोटे नगरो में ध्वनि प्रदूषण अथवा शोर–शराबा एक ज्वलंत पर्यावरणीय समस्या बन चुका हैं। यह न सिर्फ मानव के स्वास्थ्य पर विपरित प्रभाव डाल कर मनोविज्ञानिक तथा भौतिक तनाव को जन्म देता हैं। यहॉ इस बात पर जोर दिया गया है कि कैसे ध्वनि प्रदूषण अथवा शोर–शराबा को कम किया जाये, तथा चिन्हित स्थानो पर ध्वनि की उच्च तीव्रता पर क्या लगाम लगाया जावे। इस अध्ययन का उद्देश्य है –

1. ध्वनि प्रदूषण की तीव्रता से जन मानस को अगाह करना ।
2. प्रदूषण से मानव स्वास्थ्य पर मण्डराते खतरों से अवगत कराना जैसे– श्रवण तंत्रिका पर विपरीत प्रभाव, श्रवण शक्ति का ह्यस होना ह्रदय एवं पाचन तंत्र पर प्रतिकूल प्रभाव,रक्त कोलेस्ट्राल में वृद्धि, स्वभाव में चिड़चिड़ापन तथा अनिद्रा की समस्या आदि ।

तालिका – 1

Area	Day time dB	Night time dB
Industrial	75	70
Commercial	65	55
Residential	55	45
Silence Zone	50	40

शोर का मापन या प्रबलता इकाई – ध्वनि एक तीव्र परिवर्तनीय दाब तरगं हैं जो कि माध्यम में चलती हैं। यदि ध्वनि तरगं हवा में चलती है तो वायुमण्डलीय दाब आवर्ती रूप में परिवर्तित होता हैं। एक सेकेण्ड में जितनी बार दाब परिवर्तन होता है वह ध्वनि की आवृति कहलाती हैं, इसे Hertz(Hz) से नापा जाता हैं तथा इसे चक्र प्रति सेकेण्ड से परिभाषित किया जाता हैं। ध्वनि की तीव्रता डेसीबल dB(A) इकाई से मापी जाती हैं। ध्वनि की मापक इकाई को डेसिबल कहते है । इसको **प्रसिद्ध वैज्ञानिक ग्रेहम बेल** ने प्रस्तुत किया था । डेसीबल dB(A) स्केल लागेरिथ्मिक होती है। डेसीबल dB(A) ध्वनि प्रदूषण अथवा शोर–शराबा को नापने की मानक इकाई हैं। 0 डेसीबल dB(A) स्केल में न्यूनतम सुनने लायक ध्वनि होती हैं। डेसीबल dB(A) स्केल में 20 डेसीबल लोहार की धोकनी की आवाज, 40 डेसीबल किसी कार्यालय की ध्वनि तथा 60 डेसीबल सामान्य वर्तालाप की ध्वनि होती हैं। 80 डेसीबल ध्वनि भौतिक रूप से पीड़ादायक होती हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन के द्वारा तय मानकों के अनुसार ध्वनि प्रदूषण की मात्रा दिन के समय 55 तथा रात्रि के समय 45 डेसिबल तक होनी चाहिए । औद्योगिक क्षेत्रों में इसकी सीमा दिन में 75 एवं रात्रि में 70 डेसिबल तय की गई है ,सामान्य 60 डेसिबल से अधिक ध्वनि को हानिकारक माना जाता है । तालिका 1 में पर्यावरण नियंत्रण नियम 2000 तथा CPCB India की मानक न्यूनतम ध्वनि तीव्रता दिखायी गयी हैं। परन्तु हम जहॉ भी नजर डालें सभी स्थानों के परिणाम मानक न्यूनतम ध्वनि तीव्रता से बहुत अधिक पायें गये हैं।

तालिका – 1 में वर्णित दिन के समय से आशय प्रात: 6 बजे से रात्रि 10 बजे तथा रात्रि समय से आशय रात्रि 10 बजे से प्रात: 6 बजे से हैं।
तालिका क्र. 2 में विभिन्न ध्वनियों की प्रबलता को डेसिबल इकाई में मानव पर पड़ने वाले प्रभाव को दर्शाया गया है।

तालिका क्र. 2 (देखे अन्तिम पृष्ठ पर)

प्रक्रिया एवं कार्य क्षेत्र– प्रस्तुत शोध पत्र में पटेल प्लाजा, चौराहा टैगोर मार्ग, नीमच पर खाटू श्याम फाग महोत्सव चल समारोह के अवसर पर ध्वनि प्रदूषण की स्थिति का अध्ययन एवं विश्लेषण किया गया हैं। इस हेतु चिन्हित

* सहायक प्रध्यापक (रसायन) शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.) भारत

स्थान पर चल समारोह के दौरान होने वाली ध्वनि तीव्रता को ज्ञात कर उसका विश्लेषण प्रस्तुत किया गया हैं।

चिन्हित किये गये स्थान पटेल प्लाजा चौराहा, पर चल समारोह के दौरान (प्रथम बिन्दु से अन्तिम बिन्दु तक) तीव्र वाद्य यन्त्र, ड्रम्स डी. जे. साउण्ड, लेजम, ढोल नगाड़े, रस्सी पटाखे आदि मुख्य ध्वनि तीव्रता के स्त्रोत होते थैं। चल समारोह के दौरान ध्वनि प्रदूषण की ध्वनि तीव्रता को ध्वनि तीव्रता मापन यन्त्र (sound level meter) से ज्ञात किया गया है। चिन्हित स्थान की ध्वनि तीव्रता चल समारोह के दौरान हर 5 मिनिट में 2 सेकेण्ड के अन्तर से ज्ञात की गई हैं। हर 5 मिनिट में न्यूनतम तथा अधिकतम तीव्रता नोट की गई है तथा एक स्थान के 10 पाठयांक लिये गये हैं। यहॉ पूरा चल समारोह (प्रथम बिन्दु से अन्तिम बिन्दु तक) लगभग 50 मिनिट में प्रस्थान कर गया। जिसके कारण ध्वनि तीव्रता लगातार धीमी होती चली गयी।

परिणाम –यह पाया गया कि पर्यावरण नियंत्रण नियम 2000 तथा CPCB की मानक न्यूनतम ध्वनि तीव्रता से सभी स्थानों के परिणाम बहुत अधिक थे। डी. जे. साउण्ड, तथा रस्सी बम पटाखें चल समारोह के जिन बिन्दुओं पर आये वहॉ तीव्रता सबसे अधिक रही। पूरे अध्ययन में न्यूनतम ध्वनि तीव्रता लगभग् 90 डेसीबल dB(A) तथा अधिकतम ध्वनि तीव्रता लगभग् 103 डेसीबल dB(A) नापी गई, सामान्यत: यह पाया गया कि चिन्हित स्थान की ध्वनि तीव्रता चल समारोह के दौरान मानक न्यूनतम ध्वनि तीव्रता से कही बहुत अधिक थी। चिन्हित स्थान के पाठयांक को चार्ट के माध्यम से समझाया गया हैं। **(चार्ट देखे अगले पृष्ठ पर)**

विश्लेषण –यहॉ एक स्थान पर चल समारोह के प्रथम बिन्दु से अन्तिम बिन्दु तक हर 5 मिनिट के अन्तराल से पाठयांक लिये गये हैं। चित्र में प्रत्येक स्थानों की औसत ध्वनि तीव्रता को लिया गया हैं। यहॉ एक स्थान पर पाठयांक लेकर हर 5 मिनिट के अन्तराल से 50 मिनिट तक ध्वनि तीव्रता ली गई। पाठयांक तथा चित्र स्पष्ट करते कि न्यूनतम तीव्रता 90 डेसीबल से कम नहीं हैं, 90 डेसीबल ध्वनि भौतिक रूप से पीड़ादायक होती हैं 90 डेसीबल से अधिक ध्वनि तीव्रता कष्टदायक तथा 100 डेसीबल से अधिक की ध्वनि अधिक असहनीय होती हैं। चल समारोह में जिस बिन्दु पर ढ़ोल नगाडे, लेजम, डी.जे. साउण्ड फटाखें आदि थे, वहॉ औसत ध्वनि तीव्रता अधिक पाई गयी। 92 से अधिक ध्वनि तीव्रता 8 मिनिट से अधिक समय तक लगातार कानों में पड़ती है तो निम्न वर्णित स्वास्थ्य पर प्रभाव हो सकता हैं।

ध्वनि प्रदूषण का स्वास्थ्य पर प्रभाव – ध्वनि प्रदूषण अथवा शोर–शराबा के कारण गुस्सेल होना, उच्च रक्त चाप, उच्च तनाव, कम सुनना, नींद की कमी, भूलने की आदत तथा अनेक आकस्मिक दर्द का हो जाना तथा अवसाद की स्थिति होना आदि हानियॉ हो सकती हैं। अचानक बहुत अधिक तीव्र ध्वनि तेजी से कानों में पड़ती हैं तो कान सुन्न हो सकते हैं। एक वयस्क व्यक्ति व्यावसायिक लाक्षणिक ध्वनि तीव्रता के बीच प्रतिदिन कार्य करता हैं, तो उसकी लाक्षणिक रूप से सुनने की क्षमता में कमी उस वयस्क व्यक्ति की तुलना में आ जाती है, जो कि इस तरह की ध्वनि तीव्रता के बीच कार्य नहीं करता हैं,

उच्च तीव्रता का ध्वनि प्रदूषण अथवा शोर–शराबा हृदय की धमनियों को प्रभावित कर सकता हैं। यदि मध्यम उच्च तीव्रता का ध्वनि लगातार 8 घण्टे तक किसी व्यक्ति के कानों में पड़ती हैं तो रक्त चाप 5 से 10 बिन्दु तक बढ़ सकता हैं तथा यह बढ़ा हुया रक्त चाप धमनियों को इस तरह प्रभावित कर देता है कि उच्च रक्त चाप बढ़ने लगता है। इससे हृदय की धमनियों में रूकावट होकर हृदयघात होने की संभावना बढ़ सकती हैं।

व्यक्ति के भौतिक एवं मनोविज्ञानिक व्यवहार को भी यह प्रभावित करता हैं। ध्वनि प्रदूषण से होने वाले अन्य प्रभाव इस प्रकार हैं, स्थायी बहरापन, बुखार, उल्टी, दर्द, उच्च रक्त चाप, नींद में कमी होना, थकावट महसूस होना, मानसिक थकावट, मानसिक तनाव, एलर्जी, आदि।

मनोवैज्ञानिक प्रभाव – दैनिक जीवन में अवांछित शोर सामाजिक तनाव,खीज,झुंझलाहट,चिड़चिड़ापन,मानसिक,अस्थिरता, कुण्ठा, भी बड़े तथा पागलपन इत्यादि दोषों का कारण माना जाता है । ध्वनि प्रदूषण से मस्तिष्क की रक्त वाहिनियॉ फैल जाती है, जिससे तीव्र सिरदर्द रहने लगता है, ऑखों की पुतली फैल जाने से दृष्टि कमजोर हो जाती है। शोर से वातावरण में जन्म लेने वाले शिशुओं के स्नायु तंत्रों पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है ।

'शोर एक धीमे विष की भॉति मानव पर प्रभावित करता है । इससे शरीर में विभिन्न रोगो से लड़ने की क्षमता कम हो जाती है ।

निष्कर्ष – ध्वनि प्रदूषण नीमच (म.प्र.) तथा भारत के अन्य हिस्सों में एक पर्यावरणीय समस्या उत्पन्न कर रहा है। और यह व्यक्ति के स्वास्थ्य एवं समृद्धि पर विपरित प्रभाव डाल सकता हैं, उर्पयुक्त सभी बिन्दुओं के परिप्रेक्ष्य में हम इस निष्कर्ष पर पहुचें है कि ध्वनि प्रदुषण (शोर) पर्यावरणीय ध्वनि को बढ़ा रहा हैं।

प्रदूषण के प्रति विश्व चेतना– विश्व के विषेषज्ञों में बड़ी चेतावनी दी है कि – ' यदि प्रदूषण इसी तरह बढ़ने दिया गया तो एक अवस्था ऐसी आएगी जब ताजी हवा और शुद्ध जल मिलना मुश्किल हो जाएगा। वातावरण में विषैले पदार्थ जमा होते जाऐंगें तो नए रोग पनपते जाऐगें और मानव जाति खतरनाक मोड़ पर पहुॅच जाएगी ।

उपाय एवं सुझाव – भगवान श्री खाटू श्याम फाग महोत्सव चल समारोह निश्चित रूप से हर्ष एवं उल्लास के साथ मनाया जाने वाला त्यौहार हैं। इसमें कर्ण प्रिय ध्वनि निश्चित ही श्रोताओं को आकर्षित करती हैं। भगवान श्री खाटू श्याम भी फाग महोत्सव चल समारोह के रूप में कर्णप्रिय ध्वनि को सुनते, एवं स्वीकारते ही होगें। समस्या तो नादानीवश तीव्र ध्वनि का होना हैं। इस हेतु यदि आयोजन कर्ता भी डी. जे. साउण्ड को साउण्डप्रुफ छत के साथ उपयोग करें तथा चल समारोह के साथ–साथ जगह–जगह साउण्डप्रुफ कालम भी चलते रहे, तो ये दोनों उपाय ध्वनि की तीव्रता को कम करेगें तथा ध्वनि को कर्णप्रिय बनायेगें।

हमें भी व्यक्तिगत रूप से झिझक छोड कर ईयर प्रोटेक्टिव उपकरण का उपयोग करना होगा, यह उपकरण महानगरों में उपलब्ध हैं। इसके उपयोग से हम श्री गणेश विसर्जन चल समारोह में सहज रूप से घूम सकते हैं तथा त्यौहार का आनन्द उठा सकते हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :–

1. D.J. Fisk. Statistical Sampling in Community Noise Measurement, (1973), Journal of Sound and Vibration, 30(2), pp 221-236.
2. WHO., Environmental health criteria of noise. 12 World Health Organization (1980).
3. RituKudesia: Environmental Health & Technology. Pragati Publishers, Meerut India, 2007
4. J.M. Field, Effect of personal and situational variables upon noise annoyance in residential areas, Journal of the Acoustical Society of America, 93: 2753-2763 (1993).
5. V.P. Kudesia and T.N. Tiwari: Noise Pollution and Its Control. Pragati Prakashan, Meerut India, 1994.

6. D.B. Tripathy: Noise pollution. A.P.H. Publishing Corporation, New Delhi, India, 1999.
7. Bhabananda Phukan and Kalyan Kalita: A study of noise pollution in Gauhati University International Journal of Environmental Sciences Volume 3, No 5, 2013
8. Noise Pollution, Laws & Remedies by Justice Bhagabati Prosad Banerjee, pp. 327-28.
9. T. VidyaSagar et.al.2006, Oyedepo and Saadu 2009.

तालिका क्र. 2 – विभिन्न ध्वनियों की प्रबलता

क्रं.	स्त्रोत	ध्वनि का प्रबलतों डेसिबल इकाई मे	मानव पर पड़ने वाला प्रभाव
1.	श्वसन	10	शान्त
2.	स्टूडियों प्रसारण	20	शान्त
3.	फुसफुसाहट	10–30	शान्त
4.	घड़ी की टिकटिक	30	मधुर
5.	वार्तालाप	35–60	सामान्य तेज
6.	टेलीफोन	60	सामान्य तेज
7.	हल्का यातायात	70	शोरगुल
8.	मोटर सायकल (लगभग 25 फीट दूर)	100	प्रबल
9.	शेर की गरजन	105–110	असुविधाजनक रूप से प्रबलता
10.	जेट इंजन (लगभग 100 फीट दूरी)	105	असुविधाजनक रूप से प्रबलता
11.	बिजली की कड़क	120	असुविधाजनक रूप से प्रबलता
12.	रेलगाड़ियों की शोर	110–130	पीड़ा जनक
13.	जेटयान उड़ते समय	150	पीड़ा जनक
14.	अंतरिक्ष राकेट उड़ते समय	170–180	पीड़ा जनक

पटेल प्लाजा, चौराहा टैगोर मार्ग, नीमच पर भगवान श्री खाटू श्याम फाग महोत्सव चल समारोह के अवसर पर ध्वनि प्रदूषण की स्थिति

Noise pollution

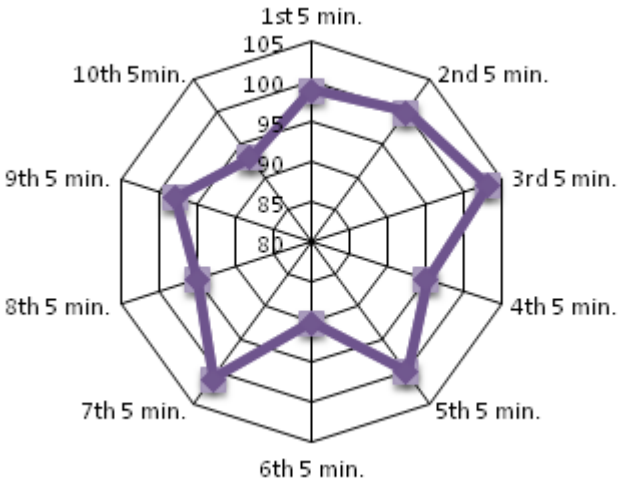

****

DSS Divya Shodh Samiksha (An International Refereed Research Journal) July to September 2015
ISSN 2394-3807, E-ISSN 2394-3513, Imapct Factor - 0.745 (2014)

पर्यावरण प्रदूषण में प्रशासन की भूमिका

कपिला बाफना *

आदिकालीन मानव कम संख्या में तथा अज्ञानता होने के कारण पर्यावरण में बहुत कम बदलाव कर सकता था। आधुनिक मानव ने विज्ञान एवं तकनीकी कोशल में इतनी प्रगति कर ली, कि वह अपनी जरूरत तथा रूचि के अनुसार पर्यावरण के तत्वों को परिवर्तित करने लगा है। त्रीव जनसंख्या वृद्धि, निरन्तर बढ़ती आवश्यकताएँ, बढ़ते भौतिकवादी दृष्टिकोण आदि के कारण प्राकृतिक संसाधनो का लोलुपतापूर्ण और अविवेकपूर्ण ढ़ंग से अंधाधुंन विदोहन किया जाने लगा। औधोगिक विस्तार विकास की अत्यधिक सम्भावनाएँ, रोजगार की बढ़ती सुलभता आदि के कारण नगरीय केन्द्रों में जनसंख्या में भारी वृद्धि हुई है। जिससे पर्यावरणीय समस्याएँ उत्पन्न होकर महानगरो में मलिन बस्तियो की संख्या में वृद्धि हो गई है। भारत में प्राय: सभी प्रकार के प्रदूषण जैसे वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण ध्वनी प्रदूषण आदि मोजूद है। वायू प्रदूषण दहन द्धारा उद्योग तथा कृषि कार्यो के लिए विभिन्न रसायनों के उपयोग और विलायको तथा रेड़ियोधर्मी पदार्थो द्धारा उत्पन्न होता है। भारत में वायु प्रदूषण की चपेट में है। भारत के पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने 9 उद्योग को मुख्य जल प्रदूषण उद्योग के रूप में पहचाना है ये है:- मद्य निर्माण उद्योग, पेट्रो रसायन उद्योग, चर्म शोधक उद्योग कागज उद्योग, उर्वरक उद्योग, औषधि उद्योग तथा चीनी उद्योग। भारत में ध्वनि प्रदूषण में 4% प्रतिवर्ष की दर से वृद्धि हो रही है। प्रदूषण की रोकथाम और नियन्त्रण हेतु पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने 1992 में एक नीतिगत बयान की घोषणा की। जल एवं वायु प्रदूषण के मुल्यांकन, निगरानी और नियन्त्रण के अर्न्तगत आने वाली इस स्वायत्त संस्था की जल (प्रदूषण एवं नियंत्रण व रोकथाम) अधिनियम 1974 के प्रावधानो के तहत सितम्बर 1974 में स्थापित किया गया। पर्यावरण संरक्षण के लिए केन्द्रीय और राज्य सरकारों ने लगभग 30 कानून बनाए है। भारत में ओद्योगिकरण पर्यावरण प्रदूषण के लिए महत्वपूर्ण कारण रहा है। प्रदूषण रोकने के लिए जनता को जागरूक किया जाय तथा गावों में भी इसके बारे में चौपाल मेलो आदि में इसके बारे में लोगो को बताया जाय प्रदूषण को रोकने के लिए सुधार कार्यक्रम, वन लगाने की प्रक्रिया में वृद्धि, नये राष्ट्रीय उद्यानो, अभयारण्यो तथा जीवमण्डल सुरक्षित क्षेत्रों का विकास आदि को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। हमें सतत विकास का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए इन प्रयासों को अधिक तेज करना होगा, जिससे मानव आवश्यकताओं और आकांक्षाओ को पूरा करने के लिए वर्तमान तथा भावी, दोनों क्षमताओं में वृद्धि हों।

प्रस्तावना – आदिकालीन मानव कम संख्या में तथा अज्ञानता होने के कारण पर्यावरण में बहुत कम बदलाव कर सकता था। उस समय पर्यावरण के संघटन तत्वों में पूर्ण सन्तुलन था। मानव ज्ञान और प्राविधिकी में जैसे-जैसे विकास होता गया मनुष्य पर प्राकृति का नियंत्रण कमजोर पडता गया। आधुनिक मानव ने विज्ञान एवं तकनीकी कोशल में इतनी प्रगति कर ली, कि वह अपनी जरूरत तथा रूचि के अनुसार पर्यावरण के तत्वों को परिवर्तित करने लगा है। त्रीव जनसंख्या वृद्धि, निरन्तर बढ़ती आवश्यकताएँ, बढ़ते भौतिकवादी दृष्टिकोण आदि के कारण प्राकृतिक संसाधनो का लोलुपतापूर्ण और अविवेकपूर्ण ढ़ंग से अंधाधुंन विदोहन किया जाने लगा। प्रदुषण के उत्तरदायित्वो में बढ़ती जनसंख्या द्धारा प्राकृतिक विदोहन, औधोगिक विकास के अवशिष्ट पदार्थो एवं कृषि विकास में नित नए रासायनिक साधनो का प्रयोग उत्तरदायी है।

ग्रामीण जनंसख्या का प्रवजन नगरो की और दिनोदिन बढ़ता जा रहा है वर्ष 1901 में भारत की कुल जनसंख्या का मात्र 10.84% नगरो में था जबकि वर्ष 2011 में 31.16% जनसंख्या नगरो में है। औधोगिक विस्तार विकास की अत्यधिक सम्भावनाएँ, रोजगार की बढ़ती सुलभता आदि के कारण नगरीय केन्द्रों में जनसंख्या में भारी वृद्धि हुई है। जिससे पर्यावरणीय समस्याएँ उत्पन्न होकर महानगरो में मलिन बस्तियो की संख्या में वृद्धि हो गई है 2011 की जनगणना के अनुसार देश में 1.73 करोड़ आवास मलिन बस्तियों में है। इनमें लगभग 70% आबादी महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश, तमीलनाडु, पश्चिम बंगाल मध्य प्रदेश और उत्तर-प्रदेश के शहरो में है।

1. भारत में प्रदूषण एवं प्रभाव – भारत में प्राय: सभी प्रकार के प्रदूषण जैसे वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण ध्वनी प्रदूषण आदि मोजूद है। वायू प्रदूषण दहन द्धारा उद्योग तथा कृषि कार्यो के लिए विभिन्न रसायनों के उपयोग और विलायको तथा रेड़ियोधर्मी पदार्थो द्धारा उत्पन्न होता है। भारत में वायु प्रदूषण की चपेट में है। यहाँ का कोलकत्ता शहर "smog city of India" कहा जाता है जिसमें 1299 टन प्रदूषण प्रतिदिन वायुमण्डल में घुल रहे है। भारत में वायु प्रदूषण के कारण ग्रीन हाऊस प्रभाव तथा वैश्विक तापन बढ़ रहा है जिससे क्षयरोग तथा श्वास की बिमारिया पेदा हो रही है। जल प्रदूषण के माध्यम से कार्बनिक या अकार्बनिक प्रदार्थ पानी में मिश्रित हो जाते है जो पानी में दुर्गन्ध पैदा करते है भारत में औद्योगिक इकाईयों से लगभग 40 लाख टन अपशिष्ट प्रदार्थ पानी में प्रवाहित हो रहे है। भारत की हुगली नदी संसार की सबसे प्रदूषित नदियों में से एक मानी जाती है। भारत के पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने 9 उद्योग को मुख्य जल प्रदूषण उद्योग के रूप में पहचाना है ये है- मद्य निर्माण उद्योग, पेट्रो रसायन उद्योग, चर्म शोधक उद्योग कागज उद्योग, उर्वरक उद्योग, औषधि उद्योग तथा चीनी उद्योग। भारत में ध्वनि प्रदूषण में 4% प्रतिवर्ष की दर से वृद्धि हो रही है। भारत में सबसे अधिक ध्वनि प्रदूषण मुंबई में है। शोर या ध्वनि के कारण हृदय, तन्त्रिक तंत्र, पाचन तंत्र ही प्रभावित

* शोधार्थी, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर (म.प्र.) भारत

नही होता अपितु शोर के कारण रक्त में कोलेस्टरोलॅ तथा कार्टीजोन का स्तर भी बढ़ जाता है।

2. भारत सरकार द्धारा प्रदूषण नियन्त्रण के उपाय– पर्यावरण प्रदूषण के नियन्त्रण के लिए विश्वस्तर पर कई कार्यक्रम लागू किए गए इसमें 1972 स्टार होम सम्मेलन तथा 1997 क्योटी प्रोटोकाल सन्धी प्रमुख है। भारत में प्रदूषण की रोकथाम के लिए बहुत से नियम बनाए गए है। प्रदूषण की रोकथाम और नियन्त्रण हेतु पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने 1992 में एक नीतिगत बयान की घोषणा की। जिसके प्रश्यात इन बातो की और ध्यान दिया गया की साफ सफाई एवं कम कचरा करने वाली प्रौधोगिक को प्रोत्साहन, कचरे में कमी लाना, पून: प्रयोग या रिसाइकिंलग तकनीक को अपनाना, जल की गुणवत्ता में प्रचार पर्यावरण ऑड़िट, प्राकृतिक सम्पदा उत्तरदायित्व, आदि। केन्द्रीय प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड– जल एवं वायु प्रदूषण के मुल्यांकन, निगरानी और नियन्त्रण के अर्न्तगत आने वाली इस स्वायत्त संस्था की जल (प्रदूषण एवं नियंत्रण व रोकथाम) अधिनियम 1974 के प्रावधानो के तहत सितम्बर 1974 में स्थापित किया गया। 183 जिलो में पर्यावरण वाहिनी योजना, पर्यावरण प्रदूषण के सम्बन्ध में युवाओ को जागरूक बनाने तथा वायु जल एवं अन्य प्रदूषण के लिये प्रारंभ की गई। हमें अध्ययन से प्राप्त होता है कि पर्यावरण प्रदूषण में वायु एवं जल प्रदूषण प्रमुख है। पर्यावरण को प्रदूषण से मुक्त करने एवं उनके संरक्षण के लिये पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1986 बनाया गया। तथा धारा 15 में अधिनियम में उल्लघन पर 5 वर्ष तक के कारावास के कठारे दण्ड़ का प्रावधान भी किया गया है।

पर्यावरण संरक्षण के लिए केन्द्रीय और राज्य सरकारों ने लगभग 30 कानून बनाए है। जिनमें से प्रमुख है– जल (प्रदूषण निवारण तथा नियन्त्रण) अधिनियम 1974, जल उपकर अधिनियम 1977, वायु (प्रदूषण निवारण तथा नियन्त्रण) अधिनियम 1981 तथा पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1986 साथ ही सरकार ने वन संरक्षण तथा वृक्षारोपण, संषोधित राष्ट्रीय वन नीती, वन्य जीवन संरक्षण, जीव जन्तुओं का सरक्षण, गंगा सफाई कार्य योजना आदी प्रयासों को गती प्रदान की है।

3. नीतिगत सुझाव– भारत में ओद्योगिकरण पर्यावरण प्रदूषण के लिए महत्वपूर्ण कारण रहा है। जैसे–2 प्रर्यावरण में जहरीली गेसो ने पर्यावरण को प्रदूषित किया। सरकार ने प्रदूषण की रोकथाम के लिए बहुत से कानून बनाए लेकिन जरूरत इस बात की है कि उन कानूनों व प्रावधानो का कढ़ाई से पालन किया जाए। प्रदूषण रोकने के लिए जनता को जागरूक किया जाय तथा गावों में भी इसके बारे में चौपाल मेलो आदि में इसके बारे में लोगो को बताया जाय प्रदूषण को रोकने के लिए सुधार कार्यक्रम, वन लगाने की प्रक्रिया में वृद्धि, नये राष्ट्रीय उद्यानो, अभयारण्यो तथा जीवमण्डल सुरक्षित क्षेत्रों का विकास आदि को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

पर्यावरण के क्षेत्र में किए गए प्रयासों के परिणाम अब सामने आने लगे है। जिन पारिस्थितिकीय प्रणालियों तथा प्रजातियों के लिए खतरा पैदा हो गया था, उनके लिए सुधार कार्यक्रम, वन लगाने की प्रक्रिया में वृद्धि, नये राष्ट्रीय उद्यानो, अभयारण्यों तथा जीवमण्डल सुरक्षित क्षेत्रों का विकास तथा हमारे राजनीतिज्ञों, अध्यापकों, छात्रों, पत्रकारों, षहरी तथा ग्रामीण महिलाओं तथा आम लोगों को पर्यावरण के बारे में जागरूक बनाना आदि इस क्षेत्र की कुछ प्रमुख उपलब्धियाँ है। हमें सतत विकास का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए इन प्रयासों को अधिक तेज करना होगा, जिससे मानव आवश्यकताओं और आकांक्षाओ को पूरा करने के लिए वर्तमान तथा भावी, दोनों क्षमताओं में वृद्धि हों।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. पर्यावरण तथा प्रदूषण – डॉ. अरूण रघुवंशी, डॉ. चन्द्रलेखा रघुवंशी (म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल ।
2. पर्यावरण अध्ययन – एस. एम. सक्सेना सीमा मोहन (कैलाश पुस्तक सदन भोपाल)।
3. पर्यावरण– प्रदूषण एवं प्रबन्ध– राम आसरे कनौजिया ।
4. पर्यावरण और प्रदूषण – दयाशंकर त्रिपाठी, पिलग्रिम्स बुक हाउस दूर्गा कुण्ड, वाराणसी ।

****

पर्यावरण के महत्व का संदेश देता हुआ नरेन्द्र मोदी का स्वच्छ भारत अभियान (एक समाजशास्त्रीय मूल्यांकन)

डॉ. संजय जोशी *

शोध सारांश – आजादी के 67 वर्षो पश्चात स्वच्छता के महत्व को स्वीकार करते हुए पहली बार किसी सरकार ने इसे एक जनअभियान का रुप देने का प्रयास किया है। स्वच्छ भारत एक महत्वाकांक्षी एवं बहुआयामी अभियान है जिसके सहउत्पाद या परिणाम के रुप में स्वच्छ, संतुलित, सुरक्षित पर्यावरण का निर्माण होता है। यह परिकल्पना हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गॉधी ने की थी उन्होने एक सपना देखा था कि आजाद भारत स्वच्छ व सुन्दर हो तथा इसे उन्होनें अपने दैनिक जीवन व क्रियाकलापों के द्वारा प्रतिपादित भी किया, लेकिन यह कहते हुये हमें अत्यन्त दुख है कि आजादी के बाद जितनी भी सरकारें आई उन्होंने महात्मा गॉधी के इस महत्वपूर्ण संदेश को भूला दिया। हमे गर्व है कि आज स्वतंत्रता के इतने वर्षो बाद प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने महात्मा गॉधी के स्वच्छ भारत के सपने को साकार करने की दिशा में नियोजित तरीके से योजना बनाकर इसे एक जनअभियान बनाया है। स्वच्छ भारत का अर्थ ही स्वच्छ पर्यावरण है। इस मिशन से पर्यावरण संरक्षण को अत्यन्त मदद मिलने की सम्भावना है जब हम कचरा एवं अनुपयोगी सामग्री को एकत्रित न होने देंगे, चाहे प्लास्टिक या पोलिथिन या ऐसे ही अन्य उत्पाद जो पर्यावरण को नुकसान पहुँचाते हैं को नष्ट किया जायेगा तो पर्यावरण संरक्षण में अत्यन्त लाभकारी होगा। जब देश में कचरा एवं अनउत्पादकों को एकत्रित नही होने दिया जायेगा तो पर्यावरण के आवश्यक घटक जल, हवा, भूमि और मिट्टी अपने आप स्वच्छ बनेंगे और इनका स्वच्छ बनना अपने आप में स्वच्छ पर्यावरण का निर्माण है इसी के साथ गंदगी से होने वालों विभिन्न वायरस जन्य बीमारीयों से भारत मुक्त हो सकेगा। आओ हम सब मिलकर पर्यावरण हितेषी इस अभियान को महाअभियान में रूपान्तरित कर इसे सफल बनाऐ एवं पूरे विष्व में स्वच्छ एवं सुंदर भारत के रूप में देश की पहचान को स्थापित करते हुये इसका गौरव बढ़ाऍ।

प्रस्तावना – आज पूरा विश्व पर्यावरण को लेकर चिंतित है। 18वीं शताब्दी में औद्योगिक क्रांति के बाद नये–नये आविष्कार विशेषकर रेलवे, भूतल परिवहन, नये–नये औद्योगिक संयंत्र, हवाईजहॉज का आविष्कार इत्यादि ने सबसे पहले मानव इतिहास में पर्यावरण को दूषित करना एवं पर्यावरण असंतुलन उत्पन्न करने का कार्य प्रारंभ किया। औपनिवेशिक शासन के फलस्वरुप अंग्रेजों द्वारा रेलवे लाईन एवं रेलगाड़ियों हेतु स्लीपर की आवश्यकता को पूरा करने के लिये बहुत बड़ी तादाद में जंगल से पेड़ों को काटा गया। विभिन्न औद्योगिक ईकाईयों ने वायुमण्डल एवं नदियों को अवशिष्ट पदार्थो के द्वारा प्रदूषित करने का कार्य किया। विभिन्न वैज्ञानिक आविष्कारों ने मानव जीवन को सुख–सुविधा पूर्ण बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

अध्ययन के उद्देश्य – इस अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नानुसार है –

1. पर्यावरण एवं स्वच्छता के संबंध को जानना।
2. पर्यावरण संतुलन में स्वच्छता के महत्व का अन्वेषण करना।
3. प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के स्वच्छ भारत अभियान का पर्यावरणीय महत्व का पता लगाना।
4. स्वच्छ भारत अभियान का सामाजिक जागरुकता एवं समाजशास्त्रीय महत्व की दिशा में मूल्यांकन करना।

अध्ययन पद्धति –अध्ययन हेतु अनुभवात्मक अधारित प्राथमिक तथ्यों एवं द्वितीयक तथ्यों दोनों का संकलन किया गया। प्राथमिक तथ्य 30 सूचनादाताओं से व्यक्तिगत साक्षात्कार अनौपचारिक बातचीत, समूह चर्चा एवं अनुसंधान की सबसे विश्वसनीय पद्धति निरीक्षण व अवलोकन के द्वारा प्राप्त किये गये। 30 सूचनादाताओं में 10 सूचनादाता व्यापारी वर्ग से 10 सूचनादाता वेतनभोगी वर्ग से एवं 10 सूचनादाता कृषक एवं सेवा ईकाईयों को संचालित करने वालो में से चयनित किये गये। चयन सौउद्देशीय एवं कोटा निदर्शन पद्धति के माध्यम से किया गया। द्वितीयक तथ्य इलेक्ट्रोनिक एवं प्रिंट मिड़िया जिसमें टेलीविजन, इंटरनेट एवं समाचार पत्रों के माध्यम से सूचनायें एवं समंक संकलित किये गये।

तथ्यों का वर्गीकरण एवं विश्लेषण –सूचनादाताओं से जब पर्यावरण को असंतुलित एवं प्रदूषित करने का कारण पूछा गया तो इस प्रश्न के उत्तर में सूचनादाताओं के अभिमत निम्नानुसार रहे।

सारणी क्रमांक 01 (देखे अन्तिम पृष्ठ पर)

सारणी क्रं. 1 से स्पष्ट हो रहा है कि 40 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने पर्यावरण अंसतुलन हेतु वनों के ह्रास को महत्वपूर्ण कारक माना है। इसके पश्चात समान रुप से 20–20 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने पर्यावरण असंतुलन हेतु भौतिकवादी एवं उपभोक्तावादी मूल्य, प्रकृति का अत्यधिक दोहन तथा आधुनिक पीढ़ी की सुविधाभोगी एवं आरामदायक जीवनशैली को बताया।

सारणी क्रमांक 02

स्वच्छता एवं पर्यावरण का सम्बन्ध

मुद्दा : क्या स्वच्छता पर्यावरण को प्रभावित करती है			
क्रं.	सूचनादाताओं के वर्ग	सहमत	असहमत
1.	व्यापारी वर्ग	8 (80%)	2 (20%)
2.	वेतनभोगी	9 (90%)	1 (10%)
3.	कृषक एवं सेवा यूनिट संचालक	7 (70%)	3 (30%)
	योग	24 (80%)	6 (20%)

* विभागाध्यक्ष (समाजशास्त्र) स्वामी विवेकानंद शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नीमच (म.प्र.) भारत

इस तालिका से यह स्पष्ट होता है कि स्वच्छता सीधे पर्यावरण को प्रभावित करती है। इससे सबसे अधिक सहमति प्रदान करने में वेतनभोगी वर्ग आता है फिर व्यापारी वर्ग उसके पश्चात् कृषक एवं सेवा यूनिट संचालक अपनी सहमति प्रदान करते है हैं। वहीं इस मुद्दें पर 30% कृषक एवं सेवा यूनिट संचालक असहमत दिखे। इस मुद्दें पर वेतनभोगियों में से 10 प्रतिशत एवं व्यापारी वर्ग में 20 प्रतिशत सूचनादाताओं ने सहमति प्रदान नहीं की।

सारणी क्रमांक 03 (देखे)

प्रधानमंत्री स्वच्छ भारत योजना के संदर्भ में 53 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इसे बीमारियों की रोकथाम हेतु सर्वाधिक उपयोगी योजना के रुप में स्वीकार किया। इसके पश्चात 23 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने यह माना कि यह योजना भारत में पर्यावरण के प्रति जागरुकता उत्पन्न करने की दृष्टि से एक महत्वाकांक्षी एवं उपयोगी योजना है। 10 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इसे पर्यावरण प्रदूषण को रोकने हेतु इसे उपयोगी माना। समान रुप से 07-07 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस अभियान को सामाजिक सहिष्णुता उत्पन्न करने एवं समाज में एकता के भाव विकसित करने की दृष्टि से महत्व का बताया।

निष्कर्ष – प्रस्तुत शोधपत्र के माध्यम से प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारा प्रारंभ की गयी एक अत्यन्त बहुउपयोगी एवं महत्वाकांक्षी स्वच्छ भारत योजना का मूल्याकंन किया गया। अध्ययन के निष्कर्ष इस बात को प्रतिपादित कर रहे है कि इस योजना ने सभी वर्गो में चाहे वो कृषक हो चाहे व्यापारी हो या चाहे वेतनभोगी वर्ग हो कुल मिलाकर के समाज के सभी वर्गो में पर्यावरण के प्रति एक सजगता का भाव विकसित कर रही है। इस संदर्भ में सभी लोग स्वच्छता के महत्व को स्वीकार तो करते है, लेकिन इसे आचरण एवं व्यवहार में लाने वाले व्यक्तियों की संख्या अभी बहुत कम है। जब तक व्यक्ति स्वच्छता से संबंधित अपनी आदतों एवं व्यवहार में परिवर्तन नहीं लायेगा तब तक इस योजना का समुचित लाभ नहीं मिल पायेगा। स्वच्छता से संबंधित अभिमत में तीनों ही वर्गो से 53% लोगों ने स्वच्छता के महत्व को बीमारियों की रोकथाम की दृष्टि से सर्वाधिक उपयोगी बताया। 33% लोगों ने स्वीकार किया कि पर्यावरण के प्रति जागरुकता एवं पर्यावरण को दूषित होने से रोकने में भी यह योजना महत्वपूर्ण निभाएगी।

पर्यावरण को असंतुलित करने में उत्तरदाताओं के जो अभिमत प्राप्त हुये उनमें मुख्य रुप से आधुनिक पीढ़ी के द्वारा अपनायी जा रही सुविधाभोगी एवं आरामदायक जीवनशैली तथा उपयोग करो और फेकों की मनोवृत्ति को पर्यावरण को नुकसान पहुंचाने हेतु जिम्मेदार माना है। भौतिकवादी एवं आरामदायक जीवनषैली भी पर्यावरण असंतुलन हेतु एक महत्वपूर्ण कारक के रुप में प्रकट हुआ। उपभोक्तवादी जीवनशैली प्लास्टिक के उत्पाद और प्लास्टिक की थैलियां, प्लास्टिक की डिस्पोसेबल सामग्रीयों का अत्यधिक उपयोग पर्यावरण को असंतुलित करने का एक प्रमुख घटक बना है। उपभोक्तावादी संस्कृति ने प्रकृति का अंधाधुंध दोहन किया हैं। लक्जरी आयटम का प्रयोग जिनमें एयर कण्डीशनर मशीन, वाशिंग मशीन, रेफ्रीजरेटर, इमारती, लकड़ियों से बने आधुनिक मकान एवं फर्नीचर, पेट्रोल एवं डीज़ल से चलने वाली गाड़ियों का अत्यधिक उपयोग ये सब वे प्रमुख कारण है जो पर्यावरण को असंतुलित कर मानव जीवन के लिये भारी खतरा उत्पन्न कर रहे हैं। अभी भी समय हैं कि हम संभल जाएं एवं हमारी आदतों तथा स्वभाव में स्वच्छता को सम्मिलित करते हुए पर्यावरण एवं स्वच्छता की दृष्टि से एक नीट एण्ड क्लीन इण्डिया का निर्माण करें जो न केवल पूरे विश्व में भारत की एक अच्छी छवि निर्मित करेगा बल्कि विश्व के कई देशों के पर्यटकों को भारत आने हेतु लुभायेगा एवं इस प्रकार राजस्व आय की वृद्धि से भारत एक सशक्त एवं समृद्ध देश बन सकेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. Murthy, B.N. (2005) **Environmental Planning & Management**, New Delhi : Deep & Deep Publications Pvt. Ltd.
2. Dassman, R.F. (1937) **Conservation, Counter, Culture and Separate Human Ecology**, New York : M.C. Graw Hill.
3. कुमार, संजीव (2012) **पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण,** पटना: लूसेन्ट पब्लिकेशन।
4. श्रीवास्तव, वी.के. एवं सक्सेना, एन.एम. (2006) **पर्यावरण अध्ययन,** आगरा: साहित्य भवन।
5. गुप्ता, आ.के. एवं जाट, बी.सी. (2001) **पर्यावरण भूगोल,** जयपुर: पंचशील प्रकाशन।
6. स्त्रोत. दैनिक भास्कर 08 अक्टुबर 2014, इंदौर संस्करण।
7. स्त्रोत. इण्डिया टुडे दिसंबर 2014, द्वितीय अंक, नई दिल्ली।
8. पर्यावरण संदेश मैग्जीन, नवबंर 2014, रतलाम।
9. इंटरनेट से प्राप्त : सामग्री एवं इलेक्ट्रॉनिक मिडिया।

सारणी क्रमांक 01 – पर्यावरण असंतुलन एवं कारक

क्रं.	सूचनादाताओं के वर्ग	पर्यावरण असंतुलन हेतु जिम्मेदार कारक				योग
		वनों का कम होना	भौतिकवादी एवं उपभोक्तावादी मूल्य	प्रकृति का अत्यधिक दोहन	आधुनिक पीढ़ी की सुविधाभोगी एवं आरामदायक जीवन शैली	
1.	व्यापारी वर्ग	5 (50%)	2 (20%)	1 (10%)	2 (20%)	10 (100%)
2.	वेतनभोगी	4 (40%)	1 (10%)	3(30%)	2 (20%)	10 (100%)
3.	कृषक एवं सेवा यूनिट संचालक	3 (30%)	3 (30%)	2 (20%)	2 (20%)	10 (100%)
	योग	12 (40%)	6 (20%)	6(20%)	6 (20%)	30 (100%)

सारणी क्रमांक 03
प्रधानमंत्री स्वच्छ भारत योजना की सामाजिक एवं पर्यावरणीय उपयोगिता

क्रं.	वर्ग	सामाजिक सहिष्णुता बढ़ाने मे	एकता के भाव विकसित करने में	पर्यावरण के प्रति जागरुकता उत्पन्न करने में	बीमारियों की रोकथाम	पर्यावरण प्रदूषण को रोकने में उपयोगी	योग
1.	व्यापारी वर्ग	00(0%)	00(0%)	03(30%)	05 (50%)	02(20%)	10
2.	वेतनभोगी	02(20%)	00(0%)	02(20%)	05(50%)	01(10%)	10
3.	कृषक एवं सेवा यूनिट संचालक	00(0%)	02(20%)	02(20%)	06(60%)	00(0%)	10
	योग	02(7%)	02 (7%)	07 (23%)	16 (53%)	03 (10%)	30(100%)

****

पर्यावरण और स्वास्थ

डॉ. प्रेमलता तिवारी *

प्रस्तावना – जैविक, रासायनिक और भौतिक कारको के मेल की इकाई पर्यावरण है जो समस्त ब्रम्हाण्ड के जीवन को तय करता है। प्राकृतिक और मानव निर्मित पर्यावरण के बिच बहुत बड़ा अंतर नही किया जा सकता क्योंकि दोनो परस्पर पूरक है। मनुष्य के ऊपर पर्यावरण का प्रभाव और मनुष्य के द्वारा पर्यावरण पर डाले गये प्रभाव की व्याख्या करे तो एक विनाशकारी भविष्य की काली छाया मानव जीवन पर मंडराती दिखाती देती है। तकनीकी मानव ने जीवन की विलासिता की दौड़ मे वैश्वीकरण की लालसा के परिणाम स्वरूप प्राकृतिक पर्यावरण से व्यापक छेड़ छाड़ की है जिसका परिणाम सर्वविदित है। मशीनी युग के प्रदुषण ने वायु, जल, भूमि, आकाश को नैसर्गिक नही रहने दिया है। प्रकृति के अवांछनीय परिवर्तन प्रदूषण के अभिशाप का ही परिणाम है। प्राकृतिक पर्यावरण का मूल रूप अब नष्ट प्राय है। संचेतन और संवेदनशील मानव आज विभिन्न रोगो का शिकार हो रहा है। जितना ज्यादा रोगो का इलाज नये नये तरिको से किया जाता हैं उतने अधिकाधिक रोग अलग अलग रूप मे फैलते जा रहे है जिसका कारण ही पर्यावरण से व्यापक छेड़छाड़ है।

वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी और आकाश से निर्मित पंचतत्वीय मानवीय शरीर प्राकृतिक प्रदूषण के विभिन्न प्रकारो से प्रभावित है।

वायु प्रदुषण – दमा, सर्दी, खांसी, अंधापन, श्रवणशक्ति, त्वचा रोग, उच्च रक्तचाप

जल प्रदुषण – टायफाइड, हैजा, गैस्ट्रिक

भुमि प्रदुषण – भोज्य पदार्थो के स्त्रोतो के दुषित होने से समस्त पेट संबंधी रोग

प्रकाश प्रदुषण – नेत्र संबंधी समस्त रोग

ध्वनि प्रदुषण – कान संबंधी समस्त रोग

रेडियोधर्मी – कैंसर, त्वचा संबंधी समस्त रोग

स्पष्ट है कि हवा, पानी, मिट्टी का अवांछित द्रव्य से दुषित होना ही हमारे स्वास्थ के लिये घातक है। ओजोन परत जो हमारी पृथ्वी के चारो ओर सुरक्षात्मक गैस की परत है पर्यावरण प्रदुषण की शिकार हो गयी है परिणाम हानिकारक अल्ट्रावायलेट किरणो का दुषप्रभाव बढ़ गया है। औद्योगिक क्रांति के बाद कार्बन डाई आक्साइड वायुमंडल मे अधिक मात्रा मे बढ़ जाने का परिणाम है कि आज मानव सांसे भी सुकून से लेने को तरसने लगा है। जापान के योको हामा की बैठक के बाद आईपीसीसी की रिपोर्ट मे कड़ी चेतावनी दी गई है कि समुद्र का स्तर 26–82 सेंटीमीटर बढ़ जायेगा जिससे मौसम खराब होगा जिसका असर स्वास्थ पर भी पड़ेगा क्योंकि पानी और गर्मी से होने वाली बीमारियॉ बढ़ेगी साथ ही मच्छरो के कारण होने वाली बीमारियो मे भी इजाफा होगा। W.M.O. के मुताबिक पृथ्वी के वातावरण मे कार्बन डायआक्साईड का घनत्व 141 फीसदी बढ़ चुका है।

स्पष्ट है कि पर्यावरण प्रदुषण ही मानव अस्वस्थता का सबसे बड़ा कारण है तब पर्यावरण चेतना को जागरूक करना कितनी बड़ी आवश्यकता हो गयी है यह सर्वविदित है। भारतीय संस्कृति ने पंचतत्व से जुड़े पॉचो तत्वो को देवता का मान दिया था कि प्रकृति को शक्तिशाली रखा जा सके क्योकि उसकी रक्षा याने हमारी रक्षा है–

ऋगवेद– इस ब्रम्हाण्ड मे पृथ्वी सबसे शक्तिशाली है क्योकि यही सृजन एवं विकास और यही हास तथा नष्ट कराती है अत: प्रकृति के विरूद्ध आचरण नही करना चाहिये।

लेकिन प्रगति की दौड़ मे हाफते मनुष्य ने कितना कुछ पिछे छोड़ दिया है उसे कुछ याद नही है। अंतहिन लालसाओ और मानव निर्मित पर्यावरण के चलते हमने शारिरिक, मानसिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक, समस्त प्रकार के स्वास्थ के साथ खिलवाड़ किया है। दैहिक, मानसिक और सामाजिक रूप से पूर्ण स्वस्थ तो विश्व मे शायद ही कोई रहा होगा। एस. आर. मार्टिन रीस नामक प्रसिद्ध वैज्ञानिक मे हमारे अंतिम घंटे मे दावा किया है कि वैज्ञानिक उन्नति के प्रभाव से मानव के विलुप्त होने का खतरा बढ़ गया है इसका मतलब साफ है कि मानव खुद की अपने विनाश का कारण बनेगा।

अब समय आ गया है कि स्वस्थ बने रहने के लिये पर्यावरण को हराभरा रखना होगा। प्राकृतिक संतुलन को बनाये रखना होगा। धनी आबादी वाले क्षेत्र को हरा–भरा करना होगा। कल– कारखानो के प्रदुषित द्रव्य को नष्ट करना होगा। ग्लोबल वार्मिंग समस्या की चुनोती को गंभीरता से लेना होगा क्योकि 2040 तक ग्रीन हाउस गैस तीन गुना होने की संभावना बन गयी है। मौसम की अनियमितता से बीमारिया फैलेगी इसलिये विश्व को जलवायु परिवर्तन के संभावित खतरो के बचाने के लिये पर्यावरण पर ध्यान देना अतिआवश्यक है।

विश्व स्वास्थ संगठन की रिपोर्ट क अनुसार पर्यावरण प्रदुषण के कारण श्वास तथा ह्रदय संबंधी बीमारियो के साथ साथ मच्छरो जरित बीमारिया बहुत ज्यादा बढ़ जायेगी। जरूरत इस बात की है जैविक वृद्धि, जल संरक्षण, हरे भरे वृक्ष हेतु जनआंदोलन किया जाये। जनजागरूकता के अभियान के साथ साथ माध्यमिक स्तर से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक के शैक्षणिक पाठ्यक्रम मे अनिवार्य रूप से पर्यावरण के पाठ्यक्रम शामिल किये जाये। समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है वैश्विक ताप वृद्धि पर प्रभावी नियंत्रण हो। वनो के विनाश को विषाक्त मुक्त करना होगा। भौतिक और जैविक के परस्पर संबंधो को संतुलित करना होगा इनमे से किसी एक का दुसरे पर हावी

* प्राध्यापक (हिंदी) शासकीय महाविद्यालय, बड़वाह (म.प्र.) भारत

होना बिमारियो को आमंत्रित करना है यह तय है कि भौतिक पर्यावरण मे आने वाला बदलाव जैविक परिवर्तन को प्रभावित करता है।

हमारी सोच और हमारे सरोकार भिन्न है, स्वार्थ और परमार्थ भिन्न है, कभी सोचा ही नही था कि पर्यावरण से खिलवाड़ करना हमारे स्वास्थ से खिलवाड़ है इसलिये क्रांतिकारी जागरण आवश्यक है। बेशक खोये हुए स्वास्थ को वापस नही लाया जा सकता, लेकिन इतना तो किया ही जा सकता है कि जो स्वस्थ रहने की सोच कसमसा रही है उसे थाम ले। हम आने वाले कल के लिये पर्यावरण से खिलवाड़ बंद कर अपने आप को बदले।

दुष्यन्त के शब्दो मे–

अब तो इस तालाब का पानी बदल दो
ये कमल के फूल कुम्हलाने लगे है।

आने वाले नन्हे मुन्नो रूपी कमल के फूल हमेशा खिलते रहेगे बशर्ते हरे भरे पर्यावरण का उपहार हमारी ओर से उन्हे दिया जाये ताकि वे स्वस्थ, चुस्त और स्फूर्ति वान बने रहे।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. पर्यावरण विकिपिडिया
2. पर्यावरण प्रदुषण विकिपिडिया
3. अहा! जिंदगी नवंबर 2012
4. web dunia.com
5. India water portal.com
6. धारा/पर्यावरण / विज्ञान/ समाज

****

भारत के इतिहास में पर्यावरणीय मूल्य का अध्ययन

प्रो. उषा अग्रवाल *

प्रस्तावना – आज पर्यावरण संरक्षण वैश्विक स्तर पर विचारणीय विषय बन गया है। मानव से लेकर ब्रह्मांड तक विस्तृत स्वरूप लिये इस विषय का केन्द्र बिन्दु वैश्विक मानव है। मानव और पर्यावरण का संबंध प्रकृति एवं जीवन की भांति शाश्वत और प्रगाढ़ है। दोनों एक दूसरे से स्वतंत्र रहते हुए भी अन्योन्याश्रित है। मानव ही पर्यावरण से पीड़ित भी है और वही उसका विनाशक भी है।

पर्यावरण अति प्राचीन काल से भारतीय इतिहास की विषय वस्तु रहा है। भारत के पर्यावरण ने भारतीय इतिहास को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। प्राय: सभी बड़े नगर नदियों के किनारे ही बसाये गये। सिंधु घाटी और गंगा नदी क्षेत्र का अनुकूल पर्यावरण व उपजाऊ भूमि, बड़े-बड़े साम्राज्यों की स्थापना के कारण बने। पाटलीपुत्र नगर अनुकूल पर्यावरण के कारण ही गंगा और सोन नदी के संगम पर स्थापित किया गया। इसी प्रकार शिक्षा और संस्कृति के प्रमुख केन्द्र तक्षशिला, नालंदा, वल्लभी, सारनाथ आदि यहां के अनुकूल पर्यावरण के कारण ही विद्या और संस्कृति के केन्द्र के रूप में स्थापित हुए।

भारत के पर्यावरण इतिहास को प्राचीन परम्पराओं, लोक जीवन और कलाओं ने समृद्ध किया है। इस संदर्भ में देखा जाए तो भारतीय हिन्दू जीवन शैली में प्रकृति संरक्षण सम्बंधी दिनचर्या शामिल थी, जिसके उदाहरण हमें वेद, उपनिषद् और पुराण में मिलते है। ये ग्रंथ हमें प्रकृति का मूल्य सिखाते है।1

प्रस्तुत अध्ययन में प्राचीन भारतीय ग्रंथों का अध्ययन पर्यावरण मूल्य को जानने के लिये किया गया है, जो मानव मस्तिष्क को वर्तमान समय में प्रकृति संरक्षण की प्रेरणा देगा।भारत की उत्तरी तथा दक्षिण की सात नदियो तथा सात पर्वतो को भारतवासी अतीत काल से ही सम्मान देते आये है। भारत का हिन्दू प्रात: स्नान करते समय निम्नलिखित श्लोक पढ़ते हुए देश की नदियो व पर्वतो को सम्मान देता है।

गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति:।
नर्मदे सिंधु कावेरी जलेऽस्मिन् सन्निधिंकुरु।।
महेन्द्रो मलय: सह्य शुक्तिमानऋक्ष पर्वता:।
विंध्यष्च पारियत्रश्च सप्तैते कुल पर्वता:।।

अर्थात-

''ऐ गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिंधु, कावेरी हमारे इस जल मे वास करो।''

पर्वतो के नाम इसप्रकार है- ''महेन्द्र, मलय, सह्य, शक्तिमान, ऋक्ष, विंध्य तथा परियात्र।''

उपर्यक्त सात नदियो तथा पर्वतो के प्रति भारतीयो का मोह और निष्ठा भारत की अखण्ड एकता का प्रबल प्रमाण है।

सिंधु घाटी के निवासी भी वृक्ष-पूजन करते थे। पीपल तथा तुलसी की पूजा प्रमुख रुप से होती थी। लोगों मे विश्वास था कि वृक्षों और पशुओं मे मंगलकारी और अमंगलकारी दोनो प्रकार की आत्माओं का निवास रहता था[2]। खुदाई मे अनेक मुहरों पर वृक्षों की आकृतियां अंकित है। खुदाई मे एक वनदेवी की मूर्ति भी मिली है जिसमे एक स्त्री के उदर से एक पौधे को निकलते हुए बताया गया है।

वृक्ष पूजा के समान पशु पूजा का भी प्रचलन था। हड़प्पावासी बैल की पूजा करते थे, जबकि आर्य गाय को बहुत पवित्र मानते थे, और उसकी पूजा करते थे3। अधिकांश पशु- मूर्तियां कल्पनाजन्य है। कुछ पशुओं को आधे मनुष्य तथा आधे पशुओं के रुप मे दिखाया गया है। कुछ पशुओं के आगे धूपदानी रखी ज्ञात होती है तथा कुछ मे व्यक्ति को नाग पूजा करते दिखाया गया है। यहाँ की मुद्राओं मे सबसे महत्वपूर्ण वस्तु मुद्राएँ हैं जिनकी संख्या 2,000 से अधिक है। इन पर लेख खुदे हुए हैं जो अभी तक पढ़े नही जा सके। उन पर शेर, चीते, गैंडे, रीछ, गीदड़, भेड़िये, कई प्रकार के हिरण, बारहसिंगे, साम्भर, हाथी, भैंस, भेड़, पक्षी आदि जीवों की सजीव आकृतियाँ अंकित है[4]।

सिंधु घाटी के निवासी प्राकृतिक पदार्थो का भी पूजन करते थे। विशाल स्नान-कुण्ड जल पूजा का प्रमाण है। इस स्नान-कुण्ड को मार्शल ने एक आश्चर्यजनक निर्माण बताया है[5]। प्राकृतिक पदार्थो मे सूर्य और अग्नि-पूजा के प्रमाण मिले भी है।

मोहन जोदड़ो से एक मुद्रा प्राप्त हुयी है जिस पर पीपल की दो डाली के मध्य एक देवता का चित्र बना हुआ है। हड़प्पा मे भी एक मुद्रा प्राप्त हुयी है जिसमे पीपल की डाली पकड़े एक आकृति दिखाई गई है[6]।

वैदिक कालीन आर्य प्रकृति के उपासक थे। वे प्रकृति के विभिन्न स्वरुपों की पूजा करते थे। उनका विश्वास था कि सूर्य, चन्द्र, वायु, मेघ आदि मे ईश्वर का वास है। एक इतिहासकार के शब्दों मे ''जहाँ कही भी आर्यो को किसी जीवित शक्ति का आभास मिला, वही उन्होने एक देवता की सृष्टी कर दी। अत: अपनी प्रारम्भिक अवस्था मे देवगण प्राकृतिक शक्तियों के प्रतीक मात्र थे।''

2000 वर्ष पुराना पाली भाषा मे लिखित ग्रंथ गज शास्त्र मे हाथियों का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है7। क्योंकि हाथी युद्ध मे काम आता था, शिकार मे काम आता था और वैभव का प्रतीक होता था। सिंधु सभ्यता और वैदिक युगीन मृदभांडो पर तत्कालीन पशु-पक्षी और वनस्पति का

* प्राध्यापक (इतिहास) शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मन्दसौर (म.प्र.) भारत

विवरण मिलता है। इसमे गेंडे और हाथी का चित्रण मिलता है। इसी प्रकार हड़प्पा सभ्यता मे एक सील पाई गई जिस पर चीता उकेरा हुआ है। मौर्यकाल मे जंगलों की तरफ विशेष ध्यान दिया गया। क्यांकि इसे संसाधन के रुप मे देखा गया।

मालवा क्षेत्र मे हर परिवार मे निश्चित वृक्ष की पूजा की जाती है। परिवार जिस वृक्ष की पूजा करता है उसकी लकड़ी जलाता नही है। प्राचीन काल मे वृक्ष लगाने की परम्परा को धर्म से जोड़ा गया है। वृक्ष को देवता मानकर पूजने की हमारी सांस्कृतिक मान्यता पर्यावरण-संरक्षण का वैज्ञानिक आधार लिये हुए है। 'कठोपनिषद' की एक कारिका है.... ऊँ शनिदेवो अभिष्टो आपो भवन्तु न पिवते, मूले ब्रह्मा त्वचा विष्णु शाखायाम तु शंकरम् पत्रे-पत्रे देवानाम वृक्षराज नमस्तुते8।

यही कारण हे कि सार्वजनिक स्थलों, जलाशय के तट और धार्मिक स्थानों के आस-पास बड़े-बड़े वृक्ष लगाए जाते थे जिससे पथिक को छाया भी मिले और फल भी मिले।

वराहमिहिर ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ वृहत्सहिता मे एक पूरा अध्याय वृक्षायुर्वेद पर लिखा है[9] जिसमे उन्होने कहा है कि...

एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष की दूरी 20 हाथ अथवा प्राय: 30 फिट होना चाहिये जिससे उसकी शाखाए आपस मे टकराए नही और उनको फैलने की जगह मिलें।

बहुभिर्वत किं जातै: पुत्रैर्धर्मार्थवर्जितै:।
वरमेक: पार्थ तरुयत्र विश्रमते जन:।।

भारतीय संस्कृति मे वृक्षो की महत्ता को स्वीकार करते हुए एक श्लोक मे कहा गया है कि धर्म और अर्थ रहित अनेक पुत्रो की अपेक्षा पथ का एक पेड़ श्रेष्ठ है जहाँ पथिक तो विश्राम कर सके। इसी प्रकार मत्स्य पुराण मे कहा गया है कि 10 कुएँ एक तालाब के बराबर है, 10 तालाब एक झील के बराबर है, 10 झीलें एक पुत्र के बराबर हैं एवं 10 पुत्र एक वृक्ष के बराबर है।

दशकूपसमा वापि दषवापि समो हुद:।
दष हदसम: पुत्रो दशपुत्र समो दुम:।।

पेड़ पौधो से संबंधित अनेक पौराणिक परम्पराए भी प्रचलित है जिनमे कथाऐ, गीत, लोक कथाए, व्रत, उत्सव जो वृक्षों के महत्व को रेखांकित करती है।

भारतीय जनमानस मे तुलसी का अत्यंत महत्व है प्राय: सभी घर मे तुलसी का पौधा लगाया जाता है तुलसी विवाह का आयोजन किया जाता है और नई रिसर्च यह साबित भी कर रही है कि तुलसी का सेवन कैंसर एवं स्वाईन फ्लु जैसे रोगों से लड़ने मे सक्षम है। इसी प्रकार पीपल के वृक्ष में लक्ष्मी का वास माना गया है इसलिये पीपल की पूजा की जाती है 10 साथ ही पीपल के वृक्ष को काटना निषेध है। आज हम सभी ये मानते है कि विज्ञान की दृष्टि से भी पीपल का महत्व अन्य वृक्षों की तुलना मे ज्यादा है।

इसी प्रकार आँवला वृक्ष की पूजा आँवला नवमी को, वट की पूजा वट सावित्री जैसे व्रत, उपवास और पूजा पौधों को बचाने की दिशा मे अहम प्रयास रहें है।

प्राचीन काल से ही भारतीयो मे पानी के शुद्धीकरण का भी विवरण हमे मिलता है। वराहमिहिर ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ वृहत्सहिंता मे पानी को शुद्ध करने के लिये औषधियों के उपयोग के बारे मे बताया है। अंजन, भद्रमुष्ठ, खस, अमला आदि के द्वारा पानी को शुद्ध करने की विधि वराहमिहिर ने बतायी है। सुश्रुत द्वारा भी मेले पानी को औषधीय पौधो द्वारा शुद्ध करने की विधि बताई है।

प्राचीन भारतीय रीति अनुसार तांबे के बर्तन मे पानी भरकर पीना स्वास्थ के लिये लाभदायक है जिसे की शोधकर्ताओं ने भी वैज्ञानिक दृष्टि से सिद्ध किया है।

निष्कर्ष स्वरुप हम कह सकते है कि हमारा इतिहास एवं पूर्व के मानव की जीवन शैली पर्यावरण संरक्षण के प्रति सजग थी। चूंकि मानव के समस्त क्रिया कलाप धर्म से जुड़े थे अत: उन्होने प्रकृति संरक्षण को भी धर्म से जोड़ा था। यही कारण है कि जो भी कुछ आज हमारे पास पर्यावरण है वह मानव के उसी प्रयास का परिणाम है।

वर्तमान में हम धर्म और जीवनमूल्य से दूर होते जा रहे है इसी लिये पर्यावरण खतरे का सामना कर रहें है। यदि सजग होंगे तो हम भी आने वाली पीढ़ी को सही पर्यावरण धरोहर हस्तारन्तरित कर सकेंगे जो उनका अधिकार है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. Malvika Ranjan, "Living in Harmony with Nature" Message of Ancient History Spirituals, Texas's.
2. डॉ. वी. एस. भार्गव, प्राचीन भारतीय इतिहास, जयपुर, 1985
3. चंद्र कुमार सक्सेना, प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत, 1989
4. राधाकुमुद मुखर्जी, प्राचीन भारत, नई दिल्ली, 1990
5. कृष्णचन्द्र श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, इलाहाबाद, 2008-09
6. दिनेशचन्द्र भारद्वाज, भारतीय संस्कृति की रुपरेखा
7. Kramrisch, S. The representation of nature in early Buddhist sculpture. Rupam, 1921.
8. डॉ. हरिमोहन, संस्कृति पर्यावरण और पर्यटन, नई दिल्ली, 2003
9. डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित, मालवी संस्कृति और साहित्य, भोपाल, 2004
10. बाबू गुलाबराय, भारतीय संस्कृति, ग्वालियर, 1969.

****

National Seminar on Biodiversity Conservation & Management (1-2 March 2015) Organized by – Govt. P.G. College, Neemuch (M.P.)

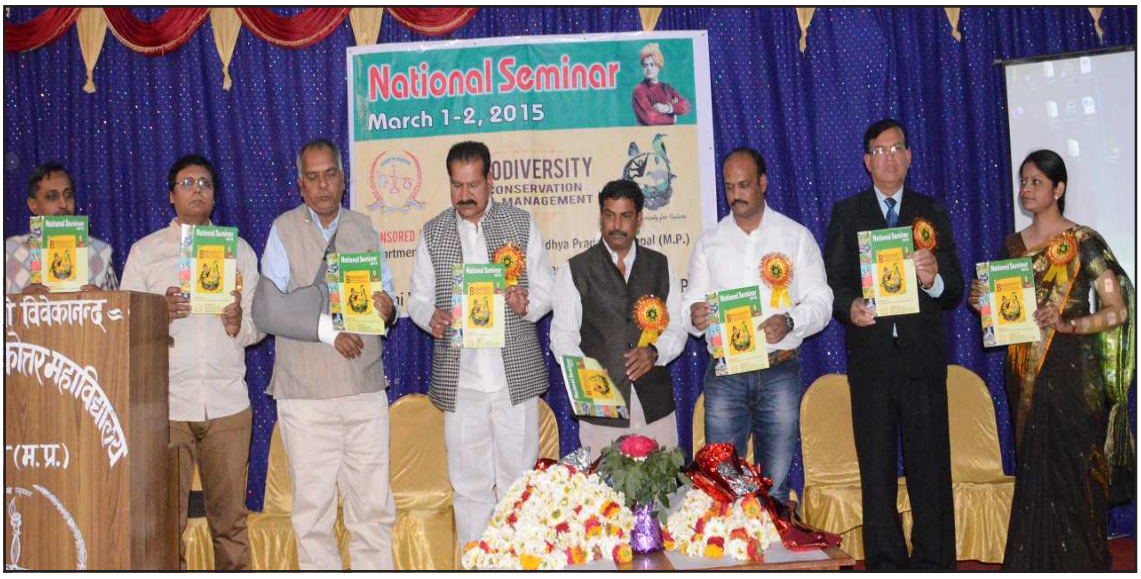

National Seminar
March 1-2, 2015
BIODIVERSITY
CONSERVATION
& MANAGEMENT

BIODIVERSITY
CONSERVATION
& MANAGEMENT
SPONSORED BY-
Department of Higher Education, Madhya Pradesh; Bhopal (M.P.)
ORGANIZED BY- Department of Zoology
Swami Vivekanand Govt. P.G. College Neemuch (M.P.)
स्वामी विवेकानन्द
नीमच (म.प्र.)